॥ श्रीमते रामानुजाय नमः॥

॥ श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः॥  ॥ श्री रङ्गदेशिकमहागुरवे नमः॥

श्री गुरुवर बलराम

भाग-1

शाण्डिल्याह्वय वंशभूषणमणिं रामावतारात्मजं श्री रङ्गार्य पदारविन्दमधुपं मान्यं सदा साधुभिः।
श्रीवाग्भूषण दिव्य भाव निपुणं कारुण्यवारां निधिं शान्तं श्री बलराम सूरिमनघं नित्यं भजे सादरम्॥

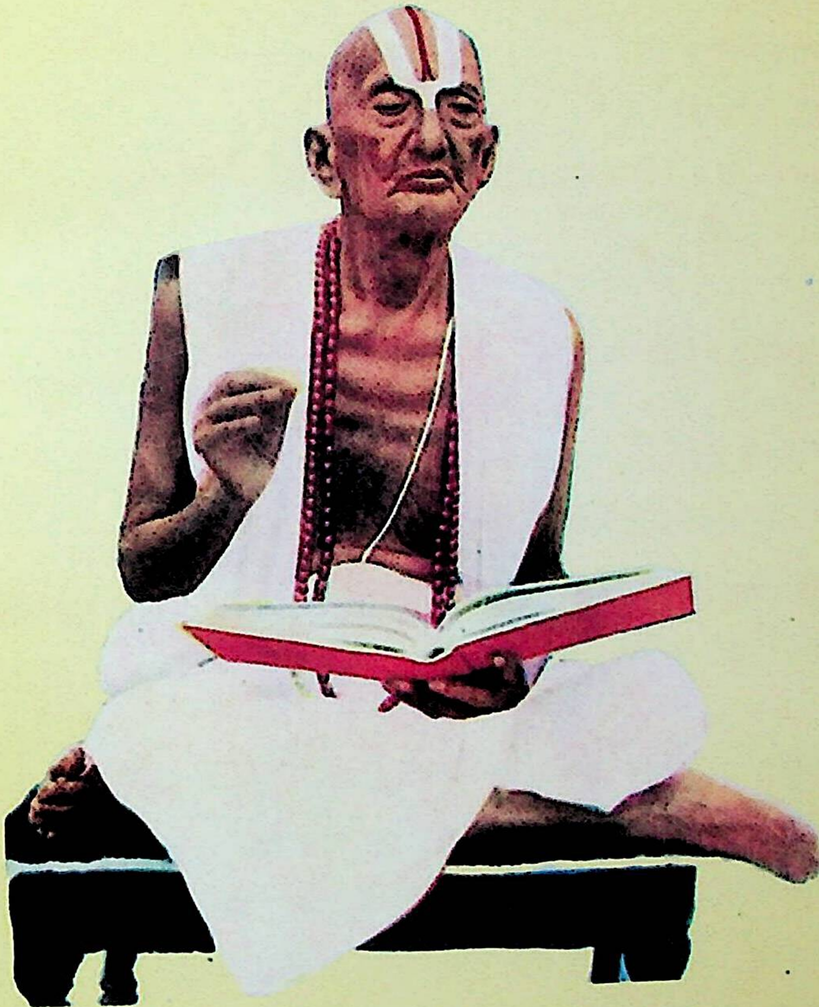
।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

।। श्री विजयराघव भगवते नमः।।



श्री गुरुवर बलराम

(अनन्त श्री विभूषित गुरुदेव स्वामी श्रीबलरामाचार्य जी महाराज का जीवन परिचय)



लेखक :

यतीन्द्र रामानुज दास

(डॉ० इन्दुभूषण वसु - एम.डी.)

प्रकाशक :
श्री बलराम धर्मसेतु ट्रस्ट,
विजयराघव मन्दिर, मातगैड़, अयोध्या जी जिला-फैजाबाद (उ.प्र.) फोन-05278-232247

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
श्री विजय राघव मन्दिर
मातगैड़, श्रीअयोध्या जी
जिला-फैजाबाद (उ.प्र.) पिन-224123

प्रकाशन तिथि : मेष आर्द्रा संवत 2073, श्रीरामानुजाब्द 999, दिनांक 10 मई 2016 दिन मंगलवार

पुर्नमुद्रणार्थ : 351/-

मुद्रक : श्रीसत् साहित्य प्रकाशन
तुलसीनगर, अयोध्या जी
मो.-9839686750, 9454909200

E-mail : rajkumarsood91@yahoo.com

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥



(0565) 2442787 (कार्यालय)
(0565) 2442446 (मेनेजर)

श्री ठाकुर रंगजी महाराज देवस्थान ट्रस्ट

वृन्दावन, (मथुरा) उ.प्र. 281121
(Shri Rangji Temple Trust,- Vrindavan)



॥ श्री रंगदेशिकाय नमः॥

भीगी भीगी स्मृतियाँ

श्री विजयराघव मन्दिर श्री अयोध्या जी के वर्तमान स्वामी जी ने ''श्रीगुरुवर बलराम'' ग्रंथ जो मूल रूप में बांग्ला भाषा में है एवं श्री बलराम स्वामी जी के कृपापात्र श्री यतीन्द्र रामानुज दास जी के द्वारा लिखी गई है एवं जिसका हिन्दी अनुवाद स्वयं श्री यतीन्द्र रामानुज दास जी ने किया है, के मुद्रणावसर पर ग्रंथ में छापने हेतु मंगलाशासनात्मक पत्र की इच्छा प्रकट की । यह उनके स्वरूपानुरुप था, किन्तु गुरुवर बलराम स्वामी जी का व्यक्तित्व ऐसा था कि उनसे सम्बन्धित ग्रंथ में छापने हेतु मंगलाशासनात्मक पत्र लिखना उचित प्रतीत नहीं हुआ । जिन महानुभाव से मंगलाशासन की कामना करनी चाहिये उनसे सम्बन्धित ग्रन्थ के लिए मंगलाशासनात्मक पत्र लिखना उचित नहीं लगा । अत: शीर्षक दिया 'भीगी भीगी स्मृतियाँ'' । कुछ बुजुर्गों के सम्पर्क से एवं कुछ स्वानुभव के आधार पर ।

प्रात: स्मरणीय आचार्यवर श्री रंगदेशिक स्वामी जी महाराज के कृपापात्रों में श्री बलराम स्वामी जी साम्प्रदायिक ज्ञान एवं तद्नुसार आचरण के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखते थे । श्री अयोध्या जी में वर्तमान स्थान के निर्माण पूर्व श्री स्वामी जी श्री वृन्दावन धाम में ही विराजते थे । उनके द्वारा स्थापित स्थान अभी भी श्री रंग मन्दिर के पूर्वी कटरे में ''श्री गोपाल मन्दिर'' के नाम से स्थित है। श्रीधाम वृन्दावन में निवास करते हुए श्री स्वामी जी रहस्य ग्रंथों का प्रवचन करते थे । जिसे सुनने के लिए श्रीधाम निवासी अनेक विद्वतजन पधारते थे । श्री मन्दिर निर्माता श्री राधाकृष्ण जी श्रीमती धर्मपत्नी जी भी श्रवणार्थ पधारती थीं । किसी गम्भीर विषय पर साम्प्रदायिक निष्ठा के विपरीत उनका आचरण देखकर श्री स्वामी जी ने असंतोष व्यक्त किया, जिस पर वैष्णव समाज में विवाद उठा । विवाद को शांत करने हेतु तत्कालीन श्री तोताद्रि स्वामी जी से उस विवाद के सम्बन्ध में पत्र लिखकर

निर्णय मांगा गया। उनका जवाब आने के पूर्व ही हमारे नानाजी ने कह दिया कि स्वामी जी का निर्णय श्री बलराम स्वामी जी के पक्ष में होगा, हुआ भी यही। ऐसा था श्री स्वामी जी का तलस्पर्शी साम्प्रादायिक ज्ञान एवं श्री नानाजी का उनके ज्ञान पर दृढ़ विश्वास। इस घटना की जानकारी पूज्य नानीजी से प्राप्त हुई।

इस घटना से दुखी होकर श्री स्वामी जी ने श्रीधाम वृन्दावन त्यागकर श्री अयोध्या जी को अपना निवास स्थान बना लिया एवं श्री विजयराघव मन्दिर में श्री विजय राघव भगवान की प्रतिष्ठा कर उनकी सेवा में स्वयं को समर्पित कर दिया। श्री विजयराघव भगवान के अयोध्या पधारने के पीछे भी एक इतिहास है जिसका उल्लेख इस ग्रन्थ में है। श्री स्वामी जी से सम्बन्धित एक घटना ने मुझे काफी प्रभावित किया। इस घटना ने श्री स्वामी जी महाराज के हृदय में मानव मात्र के प्रति जो संवेदना थी उसे उजागर कर दिया। रात के बारह बजे थे, एक फकीर अंधेरी रात में कहता हुआ जा रहा था 'कोई माई का लाल है जो मेरी भूख को मिटा सके' श्री स्वामी जी ने सुना, उनका हृदय द्रवित हो उठा, पता लगाया कि क्या प्रभु का रात्रिशेष प्रसाद बचा हुआ है? उत्तर मिला शेष नहीं है। एक तरफ भूखा व्यक्ति द्वार पर पुकार रहा है, दूसरी तरफ प्रसाद नहीं है। पशोपेश की स्थिति थी। उस समय श्री स्वामी जी को याद आया कि प्रातः श्री प्रभु को भोग लगाने के लिए लड्डू बनाकर रखे हैं। संवेदना ने शास्त्र पर विजय प्राप्त की, आदेश दिया कि लड्डू में तुलसी दल छोड़कर उस भूखे व्यक्ति की भूख को मिटा दो। पुजारी कुछ सहमा, स्वामी जी की आज्ञा थी। अतः तद्नुसार तुलसी दल छोड़कर उस भूखे व्यक्ति की भूख शांत कर श्री स्वामी जी के मुखोल्लास का हेतु बना। श्री प्रभु जी के जो अनन्य भक्त होते हैं उन्हें ज्ञात होता है कि प्रभु का मुखोल्लास किस सेवा में है। उन्हें शास्त्र विरूद्ध करते हुए संकोच नहीं होता है। श्री शबरी ने चखे हुए बेर देने में कोई संकोच नहीं किया। इस घटना से प्रभावित होकर श्री वाल्मिकी महर्षि कहते हैं ''शबर्या पूजित स्सम्यक्''। श्री प्रभु के प्रति शबरी के भाव का वर्णन करने में स्वयं को असमर्थ महसूस करते हुए ऋषि सम्यक शब्द का प्रयोग कर आगे बढ़ जाते हैं। श्री गोदा उच्छिष्ट माला प्रदान कर श्री प्रभु को वश में कर लेती हैं। ऐसा करते हुए उन्हें शास्त्र की कोई चिन्ता नहीं सता रही थी। ''अत्यन्त भक्ति युक्तानाम नैव शास्त्रं न च क्रमः'' ऐसे भक्तजनों का यही मूल मंत्र है। उच्छिष्ट माला प्रदान करने के कारण 'आभुक्तमाल्यदा' के नाम से श्री गोदा जी लोक में प्रसिद्ध हुईं। श्री गोदा जी के इस चरित्र से प्रभावित होकर महान आचार्य, जिनका लालन–पालन प्रभु श्री रंगनाथ ने किया श्री पराशर भट्टर के नाम से प्रसिद्ध हुए जिन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना कर श्री सम्प्रदाय को संवर्धित किया, ने श्री गोदाजी की स्तुति में श्लोकात्मक

पुष्प अर्पण करते हुए घटना को उल्लेख ''स्वोक्षिछष्टायां स्रजि निगलितं'' के द्वारा कर आनन्द सागर निमग्न हुए। श्री प्रभु के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित भक्तजनों का ऐसा ही अलौकिक व्यवहार होता है। लोक की चिन्ता नहीं करते। श्री प्रभु का मुखोल्लास ही उनका मुख्य लक्ष्य होता है। इस वृत्तांत की जानकारी मुझे श्री कमलनयनाचार्य स्वामी जी से हुई। जो श्री स्वामी जी की सेवा में थे एवं पश्चात् जिन्हें भगवान श्री विजय राघव की सेवा प्राप्त हुई। इस वृत्तान्त ने मुझे काफी प्रभावित किया। श्री बलराम स्वामी जी में रहस्य ज्ञान एवं तद्नुसार आचरण दोनों का समावेश था। श्री वचन भूषण में आचार्य के लिए दोनों की आवश्यकता पर जोर देते हुए दृष्टान्त के रूप में कहा है जिस प्रकार पंक्षी को उड़ने के लिए दोनों पंखों की आवश्यकता होती है ऐसे ही आचार्य को ज्ञान के तद्नुरुप अनुष्ठान रूपी पंखों की जरूरत है। लक्ष्य प्राप्ति हेतु उक्त दोनों पंखों की आवश्यकता होती है। उनकी शिष्य परम्परा में भी यही परिलक्षित होता है।

उनकी शिष्य परम्परा में श्री भागवताचार्य जी का विशिष्ट स्थान है। श्री भागवताचार्य जी उद्भट विद्वान थे। हमारे नानाजी की बाल्यावस्था में उन्होंने पढ़ाया था। बाल सुलभ चपलता के कारण श्री नानाजी का मन अध्ययन में न लगकर खेलने में लगता था। श्री नानाजी के पूज्य पिता श्री का परम पद श्री नानाजी के बाल्यकाल में हो जाने के कारण उनकी देख–भाल श्री नानाजी की मातु श्री करतीं थीं। एक सेवक के साथ अध्ययनार्थ श्री नानाजी को श्री भागवताचार्य जी के समीप भेजती थीं। श्री नानाजी बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। श्री स्वामी जी से पूछते कि 'शिष्य का क्या स्वरूप है ? श्रीस्वामी जी कहते 'आचार्य मुखोल्लास'। श्री नानाजी कहते पढ़ने में हमारा मुखोल्लास नहीं है। खेलना हमें प्रिय लगता है। तुरंत श्री स्वामी जी घोड़ा बनकर अपने पीठ पर श्री नाना जी को बैठाकर उनकी प्रसन्नता के हेतु बनते थे। सेवक जो साथ में जाता था के कहने पर कि माता जी से शिकायत कर दूँगा। आगे की पढ़ाई शुरू होती थी। श्री स्वामी जी का स्वरूप ज्ञान तद्नुसार आचरण दिल को छू लेता था। वैदुष्य, स्वरूपानुरूप आचरण का बाधक नहीं बना ''पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्''। श्रुति का ज्वलन्त उदाहारण है, इस घटना की जानकारी का स्रोत हमारी नानी जी थी। श्री स्वामी कमलनयनाचार्य जी का व्यक्तित्व भी इस परम्परा के अनुरूप ही था। हमारा सौभाग्य था कि उनका सानिध्य अनेक वर्षो तक हमें मिला। उनके जैसे विरक्त स्वरूप बिरले होते हैं। श्री अयोध्या छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते थे। हमारे आग्रह पर श्रीधाम वृन्दावन में उनका आना संभव हुआ। श्री प्रभु की सेवा भी स्वीकार की। अन्य लोगों की तरह सांसारिक पदार्थो के प्रति हमारा भी आकर्षण था। हाथ में घड़ी बांधता था, अँगूठी भी पहनता था। हमारे एक हितैषी इन्हें त्यागने के लिए कह कह कर हार

गये। उसका कोई असर हम पर नहीं पड़ा। चूँकि वह स्वयं इनके प्रति आकर्षित थे। श्री स्वामी जी के एक बार कहने पर हमने इन्हें त्याग दिया। इसका असर अभी तक बना हुआ है। थोड़ा बहुत बैराग्य अथवा वैराग्याभास हममें परिलक्षित होता है, उसके मूल में श्री स्वामी जी थे। उनके कथन का असर इस लिए पड़ता था क्योंकि उनकी कथनी और करनी में एक रूपता थी। श्री स्वामी जी अपने कटु वचन के लिए प्रसिद्ध थे। जो संत अपने आश्रित का कल्याण चाहता है उसका लक्ष्य संसार के प्रति वैराग्य पैदाकर श्री प्रभु के श्रीचरणों में आसक्ति पैदा करना होता है। अत: उनका प्रवचन में कटुता होना स्वभाविक है। जिससे संसार की आशक्ति दूर हो। मुझे स्मरण है कि हमारे प्रबन्धक जी के एक नजदीकी रिश्तेदार उनसे मिलने आये। वे अच्छे ओहदे पर थे। श्री स्वामी जी ने उनसे पूछा कि यहाँ के लिए आपने काफी संग्रह कर लिया। ऊपर के लिए कुछ कमाया या नही ? उन्हें यह बात काफी बुरी लगी, मृत्यु के अपरिहार्य होने पर भी इन्सान मृत्यु के बारे में सुनना नहीं चाहता है। स्वामी जी के सामने कुछ न कह कर बाहर आकर अपना असंतोष प्रकट किया। मूँछ वालों से विशेषत: ऐसे श्री वैष्णवों से श्री स्वामी जी को बड़ी चिढ़ लगती थी। देखते ही पूँछते थे क्या तुम्हारी मूँछ पर तुम्हारे बाप बैठे हैं। जो निकलते ही गिर पड़ेंगे। अपने पोपले मुखारविन्द से इतने प्यार से बोलते थे कि शायद ही कोई मूँछ बिना मुड़ाये रह पाता। वैष्णव, अवैष्णव कितने ही जनों को उन्होंने श्री एकादशी व्रत के लिए प्रेरित किया, हम भी उनमें से एक हैं। ट्रस्ट के सह सदस्य के रूप में उनका हर समय हमें साथ मिलता रहा, मार्गदर्शन मिलता रहा, प्रेरणा मिलती रही। वर्तमान में जब भी कोई समस्या आती है तो उनका प्रेरणास्पद व्यक्तित्व समस्या समाधान कारक बन जाता है। उनका अभाव अभी भी खलता है। उनके पश्चात श्री स्वामी श्री राघवाचार्य जी का कार्यकाल भी अविस्मरणीय बना रहा। उनकी आस्था, निष्ठा एवं प्रेम को भुला नहीं सकते। एक घटना की स्मृति अभी भी बनी हुई है। श्री अयोध्या प्रवास काल में एक वृहतकाय वानर हमारे पीछे पड़ गया। श्री विजय राघव जी के ऊपर ही ठहरना होता था। अत वानरों का आवागमन बना रहता है। श्री स्वामी जी ने देखा कि वानर हमारे पीछे पड़ा है, अपने वार्धक्य की चिन्ता किये बिना डंडा लेकर सीड़ियाँ लाँघते हुए ऊपर पहुँच गये और हमारी रक्षा की। अपनी अवस्था पर किंचित मात्र भी उनका ध्यान नहीं गया, केवल चिंता थी हमें बचाने की। शायद स्वामी जी न होते तो बंदर से बचना सम्भव नहीं होता। ऐसा था उनका हमारे प्रति प्रेम। वर्तमान स्वामी जी श्री उसी परम्परा का निर्वहण करते हुए इस स्थान को सुचारू रूप से चला रहे है। प्राचीन परम्पराओं का पूर्ण रूपेण निर्वहण हो रहा है। श्री बलराम स्वामी जी की तपस्या का ही प्रभाव है कि श्री विजय राघव की सेवा विधि विधान से हो रही है। जबकि अधिकरतर स्थानों में समयानुसार बदलाव दिख रहा है।

इस स्थान से जुड़े एक महानुभाव के अनुकीर्तन के बिना स्मृतियाँ अधूरी रह जावेंगी। यद्यपि वे स्थानाधिपति नहीं थे तथापि अनेक श्री महंतों के स्वरूपानुरूप निर्माण में योगदान रहा। हम श्री काशी वाले रंगाचारी स्वामी जी का उल्लेख कर रहे हैं। हमारे आग्रह पर ही श्री काशी छोड़कर श्री वृन्दावन धाम पधारे। उनके सान्निध्य में श्री वेदांत ग्रंथों के अध्ययन का सौभाग्य हमें मिला। हमारे साथ अन्य लोगों ने भी अध्ययन का लाभ उठाया। श्री स्वामी जी भावुक होने के नाते लोगों के बहकावे में आ जाते थे। अत: वृन्दावन छोड़ने के लिए वे तैयार हो जाते थे। हमें उन्हें समझा बुझाकर रोकने में पापड़ बेलने पड़ते थे। उनसे सम्बन्धित एक घटना सदा याद रहेगी। नई–नई शादी हुई थी, स्वाभाविक है ससुराल का आकर्षण। श्री प्रभु जी इस आकर्षण से स्वयं को नहीं बचा पाये है तो हम किस खेत की मूली। "असारे खलु संसारे सारं श्वसुरमन्दिरम्। हिमालये हर: शेते हरिश्शेते महोदधौ"। प्रवास में ज्यादा समय लग गया। उन दिनों श्रीधाम वृन्दावन में श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी का गौ रक्षा आन्दोलन चल रहा था। चूँकि स्वामी जी एक विभूति थे। उस आन्दोलन में, उनसे सम्मिलित होने के लिए प्रार्थना की गई। हमारी अनुपस्थिति के कारण रूष्ट स्वामी जी ने अपनी स्वीकृति दे दी। जिस दिन सम्मिलित होना था उसके पूर्व दिन हम वृन्दावन पहुँच गये। श्री गोकुल दास जी राठी, जो निस्वार्थ भाव से श्री प्रभु जी की सेवा में दीक्षित रहते थे, हमें देखते ही विफर पड़े। आपकी अनुपस्थिति के कारण ही श्री स्वामी जी आन्दोलन में सम्मिलित होने जा रहे हैं, आपको ही रोकना होगा आदि आदि। हमने कहा रात्रि शेष है कल क्या होता देखेंगे। श्री प्रभु जी ने हमारी प्रार्थना सुन ली रात्रि को ही श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी को पुलिस ने हिरासत में ले लिया। आन्दोलन स्थगित हो गया। प्रभु ने हमें अपयश से बचा लिया। श्री स्वामी जी को आभास हो गया कि बहकावे में आकर कितनी बड़ी गलती करने जा रहे थे। इस घटना का उल्लेख के माध्यम से सुधी पाठक जनों को यह अवगत कराना चाह रहा हूँ कि श्री स्वामी जी जिन के वैदुष्य का लोहा वाराणसी के विद्वतजन भी स्वीकार करते थे इतने भोले थे जो साधारण जनों के बहकावे में आ जाते थे एवं बाद में पछतावा प्रकट करते थे।

इस परम्परा से सम्बन्धित अन्य विशिष्ट महानुभाव जैसे थाई बाड़ी के योगीराज स्वामी जी जो श्री रंगाचारी स्वामी जी के आचार्य थे, श्रीरामप्रपन्नाचार्य स्वामी आदि का उललेख करना आवश्यक है परन्तु विस्तार भय से कि कहीं यह "भीगी भीगी स्मृतियाँ" स्वतंत्र ग्रंथ का रूप न ले ले, स्वयं को उससे विरत कर रहा हूँ एवं स्मृति पथ से वर्तमान में प्रवेश कर रहा हूँ। 'श्रीगुरुवर बलराम' मूल ग्रंथ जिसके लेखक श्री यतीन्द्र रामानुज दास जी है जिनका हिन्दी रूपान्तर जो आपके कर कमलों में सुशोभित हो रहा है, के रचयिता भी वे ही है। श्री यतीन्द्र रामानुज दास बनने के पूर्व डॉ. इन्दुभूषण वसु के रूप में ख्याति प्राप्त डॉक्टर थे। उनकी ख्याति का अनुभव इस बात से लगा सकते हैं कि उन दिनों

के प्रसिद्ध डॉक्टर बी0 सी0 राय जो बाद में बंगाल के मुख्य मंत्री बने थे, के समकक्ष उन्हें माना जाता था। आचार्य श्री बलराम स्वामी जी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि डाक्टरी त्याग कर पूर्ण रूपेण श्री वैष्णव बन गये। प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण बंगला भाषा में श्री वैष्णव सम्प्रदाय के अनेक ग्रंथों का जो मणि प्रवाल भाषा (तमिल एवं संस्कृत मिश्रित) में लिखित है का अनुवाद किया है। 'गुरुवर बलराम' उनकी स्वतंत्र रचना है। हिन्दी अनुवाद भी स्वयं उन्होंने ही किया है। वर्तमान विजय राघव के स्वामी जी हिन्दी में अनुदित कर 'गुरुवर बलराम' ग्रंथ को छपवा कर अत्यन्त स्तुत्य कार्य कर रहे हैं। ग्रंथ के पठन से मूल ग्रन्थाकार की प्रतिभा जो चिकित्सक के रूप में परिलक्षित हुई ग्रंथ के निर्माण में भी उसने अपनी अमिट छाप छोड़ी है, पठन से पाठकों को ज्ञात होगा। श्री गोवर्धन पीठ की परम्परा का अनुसंधान कर जिस प्रकार निरूपण लेखक ने किया है श्री गोवर्धन पीठ के अनुयायियों एवं अन्यजनों के लिए परम्परा सम्बन्धी जिज्ञासा शांत करने वाली होगी। शास्त्र शिष्यों को अपनी गुरुपरम्परा ''सच आचार्यवंशो ज्ञेय: असावसाविति आभगवत्त:'' स्वाचार्य से भगवान पर्यन्त जानने के लिए निर्देशित करता है। श्री बलराम स्वामी जी के अनुयायियों में एक महानुभाव को इस वचन के प्रति इतनी निष्ठा थी कि वे अपने आचार्य श्री तक सीमित नहीं रहें उनके अवतार स्थल की स्थिति व उनके बंधु आदि की जानकारी हेतु आचार्य श्री के गाँव ही पहुँच गये। उनकी इस निष्ठा से हम अत्यन्त प्रभावित हुए। इस लेख में उनका उल्लेख किये बिना स्वयं को रोक न सके। इस दृष्टि से श्री गोवर्धन पीठ के शिष्यों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय ग्रंथ है, एवं श्री बलराम स्वामी जी के प्रेरणास्पद वृतान्त जिसका वर्णन प्रधान रूप से इस अनूदित ग्रंथ में किया गया है, सुधी पाठकों को विशेषत: उनके लिए जो गुरू की खोज में भटक रहे है को अवगत करायेगा कि गुरू हो तो कैसा हो और शिष्य को कैसा होना चाहिए। भाषागत त्रुटियाँ है, यह स्वभाविक है चूँकि जिन्होंने अनुवाद किया है वे बांग्ला भाषी है। प्रतिपाद्य विषय जिन पाठकों के लिए मुख्य है, आशा है इस ग्रंथ के पठन से अत्यंत संतोष का अनुभव करेंगे और जिनके लिए भाषा भी प्रधान है वह यह सोचकर कि अनुवादक बांगला भाषी है एवं मातृ भाषा का प्रभाव अनुवाद पर पड़ना स्वाभाविक है, भाषागत त्रुटि पर ध्यान नहीं देंगे। विषय ग्राही ही बने रहेंगे। वर्तमान स्वामी जी, जो अनुदित ग्रंथ को मुद्रित कर अत्यन्त स्तुत्य कार्य करने जा रहे हैं, के मंगल की प्रार्थना श्रीगोदारंगमन्नार भगवान के श्री चरणारविन्दों में करते हैं।

श्री मंगल प्रार्थना सहित –

(गोवर्धन रंगाचार्य)

अध्यक्ष

श्री ठाकुर रंगजी महाराज देवस्थान ट्रस्ट, वृन्दावन।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

शुभ सम्मति

जिस प्रकार वेदों में पुरुष सूक्त, धर्मशास्त्र में मनुस्मृति, महाभारत में श्रीमद् भगवद्गीता और पुराणों में विष्णु पुराण श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार वैदिक धर्मों में वैष्णव धर्म ही श्रेष्ठ है। यह परम वैदिक एवं सर्वोत्तम धर्म है। धर्म अत्यन्त सूक्ष्म होता है ज्ञानी विद्वान् तथा साधुओं के लिए भी उसका स्वरुप पहचानना कठिन हो जाता है, सर्वेश्वर भगवान ही धर्म के स्वरूप को सही रूप से जानते हैं ऐसा श्री वाल्मीकि रामायण में बालि के प्रति भगवान श्री राम उपदेश करते हैं।

छुरा के धार से भी धर्म का स्वरूप अधिक सूक्ष्म होता है उस धर्म को कौन जान सकता है, अर्थात् भगवान् और उन के परंपरा से धर्म की शिक्षा प्राप्त किए हुए भक्त जान सकते हैं ऐसा महाभारत उद्योग पर्व 34/30 में बताया गया है।

देवताओं से भी छिपाने योग्य मंत्र, मन्त्रार्थ, रहस्यार्थ एवं धर्म के विषय में यह क्यों हुआ, कैसे हुआ इस प्रकार का प्रश्न या तर्क करना निरर्थक है। हित चाहने वाले मनुष्य को अन्धा और बहिरा व्यक्ति के समान नि :शंक होकर स्वीकार कर लेना चाहिए। (महाभारत अनु0 अ0 206/ 60)

विचार के योग्य विषय सर्वप्रथम यह है कि सत् संप्रदाय हो , परम वैदिक (प्रामाणिक) धर्म हो शिष्टजनों के द्वारा स्वीकृत हो, उसमें दीक्षित ज्ञानी सद्गुरु को स्वीकार कर समाश्रित होना परम आवश्यक है। विधि पूर्वक संस्कार सम्पन्न होकर भगवन् मंन्त्रों की प्राप्ति सांसारिक मनुष्यों के लिये एक महानिधि की प्राप्ति है, अलभ्य लाभ है।

सत् सम्प्रदाय और सद्गुरु भगवद् कृपा से ही प्राप्त होते हैं। सत् सम्प्रदाय का अर्थ होता है– सत् परमात्मा नारायण उनसे शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर गुरु परंपरा (शिष्य–प्रशिष्य) के माध्यम से अटूट रुप में चला हुआ मंत्र, मंत्रार्थ, रहस्यार्थ एवं उनके अनुष्ठान रुप धर्म को सत् संम्प्रदाय कहा जाता है।

श्री लक्ष्मी जी के द्वारा श्री भगवान् नारायण को गुरु बनाकर शिष्यत्व स्वीकार कर प्राप्त संप्रदाय को श्रीसंप्रदाय कहा गया है इस संप्रदाय में शेषावतार जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य स्वामी जी का आविर्भाव होने के बाद अनेकों वेदान्त ग्रन्थ एवं भाष्यों की रचना, अनेकों मठ मन्दिरों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार , धर्म प्रचार के लिए दिग्विजय यात्रा, शास्त्रों की अध्ययन अध्यापन व्यवस्था, हजारों शिष्य द्वारा श्री वैष्णव धर्म का प्रचार करने के कारण बाद में श्री रामानुज संप्रदाय

नाम से प्रचलित हुआ इस संप्रदाय का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त है। श्री रामानुज संप्रदाय में भगवत् कृपा से स्वतः ज्ञान प्राप्त करने वाले भगवद् भक्ति निमग्न दस आल्वारों का अवतार हुआ इसी प्रकार वेद, वेदान्त, वेदाङ्ग तथा सत् शास्त्रों में पारङ्गत सैकड़ों आचार्य भगवद् भक्त भी अवतार ले चुके हैं उन्हीं आचार्यों में से श्री स्वामी गुरुवर बलराम जी भी एक विशिष्ट श्री वैष्णवाचार्य हैं उन्हीं के नामकरण से यह ग्रन्थरत्न भी प्रकाशित होने जा रहा है।

गुरुवर बलराम यह ऐतिहासिक, एक धार्मिक ग्रन्थ है डॉ0 यतीन्द्र रामानुज दास जी ने इस धार्मिक ग्रन्थ का प्रणयन कर बंगला भाषा से पुनः हिन्दी विवर्त भी 'एक भाग का कर दिया है, अवशिष्ट भाग का हिन्दी अनुवाद भी शीघ्र ही उपलब्ध होगा।

इस पवित्र पुस्तक में परम विरक्त शमदमादिगुण सम्पन्न आवाल ब्रह्मचारी तपः स्वाध्याय निरत श्री अयोध्या धाम में श्री विजय राघव मन्दिर के संस्थापक एवं सर्वराहकार अध्यक्ष परिमित दुग्धाहारी, प्रातः स्मरणीय श्री श्री 1008 श्री बलरामाचार्य स्वामी जी महाराज का जीवन चरित्र एवं उनके शास्त्रीय सदुपदेशों का संग्रह किया गया है। अनेक स्थलों में जिज्ञासु जनों के लिए तत्व, हित, पुरुषार्थों का गम्भीर विवेचन जो शास्त्रों मे सारतम रहस्यों के रुप में माने जाते हैं वर्णित हैं। शैली विवेचनात्मक, गंभीर एवं सुन्दर है।

इस ग्रन्थ के नायक श्री स्वामी जी महाराज वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य, उभय वेदान्त प्रवर्तकाचार्य, सत्संप्रदायाचार्य शमदमादि अनन्त गुणगणालङ्कृत परम तपस्वी प्रपन्नजन कूटस्थ पदवाक्यप्रमाण पारावारीण, उत्तर भारत श्री वृन्दावन में अतुलनीय विशाल श्री रङ्गमन्दिर दिव्य देश के निर्माता, संस्थापक अध्यक्ष, प्रातः स्मरणीय अभिवन्दनीय संपूजनीय अनन्त श्री विभूषित श्री रंङ्गदेशिक स्वामीजी महाराज के अन्तरङ्ग हृदयङ्गम शिष्यों में अन्यतम थे। श्री स्वामी जी धर्मशास्त्र सारज्ञ होते हुए भी अनेक विध रहस्य शास्त्रों के सार सर्वस्व के ज्ञाता थे।

ज्ञान और अनुष्ठान के साकार मूर्ति, वाणी में माधुर्य रहस्योपदेश में गाम्भीर्य, मुखमण्डल में प्रकाश, स्वभाव में सरलता, दुःखियों के प्रति करुणा, भक्तों के प्रति वात्सल्य, साधुभेष, सफेद सादा वस्त्र, कण्ठ में तुलसी और कमलाक्ष माला, ललाट में सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, नित्यकर्म, जप भजन एवं भगवत् सेवा में तथा दैनिक नित्य कालक्षेप (कथा प्रवचन) में समय का सम्यक् परिपालन, परमैकान्ती स्वभाव , अपने दुःख कष्ट में भगवान् से भी दुःख निवृत्ति की याचना या प्रार्थना नहीं, भगवत् प्राप्ति में केवल काल की ही प्रतीक्षा है, जिस प्रकार मजदूर अपनी मजदूरी की प्रतीक्षा में रहता है। '' कालमेव प्रतीक्षेत निर्वेशं भृतको यथा'' मजदूरी मिलने पर अपने गन्तव्य को चला जाता है, उसी प्रकार से परमाचार्य भी अपने लक्ष्य प्राप्ति के सन्मार्ग में सुदृढ़ रहे हैं।

श्री स्वामी जी इन सब दिव्य गुणों के कारण नित्य कथा सुनने वाले अयोध्यावासी भक्तों और शिष्य परम्परा के लिए श्रद्धास्पद एवं चिरस्मरणीय बने हुए हैं। उन्हीं के बनाये हुए विधान (नियम) के

अनुसार ही इस भगवन् मन्दिर की सारी सेवायें आज भी सुचारु रुप से चल रहीं हैं।

इस व्यक्ति को यह जानकारी भी उन्हीं के अन्तरङ्ग शिष्य वैकुण्ठवासी ज्ञानानुष्ठान सम्पन्न, परम तपस्वी परिमित दुग्धाहारी आवाल ब्रह्मचारी, अर्चाविग्रह, श्री सीतारामचन्द्र विजय राघव भगबान् से अपने गुरु के समान साक्षात् वार्ता करने वाले '' बलराम धर्मसेतु ट्रस्ट के भूतपूर्व अध्यक्ष तृतीय महन्त सिद्ध पुरुष श्री श्री 1008 श्री कमलनयनाचार्य स्वामी जी महाराज के सत्संग से प्राप्त हुई है क्योंकि अन्त समय तक अपने सर्वस्व गुरुचरण की अन्तरङ्ग सेवा में संलग्न रहने के कारण मन्दिर की सारी व्यवस्था, नियम, विधान और पूर्ववर्ती आचार्यों के विषय में स्वामी जी को विशद ज्ञान होना स्वाभाविक ही था।

यद्यपि संस्थापक स्वामीजी का साक्षात् दर्शन कराल काल के परिवर्तन शीलता के कारण हम (दास) लोगों के लिए दुर्लभ हुआ तथापि मन्दिर में आराध्य रुप में प्रतिष्ठित उनके श्री विग्रह का तथा चित्रपटों का दर्शन लाभकर स्वामीजी के रुप आकृति और दिव्य गुणों का सामान्य रुप से अनुभव एवं स्मरण आज भी सुलभ हो रहा है। साथ ही '' गुरुवर बलराम'' इस ज्ञान सागर ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन से ज्ञान एवं स्मरण और सुदृढ़ हो जायेंगे इसमें सन्देह नहीं है।

श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य समुदाय कितनी संख्या में थे इसका आकलन करना इस समय में सम्भव नहीं है, ग्रन्थ में कुछ शिष्य संख्याओं का निर्देशन हुआ है, किन्तु उतना ही पर्याप्त नहीं है। विशिष्ट विद्वान् शिष्य विरक्त ब्रह्मचारी तथा साधु शिष्यों की प्रथम पंक्ति की गणना में मूर्धन्य विद्वान वेदान्तद्वय तथा तर्कशास्त्र विशारद वैकुण्ठवासी श्री भागवताचार्य स्वामी जी, विद्वत् शिरोमणि वै0 वासी वेदान्तद्वय तथा न्याय शास्त्र पारंगत द्वितीय महन्त श्री रामप्रपन्नाचार्य स्वामीजी , वेदान्त द्वय, इतिहास पुराण धर्मशास्त्र के विद्वान बद्रीवासी, योगिराज श्री रघुनाथाचार्य स्वामीजी, उनके विद्वान् शिष्य विरक्त बाल ब्रह्मचारी, योगी, न्याय और वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् श्री रङ्गाचार्य स्वामी जी तथा अन्य विद्वान् गृहस्थ होकर भी विरक्त बड़े अधिकारी वकील और गुरुवर बलराम के लेखक तथा बंगला से हिन्दी अनुवादक यतीन्द्ररामानुज दास आदि अनेक विद्वान श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य थे। वर्तमान में भी इस मन्दिर के शिष्य समुदाय (श्री वैष्णव भक्त) भारत, भूटान और नेपाल देश में मिलाकर बहुत संख्या में हैं।

भगवान् का यह मन्दिर 'श्री विजय राघव भगवान का मन्दिर', 'जानकी कनक मण्डप उत्तर द्वार' इस नाम से प्रसिद्ध है। इस संस्था में प्रथम महन्त अध्यक्ष इस ग्रन्थ के नायक वैकुण्ठ वासी श्री संस्थापक स्वामी जी महाराज ही हैं। द्वितीय महन्त वै0 वा0 श्री रामप्रपन्नाचार्य स्वामी जी महाराज, तृतीय महन्त वै0 वासी श्री कमलनयनाचार्य जी महाराज, रहस्य शास्त्र मर्मज्ञ हैं, चतुर्थ महन्त वै0 वासी राघवाचार्य स्वामी जी महाराज (न्या0, व्या0, वे0 विद्वान्), पञ्चम महन्त वर्तमान अध्यक्ष श्री श्रीधराचार्य स्वामी जी महाराज (प्राचीन एवं आधुनिक विद्याओं के आचार्य) इस

''गुरुवर बलराम'' धार्मिक ग्रन्थ के सम्पादक तथा संशोधक , कर्मठ , त्यागी, तपस्वी, गुरुभक्त एवं भगवद् भक्त हैं।

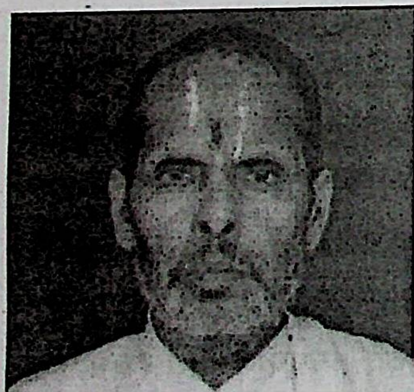
इस मन्दिर के संरक्षण तथा संचालन में व्यवस्थापक एवं संरक्षक बनकर रहे श्री बाबूसाहेब सूक्ष्म दृष्टि से निरन्तर सेवारत, वैकुण्ठवासी, श्री राघवेन्द्र रामानुजदास तथा वै0 वासी श्री राजेन्द्र रामानुजदास जी स्मरणीय हैं। वर्तमान में श्री राजेन्द्र रामानुजदास जी के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री यादवेन्द्र रामानुज दास जी अपने सहोदर भाइयों के साथ अनुपम रुप से सेवारत हैं। इनके जैसा भक्त भगवान् को भविष्य में मिलते रहें यह शुभ कामना करते हैं।

इस संस्था के प्रथमाचार्य चरणाश्रित वै0 वासी डॉ0 श्री यतीन्द्र रामानुज दास जी के द्वारा स्वाचार्य गुरुवर के चरणों में अतिशय श्रद्धा भक्ति से संयुक्त होकर जो यह धार्मिक ग्रन्थ इतिहास का प्रणयन किया गया वह सुन्दर स्वरुपानुरुप स्वाचार्य श्री का मुखोल्लास करने वाला विशेष कैंकर्य सिद्ध हुआ है, ' यह समय बहुल, विचक्षण बुद्धिगम्य कार्य है, इसकी पूर्णता में श्री स्वामी जी महाराज की अकारण करुणामयी दृष्टि भी कारण है।

गुरु के महिमा का प्रचार करना, गुरु से प्राप्त मन्त्रों को गोपनीय रखना (किसी को न बताना), अपने जप और अनुसन्धान करते रहना, यह शिष्य का परम कर्त्तव्य है। ऐसा करने से शिष्य की आयु और संपत्ति की वृद्धि होती है। न करने से आयु और सम्पत्ति का नाश हो जाता है; यह शास्त्र की आज्ञा है –'' गुरुं प्रकाशयेद् धीमान् मन्त्रं यत्नेन गोपयेत्। अप्रकाशप्रकाशाभ्यां क्षीयेते सम्पदायुषी''।। शेष संहिता– 14/50

''श्री गुरुवर बलराम'' यह पवित्र चरित्र श्री वैष्णव समुदाय में तथा अन्यत्र भी सुनने वाले सज्जनों के हृदयरुप कमल में ज्ञान भक्ति और वैराग्य रूप सुगन्धों को निरन्तर बढ़ाने वाला सिद्ध होगा इसमें संदेह करने की आवश्यकता नहीं है।

''रामानुजार्य दिव्याज्ञा प्रतिवासरमुज्ज्ला।
दिगन्तव्यापिनीभूयात् साहिलोकहितैषिणी।।''



श्रीभगवद्भागवतपादपद्ममधुप
श्रीनिवासाचार्य वेदान्ती
वेदान्त विभागाध्यक्ष
श्रीत्रिदण्डिदेव सं0 महाविद्यालय, अयोध्या

।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

।। श्रीलक्ष्मीहयवदनपरब्रह्मणे नमः ।।

किञ्चि निवेदन

वन्दे वेदान्तकर्पूर चामिकरकरण्डकम् ।
रामानुजार्यमार्याणां चूडामणिमहर्निशम् ।।

अखिल जगत् के हितानुशासन में प्रवृत वेदशास्त्र का आदेश है – ''आचार्यवंशो ज्ञेयो भवत्यसावसावसावित्याभगवत्तः'' आचार्यपरम्परा (गुरुपरम्परा) का ज्ञान अवश्य करें । स्वयं को मन्त्र–मन्त्रार्थ भगवद्विषय जैसे ग्रन्थों का सदुपदेश करने वाले, विशुद्ध श्रीविशिष्टा द्वैत सिद्धान्त में आबद्ध अपने आचार्य से प्रारम्भ करके ''आभगवत्तः भगवान् श्रीमन्नारायण (श्रीधराय नमः) तक की गुरुपरम्परा का प्रत्येक श्रीवैष्णव को भगवत्प्राप्ति के लिए प्रतिदिन अपुसन्धान करना चाहिए ।

परमकारुणिक श्रीपिल्लैलोकाचार्य स्वामी जी भी अपने ''श्रीवचनभूषण'' जैसे ग्रन्थ की प्रपन्नदिनर्या में यही आदेश करते हैं–वस्तव्यम् आचार्य सन्निधौ भगवत्सन्निधौ च, जप्तव्यं गुरुपम्परा द्वयञ्च, परिग्राह्यं पूर्वाचार्यवचनं तदनुष्ठानञ्च'' ।

अर्थात् परमहितैषी मुमुक्षु को आचार्य सन्निधि में निवास करना चाहिए अथवा श्रीअर्चावतार प्रभु की सन्निधि में, गुरुपरम्परा के अनुसन्धानपूर्वक द्वयमन्त्र का मनन करना चाहिए । पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ एवम् उन महानुभावों के विशुद्ध आचरण को स्वीकार करना चाहिए ।

हमारे मूलपुरुष, आल्वार – आचार्य लोग अपने आचरण के द्वारा जिस आदर्श मार्ग को दिखाए हैं वही उज्जीवन चाहने वाले प्रत्येक श्री वैष्णव के लिए अनुसरणीय है । इसी क्रम में अतिपावन भगवान् श्री कोसलेन्द्र की अवतार भूमि श्री अयोध्याधाम में एक शताब्दी से अधिक इतिहास से युक्त श्री विजयराघव मन्दिर का अलौकिक एवम् अप्रतिम वैभव भी वैष्णव जगत् में सुविदित है ।

इस मन्दिर के संस्थापक, प्रातः स्मरणीय, श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापक, उभयवेदान्त–प्रवर्तकाचार्य, त्रिसन्ध्यस्मरणीय श्रीबलरामाचार्य स्वामी जी की कीर्ति पताका को फहराने वाले दिग्गज विद्वान लोगों का दर्शन इस दास को भी प्राप्त हुआ है । श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के उत्तरभारत का केन्द्र श्रीरङ्ग मन्दिर वृन्दावन है । उस मन्दिर के संस्थापक, उत्तरप्रदेश के मोक्षद्वार के उद्घाटक,

अतिमानुषचरित्र सम्पन्न पूज्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज के आप 'श्रीबलरामसूरि) साक्षात् शिष्य थे। ऐसे महापुरुष श्रीबलरामाचार्य स्वामी जी के वैभव का आद्योपान्त यर्थाथ वर्णन करने वाला अपूर्व ग्रन्थ ''श्री गुरुवर बलराम'' नाम से लोकार्पण होने जा रहा है। इस ग्रन्थ में अवश्य जानने योग्य अर्थपञ्चक, रहस्यत्रय, श्री वैष्णवों की दिनचर्या, श्रीरङ्गमन्दिर का संक्षिप्त इतिहास, श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी का व्यक्तित्व से लेकर श्रीबलरामसूरि जी का चरित्र और आप के दिग्गज शिष्यों का सुन्दर परिचय श्रीविजयराघव भगवान् का दक्षिण भारत से आगमन, मन्दिर का निर्माण आदि समग्र विषय प्रतिपादित हैं। बङ्गाली भाषा से राष्ट्र भाषा हिन्दी में इसका अनुवाद सम्पन्न हुआ है। भिन्न–भिन्न अध्यायों में प्रमाणिक विषयों का पृथक–पृथक शीर्षकों के द्वारा सुस्पष्ट रूप में निरूपण किया गया है। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय एवम् श्रीगोवर्द्धन पीठ के समग्र पूर्वाचार्यों का विशद परिचय इस ग्रन्थ में सुललित भाषा में वर्णित है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन, अनुवाद, मुद्रण व्यवस्था, ग्रन्थ संशोधन आदि पवित्र कैङ्कर्य में आबद्ध सब महानुभाव श्रीविजयराघव भगवान् की परिपूर्ण निर्हेतुक कृपा के पात्र हैं। ''गुरुं प्रकाशयेद्धीमान्'' इस प्रसिद्ध सूक्ति को श्रीविजराघव भगवान् एवं श्रीबलरामसूरि की शिष्यपरम्परा में संलग्न सेवकों ने चारितार्थ बनाया है। यह कालान्तर में भी यथार्थ विषय का ज्ञान कराने वाला एक अलौकिक ग्रन्थ है। विस्तृत विषय ग्रन्थ में ही विद्यमान है। ''रामानुजाचार्य दिव्याज्ञा वर्द्धतामभिवर्द्धताम्''

प्रमाणं च प्रमेयञ्च
प्रमातारश्च सात्विकाः।
जयन्तु क्षपितारिष्टं
सह सर्वत्र सर्वदा।।

निवेदक

वि. सं. २०७२
मार्गशीर्ष कृ० एकादशी

भागवतचरणरेणु
श्रीकृष्णमाचार्य
सप्तसागर, श्री अयोध्या

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

आचार्य कृपा से भगवल्लाभ

'चेतन को भगवत्प्राप्ति कराने में आचार्य ही माध्यम हैं' इस वचन को वेद, इतिहास, पुराण, आप्तपुरुष वर्णन करते हैं। श्री वचन भूषण में 'भगवल्लाभ आचार्येण' इस सूत्र के माध्यम से आचार्य की महिमा को प्रकाश किया है श्री लोकाचार्य स्वामी जी ने। भगवान और चेतन दोनों के उपकारक हैं आचार्य। चेतन का उद्धार करने के लिए भगवान अनेक अवतार धारण कर भूतल में पधारते हैं परन्तु चेतन के उद्धार में असफल हो जाते हैं। आचार्य भगवान के कल्याण गुणों का उपदेश करके भगवान के यथेष्टविनियोगार्ह बनाते हैं इसी चेतन को। अतः आचार्य भगवान के उपकारक बनते हैं। भगवत्स्वरूप ज्ञान के अभाव से असत्कल्प चेतन को भवत्सम्बन्ध उपदेश करके आचार्य चेतन का भी उपकार करते हैं। इसी सूक्ति को सूत्र रूप में वर्णन करते हैं श्री लोकाचार्य स्वामी जी। ''आचार्य उभयोरप्युपकारकः''।

पूर्वोक्त आचार्य गुणों से परिपूर्ण अवतरित हुए हैं। ''श्री गुरुवर बलराम'' जो महनीय महापुरुष भगवान एवं चेतन के उपकारक हुए हैं। श्री अयोध्या में श्री विजयराघव भगवान की प्रतिष्ठा करके अराधनादि की व्यवस्था देकर भगवान के उपकारक हुए हैं। एवं नित्य संसारी चेतन का सम्बन्ध उपदेश करके चेतन के भी उपकारक हुए है श्री बलराम सूरि स्वामी जी महाराज। ''श्री गुरुवर बलराम'' इस ग्रन्थ के अध्ययन से आचार्य वैभव एवं श्री विजय राघव की महिमा के विषय में हम सभी सुपरिचित होंगे।

श्री विजयराघव भगवान के श्री चरणों में प्रार्थना करते हैं कि ''श्री गुरुवर बलराम'' ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित होकर हम सभी को प्राप्त हो जिस ग्रन्थ के स्वाध्याय से मार्गदर्शन प्राप्त करके आस्तिक जन कृतार्थ हो जायें।

– बालकृष्ण रामानुज दास

सर्वराहकार– श्री वैङ्कटेश मन्दिर, सप्तसागर

श्रीधाम अयोध्या जी

।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

।। श्रीकमल नयन सूरि चरणौ शरणं प्रपद्ये, श्रीमते कमलनयनाय नमः।।

नम्र निवेदन

मुझे प्रसन्नता है कि पुस्तक ''गुरुवर बलराम'' प्रथम खण्ड का बहु आकांक्षित एवं बहु प्रतीक्षित हिन्दी संस्करण श्री वैष्णवजन की कृपा से उनके हाथों में जाने के लिए पूर्णतया तैयार है। इस पुस्तक के बंगला संस्करण के लेखक श्री स्वामी जी महाराज के अनन्य शिष्यों में से एक श्री यतीन्द्र रामानुज दास (डॉ0 इन्दुभूषण बसु, एम. डी.) हैं। हिन्दी अनुवाद भी इन्होंने ही अति कुशलता के साथ किया है। भावों को लिपिबद्ध करने की अनुवादक की कुशलता स्वतः प्रकाशित होती है।

परम पूज्य श्री बलरामसूरि स्वामी जी महाराज का पावन चरित्र समस्त श्री वैष्णवों के लिए प्रकाशस्त्रोत की भांति है। श्री स्वामी जी महाराज एक आकारत्रय सम्पन्न परम विरक्त श्री वैष्णवाचार्य थे। इनका अनन्य शरणत्व पुस्तक में कई घटनाओं द्वारा प्रकाशित होता – यथा – पागल श्रृगाल के दंश के उपरान्त श्री अयोध्या धाम के बहुत से संत–महात्माओं द्वारा चिकित्सा के लिए प्रेरित करने पर इनका उत्तर (श्री नरसिंह स्वरूपधारी अपने शालिग्राम भगवान को दिखाते हुए यह कहना कि इनसे भी बड़ा कोई डाक्टर हो तो जावें) स्वामी जी महाराज के नेत्र पीड़ा के शमन के लिए इनके शिष्य श्री यदुनन्दनरामानुज दास ने भगवान श्री विजयराघव से एकान्तिक प्रार्थना किया। भगवान श्री विजयराघव जी ने यह बात स्वामी जी को बता दिया। तब श्री स्वामी जी ने यदुनन्दन को फटकार लगाई। चेतावनी दिया कि इस प्रकार की कोई प्रार्थना भगवान विजयराघव जी से फिर कभी न करना। नेत्र की ज्योति चली गई किन्तु सुविधा उपलब्ध होने पर भी आप्रेशन नहीं कराये।

श्री बलरामसूरि स्वामी जी में विरक्ति भावना का अनुभव इस बात से किया जा सकता है कि उनके समकालीन लोग भी इस बात का पता नहीं कर सके कि वह किस ब्राह्मण कुल में अवतीर्ण हुए हैं। मूल लेखक ने उन्हें मिश्र ब्राह्मण बताया है जबकि वह त्रिपाठी ब्राह्मण थे। इस बात का रहस्योद्घाटन उनके पैतृक गाँव पर जाकर अब प्राप्त किया जा सका है।

1854 में 11 वर्ष के अल्पवय में स्वप्न में संत का आदेश पाकर आपने अविलम्ब गृह त्याग दिया और इसी वर्ष में श्री बद्रीनाथ धाम चले गए। वे जन अति सौभाग्यशाली हैं जिनको आपके पावन श्री चरणों का आश्रय प्राप्त हुआ।

सदैव पद्मासन पर (अंतिम श्वांस तक) विराजते थे। अंतिम समय तक कालक्षेप का लाभ समस्त आकांक्षियों को दिया।

स्वामी जी के अति कठिन सेवा आदर्श कौल्पत्य का भी दर्शन इस पुस्तक में होता है। इस पुस्तक के अध्ययन से बड़े विद्वान श्री वैष्णवों एवं सामान्य श्री वैष्णवों– सभी श्रेणी के श्री वैष्णवों को

लाभ होगा, प्रेरणा मिलेगी बहुत सी समस्याओं का मार्गदर्शन तथा आत्मचिन्तन का अवसर मिलेगा।

श्री स्वामी जी महाराज की आचार्य चरण निष्ठा– प्रथम बार नेत्र में ज्योति आने पर श्री स्वामी के लिए डॉ. यतीन्द्र जी चश्मा लेकर आए । श्री स्वामी जी ने दो चित्र मांगा । (1) श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी का (2) त्रिभंङ्गी मुद्रा में श्री कृष्ण भगवान जी का । नेत्र की पट्टी खोलकर चश्मा पहने और पहले स्वाचार्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी का दर्शन करके प्रणाम किए मुस्कराए और फिर भगवान का दर्शन किए । (गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागूं पांव बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविन्द दियो बताय ।)

प्रसिद्धि के डर से वृन्दावन त्याग--: श्री अयोध्याधाम में पधारने से पूर्व श्री स्वामी जी महाराज ने श्रीवृन्दावन में (अपने आचार्य पुण्यपाद प्रातः स्मरणीय श्री गोदाम्बा माता के संकल्प को पूर्ण करने वाले श्री रंगदेशिक स्वामी जी महाराज के श्रीचरणों में रहते हुए श्री रंगमन्दिर के पूर्वी कटरा में श्री गोपाल जी की स्थापना किया । जब श्री स्वामी जी की ज्ञानी, अनुष्ठानी उच्चकोटि के महात्मा के रूप में कीर्ति एवं प्रसिद्धि, बृद्धि को प्राप्त होने लगी तब आपने अभिमान रूपी शत्रु के डर से चुपके से वृन्दावन त्यागकर श्रीरघुनाथ जी की शरण में श्री अयोध्या धाम में आ गए । श्री रघुनाथ जी की नगरी छोड़कर फिर आप कहीं नहीं गए । किन्तु आपकी सद्कीर्ति एवं वैभव ढाका (Dhaka) से पंजाब तथा कश्मीर से कर्नाटक तक सुगन्धित वायु की भांति प्रसारित होता रहा ।

बंगालवासी श्री जगन्नाथ रामानुजदास जी ने दो संशोधन प्रेषित किया था सधन्यवाद उन्हें स्वीकार कर लिया गया है । श्री जगन्नाथ जी द्वितीय खण्ड का हिन्दी अनुवाद कर रहे हैं । उन्हें साधुवाद देता हूँ।

इस पुस्तक का प्रूफ पढ़ने में श्री शत्रुघ्न रामानुज दास (शिवपूजन त्रिपाठी अ0 प्रा0 प्रधानाचार्य) एवं शार्ङ्गपाणि जी (श्री शीतला प्रसाद शुक्ल अ. प्रा. प्रधानाचार्य) से प्राप्त सहायता के लिए मैं इन्हें धन्यवाद देता हूँ।

पुस्तक का अनुवाद कराने के लिए श्री यादवेन्द्र प्रताप सिंह के प्रयास एवं इसे छपवाने में इनकी सद्प्रेरणा एवं सुझाव को नहीं भुला सकता हूँ उन्हें भी बहुमान पूर्वक धन्यवाद देता हूँ। पुस्तक के प्रथम खण्ड का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध कराने के लिए मैं श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर खरदा जनपद 24 परगना नार्थ (पश्चिम बंगाल) के श्री नृसिंह रामानुजदास का विशेष ऋणी हूँ और उन्हें साधुवाद एवं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। पुस्तक को छापने के लिए सत् साहित्य प्रकाशन के श्री पंकज लोचन को भी धन्यवाद देता हूँ

अन्त में अपने कुलाचार्य श्रीरंगमन्दिर वृन्दावन के, गोवर्द्धन गद्दी के पीठाधीश्वर पूज्यपाद श्री गोवर्द्धन रङ्गाचार्य स्वामी जी के श्रीचरणों में गाढ़ आलिंगन के साथ प्रणाम करता हूँ जिनके आशीर्वाद एवं कृपा के बिना इस ग्रन्थ की पूर्णता असम्भव होती ।

– श्रीधर रामानुजदास

अध्यक्ष श्री बलराम धर्मसेतु ट्रस्ट एवं सरवराहकार
मन्दिर ठा0 श्री विजयराघव जी महाराज, कनक मण्डप
उत्तर द्वार मातगैड़, श्री विभीषण कुण्ड, श्री अयोध्याधाम पिन–224123

धनुर्मास उत्सव– 27
श्री अयोध्याधाम
12.01.2016

बंगला संस्करण के उत्सर्ग का हिन्दी अनुवाद

परम पवित्र परम पावनी गङ्गाजल से ही गङ्गापूजा करणीया।

जिनके कृपा से यह दिव्यजीवनी लिखने की अनुप्रेरणा लाभ किया, जिनके आशीर्वाद से यह दिव्यग्रन्थ रचना के लिए दुर्लभ उपकरणों का संग्रह करना सम्भव हुआ, जिनके करुणा से इस पुण्यग्रन्थ का निर्विघ्न परिसमाप्ति सम्भव हुआ वह परमाराध्य अस्मद् गुरुवर्य के श्री श्रीकरकमलों में यह "गुरुवर बलराम" ग्रन्थ सभक्ति अर्पित होता है।

शरद पूर्णिमा
1371 वङ्गाब्द
(2021 संवत्)

श्रीचरणचञ्चरीक
यतीन्द्र रामानुजदास

बंगला संस्करण की भूमिका का हिन्दी अनुवाद

श्री गुरुगोविन्द की असीम कृपा से हमारे परनाराध्य गुरुदेव का दिव्य जीवन और दिव्य चरित्र का आज सम्भव हुआ।

26 वर्षो से वय :क्रम में यह दीन लेखक का श्री श्री गुरुदेव के श्री चरणों में समाश्रित होने का महा सौभाग्य लाभ प्राप्त हुआ था। तदन्तर 12 साल वे हमारे सामने प्रकट थे। उनका यह प्रकट काल में उन्हीं के संकल्प से कभी–कभी अयोध्या में जाकर उनका दिव्य सङ्गलाभ करके कृतकृत्य हो सका। इन सिद्ध महापुरुष का इहलीला सम्वरण समय, उन्हीं की निर्हेतुकी कृपा से उनका दिव्य उपदेश निज कानों से सुनने का महासौभाग्य लाभ कर धन्य हुआ था। विभिन्न समय उनका सन्निधि बास करने का जो सुयोग मिला था उस समय उनका नाना अनुष्ठान जो मैं देखा और उनका नाना उपदेश जो मैं सुना था वह सब, श्रीभगवान का दुर्ज्ञेय इच्छा से, गन्थकार दैनन्दिनी में (diary) में लिख रखा था। इस ग्रन्थ की रचना में दैन्दिनी ने विशेष सहायता दी है। इस ग्रन्थगत उपकरणों का संग्रह जिन्होंने सहायता दिया है उनमें श्री भागवताचारी स्वामी, श्रीरामप्रपन्नाचारी स्वामी, श्रीपरांकुश शास्त्री, श्रीगरुड़ध्वज स्वामी, श्रीकमलनयन स्वामी, श्रीरामाचारी स्वामी, श्रीविष्वक्सेन रामानुज (विपिनचन्द्र राय) श्रीनृसिंह रामानुज दास (नृपेन्द्र कुमार गुप्त), श्रीआदिकेशव रामानुजदास (आशुतोषधर) श्री यदुनन्दन रामानुजदास (यतीशचन्द्र गुप्त), श्री पद्मनाभ रामानुजदास (परितोष राय चौधरी) प्रभृति का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। इन सब ही का मैं कृतज्ञ हूँ। ग्रन्थ में विविध चित्र संयोजन करने की इच्छा थी, इसी कारण ग्रन्थाकार स्वयं श्रीवृन्दावन, गोवर्द्धन, अयोध्या आदि स्थानों में जा कर योग्य व्यक्तियों से फोटो खींचवाकर नाना स्थान का फोटो ग्रथ्थ में सन्निवेश कर दिया। गुरु सेवा में सहायता देने के कारण इन सभी का भी ग्रन्थाकार आभारी है।

श्री गुरुदेव का दिव्य जीवन ग्रन्थ केवल नाना प्रकार की घटनाओं का समाहार न बन पा
उनका दिव्य अनुष्ठानों का अन्तर्निहित भाव धाराओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया गय
सन्त महात्माओं का दिव्य जीवन अत्यन्त गम्भीर होता है। उनकी नाना उक्तियों और अनुष्ठानों
मर्म विश्लेषण अत्यन्त कठिन है। पूज्य बलराम स्वामी महाराज का नाना उक्ति और अनुष्ठानों
अन्तर्निहित जो तत्त्वावली है उन सबों का उद्घाटन प्राकृत जीव जैसे समझ सके इस लिये को
घटना पुनः पुनः उल्लेख किया गया। तथापि स्वामी जी महाराज का लीलासिन्धु से विन्दुमात्र
संग्रह करना सम्भव हुआ, उनका पूर्ण प्रकाश सम्भव नहीं हुआ।

जिन दिव्य पुरुष का दिव्यचरित्र अवलम्बन करके इस ग्रन्थ को लिखा गया वह
श्रीसम्प्रदाय के एक महान आचार्य। इसी कारण श्री सम्प्रदाय का दार्शनिक तत्त्वावली, साध
प्रणाली और गुरुपरम्परा की कथञ्चित आलोचना इस ग्रन्थ में सन्निवेश करने पड़े।

महापुरुष के दिव्य जीवन का छायामात्र अवलम्बन करके रचित इस दिव्य ग्रन्थ में उनक
मङ्गलमय दिव्यचरित्र पाठ करके उसमें से अंशमात्र अगर धारण किया जाय तो पाठक–पाठि
अत्यन्त लाभ प्राप्त करेंगे –इस दृढ़ विश्वास से ही यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। यह विश्वास कुछ
सार्थक हो जाय तो लेखक कृतकृत्य बन जायेंगे।

केवल श्री गुरुगोविन्द की चरणकृपा पर ही भरोसा।

शरद पूर्णिमा

संवत् 2021

प्रणतः

यतीन्द्र रामानुज दास

।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

श्री गुरुवर बलराम

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम् अध्याय

तृतीय प्रवाह

प्रथम अध्याय

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या

श्री स्वामी जी महाराज की लेखनी

श्रीमते रामानन्दाय नमः

प्रातः काल में उठ के हस्त पाद प्रक्षाल
न कर के एवं मुख धो के पीछे श्री हरि
हरिः श्री हरि हरिः श्री हरि हरिः तीन वा
र पाठ कर के, ॐ श्रीमद्गुरुभ्यो नमः, ॐ श्रीमत्
परमगुरुभ्यो नमः ॐ श्रीमद्सर्वगुरुभ्यो
भ्यो नमः इत्यादि त्रयोदश वाक्य का पा
ठ करे पीछे प्रपन्न आचार्य के ध्यान क
रे पीछे सत्संगात् इत्यादि श्लोक दो पढ़
पाठ करके दिशा इत्यावन स्नान करके
तिलक करे पीछे केशवाय नमः नाराय
णाय नमः इत्यादि द्वादश वाक्य पाठ
करे पीछे ॐ श्रीमद्गुरुभ्यो नमः इत्यादि त्र
योदश वाक्य उच्चारण कर के अष्टाक्ष
र धयवरमर रहस्य त्रय का प्रपन्न स्म
न करे पीछे आचार्य का श्री पाद तीर्थ पान
कर के आचार्य के चरण चिह्न मस्तक पर धारे
प्रपन्न आचार्य का स्तुति कीजिये।

पीछे आचार्य के तनया श्लोक बोले
पीछे गुरु परंपरा का पाठ करे पीछे दि
नचर्या का पाठ करे पीछे आलवन्दार
स्तोत्र का पाठ करे पीछे भगवद्गुण
वतार्या के कार्य यथाशक्ति करे

श्री स्वामी जी महाराज की लेखनी

श्री मते रामानुजायनमः
श्री१०८ स्वामीजी महाराज जी कै
मंगला शासन पहुचै
सिद्ध श्री भगवत भागवताचार्य
कैंकर्य निष्ठा गारिष्ठ श्री ५ नारा
यण रामानुज दासजी लिखी
राम प्रपन्न रामानुज कृत शाष्टां
ग पहुचै अत्र कुशलं तत्रास्तु
आप का पत्र पहुचा समाचार वि
दित भया श्री१०८ स्वामी महारा
ज जी आप का ऊपर बहुत संतु
ष्ट है तथा श्री१०८ स्वामीजी म
हाराज जी कै श्री दिव्य मं
गल विग्रह का कुशल जानि
ये ता: २० जनवरी सं: १९२१ ई०
आश्रम सहित

...रामानुज...

सि... भगवत भागवताचार्य ...
निष्ठागारिष्ठ श्री ५ जज्ज साहब श्री ५ अच्यु
त रामानुज दासजी वा श्री ५ नारायण राम
नुज दास जी के लिखी श्री बलराम स्वामी
कृत मंगला शासन पहुचै अत्र कुशलं त
त्रास्तु आपका पत्र ता: ९ दिसम्बर में पहु
चा सर्व समाचार विदित भया आपका
पत्र लिखने में विलंब होने का कोई अप
राध नहीं है हम आपके ऊपर में बहुत प्रस
न्न है भगवान आपका मंगल करैंगे
भगवान तुम्हारा परीक्षा से उत्तीर्ण करैंगे
कभी भगवान यहा भी ले आवेंगे ता:
११ दिसम्बर सं: १९२० ई०

श्रीमते रामानुजाय नमः



यो निर्हेतुकया कृपैककलया संकल्प्य सर्वजगद्,
देवादीन्पृथगातृणान्तमखिलानाविश्चकार स्वयम् ।
अद्यावन्नुपसंहरिष्यति तथैवान्ते स नो राघवः,
सीतालक्ष्मणवायुसूनुसहितो दृग्गोचरः स्यात्सदा ॥

।। श्रियै नमः।।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

श्री गुरुवर बलराम

प्रथम प्रवाह

सूचना

तत्त्वत्रयः

साधारणतः हम लागों को तत्त्व पदार्थ नीरस अर्थात् सूखा मालूम होता है । तत्त्व विषयक प्रबन्ध देखने से ही वहाँ से हट जाते हैं । रस पदार्थ के आस्वादन में ही हम लोग अत्यन्त आग्रहशील रहते हैं । रसमय भगवान के रूप गुण और लीला के रसानुभव के लिये ही आकृष्ट रहते हैं । रसानुभव ही अधिकतर लोगों के लिए आनन्ददायक होता है । यह बात सत्य होने पर भी रस पदार्थ के विषय में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर, तत्त्व ज्ञान विरहित रसानुभव केवल चर्मस्पर्शी होता है अर्थात् बाहर ही रहता है भीतर मर्मस्पर्श नहीं कर पाता और तत्त्व ज्ञान के सहित रस की उपलब्धि ही मर्मस्पर्शी होकर सच्चे आन्नद का वर्द्धक होता है। यह बात हर तरह से स्वीकार करनी पड़ेगी । इसीलिए चैतन्य महाप्रभु कहते है– ''सिद्धान्तवलिया चित्तेता कर अलस''।

''तीन मूल तत्त्व''

तत्त्व वस्तु के हिसाब से हम लोग मूलतः तीन तत्त्व देख पाते हैं । (१)–परब्रह्म परमात्मा वा परमेश्वर, तत्त्व (२) जीवात्मा वां चित तत्त्व, (३)– जड़ वस्तु वा अचित् तत्त्व । मूलतत्त्व एक परब्रह्म अथवा परम चेतन वस्तु से ही यह चिद्वस्तु जीवात्मा एवं जड़ वस्तु उत्पन्न है । मूलतत्त्व परमब्रह्म ही समस्त चिदचित् वस्तुओं के सृष्टा हैं और दोनों के प्रति निमित्त कारण एवं उपादान कारण भी स्वतः ही हैं।

वे ''चेतनश्चेतनानाम्'' (कठ०उ० ५।१३) चेतनों के भी चेतन हैं। जीवात्मा वस्तु एवं जड़ वस्तु ये दोनों ही उनकी विभूतियाँ हैं । और वे ही इन दोनों जड़ चेतन के नियामक हैं । ''क्षरात्मानावीशते देव एकः'' (श्वेताश्व० १।१०) अन्तः प्रविष्टःशास्ताजनानां सर्वात्मा'' (श्रुतिः) क्षर जड़वस्तु एवं आत्मवस्तु के भीतर एक देवता प्रवेश करके रहते हैं । वे परमात्मा रूप से इन जड़–चेतनों के भीतर प्रवेश करके दोनों का शासन करते हैं ।

अब यहाँ प्रश्न हो सकता है कि ग्रन्थ के आरम्भ में ही तत्त्व विषयक अवतारणा का क्या प्रयोजन है ? यदि तत्त्व की अवतारणा उचित समझ पड़े तब विभिन्न तथ्यों के वर्णन के समय में ही तथ्यों से सन्निविष्ट तत्त्वों की आलोचना समीचीन होगी ? इस विषय में हम लोगों का यही वक्तव्य है कि ग्रन्थ में आये हुए विशेष

विशेष तथ्यों के विवरण के स्थान पर उनसे सम्पर्क रखने वाले विशिष्ट तत्त्वों की आलोचना ज्यादा फलप्रद होगी और तथ्य घटित आलोक उद्घाटन करेगा । ग्रन्थ के आरम्भ में दिये रहने पर पुनः ग्रन्थ के मध्य में जगह–जगह पर दिये हुये मूल तत्त्वों की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं होगी । दृष्टान्त स्वरूप कहा जा सकता है सदाचार्य की जीवनी प्रसङ्ग में उपयुक्त स्थल पर ''गुरुदेव परब्रह्म'' इस तत्त्व को समझाने के लिये प्रयोजन हो सकता है । यदि प्रबन्ध के आरम्भ में ब्रह्मतत्त्व का एक मौलिक संक्षिप्त विवरण लिपिबद्ध रहे तब फिर ब्रह्मतत्त्व के विषय को दोबारा नहीं लिखने पर भी उक्त प्रसङ्ग सरलता पूर्वक जाना जा सकेगा। आदरणीय होगा एंव आनन्द प्रदान करने में समर्थ होगा ।

''परब्रह्म परमेश्वर तत्त्व''

परंब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, भगवान– ये सभी एक ही परब्रह्म के पर्यायवाची हैं । एक ही मूलतत्त्व वस्तु के नामान्तर हैं । श्रुति, स्मृति, पुराणादि सभी शास्त्र इसी वाक्य को कहते हैं। श्रुति कहती है कि - ''तमीश्वराणा परमं महेश्वरम:'' (श्वेताश्व 6/7) वे ईश्वरों के भी परम महेश्वर हैं। श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है –

ब्रह्मेतितत्तत्त्वविदः तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेतिपरमात्मेति भगवानितिशब्यते ।। श्रीमद्भा 1/2/11

यथार्थ तत्त्व को जानने वाले अद्वय ज्ञानतत्व को ब्रह्म, परमात्मा, एवं भगवान् इन्हीं सवनामों से अभिहित करते हैं। विष्णु पुराण भी :–

परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः।। वि0 पु0 6।4।40।।

परमब्रह्म परमेश्वर परमात्मा ही सबजीबों के आधार हैं। परमेश्वर नामक परमब्रह्म ही समस्त जीवों के नियामक, सर्वेश्वर, सर्वदर्शी, सर्वविद् और सर्व शक्तिमान् है। और वे परम ब्रह्म परमेश्वर ही सभी कारणों के आदि कारण हैं यह भी विष्णु पुराण में कहा गया है।

शुद्धे मह्वा विभूत्याख्ये, परमेब्रह्मणि शब्यते ।
मैत्रेय! भवच्छब्दः सर्वकारणकारणे ।। वि0पु0 6।5।72।।

हे मैत्रेय! ममता विभूतिमान् सभी कारणों के कारण परब्रह्म को ही भगवान् शब्द से कहा गया है।

'' परमब्रह्म आदि कारण – शास्त्र प्रमाण''

श्रुति और ब्रह्म सूत्र इन दोनों में ही परब्रह्म को ही आदि कारण रूप में निर्द्धारण किया गया ''यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते......तद् ब्रह्म 'तै0 भृ0 उ07) जिससे समस्त भूतगण जायमान हैं वही परब्रह्म है। ''जन्माद्यस्य यतः'' (ब्र0 सू01/1/2) जिससे जन्मादि होते रहते हैं वे ही परमब्रह्म हैं। सबके आदि कारण पर ब्रह्म ही हैं इस विषय को महाभारत, रामायण, आदि शास्त्र भी एक स्वर से घोषणा करते हैं। एवं भूत आदि कारण परब्रह्म संसार के सृष्टि करने वाले, पालन करने वाले, और संहार करने वाले हैं। और वही परमेश्वर समग्र विश्वब्रह्माण्ड के नियमनकर्त्ता परम नियामक हैं। और नियमन करने के लिए ही सारे संसार के भीतर सभी प्राणियों के मध्य में अन्तर्यामी होकर प्रवेश किये हैं। इसको श्रुति भी कहती है कि वे सभी प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके उनका शासन करते हैं।

''जीवात्मा – चित्तत्त्व''

भक्तिवादी सिद्ध करते हैं कि ब्रह्म एवं जीवात्मा पृथक् पृथक्तत्त्व है। अर्थात् ब्रह्म से जीवभिन्न है। ब्रह्म–विभुस्वरूप, जीव अणु स्वरूप है। इस अणु स्वरूप जीव के विषय में श्रुति कहती है :–

बालाग्रशत भागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीवः सविज्ञेयः 'श्वेताश्वतर 519। केश के अग्र भाग को शत भाग करके, उसमें से एक भाग लेकर शत भाग करे इस शत भाग का एक भाग ही अणु कहलाता है और यही अणु स्वरूप, जीव को जानना। ब्रह्म के सहित जीव की समानता (साम्य) केवल उसके ज्ञानाकार रूप से ही हैं। ''ज्ञानैकारकारतया साम्य'' अग्नि और अग्नि स्फुलिङ्ग में जो पार्थक्य है उसी प्रकार से ब्रह्म और जीव में प्रार्थक्य है। जीव नियाम्य है और परम ब्रह्म परमेश्वर उसके नियामक हैं। जीव, परब्रह्म की विभूति अर्थात् पर ब्रह्म का नियाम्य है एवं जीव परमात्मा का शेष वस्तु है। ईश्वर जीव के शेषी हैं।

''जड़ वस्तु अचित्तत्त्व''

चेतन रहित सभी जड़ वस्तुएँ ज्ञान रहित और परिणामशील हैं। इनकी दो मुख्य अवस्थाएँ हैं। प्रलयकाल में सूक्ष्मावस्था, और सृष्टि काल में स्थूलावस्था। जड़ वस्तु का दूसरा एक नाम प्रकृति भी है। सूक्ष्मावस्था में यह निष्क्रिय एवं स्वतः परिणाम के अयोग्य रहती है, परिणाम के अयोग्य होने से ही सूक्ष्म अवस्था में ये अक्षर, शब्द से बोलने के योग्य और अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण अव्यक्त से बोलने के योग्य रहती हैं। अत्यन्त सूक्ष्म अचिद्वस्तु को ''तमः'' पदार्थ कहा जाता है। प्रलयकाल में निष्क्रिय एवं सूक्ष्मतम अवस्था में ही तमो रूपी जड़ वस्तुएँ परब्रह्म में लीन रहती हैं। श्रुति इस विषय में कहती है :–

''अव्यक्तं अक्षरेलीयते, अक्षरं तमसि लीयते,
तमः परे दे बे एकी भवति''

सृष्टि के समय यही सूक्ष्म जड़ वस्तुएँ सक्रिय होकर क्रमशः स्थूल से स्थूलतर हो जाती है, अन्त में क्षिति, अप, तेज, मरुद्, व्योम, रूप से पञ्चभूत, तथा मन, बुद्धि, एवं अहङ्कार इन आठ मौलिक रूप में परिणत हो जाती हैं।

ये आठों वस्तुएँ ब्रह्म की अपरा प्रकृति अथवा विभूति हैं। ''भूमिरापोऽनलोवायुः, खं मनोबुद्धिरेवच। अहङ्कार इतीयं मे भिन्नाप्रकृतिरष्टधा।। गीता 07।4। ये आठ प्रकार की जड़ वस्तुएँ समग्र जीव जगत के जितने करण कलेवर हैं उनका उपादान कारण, और भगवान की लीला के उपकरण है। जिस प्रकार इनका रूप है उसी तरह गुण भी है। सभी जड़ वस्तु सत्त्व, रजः एवं तमः इन तीनो गुणों से युक्त हैं। सूक्ष्मावस्था में ये तीनो गुण साम्य भावापन्न एवं निष्क्रिय रहते हैं। प्रकृति की स्थूलावस्था में ये सक्रिय हो जाते हैं। सात्विकादि तीनों गुण ही जीव के सब कर्मो के हेतु हैं। आत्मवस्तु की तरह सभी जड़ वस्तुएँ परमेश्वर नियन्त्रित होती रहती हैं। जड़ देह युक्त, आत्मा ''जीव'' पदवाच्य है।

''परमेश्वर द्वारा जगत्सृष्टि''

जगत्सृष्टि के आदि में एक परब्रह्म ही थे अन्य कोई नहीं था। किन्तु अकेला होने की वजह आनन्द का उपभोग नहीं होता था। ''स एकाकी न रमते'' इसीलिए मैं बहुत हो जाऊँ ऐसी इच्छा किये। सोऽकामयत् बहुस्यां प्रजायेय'' (तै0आ0उ06।)। स्वतः ही बहुत हो गये, ''स्वयंअकुरुत' (तै0आ0उ07)। इस जगत्सृष्टि के

उपादान कारण निमित्त कारण और सहकारी कारण सभी हो गये। ऊर्णनाभ (मकड़ी) जिस तरह अपने पेट में से जाल बनाती है उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर भी अपने से ही समग्र विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि किये। अद्वैतवादियों के सिद्धान्त में कुछ पार्थक्य देखा जाता है।

''तत्सृष्टवा तदेवानु प्राविशत्, तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चाभवत्। (वै0आ0उ0 6)।

समस्त जगत के कल्याण के लिए वे इस अन्तर्यामी रूप में पिता की तरह व्यक्तिगत एवं समष्टिगत नियन्त्रण और शासन करते रहते हैं। इसी बात को श्रुति कहती है

''अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा''।।

उपरोक्त आनन्दानुभवार्थ जगत्सृष्टि का कारण

केवल क्रीडा या लीला के लिये ही ब्रह्म के द्वारा जगत्सृष्टि हुई है। श्रुति वाक्यों के साधारण विचार करने पर यही बात जाना जाती है।। ब्रह्म सूत्र में भी उक्त है ''लोकवत्तु लीला कैवल्यम'' (ब्र0सू02।1।1।11 इसी कारण समग्र जगत को लीला विभूति कहा जाता है। किन्तु भावज्ञ, मर्मज्ञ, रसंज्ञ, वैष्णवाचार्यगण लीला के अलावा और एक दूसरा भी कारण निर्द्धारणा किये हैं। सृष्टिकर्त्ता अद्वैतवादी परम पुरुष अशेष कल्याण गुणों के आकर हैं। कारुण्य,क्षमावात्सल्यादि गुणों के सागर हैं। अपने ईश्वरत्त्व और नियामकत्व के कारण जीवों का जो शासन करते हैं वह जीवों के कल्याण के निमित्त ही करते हैं। अत एव उनसे शिष्टों का पालन और दुष्टों का दमन भी होता रहता है। संसार में बँधे हुये जीवों को उद्धार करने के लिए ही ईश्वर ने जगत्सृष्टि की है।

''ईश्वरस्य सृष्टि प्रयोजन चेतनानां मोक्षेच्छा उत्पत्तिः।।

तत्वत्रय के विषय में भक्तिवादी और अद्वैतवादियों की दृष्टि भंगी

उपरोक्ततत्वत्रय के विषय में भक्तिवादियों के सिद्धान्त में एवं अद्वैतवादियों के सिद्धान्त में कुछ प्रार्थक्य देखा जाता है अद्वैतवादी कहते हैं कि ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः''।।

ब्रह्म चिन्मात्र निर्गुण एवं निराकार। ब्रह्म अविद्या द्वारा आवृत होने पर साकार, सगुण एवं ईश्वरावस्था प्राप्त होता है। भक्तिवादी कहते हैं– कि पर ब्रह्म एवं परमेश्वर एक ही वस्तु है। वह साकार एवं सगुण है, जीव ब्रह्म का अंश वा शरीररूपी है। जड़ वस्तु मिथ्या नहीं सत्य है, किन्तु परिणामशील है। इनमें कौन मत अभ्रान्त सत्य है यह लोचना यहाँ निष्प्रयोजन है। यह समस्या चिरकाल से चली आती है और चलती रहेगी। जब कोई विशिष्ट पुरुष किसी विशेष मत को परिवर्तन के लिए धराधाम पर आविर्भूत होते हैं, तब उन्हीं के अलौकिक प्रभाव से उनके द्वारा चलाया मत अन्यान्य मतों को अभिभूत करके प्रबल हो जाता है। कर्मकाण्डप्रवर्तक कुमारिलभट्ट के आविर्भाव से बौद्धमत क्षीण होने लगा। मायावादी शङ्करके आविर्भाव होने पर उनके द्वारा मण्डन मिश्र पराभूत हुए, बौद्धवाद अत्यन्त क्षीण हो गया। रामानुज के आविर्भाव होने से उन के द्वारा यज्ञ मूर्ति आदि अद्वैतवादीगण परास्त होकर भक्तिवादी हो गये। बौद्ध राजा विट्ठल देव सभी प्रजाओं के साथ भक्तिवादी होकर रामानुज के पदानत हुए। श्री चैतन्य के संस्पर्श से अद्वैत वादी सार्वभौम एवं मधुसूदन सरस्वती भक्तिवादी हुये। मायावाद मानने से साधन भजन में कठिनाई होती हैं। क्योंकि जब हम लोग किसी इष्ट देवता की पूजा करते हैं, अथवा सिद्ध का दिव्य चरित्र अनुशीलन करते हैं उस समय अगर मन में यह कुदृष्टि रहे कि हम लोगों के ये आराध्य इष्ट देव पर ब्रह्म नहीं हैं अविद्या से उपहत ब्रह्म वस्तु है। अथवा

आचार्य पुरुष अज्ञान से आवृत हैं तब फिर इष्ट देवता या दिव्य पुरुष के प्रति भक्ति किस प्रकार आसकेगी? और उस दिव्य आराधना और उस दिव्य चरित्र के अनुशीलन में आन्तरिकता एवं भक्ति प्रवणता किस तरह रह सकती है? जो लोग अद्वैतवादी हैं उन लोगों का कहना है कि साधन के प्रथम अवस्था में द्वैतमत, उन्नत अवस्था में विशिष्टद्वैत मत, और चरम अवस्था में अद्वैतमत हो जाता है। वे लोग कहते हैं कि एकमात्र वेदान्त ही यथार्थ सत्य का अनुसंधान देता है। स्मृति, इतिहास (रामायण महाभारत) श्रीमद्‌भगवद् गीता एवं पुराण बचन वहीं तक ग्रहणीय है, जितना कि वेदान्त वाक्य को समर्थन करते हैं। वेदान्त उच्च स्तर के अधिकारी के लिये हैं, रामायण महाभारत पुराणादिशास्त्र नीचे स्तर के अधिकारी के उपयोगी हैं। और दूसरे—भक्तिवादी लोग कहते हैं कि वेदादि विभिन्न शास्त्रों में उच्च नीच नाम से कोई भेद नहीं है। वेद, वेदान्त, स्मृति, इतिहास, पुराण सभी शास्त्र समान रूप से प्रयोजनीय हैं। इनमें इतिहास एवं पुराण अधिक प्रयोजनीय हैं। अल्पाक्षरी वेद वेदान्त का यथार्थ तात्पर्य स्मृति, इतिहास, पुराण ही विश्लेषण कर देते हैं। श्रुति स्वतः एवं इतिहास पुराण को पाँचवाँ वेद के नाम से अभिहित करती हैं :—

''इतिहास, पुराण पञ्चमं वेदानां वेदम् (छा०उ० 3/2) महाभारत भी कहता है कि ''इति पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहेत'' (वार्हस्पत्य स्मृति – महाभारत) अर्थात् रामायण महाभारत विभिन्न पुराण वचनों के द्वारा ही अल्पाक्षरी वेद वेदान्त वाक्य का पूर्ण अर्थ अच्छी तरह से जानना। ''समुपवृंहयेत्'' शब्द विधिलिङ्‌प्रत्यय के द्वारा प्रमाणित होता है कि इसी प्रकार श्रुति वाक्य का प्रकृत तात्पर्य ग्रहण करना ही विधि एवं अवश्य कर्तव्य है। यह नहीं करने पर भ्रम में पड़ना होगा। प्रथम ''उप वृंहण'' शब्द का अर्थ ज्ञान होने पर ही इस विधि वाक्य की प्रबलता का ज्ञान होगा। उपवृंहण शब्द का यही अर्थ है कि जो समस्त वेद और वेदार्थ का ज्ञान कर लिये हैं एवं योग बल के द्वारा स्वयं भी वेद के तत्त्वार्थका प्रत्यक्ष कर लिये हैं उन लोगों के वाक्य की सहायता से वेदार्थ को अच्छी तरह से जान लेना, अर्थात् सन्देह रहित स्पष्टार्थ कर लेना उचित है। ''उपवृंहण नाम विदित सकल वेद तदर्थानां स्वयोग महिम साक्षात् कृत वेदतत्त्वार्थानां वाक्यैः स्वावगत वेद वाक्यार्थव्यक्तीकरणम्'' (श्री भाष्य)। हम लोग अन्यत्र भी शास्त्र वचन को देखते हैं कि – ''पुराण पूर्ण चन्द्रेण श्रुति ज्योत्स्ना प्रकाशिता'' पुराण रूप पूर्ण चन्द्र ही श्रुति वाक्यों का यथार्थ प्रकाश करने में संमर्थ है। भक्तिवादी लोग कहते हैं कि सभी शास्त्रों के वाक्य – ग्रहण करने के योग्य हैं। किसी भी सिद्धान्त में उपनीत होने के समय उस सिद्धान्त से सम्पर्क रखने वाले समस्त शास्त्र वाक्यों का अवलम्बन करना ही विधि है। एक देशीय होना उचित नहीं। जहाँ एक ही विषय पर विभिन्न शास्त्र वाक्यों में परस्पर विरोध मालूम हो वहाँ भी प्रकृततत्त्वार्थ निर्णय करने की प्रणाली निर्द्धारित हुई है ''नाना रूपाणां वाक्यानां अविरोधो मुख्यार्थ अपरित्यागश्च यथा सम्भवति तथैव वर्णनीयम्'' ''(वेदार्थ संग्रह रामानुज'') एक ही विषय में आपातविरोधी विभिन्न शास्त्र वाक्यों का जिससे विरोध न हो एवं मुख्य अर्थ भी जिससे परित्यक्त न हो उसी प्रकार विभिन्न शास्त्र वाक्यों के सहायता से तद्‌नुगत होकर उपयुक्त प्रणाली से शास्त्रानुगत युक्तितर्क के द्वारा किसी तत्त्व विषय का प्रकृत तात्पर्य निश्चय पूर्वक जान लेना चाहिये।

''सृष्ट जगत में ईश्वर के लीला परिकर माया का आवरण''

सभी अचिद्‌वस्तु सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों से युक्त हैं। प्रकृति अविद्या माया, ये विभिन्न नाम हैं। प्रकृति परिणामशील वा विकारी हैं। इसी कारण इसको ज्ञान विरोधी अविद्या नाम से कहा जाता है। मोह

जनक एवं विचित्र सृष्टिकारी है इसलिए इसे माया कहते हैं। इस परिणामशील मोह जनक सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों से युक्त अचिद्वस्तु के उपादन से ही परिदृश्यमान सभी पदार्थ निर्मित हैं। भोक्ता जीव का शरीर भोगोपकरण इन्द्रियाँ और रूप रसादि युक्त विविध भोज्य पदार्थ, ये सभी अचिद्वस्तु के परिणाम हैं। इसीलिए सत्त्व – रजः, तमः इन तीनो गुणों से युक्त माया इस लीला विभूति में परमेश्वर की लीला का परिकर है। ईश्वरसृष्ट प्राकृतमिश्र गुण युक्त (सात्त्विक, राजसिक, तामसिक,) इस माया के द्वारा परिचालित होकर बद्ध जीव अवश होकर सभी कर्मो का अनुष्ठान करता रहता है। किन्तु इस अनादि माया के द्वारा विमूढ़ जीव समझता है कि वह स्वतः ही सभी कर्मो का कर्त्ता है। माया मुग्ध जीव का यह अयथाकर्तृत्वाभिमान ही उसके कर्मफलों का भोग का कारण होता है।

आदावीश्वर दत्त्यैव पुरुषः स्वातन्त्र्य शक्त्या स्वयम्,
तत्तद् ज्ञान चिकीर्षण प्रयतनान्युत्पादयन् वर्त्तते।
तत्रो पेक्ष्य ततोऽनुमत्यं विदधत्तन्निग्रहानुग्रहौ,
तत्तत्कर्मफलं प्रयच्छतिततः सर्वस्य पुंसो हरिः।। (प्राचीन श्लोक)

सृष्टि के समय ईश्वर जीव की सृष्टि करके पहले उसको एक स्वतन्त्र शक्ति प्रदान करते हैं,। इसके बाद उन सभी पुरुषों के अपने अपने स्वतन्त्र ज्ञानानुसार इच्छा उत्पन्न होती है। एवं भिन्न इच्छानुसार विभिन्न कार्यो में वह प्रवृत्त होता है। प्रत्येक जीवों के हृदय में वर्तमान रहकर अन्तर्यामी परमात्मा जीवों के सभी कर्मों के प्रति उदासीन भाव से साक्षी स्वरूप हो कर अवस्थान करते हैं। जीव के स्वतन्त्रता प्रयुक्त इच्छानुगुण अनुमति देते हैं उन जीव की अपनी इच्छा से किए हुए अच्छे बुरे सभी कर्मो का अच्छा और बुरा फल भोग कराते रहते हैं इस प्रकार से एक कर्म फल का चक्र चलता रहता हैं। समस्त जीवों को उनके शुभाशुभ कर्म के अनुगुण फलभोग के लिये तदुप्युक्त देह, इन्द्रिय, मन को देकर बार–बार संसार में प्रेरणा करते रहते यही ईश्वर का प्रवर्त्तित नियम है। इस संसार चक्र के प्रवर्त्तन रूप एवं निवर्त्तन रूप कर्म में ईश्वर स्वेच्छा अपने बनाये हुए इन नियमों के अधीन हो कर अवस्थान करते हैं।

''जीवोद्धारार्थ परमेश्वर का कृषि कार्य''

प्रश्न हो सकता है कि परमेश्वर की इस लीला का क्या कारण है? इस लीला के द्वारा जीवों को दुःख कष्ट देने का ही कारण है क्या? अनादिकाल से जीवों का उनके कर्मो का व्याज (बहाना) बनाकर अनन्त दुःखों से युक्त संसार आवर्त्ति में वहा कर रखना ईश्वरनिर्दयता के अलावा और क्या हो सकता है? ईश्वर के प्रति इस तरह का आक्षेप करना केवल हम लोगों की अज्ञता का परिचय है। परमेश्वर के सङ्कल्पमात्र से जब एकक्षण में विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि एवं प्रलय सम्भव है तव उनके सङ्कल्पमात्र से एक साथ सभी जीवों की मुक्ति लाभ भी सम्भव है। तथापि वे ऐसा नहीं करते, यही उनकी इच्छा है। वे इच्छा करते हैं स्वतन्त्रताभिमानी जीव स्वकर्तृत्व बुद्धि विशिष्ट विभिन्न सदसत्कर्मो को करता है। उन स्वतन्त्रता विशिष्ट जीवों को अपने बनाये हुए विधि निषेधात्मक शास्त्र मर्यादा के अनुसार तराजू के पल्ले पर मैं विचार करूँ एवं विचारपूर्वक शास्त्र विधि के अनुसार उन जीवों को शुभा शुभ फल भोग कराऊँगा। पाप कर्म को करने वाला अशुभ फल भोग रूप शासन के फल से धीरे–धीरे पाप कर्म को छोड़कर धीरे–धीरे पुण्य कर्म की ओर आकृष्ट होगा एवं आत्मा की उन्नति करने में प्रलुब्ध होगा। परमेश्वर के इस शासन का उद्देश्य जीवों को

साधन के लिए है। इस सांसारिक महा दु:ख से व्याकुल होकर वैराग्य भावापन्न हो, एवं इस दु:ख बहुल संसार से मुक्ति पाने के लिए अभिलाषी हो, यही परमेश्वर के शासन का आन्तरिक उद्देश्य है। इस लीला विभूति में लीला परिचालन उनका सङ्कल्प है।

ईश्वर यदि केवल अपने साधारण बनाये हुए नियमानुसार शासन कार्य का निर्वाह करते तो फिर शायद उनकी दया के ऊपर सन्देह करने का एक रास्ता मिलता किन्तु संसार चक्र के प्रतिवर्त्तन सम्बन्धी उनके व्यापार की परिसमाप्ति केवल इतने तक ही नहीं है। इस में उनकी और भी अन्य नियमावलियाँ एवं क्रियाकलाप भी अच्छी प्रकार से दिखाई पड़ता है। उनसे प्रवर्तित उन सब विशेष नियमों द्वारा परिचालित विशेष सभी व्यापारों को एकाग्रचित्त से चिन्तन के द्वारा उपलब्धि करने पर उनकी दया, क्षमा, हित परता, वात्सल्य आदि अशेष गुणों के परिचय होने पर हम लोग व्यामुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते हैं। ईश्वर अपने जीवों की संसाराक्रान्त दु:ख से व्याकुल दशा देखकर करुणा परवश होकर उनके उद्धार के लिए वे अनेक प्रकार का पथ अवलम्वन करते हैं।

हम लोगों को यह अवश्य ही जान लेना चाहिए कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए संसार में पड़े हुए हम लोग जितना व्याकुल होते है जीव का संसार बन्धन छेदन करके उसकी प्राप्ति के लिए जीवों की अपेक्षा वे अधिक आग्रहशील रहते हैं। जिस प्रकार जीव अपना स्वातन्त्र्याभिमान त्यागकर उनके पास पहुँच जाय इसके लिए जो प्रबन्ध किये हैं यही उनका विशेष कृषिकार्य है।

प्रथम प्रवाह

प्रथम अध्याय

'' आचार्यवंश''

सांसारिक हिसाब से गोत्र, वंश परिचय, कुलशीलादि गृही लोगों के आदर की वस्तु एवं मर्यादा का परिचय है। हिन्दुओं के पास अज्ञात कुलशील व्यक्ति अनादरणीय होता है। एवं धर्म गोष्ठी में भी उसी प्रकार आचार्य वंश भी आदर का धन गौरव का परिचय है। जिस प्रकार ऋषिगण सांसारिक वंश के मूल हैं और उन ऋषियों के नाम से गोत्र प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार श्री भगवान ही विभिन्न आचार्य वंशों के मूल पुरुष हैं। ''आचार्याणामसावसाविति भगवत्त:'',, श्री भगवान से लेकर हम लोगों के आचार्य वंश में अमुक अमुक विद्यमान थे। केवल आद्योपान्त आचार्यो के नामों का स्मरण करना ही यथेष्ट नही है ,अपितु उनके समस्त गुणों को जानना एवं अनुष्ठानों का अनुसन्धान करना भी परमावश्यक है। मन्त्र की तरह इस गुरु परम्परा का नियम पूर्वक जपकरने को शास्त्र का निर्देश है। ''जप्तव्यं गुरु परम्परा मन्त्र रत्नं च।'' गुरु परम्परा का नियम पूर्वक अनुसन्धान करने में निश्चय ही सार्थकता है। इसी कारण ''जप्तव्यम् गुरु परम्परा'' ऐसा शास्त्र निर्देश है।

''आचार्य वंश के स्मरण की विधि व प्रयोजनीयता''

नियम से पूर्वाचार्यो का नाम उनका चरित्र, उन का ज्ञान एवं अनुष्ठान के धारावाहिक रूप में स्मरण करने से विशिष्ट परम्परा से प्राप्त महाज्ञानी, अनुष्ठानशील विशिष्ट आचार्यो के अनुष्ठित प्रणाली से ज्ञान भक्ति विश्वास एवं दृढ़ता क्रमश: सुप्रतिष्ठित होती है। इस ज्ञान, अनुष्ठान ही प्रणाली को परिपुष्ट रूप से अपने आचार्य के मध्य देखने पर इस धारा का सुस्पष्ट रूप शिष्य के हृदय में रेखाङ्कित्त हो जाता है। फिर तब

आचार्य के द्वारा उपदिष्ट पथ पर उनके अनुमत रूप से उत्साह से युक्त अवतीर्ण होकर शिष्य साधन भजन अग्रसर होता रहता है। एवं अन्त में सफलता पाता है।

''सम्प्रदाय शब्द की विशेषता''

साधारणतः सम्प्रदाय शब्द जिस अर्थ में व्यवहृत होता है –उस अर्थ में एक अवाञ्छनीय भाव अन्तर्निहि रहता है। ऐसा मालूम होता है कि यह सम्प्रदाय शब्द एक सङ्कीर्ण गली का परिचायक एवं उदारता का परिप हैं। इस मनुष्य में साम्प्रदायिकता है – यह कहने से ऐसा मालूम पड़ता है कि कथित व्यक्ति का अपने धर्मीय बाद को छोड़कर अपने से भिन्न अन्य मतवाद के प्रति वह विद्वेष करता है। किन्तु धीरता पूर्वक चिन्ता क देखने पर समझा जाता है कि इस प्रचलित भाव धारा में कोई वास्तविकता नहीं है। सम्प्रदाय शब्द व्युत्पत्तिगत अर्थ–जो गोष्ठी अथवा जो प्रतिष्ठान सम्यक् एवं प्रकृष्ट रूप से दान करता रहता है उसे सम्प्रदाय कहा जाता है। इस कथन में अन्यान्य गोष्ठी एवं प्रतिष्ठान के प्रति कोई आक्षेप नही है। धर्म साधन बहुत से मार्ग हैं। उन मार्गो की प्रयोजनीयता और उपकारिता निश्चय रूप से स्वीकार करने योग्य है। ''भि रुचिर्हिलोकः'' विभिन्न लोगों की विभिन्न रुचि होती है। रुचि के भेद से अधिकार में भेद होता है। अधिकार भेद से उनकी अपनी प्रवृत्ति के अनुगुण विभिन्न धर्म मार्ग में आकृष्ट होते हैं। अपने–अपने अभिमत मार्ग में शीघ्र उन्नति की अधिक सम्भावना होती है। ''यत मततत पथ'' जितना मत है उतना पथ है। जैसे सुनिश्चित है। वैसे ही सबके लिये सवमत समान भाव से प्रयोज्य नहीं हैं। और समान फलप्रद भी नहीं है यह सुनिश्चित है। यदि अन्य मतों के प्रति अपकर्षता की बुद्धि आये तब यह अवश्य निन्दनीय है। इन सभी मतों अमुक मत हमारे लिए श्रेष्ठ है यह भाव निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। परन्तु अधिक कल्याण कर होता लौकिकरीति में सर्व– साधारण के लिए प्रस्तुत पेटेण्ट औषधि की अपेक्षा प्रिस्कृप्सन की औषधिरोगी वि के पक्ष में अधिक उपयोगी होगी। साधारण चिकित्सक की अपेक्षा औषधि विद्या, शल्य विद्या, धात्री विद्या अ में विशेष पारदर्शी चिकित्सक की व्युत्पत्ति एवं कार्यकारिता उस उस विभाग में अधिक हुई रहती है। अन क्षेत्र में भी एक निष्ठ विशेषज्ञों के अनुष्ठान का प्रकर्ण अधिक रहता है। ऐसा हम लोग, सर्व वादि सम्मत से कहते रहते हैं।

''गुरु परम्परा सम्प्रदाय का मेरुदण्ड''

धर्म जगत् में जहाँ इन्द्रियातीत वस्तु के सहित सम्बन्ध है। वहाँ इस तथ्य की सत्यता जो अधिक सार्व है इसमें और सन्देह रह सकता है क्या? एक एक धर्म सम्प्रदाय का मन्त्र, मन्त्राधीन देवता, ज्ञान, अनु प्रणाली कितने कितने सिद्ध महापुरुषों में प्रवाहित हो रही है, एवं कितनी शक्ति सम्पन्न है, कितनी शक्ति वाला है एवं कार्य करी होता है, उसे एकाग्रचित्त से चिन्ता करने पर चिराचरित सम्प्रदाय का उत्कर्ष शा महिमा स्पष्ट ही उपलब्धि होती है गुरु परम्परा सम्प्रदाय का मेरु दण्ड ही है। श्री भगवान् से आरम्भ कर अ सिद्ध महापुरुष आचार्यगण की परम्परा में अपने आचार्य गुरु तक का धारा वाहिक जो संयोग है गुरुपरम्परा है। विभिन्न सम्प्रदायों की गुरु परम्परा ही उन उन सम्प्रदायों की प्रकृष्ट सम्पत्ति होती है। अ शास्त्र कहता है– जप्तव्यं गुरुपरम्परा' अपनी अपनी गुरुपरम्परा का सदा जप करना चाहिए। सम्प्रदाय महापुरुष सिद्ध पूर्वाचार्य परम्परा से सुरक्षित ज्ञान भण्डार अपने अपने आचार्यो के श्री मुख से प्राप्त तदनुगुण अनुष्ठानों के साक्षात् दर्शन से सौभाग्य वान् होकर उन ज्ञान और अनुष्ठानों को अपने अपने

में प्राणवन्त कर लेते हैं। अन्त में भगवान की प्रसन्नता से साधन सीमा में मन्त्र सिद्धि ज्ञान सिद्धि एवं अनुष्ठान सिद्धि लाभ करते हैं।

ये सिद्ध महापुरुषगण निज सम्प्रदायगत उत्तर पुरुष साधकों को मन्त्र और मन्त्रार्थ के विषय में ज्ञान और अनुष्ठान के विषय में उपदेश देते रहते हैं सिद्ध महापुरुषों के लिपिबद्ध प्रबन्ध अथवाग्रन्थादि से उत्तर पुरुष अपने जानने एवं अनुष्ठान करने योग्य विविध ज्ञान का आहरण करते रहते हैं।

''वैष्णव सम्प्रदाय''

विष्णोर्जातं वैष्णवम्' विष्णु भगवान् से जो उत्पन्न है उन्हें वैष्णव कहते हैं। यथा–कुरु से कौरव, यदु से यादव इस यौगिक व्युत्पत्ति के अनुसार सभी ही जीव वैष्णव पदवाच्य है। विष्णु पुराण कहता है – **'विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्** वि0पु0 1।1।31।। यथार्थतः सभी जगत् वैष्णव है। साधन क्षेत्र में जो लोग विष्णु को ही अपना इष्ट देव मानकर उनका भजन करते हैं वे वैष्णव कहलाते हैं। अवतार कन्द नारायण विष्णु, नरसिंह, राम, कृष्ण आदि अवतार सभी अभिन्न हैं ऐसा निर्णीत हुआ है। इन अवतारों में से जिस किसी विग्रह (अवतार) का उपासना करने वाला ही वैष्णव कहलाता है। सब वैष्णव भक्तिवादी हैं, भगवान को ही अपना इष्ट देव मानकर उनसे प्रीति करते हैं। एवं प्रीतिकारिता भगवत्सेवा ही वैष्णवों के साधन भजन का मुख्य अंग है। इस भक्ति के मूल में ज्ञान भी जड़ित है। वैष्णवों के साधना रूप जल सिञ्चन से ज्ञान और भक्तिलता दोनों ही अभिवृद्ध होते हैं। वैराग्य ज्ञान और भक्ति दोनों का सहचर है। भक्तिमार्ग का ज्ञान, केवल अद्वय ज्ञानतत्त्व भगवत् स्वरूप का ज्ञान ही नहीं है। अपितु – भक्तिमार्ग के ज्ञान का तात्पर्य भगवान् के स्वरूप, रूप, गुण, लीला और विभूति का ज्ञान, तथा जीव के स्वरूप व गुण का ज्ञान भगवान और जीव में क्या सम्बन्ध है उसका ज्ञान – उक्त मुख्य ज्ञान से उद्भूत, संश्लिष्ट अन्यान्य गौण ज्ञान भी हैं। शुद्ध भक्तों में वैराग्य ज्ञान एवं भक्ति का अपूर्ण संमिश्रण देखने में आता है। भगवद्भक्ति के साथ साथ जीवों पर दया करना वैष्णवों की एक अन्य मुख्य वृत्ति है।

''वैष्णव सम्प्रदाय का 4 विभाग''

यह वैष्णव जगत मूलतः चार सम्प्रदायों में विभक्त है। पद्म पुराण कहता है–

अतः कलौ भविष्यन्ति, चत्वारः सम्प्रदायिनः।
श्री माध्वी रुद्र सनकाः वैष्णवाः क्षिति पावनाः।।
चत्त्वारस्ते कलौ दे वि! सम्प्रदाय प्रवर्त्तकाः।।

श्री, ब्रह्मा, रुद्र एवं चतुःसन ये चार दिव्यजन कलियुग में चार अवतार पुरुषों को स्वीकार करके चार सम्प्रदाय बनाये हैं ये चार वैष्णव सम्प्रदाय पृथिवी पवित्र करने वाले हैं।

प्रमाण प्रमेय रत्नावली में भी इसी प्रकार का निम्नोक्त श्लोक पाया गया है–

रामानुजं श्री स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्री विष्णु स्वामिनं रुद्रो निम्वादित्यं चतुःसनः।।

श्री लक्ष्मी देवी रामानुज को, चतुर्मुख ब्रह्मा मध्वाचार्यको महादेव रुद्र श्री विष्णु स्वामी को एवं चतुःसन सनकादि निम्बाचार्य को निज निज सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक रूप में स्वीकार किये। यही प्रचलित चार सम्प्रदाय, श्री रामानुज सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय, श्री विष्णु स्वामी वल्लभ सम्प्रदाय, एवं निम्बार्क सम्प्रदाय नाम से

प्रसिद्ध है। इसके अलावा अन्यान्य वैष्णव सम्प्रदाय इन्हीं चारों के सहित किसी न किसी रूप से सम्पर्कित है इस तरह कथित होता है।

''श्री वैष्णव सम्प्रदाय''

श्री जी (लक्ष्मी देवी) से जिस सम्प्रदाय का उद्भव हुआ वहीं श्री सम्प्रदाय अथवा श्री वैष्णव सम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध है। इसका अन्य एक नाम रामानुज सम्प्रदाय है। यह आलवारों की भाव धारा से पुष्ट है। इसके रामानुज स्वामी नाना प्रकार से सुप्रतिष्ठित किये हैं अतएव उनके महा उपकार के स्मरणार्थ यह रामानुज सम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध है।

इसको गुरु परम्परा के क्रम से तीन भाग में विभक्त किया जाता है।

''श्री सम्प्रदाय का तीन पर्याय''

1– पूर्वाचार्य वर्ग

2– रामानुज स्वामी

3– उत्तराचार्य

1/''पूर्वाचार्य – गुरुपरपम्रा''

श्रीमन्नारायण	श्री नाथमुनि
	श्री पुण्डरीकाक्षस्वामी
श्री जी (लक्ष्मी देवी)	श्रीराम मिश्र स्वामी
श्री विष्व क्सेन जी	श्री यामुन मुनि
श्री शठकोपआलवार	श्री महापूर्ण स्वामी

2/ श्रीरामानुज स्वामी

3/ ''उत्तराचार्य–गुरुपरम्परा (अवरोहण क्रम)

(क) श्री गोविन्दाचार्य, (ख) श्री दाशरथी स्वामी

(ग) कूरेश स्वामी की शाखा (लेखक एवं अनुवादक की शाखा गोविन्दाचार्य से आरम्भ है।)

''श्री गोविन्दाचार्य के शाखा की गुरुपरम्परा''

'अवरोहण क्रम'

श्री गोविन्दाचार्य 'स्वामी

श्री पराशर भट्टर स्वामी

श्री वेदान्ती स्वामी

श्री कलिवैरिदास स्वामी

श्री कृष्णपाद स्वामी

श्री लोकाचारी स्वामी

श्री शैलेश स्वामी

श्री वरवर मुनि स्वामी

श्री वरदाचार्य स्वामी प्रभृति

पूर्वाचार्यगण जिन समस्त ज्ञान एवं अनुष्ठानो के द्वारा इस श्री सम्प्रदाय की मूलभित्ति स्थापन किये थे, रामानुज स्वामी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, अमानुषिक अध्यवसाय और अविराम परिश्रम के द्वारा उसभित्ति के ऊपर एक विराट् सौधका (प्रासाद) निर्माण कर गये हैं। श्री वर वर मुनि स्वामी उस सौधको नाना प्रकार से सुरक्षित कर गये हैं। इस सौध में परवर्ती आचार्यगण निवास करते हुए इस श्री सम्प्रदाय से उत्थित फल भोग करते आ रहे हैं एक वाक्य में कहा जा सकता है – कि इस सम्प्रदाय के जन्म में आलवारगण पूर्वाचार्यगण थे इसको पुष्ट करने में रामानुज थे और वरवर मुनि इसकी रक्षा में थे।

''अण्णनगद्दी''

श्री रामानुज स्वामी अपने परम पद जाने के समय 72 पीठ स्थापित करके प्रत्येक पीठों में एक–एक करके पीठाधीश नियुक्त कर गये हैं। उनके परम पद जाने के बाद उन्हीं के उपयोगी अशेष गुणालङ्कृत, मुख्य शिष्यगण उनकी प्रवर्तित प्रणाली के अनुसार जन कल्याण के हित साधन में अपना अपना जीवन उत्सर्ग किये। वे समस्त शिष्यगण असाधारणव्यक्तित्व सम्पन्न व असाधारण गुण सम्पन्न थे। तथा अधिकांश ही सन्यासी थे। सकल ही ज्ञान के भण्डार, रहस्य ज्ञान के आकर, रस माधुर्य के उत्स एवं ज्ञानानुगुण अनुष्ठान के सक्रिय विग्रह थे। वेदान्त विद्या विशारद यज्ञमूर्ति वेदान्त शास्त्र की अध्यापना और वेदान्त तत्व के प्रचार में प्रवृत्त हुए। कुरुकाधिनाथ स्वामी आड़वारों से विरचित दिव्य प्रबन्धों के अध्ययन और अध्यापना में तथा उनकी व्याख्या रचना में एवं उनके प्रचार में आत्मनियोग किये। अमुद्नार स्वामी अपने आचार्य श्री रामानुज स्वामी के वैभव प्रचार में नियुक्त हुए कूरेश दशरथी और गोविन्दाचार्य उपरोक्त सभी व्यापारों में अपना–अपना मन और प्राण ढाल दिये। इन समस्त महापुरुषों की कर्म कुशलता से रामानुज स्वामी जी की दिव्य आज्ञा अतिशीघ्र चारों तरफ आदृत होकर प्रसार लाभ करने लगी।

रामानुज स्वामी के परवर्तीकाल में न्यूनाधिक 300 (तीन सौ) वर्ष तक तत्प्रवर्तित पन्थ वहु प्रकार से विस्तृत हुई है। इस समय में ही गोविन्दाचार्य की शाखा में पराशर भट्टर (कुरेश स्वामी के पुत्र), वेदान्ती स्वामी, कलिवैरिदास स्वामी, कृष्ण पाद स्वामी, लोकाचारी स्वामी एवं वरवर मुनि आविर्भूत हुए।

दाशरथी स्वामी की शाखा में–दाशरथी, रामानुज, वारणाधीश स्वामी, इयारामानुज, वेदान्त देशिक स्वामी आविर्भूत होकर रामानुज स्वामी की दिव्याज्ञा चारों तरफ ''बर्द्धताम् अभिवर्द्धताम'' की दिव्य ध्वनि करने लगे। श्री वेदान्त देशिक स्वामी से श्री सम्प्रदाय ''बड्गलं'' नाम की शाखा आविर्भूत हुई है। दूसरा विभाग तिङ्गल नाम से विख्यात है। इस वड़गल और तिङ्गल में अल्प ही सिद्धान्तान्तर्गत प्रभेद देखा जाता है। श्री कूरेश स्वामी की शाखा से ''रामानन्द सम्प्रदाय'' उद्भूत हुआ। **श्री सीतारामदास ओंकारनाथ अनूदित रामानन्द विरचित ''श्री वैष्णवमताब्जभाष्कर'' नामक ग्रन्थ देखिये।** मर्मज्ञ आचार्यगण बरवरमुनि को रामानुज स्वामी का द्वितीय अवतार कहते हैं। इनके समय में ही रामानुज स्वामी द्वारा प्रचलित ज्ञान और अनुष्ठान का उत्कर्ष अति ऊँचे से ऊँचे शिखर पर उपनीत हो गया था। एवं रामानुज प्रवर्तित मार्ग दक्षिण भारत में सर्वत्र व्याप्त हो गया था। वरवर मुनि पाण्डित्य में, ज्ञान में रसा स्वादन में, अध्यापना में, ग्रन्थ प्रंणयन में, एवं परिचालना में अर्थात् सब विषयों में ही अतिशय पार दर्शी थे। वरवर मुनि स्वामी कालानुयायी परिचालाना में सुविधा के लिये रामानुज स्वामी प्रवर्तित 72 पीठ को सङ्कुचित करके 8 स्थान निर्वाचन के द्वारा 8 मठ की स्थापना किये। प्रत्येक मठों के आदर्श भाव से सुष्ठु निर्वाह के लिए एक एक दिग्गज सर्वगुणान्वित

आचार्य को अच्छी तरह उपदेश देकर अपने निर्वाचित आठों स्थानों में प्रेरणा किये! ये आचार्य ही अष्ट दिग्गज के नाम से प्रख्यात हुये।

''अष्ट दिग्गज''

वाणाद्रियोगिवरवेङ्कट योगिवर्य,
श्री भट्टनाथ प्रति बादि भयङ्करार्या:।
रामानुचार्य वरदार्य नतार्त्तिहारी,
श्री देवराज गुरु अष्ट दिशां गजास्ते।।

1– वाणाद्रियोगी 2–वरवेङ्कट, 3– भट्टनाथ, 4–प्रतिवादिभयङ्कर, 5– रामानुज, 6–वरदार्य, 7–नतार्त्तिह 8–देवराज गुरु, ये ही अष्ट दिग्गज थें। इनमें पाँच गृहस्थ और तीन सन्यासी थे।

'वरदनारायण स्वामी''

इन दिग्गजों में वरदार्य स्वामी अन्यतम थे। इनका अन्य एक नाम वरदनारायण स्वामी था। ये अपने गुरु श्री वरवर मुनि के इतने प्रिय और अभिमान के वस्तु थे कि गुरु श्री वरवर मुनि अपने शिष्य वरद नारायण की गुणावली का कीर्त्तन सूचक तनियन् श्लोक स्वत: रचना किये थे। शिष्य के द्वारा गुरु के तनया श्लोक को बनाने की शिष्ट ग्राही प्रथा है, किन्तु एतद्विपरीत प्रथा का अनुष्ठान करके आचार्य वरवर मुनि अपने शिष्य के प्रति प्रीति और मदीयत्व अभिमान की पराकाष्ठा चिरकाल के लिए लिपिबद्ध कर गये हैं, केवल इतना ही नहीं इस श्लोक की विशेषता है कि गुरु स्वत: ही: श्लोक का उभय चरण प्रथमार्ध लिखे हैं, इनके निर्देश से शिष्य द्वितीयार्ध का दो चरण स्वत: पूरण किया है। इस प्रकार तनियन् श्लोक की रचना में उक्त व्यापार एक अपूर्व माधुर्यमय इतिहास है।

1 – सकल वेदार्थ सारार्थ पूर्णाशयम,
विपुलवाधूल गोत्रोद्भवानां परम् ।
2– रुचिर जामातृ योगीन्द्र पादाश्रयम्,
वरद नारायणं मद् गुरुं संश्रये ।।

ये वरद नारायण ही दक्षिण भारत में ''अण्णन्'' स्वामी के नाम से प्रख्यात हुए। अण्णन् एक तमिल शब्द है। इसका अर्थ ज्येष्ठ भ्राता है। इनके शिष्य प्रशिष्य क्रम से जिस शाखा का उद्भव हुआ उसे ही अण्णन् ... के नाम से कहा जाता है।

इनके अण्णन् नाम कहा जाने का एक आलौकिक वैशिष्ट्य है, भक्त समाज में उपादेय समझ कर ... संक्षेप रुप में निम्न लिखित किया जाता है।

''वरद नारायण स्वामी के अण्णन् नाम का इतिहास'' श्रीवरद नारायण स्वामी अति सात्विक प्रकृति के मनुष्य थे। एकाधार में ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य के आधार थे। उनका निवास स्थान श्रीरङ्गम् में ही था। वे अति प्रत्यूष काल में निद्रा से जागृत होकर स्नान करने के लिये नित्य, कावेरी में जाते थे। स्नानानन्तर कावेरी जल से कलश भर कर पूजा के लिये ले आते थे। तदनन्तर प्रात: कृत्य समाप्त कर प्रत्येक दिन भगवान् के दर्शन के लिए श्रीरङ्ग मन्दिर में जाते थे। ये प्रतिदिन सबसे पहले ही, यहाँ तक कि पुजारियों से भी

पहले भगवान् के द्वार देश पर उपस्थित होकर स्तोत्रादि पाठ में नियुक्त हो जाते थे। बाद में अर्चक गण आकर मन्दिर का द्वार उद्‌घाटित करते। मन्दिर का द्वार खुलने पर श्री रङ्गनाथ भगवान का दर्शन करते, श्री पाद तीर्थ– तुलसी आदि लेते एवं प्रदक्षिणा आदि करके घर पर लौट आते। उनके, इस नियम में व्यतिक्रम कभी भी नहीं देखा जाता। उनकी इस प्रकार भगवत्प्रीति, भगवत्कैङ्कर्य में दृढ़ता, नियमानुवर्त्तन देखकर मन्दिर के अर्चकगण, एवं अपरापर सेवकगण इनके प्रति श्रद्धाशील न होकर ईर्ष्यान्वित हो गये। उनके इस प्रकार के नियम पालन में विघ्न डालने की उपाय के अवलम्वन करने में सचेष्ट हुए। एक दिन अर्चकगण श्री रङ्गनाथ भगवान् की प्रातः कालीन पूजा निर्दिष्ट समय के पहले ही शुरू करने का निश्चय किये। अभिप्राय यह कि ऐसा करने से वरद नारायण स्वामी पूजा के समय पर उपस्थित नहीं हो सकेंगे। अत्यन्त गोपन रूप से यह व्यवस्था स्थिर हुई। वरद नारायण स्वामी इस विषय में कुछ नहीं जान पाये। जिस दिन अर्चकगण अपनी निश्चित व्यवस्था के अनुसार श्री भगवान की प्रातः कालीन पूजा निर्दिष्ट समय के कुछ पहले ही करने का निश्चय किये थे उस दिन एक अलौकिक घटना संघटित हुई। वरद नारायण स्वामी प्रत्यह प्रत्यूष जिस समय सोकर उठते थे उसके एक घण्टे के पहले ही उनके छोटे भाई अपनी इच्छा से उनकी शय्या गृह के द्वार पर उन्हें जगाकर बोले – भैय्या आज आप के सो कर उठने का समय अतिक्रान्त हो गया। कावेरी स्नान में जाने का समय हो गया है। आप शय्या त्याग कीजिये। छोटे भाई की इस प्रकार वाणी सुनकर निद्रा से उठ गये, हाथ मुख धोकर स्नानार्थ कावेरी चले गये। अण्णन स्वामी स्नानान्तर देखते हैं कि उनका छोटा भाई दौड़ते हुए आ रहा है। और उनके पास आकर बोला– कि दादा! अतिकाल हो गया है– आप अभी घर पर जाकर शीघ्र ही पूजा आदि समाप्त कर लीजिये। और श्रीरङ्गनाथ भगवान् का दर्शन करने चले जाइये। मैं आपके वस्त्रादि धोकर ले आ रहा हूँ। अण्णन स्वामी छोटे भाई के अनुरोध से उसके पास वस्त्रादि रखकर घर लौट आये। और देखते हैं कि उनका छोटा भाई घर पर ही है। स्वामी जी ऐसा देखकर उससे पूछने लगे कि तुम इतनी जल्दी कावेरी से कैसे लौट आया और बिना स्नान किये हुए क्यों लौट आया। इनकी बात को सुनकर वह विस्मित हो गया और कहने लगा कि दादा! मैने तो आपको नहीं जगाया और कावेरी भी नहीं गया। फिर आज इतनी जल्दी कावेरी स्नान के लिए जाने का आपका क्या प्रयोजन ही था? इस तरह हमसे पूँछने का कारण ही क्या है? वरद नारायण स्वामी इस प्रकार उसके मुख से प्रश्न गर्भित उत्तर सुनकर थोड़ी देर के लिए स्तब्ध एवं निर्वाक् हो गये। थोड़ी देर में उक्त रहस्यमयी घटना का आवरण चित्त से हट जाने के बाद स्वामी स्पष्ट उपलब्धि किय कि हमारे प्रभु-श्रीरङ्गनाथ भगवान् का ही यह खेल है, वे ही किसी विशेष प्रयोजन से मेरे छोटे भाई के रूप से हमें निर्दिष्ट समय के पूर्व ही जगाये हैं। पुनः वे ही शीघ्रतापूर्वक घर लौटने का निर्देश देकर मेरे वस्त्र आदि को स्वतः धौत किये। स्वामी जी इस उपलब्धि के साथ ही साथ अपने ऊपर श्रीरङ्गनाथ भगवान की असीम करुणा का स्मरण कर उनके दोनों नेत्र से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। भगवान् अपने मन्दिर में शीघ्रातिशीघ्र जाने का जो निर्देश किये हैं, इस विषय में उनका कोई विशेष अभिप्राय अवश्य ही है। यह निश्चय करके

अतिशीघ्र ही जाकर भगवान् के मन्दिर के द्वार पर उपस्थित हुए। अन्यान्य दिनों की अपेक्षा बहुत पहिले ही उपस्थित हुए थे। उस समय वहाँ पर अर्चक, किंवा अन्य सेवक अथवा अन्य दर्शक कोई नहीं था। थोड़ी देर के पश्चात् प्रधान अर्चक आकर उपस्थित हुए थे। ये भी अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ पहले ही आए थे। अर्चक ने आकर वहाँ पर स्वामी जी को देख अत्यन्त विस्मित होकर उनसे पूँछने लगे कि आप इतने शीघ्र दूसरे दिन की अपेक्षा बहुत पहले किस कारण से मन्दिर में आये हैं। अर्चक के उत्तर में स्वामी जी केबल इतना बोले, कि ''श्रीरङ्गनाथ जी का आदेश''। वे यद्यपि वास्तविक घटना प्रकाश नहीं किये, उसे गोपन ही राखे, तथापि उनके प्रति श्री रंगनाथ भगवान की असीम कृपा का निदर्शन रूप रोमाञ्चकर इस अलौकिक घटना की बात थोड़े ही दिन में खुल गई। तभी से इनके प्रति साधु वृन्द एवं अर्चक तथा सेवकगण और साधारणजनों की श्रद्धा और भक्ति की सीमा नहीं रही, अर्थात् इनको सभी श्रद्धा और भक्ति करने लगे। श्रीरङ्गनाथ भगवान् इन्हें बड़े भाई (अण्णन्) कह सम्बोधन किये थे इसी कारण सभी लोग छोटे बड़े का विचार न करके अण्णन कहकर इनका सम्मान करने लगे और तभी से ये अण्णन स्वामी के नाम से प्रख्यात हुए। इनके गुरुवर वरवर मुनि स्वामी इन्हें जिस मठ का अध्यक्ष नियुक्त किये थे वह मठ अण्णन् गद्दी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अण्णन् स्वामी की इस शाखा के आचार्यगण एवं जितने शिष्यगण हुए वे सभी अण्णन् गद्दी के अन्तर्गत हैं।

''गोवर्द्धन गद्दी''

ब्रज मण्डल की परिक्रमा 84 कोश की होती है। इसमें द्वादशवन और इतने ही उपवन हैं। इन सबको मिलाकर महावृन्दावन कहा जाता है। इसके मुख्य द्वार पर मथुरा से प्राय: 15 मील उत्तर दिशा में गिरिराज गोवर्द्धन और गोवर्द्धन ग्राम अवस्थित है। प्राचीन काल से लेकर आज तक इस में बहुत साधु महात्मा वास करते आये हैं। और निर्जन स्थान पर एकान्त साधन भजन में प्रवृत्त हुए रहे हैं।

''श्री गोवर्द्धन गद्दी – आदि प्रतिष्ठाता श्रीनाथमुनि''

श्री सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य श्रीनाथमुनि (अष्टम शताब्दी) अपने कुल देवता ''राजगोपाल जी की आज्ञा से उत्तर भारत में तीर्थ यात्रा किये थे। श्री यमुना जी का किनारा धर कर श्री वृन्दावन पहुँचे। कुछ समय के बाद वृन्दावन से गोवर्द्धन में उपस्थित हुए थे। श्रीनाथमुनि जिस तरह भक्त थे उसी तरह योगिराज भी थे। वे योगाभ्यास से अपने हृदय कमल के मध्य श्रीमन्नारायण के दिव्य मङ्गल विग्रह दर्शन में समाधिस्थ हो जाते। ब्रज भूमि के गोवर्द्धन पर्वत की निर्जनता एवं प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर अत्यन्त आकृष्ट हो गये थे, और आकृष्ट होकर गोवर्द्धन पर अपने भजनानुकूल एक निर्जन मनोरम स्थान निर्वाचन कर लिये थे। उसमें स्थित एक गुफा में योगासन में नियम पूर्वक समाधिस्थ रहते। आज भी वह गुफा ''यति पुरा'' नाम से प्रसिद्ध है। इसके निकट अपने नित्य आराध्य के अर्चा विग्रह की प्रतिष्ठा किये थे। वह श्रीनाथमुनि मन्दिर आज भी विद्यमान है। श्रीनाथ मुनि द्वारा प्रतिष्ठित यह स्थान गोवर्द्धन गद्दी नाम से प्रसिद्ध है। इस तरह भगवद् आराधना और योगदर्शन में कुछ काल व्यतीत किये। इसके बाद अपने कुल देवता राजगोपाल भगवान् से स्वप्न में आदेश पाकर वे दक्षिण

भारत अपनी जन्मभूमि वीर नारायणपुर लौट आये थे। और शरीरावसान काल तक जन्मभूमि पर ही रहे। नाथमुनि के बाद कई शताब्दियों तक का गोवर्द्धन गद्दी का वृत्तान्त ठीक ठीक नहीं पाया जाता। षोडश शताब्दी के मध्य भाग से आज तक का इस गद्दी के आचार्य परम्परा का निरन्तर इतिहास पाया जाता है। सप्तदश शताब्दी के प्रथम आचार्य का नाम पाया जाता है–

''श्री शठकोप स्वामी''

आ दौ श्रीं शठकोप देशिकवरः कारुण्य वारान्निधिः,
भक्तानुग्रहवाञ्छयापृथुयशा गोवर्द्धनार्द्रेरधः ।
स्थित्वात्तत्र कुटीरमेकमखिलं श्लाध्यं मनोज्ञं स्वयम्,
कृत्वा भागवतैः सहैव वसतिं सद्भिश्चकारात्मवान् ।।

आदि में करुणा सागर पृथुयशा, आत्मवान्, आचार्यवर श्री शठकोप स्वामी भक्तों के प्रति अनुग्रह करने के लिए गोवर्द्धन पर्वत के पाद देश में एक मनोज्ञ सर्व श्लाध्य कुटी में भागवतों के सहित वास किये। इस श्लोक के पहिले 'आदौ' शब्द रहने से अनुमान किया जाता है कि शठकोप स्वामी से आचार्य परम्परा का एक नूतन पर्याय आरम्भ हुआ है। यह अण्णन् स्वामी की गद्दी के गुरुपरम्परा के अन्तर्गत हैं। अण्णन् गद्दीस्थ इस विभाग से आचार्यगण की परम्परा आगे चलकर दी जायेगी। श्री शठकोप स्वामी की गुरुपरम्परागत तनियन् श्लोक में ''गोवर्द्धनाचलावासम्' वाक्य का उल्लेख है।

वाधूल श्री निवासार्य पदपङ्कजषट्पदम् ।
गोवर्द्धनाचलावासं, श्रीशठारिं गुरुं भजे ।।

शठकोप स्वामी से पहले की गुरु परम्परा में किसी भी आचार्य के तनियन् श्लोक में गोवर्द्धन–निवास सूचक कोई शब्द का प्रयोग नहीं है। इसके द्वारा और भी सुस्पष्ट रूप से अनुमान होता है कि गोवर्द्धन गद्दीस्थ इस नूतन पर्याय भुक्त आचार्यो के मध्य श्री शठकोप स्वामी ही प्रथम आचार्य रूप से विख्यात हुये।

''शठकोप परवर्ती–आचार्यवृन्द''

श्री शठकोप स्वामी से लेकर श्री रङ्गदेशिक स्वामी पर्यन्त इस गोवर्द्धन गद्दी पर सब मिलाकर छः जन विराजमान हो गये हैं। ये सभी आचार्यगण शम दम आदि गुणों से युक्त, ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य की भूमि, कृपा सागर, मन्त्रार्थज्ञ एवं ज्ञान विज्ञान प्रद महापुरुष थे। षोडश शताब्दी श्री शठकोप स्वामी से लेकर श्रीरङ्गदेशिकस्वामी तक परम्परा के क्रम से आचार्यो का नाम प्रदत्त हो रहा हैं।

नाम	आचार्य रूप से विराजमान्
1– श्री शठकोप स्वामी	35 वर्ष
2– श्रीवेङ्कटाचार्य स्वामी	59 वर्ष
3– श्री कृष्णाचार्य स्वामी	65 वर्ष

4– श्री शेषाचार्य स्वामी 67 वर्ष

5– श्री निवासाचार्य स्वामी 77 वर्ष

6– श्रीरङ्गदेशिक स्वामी 37 वर्ष

श्रीरङ्गदेशिक स्वामी का तिरोधान संवत् 1931 वि. 1874 खृष्टाब्द में हुआ है। श्रीरङ्ग देशिक स्वामी से पहले तक वृन्दावनस्थ गोवर्द्धनगद्दी से श्री वैष्णव धर्म का प्रसार कुछ कुछ अवश्य हुआ था किन्तु उसका ठीक ठीक वृत्तान्त हम लोगों को मालूम नहीं है। श्री रङ्गदेशिक स्वामी के आचार्यत्व में श्रीवैष्णव समाज बहुत विस्तार लाभ किया था। श्री वृन्दावन मन्दिर प्रतिष्ठा, समग्र उत्तर भारत में, पञ्जाव से लेकर वङ्गाल तक, मध्य भारत से लेकर वदरिका श्रम तक प्रसार हुआ था।

प्रथम प्रवाह – द्वितीय अध्याय

श्री रङ्गदेशिक स्वामी

मद्रास से काञ्चीपुर तक समग्र भूमि को ''तुण्डीर मण्डल'' कहा जाता है। इस तुण्डीर मण्डल प्रदेश में मद्रास से प्राय: 50 मील पश्चिम में भूतपुरी नामक नगरी अवस्थित है। यही भूतपुरी रामानुज स्वामी की अवतार भूमि है। इस भूतपुरी के समीप' अरहन्' (अग्रहायण) नामक एक वर्द्धिष्णु ब्राह्मण प्रधान ग्राम है। इस ग्राम में श्री सम्प्रदायनिष्ठ धर्म परायण वाधूलवंश कुलोद्भव श्री निवासाचार्य स्वामी वास करते थे। उनकी धर्म पत्नी का नाम श्री रङ्गनायकी देवी था। श्री रङ्गनायकी देवी के गर्भ से श्रीरङ्गदेशिक स्वामी का अविर्भाव हुआ। वे अपने मामा के घर तिरुवउन्दे नामक ग्राम में विक्रम संवत 1866 ई0 सन् 1810 ई0 कार्तिक कृष्णा सप्तमी तुला संक्रान्ति पुनर्वसु नक्षत्र में अवतीर्ण हुए। उनके जन्म नक्षत्र दिवस में श्री वैष्णव लोग निम्नलिखित श्लोक पाठ करते हैं।

शुक्लाब्दे तौल सप्तम्यां कृष्णपक्षे पुनर्वसौ ।
वाधूल कुल सम्भूतं श्री रङ्गार्यमहं भजे ।।

यथा विधि जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न हुआ। रङ्गदेशिक स्वामी के संसार जीवन का नाम हम लोग को मालूम नहीं। वे अति आदर के साथ पिता माता की गोद में लालित पालित होने लगे। अतिं आनन्द पूर्वक उनकी बाल्यावस्था बीतने लगी। किन्तु ! यह आनन्द उनका अधिक दिन रहा नहीं। दैव दुर्विपाक से अल्प काल में उनके लड़कपन में ही पितृमातृ वियोग हुआ। उनकी मातामही (नानी) तब शिशु रङ्गदेशिकको अपने ग्राम तिरुवड़न्द में (अरहन से छः मील दूर) ले गई। बाल्यकाल उनका उसी जगह ही बीता। स्वामी जी जब पाँच वर्ष के हुए तब शुभ मुहूर्त देखकर उनकी विद्या शिक्षा आरम्भ हुई। जब आठवें वर्ष में पदार्पण किये तब उनके ज्येष्ठ भ्राता उनको अपने ग्राम अरहण में ले जाकर विधि पूर्वक उनका उपनयन संस्कार कराये। उपनयन के बाद ही उनकी विद्या शिक्षा भी आरम्भ कराये। मेधावी बालक रङ्गदेशिक विद्या शिक्षा का तीन वर्ष जाते न जाते ही वेद शिक्षा के आरम्भ के उपयुक्त प्राथमिक संस्कृत विद्या व्याकरणादि आयत्त कर लिये। अतः पर वे षडङ्ग

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्री गोपाल जी भगवान

श्रीधाम वृन्दावन

सहित वेदाध्ययन में लग गये। किन्तु अपने ग्राम में उपयुक्त पठन पाठन की व्यवस्था नहीं होने के कारण उत्कट अभिलाषा रहते हुए भी अभिलाषानुगुण विद्या लाभ से वञ्चित हो रहे हैं ऐसा देखकर स्वामी जी अन्यत्र जाकर उच्च विद्या लाभ करने की आशा में सर्वदा ही चिन्ता करने लगे। इस भाव में दिन बीतने लगा। एक दिन रात्रि में स्वामी जी स्वप्न देखे कि एक भैंसा उन्हें खदेड़ता है और वे भयभीत होकर चारों तरफ दौड़ने लगे। वे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, जब जिस दिशा में दौड़ते हैं तभी भैंसा आकर उनके सामने क्रुद्ध होकर खड़ा हो जाता है। इसके बाद स्वामी जी जब उत्तर दिशा में दौड़ने लगे तब फिर भैंसा उनको और नहीं खदेड़ा निद्राभङ्ग होने पर स्वामी जी ज्योतिषियों के पास जाकर अपने इस स्वप्न वृत्तान्त को कह सुनाये। ज्योतिषी लोग इनके स्वप्न को सुनकर कहने लगे कि उत्तर भारत में ही तुम्हारा सौभाग्य उदय होगा, अतः तुम्हें उत्तर भारत की ही यात्रा करनी चाहिए। उत्तर भारत जाने के विषय में अभिनिवेश पूर्वक स्वामी जी नित्य चिन्ता करने लगे, कि ऐसे समय में स्वामी जी सुने—कि काञ्ची निवासी आचार्यवर अनन्ताचार्य स्वामी दलवल के सहित उत्तर भारत की यात्रा करेंगे। यह सुनकर रङ्गदेशिक स्वामी निश्चय किये कि अनन्ताचार्य स्वामी के साथ उत्तर भारत में उच्च शिक्षा के उद्देश्य से चला जाऊँगा। अपने इस अभिप्राय से स्वामी जी काञ्ची नगरी में जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके अनन्ताचार्य स्वामी से अपनी अभिलाषा कहकर निवेदन किये, एवं स्वामी जी के ही निर्देश से रङ्गदेशिक वहाँ कई एक दिन रहे। इसके मध्य एक जन विद्वान शास्त्रार्थ करने के लिए अनन्ताचार्य स्वामी जी के मठ में आये अनन्ताचार्य स्वामी जी के सहित उस विद्वान का शास्त्रार्थ जब कुछ दूर अग्रसर हुआ, तब बालक रङ्गदेशिक, अनन्ताचार्य स्वामी जी का पक्ष अवलम्बन कर उस विद्वान को पराजित किये। बालक रङ्गदेशिककी इस प्रतिभा को देखकर अनन्ताचार्य स्वामी इस तीक्ष्ण मेधावी बालक के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुए। और उत्तर भारत की यात्रा के समय आदर और यत्न के सहित रङ्गदेशिकको साथ ले आये।

श्रीरङ्गदेशिक स्वामी उत्तर भारत में आकर कुछ दिन अनन्ताचार्य स्वामी के साथ में रहे। पश्चात् स्वामी जी का साथ छोड़कर वृन्दावन, और वहाँ से गोवर्द्धन चले गये। उस समय गोवर्द्धन गद्दी पर मठाधीश श्री 1008 श्री निवासाचार्य स्वामी विराजमान थे। इन सद्गुरु श्री निवासाचार्य के गुणगण के विषय में पूर्वाचार्य लोग लिखे हैं —

"वेद वेदान्त सारज्ञः सर्वजन्तु सुहृद्गुरुः।
साधु सेवी सदा श्रीमन्नारायण परायणः।। 1 ।।
सदानुष्ठान निरतो, दुराचार विवर्जितः।
सौलभ्यानि प्रभावाति सौशील्यगुणाम्बुधिः।। 2।।
सात्विकोवर्त्तते श्रीमान्, गोवर्द्धन महागिरौ।"

अर्थात्— श्रीनिवासचार्य स्वामी वेद वेदान्त के सारभूत ज्ञान से परिपूर्ण थे। वे सभी के सुहृद्, व आचार्य स्थानीय थे, सर्वदा साधुओं की सेवा में तत्पर रहते थे, एवं श्रीमन्नारायण के परम भक्त थे। वे थे सर्वदा

सदाचार निष्ठ, किसी प्रकार का असदाचार कभी उनको स्पर्श तक नहीं कर पाया। सौलभ्य और सौशील्य आदिक गुण–गणों से परिपूर्ण ये श्रीमान् सात्त्विक पुरुष गोवर्द्धन महापर्वत पर विराज करते थे। श्रीरङ्गदेशिक उनके सन्निधि में जाकर साष्टाङ्ग करके उनके पास खड़े रह गए मठाधीश श्री निवासाचार्य स्वामी जी ने रंङ्गदेशिक स्वामी से उनका परिचय, एवं आगमन के उद्देश्य के विषय में प्रश्न किये। उनके उत्तर में अत्यन्त विनम्र भाव से बोले ''प्रभो! मैं दक्षिण भारत में ''तुण्डीर मण्डल'' का निवासी हूँ, इस समय उत्तर भारत आकर आपकी सेवा की इच्छा से उपस्थित हुआ हूँ। आप अनुग्रह पूर्वक हमको अपने दास के रूप में स्वीकार कर धन्य कीजिए, एवं शिक्षा दान कीजिये।

''श्रीनिवासाचार्य के निकट आश्रय लाभ और समाश्रयण''

बालक रङ्गदेशिक का आकार, इङ्गित, आचार देखकर, उनकी कथावार्त्ता से सन्तुष्ट होकर श्री निवासाचार्य स्वामी रङ्गदेशिक को आश्रम में रहने के लिए अनुमति प्रदान किये। उपयुक्त समय पर उनको समाश्रित किये एवं शीघ्र ही उनकी अध्यापना भी आरम्भ कर दिये। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी अल्पकाल के मध्य ही सम्प्रदाय ज्ञान एवं उभय वेदान्त विषयक ज्ञान में ज्ञानवान् हो गये। ''श्री निवास गुरुवर्य कृपा कटाक्षैः,श्री सम्प्रदाय शिखरोभयतत्त्वबोधः'– श्रीनिवास गुरुवर्य के कृपा कटाक्ष से रङ्गदेशिक स्वामी उभय वेदान्त के विषय में तत्त्व ज्ञान लाभ किये थे। गोवर्द्धन गद्दी में अध्ययन समाप्त करने पर श्रीरङ्गदेशिक स्वामी अन्यान्य शास्त्र अध्ययन के लिए काशी जाने की अपनी अभिलाषा को अपने गुरु श्री निवासाचारी के चरणों में निवेदन किए।

''धर्मशास्त्र अध्ययनार्थ काशी आगमन एवं उच्च शिक्षा लाभ'' रङ्गदेशिक स्वामी को अनुमति दिये एवं काशी में उनके रहने के लिए उपयुक्त स्थान का एवं भोजनादिक निर्वाह के लिए आवश्यक मठ महानुभाव श्री निवासाचार्य स्वाामी प्रसन्नतापूर्वक व्यवस्था भी कर दिये।''

काशी जाकर श्रीरङ्गदेशिक स्वामी ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक भाव से अध्ययन में निविष्ट हुए काशी में वेदान्त, व्याकरण, न्यायमीमांसा –सांख्य प्रभृतिशास्त्र यथारीति अध्ययन किये। अध्ययन सम्पन्न होने पर श्रीरङ्गदेशिक स्वामी, पण्डिताग्रगण्य, एवं सर्ववरेण्य हो गये।

षडङ्गैर्वेदान्यो मुहुरपिपठन् सारमगमत,
तथामीमांसायांकृत परिसरो येन नितराम् ।
महाभाष्ये भाष्ये पुनरवततारहि मणिराट्
सवै श्रीरङ्गार्यो जयति जन पूज्यो गुरुवरः।।

जो रङ्गदेशिक स्वामी 6 अङ्गों के सहित वेद वेदान्त पुनः पुनः पढ़कर उसमें से सार वस्तु अधिगत किये थे, जो मीमांसाशास्त्र में कृतविद्य हुये थे, जो पुनःपुनः श्री भाष्य में निमग्न रहते थे, ऐसे सर्वजन पूज्य, गुरुवर श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी की जय हो । इसी समय से वे श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के नाम से विख्यात हुए। काशी में रङ्गदेशिक स्वामी किस स्थान पर थे, कितने दिन तक अध्ययन किये, एवं किसके पास अध्ययन किये

यह सब ठीक ठीक नहीं जाना जाता । श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के गुरुदेव श्री निवासाचार्य स्वामी उस समय अपटु एवं वृद्ध हो गये थे। अपना परम पद जाने का समय सन्निकट समझकर श्रीनिवासाचारी स्वामी रङ्गदेशिक स्वामी को लौट आने के लिए उनके पास पत्र दिये। पत्र के निर्देशानुसार स्वामी गोवर्द्धन में प्रत्यावर्त्तन करके अपने आचार्य के समीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके खड़े हो गये। उस समय गुरुवर श्री निवासाचार्य स्वामी अपना अभिमत रङ्गदेशिक स्वामी से ज्ञापन किए स्वामी जी कहने लगे ।

''स्वामी जी के बुलाये जाने पर श्रीरङ्गदेशिक का गोवर्द्धन आगमन और गोवर्द्धन गद्दी की आचार्य पद प्राप्ति''

हे पुत्र! हमारी यह वृद्धावस्था हो गई, परम पद जाने का समय अति सन्निकट है, हमारी इच्छा है कि तुम गोवर्द्धन में रहकर लक्ष्मी नारायण भगवान् की सेवा में आत्मनियोग करो, एवं मुमुक्षु जीवों को समाश्रित करके एवं उपदेश देकर आचार्य पदवी को स्वीकार करो, तथा आचार्य परम्परा प्राप्त इस गोवर्द्धन गद्दी का वैभव स्वीकार करो। ''श्री निवासाचार्य प्रभु के इस निर्देशको सुनकर श्री रङ्गदेशिक स्वामी अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य किए। तब अत्यन्त प्रसन्न चित्त से श्री निवासाचार्य स्वामी शुभ मूहुर्त देखकर, श्रीरङ्गदेशिक स्वामी को अपना उत्तराधिकारी आचार्य्य रूप में स्वीकार करके सब बन्दोबस्त कर डाले। श्री निवासाचार्य स्वामी अपने शिष्यों के सहित श्रीरङ्गगद्दी का समस्त कैङ्कर्य का भार रङ्गदेशिक स्वामी के ऊपर करके कुछ दिन एकान्त में रहकर भगवदनुभव में निमग्न रहते हुए श्री निवासाचार्य स्वामी अतिवृद्धवयस में वैकुण्ठधाम चले गये। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज उत्तराधिकारी रूप से (सन् 1838 ई0) गोवर्द्धन स्वामी गद्दी के सभी सेवा पूजा आदि कैंकर्य में व्याप्त रहे। उस समय स्वामी जी की अवस्था कुछ कम या ज्यादा 30 वर्ष की थी। थोड़े समय के भीतर स्वामी जी के पाण्डित्य, ज्ञान, भक्ति, एवं सदनुष्ठान का सौरभ समग्र मथुरा मण्डल एवं उत्तर भारत में चारों तरफ परिव्याप्त हो गया। उस परिमल से आकृष्ट होकर चारो तरफ से मुमुक्षु जीव संसार के दुःख की निवृत्ति के लिए स्वामी जी के निकट आने लगे।

''साधुओं के जीवन धारा की दो प्रणाली''

साधुओं की जीवन धारा मुख्यतः दो प्रणाली के द्वारा प्रवाहित होती है। प्रथम – जन शून्य एकान्त स्थल में भगवच्चिन्तन, ध्यान, धारण, एवं अनुभव करना। द्वितीय–भगवान के उद्देश्य की उपलब्धि करके उनके मुखोल्लासके लिए उनको सेवा बुद्धि से, लोक संग्रह के लिए पठन पाठन, मठ मन्दिर निर्माण और स्थापन, ध र्म प्रचार आदि जन कल्याण कर कार्यो में जीवों की सेवा के लिए आत्मनियोग करना। इस द्वितीय प्रकार के जीवन यात्रा में साधुओं को मनुष्यों के बीच रहना पड़ता है। अनेकों रूचियों से युक्त जन साधारण के साथ सम्पर्क रखना पड़ता है। अनेक समय प्रतिकूल अवस्था के भीतर भी चलना पड़ता है। ऐसा होते हुए भी सभी अवस्थाओं में सभी कार्यो के मध्य में भगवान् की प्रसन्नता एवं भगवान की सेवा का लक्ष्य धीरता पूर्वक स्थिर रखते हुए सात्विक अनुष्ठान में दृढ़ रहना पड़ता है। अस्खलित भाव से चित्त विक्षेप शून्य कर्म मुखर रहना

पड़ता है। इन्हीं कारणों से यह द्वितीय प्रकार की जीवन यात्रा जीवों के अधिकार श्रेयस्कर होने पर साधुओं पक्ष में दुष्कर है। द्वितीय पथ पर चलने वाले उच्च अधिकारी आचार्य दुर्लभ हैं। इस श्रेणी के आचार्य महाचार्य के नाम से अभिहित होते हैं। ईश्वर स्वयं जिस प्रकार अवतार धारण करके जीवों के कल्याण के साधारण प्राणियों की संश्रय में आकर कर्म मुखर जीवन को निर्वाह करते हैं, ये महाचार्यगण भी तद्रूप होते ये महाचार्य लोग भगवान के नित्य पार्षद, भगवान से भेजे हुए अवतार विशेष हैं।

''महाचार्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी की कीर्त्ति गाथा का दिग्दर्शना''

आचार्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी आचार्यगणों में अग्रगण्य थे, उन लोगों के मुकुटमणि स्वरूप थे। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी एक जन महाचार्य थे। उनके धर्ममय जीवन की असाधारण धारा का विस्तार पूर्वक आलोचना कर इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है। एक संक्षिप्त आलोचना द्वारा उनके दिव्य चरित्र का विषय प्रकाश करने की चेष्टा की जा रही है। इस अलौकिक अति मानव जीवन चरित्र की निम्नलिखित अङ्गावली का एक दिग् दर्शन मात्र दिया जाता हैं।

1– आत्यन्तिक साधन भजन – तपश्चर्या, सेवा पूजा।
2– मठ मन्दिर स्थापन।
3– शिष्य समाश्रयण।
4– शिष्य सङ्गठन।
5– पठन पाठन : उपदेश दान।
6– धर्मग्रन्थ प्रणयन।
7– स्वीय धर्म मत प्रतिष्ठा।
8– धर्म प्रचार ।
9– तीर्थ दर्शन

1– आत्यन्तिक साधन भजन – सिद्ध महापुरुषों का आत्यन्तिक साधन भजन का सम्वाद यथायथ संग्रह करना अति दुष्कर है। उनके वाह्यिक अनुष्ठान का सम्वाद आन्तरिक की अपेक्षा सहज है। लोगों के शुद्धाचार, पूजा पाठ, शयन, भोजन, वार्तालाप आदि का विवरण हम लोग बहुत जगह से लिपिबद्ध पाये हैं। किन्तु उनकी गम्भीर चिन्ता धारा, आकुल आवेग, ध्यान धारणा, प्रार्थना अनुभव आदि अन्तर अवस्था का विषय प्रायशः अज्ञात ही रह गया।

'' साधन भजन तपश्चरण''

श्रीरङ्गदेशिक स्वामी का साधन–भजन विषयक हम लोगों का ज्ञान भी तद्रूप ही है। उनका धर्म विषयक साधारण ज्ञान एवं सम्प्रदाय विषयक विशेष ज्ञान अर्जन के लिए आग्रह एवं इस आग्रह से सदुप देश के सद्गुरु के अनुसन्धान में अल्पवयस में ही स्वजन स्वदेश विषयक सुदूर भारत में आगमन, सद्गुरु के एकान्त

अनुगत होकर निरन्तर अध्ययन करना, ज्ञान की पिपासा से देश देशान्तर में जाना, यथेच्छ ज्ञानार्जन एवं ज्ञानुष्ठान करना, इन समस्त विषयों को यदि अवहित चित्त से चिन्ता करें तो उनकी साधन अवस्था का अनेकतत्त्व हम लोगों के निकट प्रतिभात हो जाय। उच्चावस्था लाभ के बाद भी उनकी दिनचर्या, समय विशेष पर विशेष विशेष तपश्चरण, प्रार्थना, निरन्तर आत्यन्तिक ऐकान्तिक भगवत् चिन्ता, उनके शरीर और मन के संयम का विषय जितना जितना भी जाना जाये, उससे ही उनका अतिमानवत्त्व, आचार्यत्व का महत्व हम लोग समझ सकते हैं और अवतार पुरुष के रूप से उपलब्धि कर पाते हैं। इस विषय में दो चार तथ्य नीचे दिये जाते हैं।

(क) रङ्गदेशिक स्वामी अपने घर के अन्दर साकलवन्द कर घंटों अपने इष्टदेव के निकट प्रार्थना एवं आत्म निवेदन करते।

(ख) आचार्य अवस्था में (उस समय आयु 40 वर्ष के ऊपर) वे वृन्दावनसे श्री बद्रीनारायण चले गये, और वहाँ से 50 मील और उत्तर 'सत्पथ' नामक स्थान में गये। यह स्थान सर्वदा बरफ से ढका रहता है। इस स्थान में स्वामी जी छः मास तक तपस्या करके श्री बद्रीनारायण के विशिष्ट मंत्र में सिद्धि लाभ किये।

(ग) श्री वृन्दावन में श्रीरङ्गनाथ मन्दिर प्रतिष्ठा के बाद भी प्रतिदिन वे अति प्रत्यूष काल में शौच स्नानादि समाप्त करके अपनी पूजा के लिये जल का कलश कन्धे पर रखकर जल लेने के लिये यमुना में जाते, एवं जल भरकर पूर्ण कुम्भ को मस्तक पर रखकर प्रत्यागमन करते। यमुना में जाते वक्त एवं लौटते वक्त निरन्तर मन्त्र जप में निरत रहते। स्वामी जी के घर में श्री वेणुगोपाल जी थे वे उस पूर्ण कुम्भ के जल से नित्य श्री वेणुगोपालजी का अभिषेक एवं पूजा अपने हाथ ही करते, अर्थात् प्रातः काल से रात्रि में वेणुगोपाल जी के शयन तक सभी सेवा स्वयं ही करते। फिर ठीक समय पर श्रीरङ्गनाथ मन्दिर में अपने प्रतिष्ठित श्रीरङ्गनाथ (रङ्गमन्नार) भगवान् की पूजा और आरती में उपस्थित रहते।

(घ) दक्षिण भारत में तीर्थो का दर्शन करके वृन्दावन लौटने के बाद स्वामी जी अन्न परित्याग कर दिये, एवं केवल फल मूलाहारी होकर शरीर निर्वाह करने लगे।

(ङ) ''साक्षाद्भगवत्कृपा का अनुभवः''– एक दिन रात्रि में स्वामी जी निद्रा मग्न थे, रात्रि तीन बजे वे स्वप्न देखे कि एक बालक और बालिका के वेश में श्री गोदम्बाजी एवं श्रीरङ्गनाथ (वृन्दावन में स्वामी जी से प्रतिष्ठित विशाल मन्दिर के अर्चा विग्रह श्रीकृष्ण एवं गोदाम्बाजी) उनके निकट आकर कह रहे हैं:– **हे पितः** आप हम लोगों के लिये लड्डू भोग की कोई व्यवस्था तो नहीं किये? उन लोगों के भाव से स्वामी जी समझ गये, कि वे दोनों बालक और बालिका के वेश में श्री गोदा, और रङ्गमन्नार थे। इतना सुनते ही श्री स्वामी जी उसी क्षण ही उठ गये, उस समय वहाँ किसी को देख नहीं पाये। दूसरे दिन प्रत्यूष में जब स्वामी जी मङ्गलारती दर्शन के लिए मन्दिर में गये, तब पुजारी पहले ही इनके पास आकर श्री भगवान के लड्डू भोग के लिए प्रार्थना किये। पुजारी जी के द्वारा ''श्री गोदारङ्गमन्नार लड्डू भोग के लिए दोबारा आज्ञा दिये। उसी दिन से प्रतिदिन लड्डू भोग की व्यवस्था प्रवर्तित हुई। इसी तरह और एक दिन श्री मन्दिर के प्रदक्षिणा करने के समय स्वामी जी

श्रीरामानुज स्वामी के अर्चा विग्रह के समीप जब पहुँचे तब अर्चक उनसे कहने लगा कि ''स्वामी जी आप रामानुज स्वामी कृत गद्यत्रय की व्याख्या अवश्य करनी चाहिए।'' यह सुनकर स्वामी जी विचारने लगे कि किस किस ग्रन्थ की व्याख्या किया हूँ इस विषय को अर्चक बिल्कुल नहीं जानता, बिना कुछ पूछे स्वतः ही इस तरह दृढ़ता के साथ कह रहा है तो निश्चय ही अर्चक के मुख में निकली हुई वाणी रामानुज स्वामी का निर्देश है। ऐसा विचार कर स्वामी जी गद्य त्रय को व्याख्या रचनाकर के रामानुज स्वामी के अर्चा विग्रह के समीप पाठ किये, पाठ समाप्ति के पश्चात् स्वामी जी मन्दिर के भीतर इसे '' बाढं बाढं'' इस प्रकार का शब्द सुन पाये। इस शब्द को सुनकर स्वामी जी अपने को कृतकृत्य समझे।

(2) मठ मन्दिर प्रतिष्ठा – श्री वृन्दावन में श्रीरङ्गदेशिक स्वामी द्वारा 'श्रीरङ्ग मन्दिर' प्रतिष्ठा, श्री गोदा रङ्गमन्नार का (श्रीकृष्ण एवं गोदाम्बा जी) अर्चा विग्रह स्थापन, आड्वार – आचार्यगणों की अर्चा विग्रह का स्थापन करके दिव्य देश की प्रतिष्ठा, पूरे साल की व्रत एवं उत्सवों की एक स्थायी व्यवस्था, स्वामी जी की अनुपम कीर्ति एवं उनके आचार्यत्त्व का एक श्रेष्ठ निदर्शन है। यह मन्दिर अति विशालकाय है, बहुत ज्यादा जगह लेकर वर्तमान है,

समग्र उत्तर भारत के मध्य में सबसे वृहत है। खृष्टाब्द सन् 1851ई0 यह मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। इस मन्दिर को बनाने में बहुत राजमिस्त्री एवं मजदूर नियुक्त करके कई वर्ष का समय लग गया था। सुना जाता है कि जब मन्दिर बना है उस समय इस मन्दिर को बनाने में तीन करोड़ रूपय़ा खर्च हुआ था। इस स्थल पर इसका विस्तृत विवरण देना सम्भव नहीं है। इस मन्दिर का पाँच प्राचीर (छहारदेवाली) का आवरण है। प्रत्येक प्राकार में विभिन्न भगवद् भागवद् एवं आचार्य की अर्चाविग्रह विराजमान हैं। श्री मन्दिर के प्रतिष्ठाता आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज उत्तम अर्चकगणों का वास स्थान भी प्राचीर के वहिरावरण के अन्तर्गत है। केन्द्रस्थ गर्भ मन्दिर के भीतर श्री गोदाम्वाजी और श्री रङ्गमन्नार (श्रीकृष्ण) अर्चाविग्रह पूर्वमुखी होकर विराजमान है। इस भाव से श्री वृन्दावन में साक्षात् श्री कृष्ण विग्रह के साथ एकत्र श्री गोदाम्बाजी की प्रतिष्ठा करके श्री गोदाम्बा जी का प्रीति साधन किये। श्री रामानुज स्वामी श्री गोदाम्बाजी की अपूर्ण मनोवासना पूर्ण किये थे इस कारण उनको गोदाग्रज (गोदाम्वाजी के ज्येष्ठ भ्राता) कहा जाता है। गोदाम्वाजी एवं श्री कृष्ण का विग्रह एकत्र प्रतिष्ठा करने का सङ्कल्प रामानुज स्वामी पूर्ण नहीं कर पाये थे, इसी बीच परम पद चले गये। उनकी इस वासना को श्री रङ्गदेशिक स्वामी श्री गोदम्बा जी एवं श्री कृष्ण का विग्रह एकत्र प्रतिष्ठित करके पूर्ण किये इस कारण उनको रामानुज स्वामी का द्वितीय अवतार कहा जाता है। तब से शताधिक वर्षों से व्याकुल होकर भारत के सभी देशों से एवं भारत के बाहर से भी प्रतिवर्ष लाखों–लाखों धर्म प्राण पुरुष इस मन्दिर में आकर दर्शन करके परितृप्त होते हैं। वृन्दावन का यह विराट श्री मन्दिर वैष्णव कृति एवं सस्कृति का एक अनुपम रूप में वर्तमान है। इस मन्दिर को केन्द्र करके पिछले सौ वर्षो से भारत के नाना स्थानों में सैकड़ों अपरा पर मन्दिर प्रतिष्ठित होकर उस उस स्थानों पर श्री विग्रह की पूजा और व्रतोत्सव चल रहा है –

3– ''शिष्य समाश्रयण''– आचार्य श्री निवासाचार्य के आग्रह से एवं आदेश से श्रीरङ्गदेशिक स्वामी सम्वतः सन् 1838 अथवा 1839 ई0 में गोवर्द्धन गद्दी के आचार्य रूप में अधिष्ठित हुए। इसी वर्ष से ही उनके द्वारा शिष्य समाश्रयण आरम्भ हुआ।

''जैन सेठ भाइयों को वैष्णवत्त्व दीक्षादान''

उस समय मथुरा में एक विशिष्ट व्यवसायी धनी परिवार था। वे तीन भाई थे – सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी, सेठ राधाकृष्ण जी एवं सेठ गोविन्द दास जी। वे तीनों जैन सम्प्रदाय युक्त थे। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी का वैराग्य, ज्ञान, भक्ति और सत् अनुष्ठान देख कर आकृष्ट होकर अल्पकाल के मध्य ही तीनों भाईयों में मध्यम भाई श्री राधाकृष्ण जी पहले स्वामी जी के शिष्य हो गये। बाद में अन्य दोनों भाई भी स्वामी जी के समाश्रित हुए। राधाकृष्ण जी के आन्तरिक आग्रह और चेष्टा से वृन्दावन में उपरोक्त श्रीरङ्गनाथ जी का मन्दिर निर्माण आरम्भ हुआ, बाद में तीनों भाई ही इस मन्दिर के निर्माण कार्य का समस्त व्ययभार वहन किये, एवं श्री विग्रह को नित्य पूजा भोग राग उत्सव आदि निर्वाह के लिए सभी वन्धानी भी वे तीनों भाई वन्दोवस्त कर दिये। श्री मन्दिर के निर्माण कार्य समाप्ति के बाद ये तीनों भाई अपने गुरुदेव श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी के करकमल में इस विशाल श्री मन्दिर का समस्तसत्त्व (अधिकार) अर्पण कर दिये। यह श्री मन्दिर ''श्रीरङ्गजी का मन्दिर'' के नाम से विख्यात है। सेठ तीनों भाइयों के तन, मन, धन से यह मन्दिर निर्मित हुआ इस कारण सर्व साधारण में यह सेठ जी के मन्दिर के नाम से भी परिचित है।

अल्पकाल के मध्य ही रङ्गदेशिक स्वामी जी का गुणवत्ता एवं ख्याति सर्वत्र प्रसारित होने लगी, एवं चारों दिशाओं से विभिन्न देश के मुमुक्षु नर–नारी स्वामी जी के पद तल में समाश्रित होने लगे। स्वामी जी के सत्सङ्ग से अनेकों संसारासक्ति छोड़कर विरक्त वैष्णव रूप में अपने आचार्य की सन्निधि में वास करने लगे। यह विरक्त वैष्णव गोष्ठी स्व–आचार्य के निकट ज्ञान एवं भक्ति का उपदेश लाभ से तथातदनुगुण अनुष्ठान के द्वारा आत्मोज्जीवन में लग गयी। इतने वैराग्यवान्, ज्ञानी, भक्तिमान् सदाचारी वैष्णवों का हर तरह से सदाचार्य का अनुवर्त्तन करके जीवन यापन करना एक अभूतपूर्व व्यापार, एक अभिनव दृश्य है। स्वामी जी के गृहस्थ शिष्यों में भी बहुत वैष्णव उच्च कोटि में परिगणित हुए। उनकी शिष्य मण्डली सारे भारत में फैल गई।

4– शिष्य सङ्गठनः – श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज केवल शिष्य समाश्रयण करके ही शान्त नहीं होते। शिष्यों के आत्मोज्जीवन में सर्वदा ही सचेष्ट रहते। ''सदाचार्य का प्रधान कृत्य होता है – शिष्य को ज्ञान देना, अज्ञात ज्ञापन करना, एवं स्वयं उस ज्ञानानुयायी अनुष्ठान करके उस ज्ञान को सजीव करके शिष्य के सामने खड़ाकर देना। आचार्यकृत यह सजीव 'ज्ञान एवं अनुष्ठान ही सत् शिष्य अनुकरण करके आत्मोज्जीवन लाभ करने में यत्नवान् होते हैं।'' स्वामी जी स्वतः अपनी भगवत्सेवा पूजा के समय को छोड़कर अन्य समय में जब तक जगे रहते तब तक ग्रन्थ के प्रणयन में शिष्यों की उन्नति विधान करने में समय अतिवाहित करते। स्वामी जी की परिचालना में जो सब साधू उनकी सन्निधि में निवास करने का सौभाग्य लाभ किये थे वे सभी

साधू अवस्था लाभ करके कृत कृत्य हुए थे।

5– पठन पाठन और उपदेशदान:– स्वामी जी अधिकारी भेद से विभिन्न प्रकार के शिष्य वर्ग विभिन्न प्रकार से उपदेश एवं शिक्षादान करते। साधारण श्रेणियों के मध्य साधारण भाव से धर्म शिक्षा अथवा रामायण गीता आदि का पाठ स्वामी जी कभी स्वयं करते अथवा कभी दूसरे किसी अपने उपयुक्त शि के द्वारा करवाते। उच्च अधिकारियों को स्वामी जी स्वयं अध्यापना द्वारा शिक्षादान करते। उनमें अलौकि पाण्डित्य था। व्याकरण, न्याय, मीमांसा प्रभृति विभिन्न तर्क शास्त्र में जिस प्रकार उनकी असामान्य व्युत् थी, उसी प्रकार वेदान्तादि ज्ञान मूलक और भक्ति मूलक शास्त्र में असाधारण अधिकार था। उसी प्र साम्प्रदायिक रहस्य शास्त्र में गम्भीर प्रवेश था। स्वामी जी एक तरफ तर्क शास्त्र और रहस्य शास्त्र के छत्र सम्राट् थे। नियमित भाव से वत्सर पर वत्सर स्वामी जी उपयुक्त शिष्यों को इन समस्त शास्त्रों अध्यापना द्वारा अपने बहुत शिष्यों को वैराग्य, ज्ञान एवं भक्ति का मूर्तिमान् आदर्श बनाकर खड़ा कर दि अनुराग में पृथकता के कारण कोई कोई तर्क शास्त्र में अधिक व्युत्पन्न हुए। और कोई कोई रहस्य शास्त्र ज्ञान पूर्ण हुए। वे सभी अपने अपने विषय में एक एक दिग्गज विशेष में परिणत हुए। तर्क शास्त्र एवं र शास्त्र दोनों में विशेष प्रवेश के लिए तत्वज्ञान अवश्य अपेक्षित है। इसी कारण उक्त दिग्गज ज्ञानी भक्तगण सभी तत्त्व ज्ञान में दृढ़ थे। इन लोगों के मध्य में कुछ अग्रगण्य पुरुषों का नाम दिया जाता है:-

''वादशास्त्र में पारदर्शी''

1–	श्री सुदर्शनाचार्य्य शास्त्री	–	वृन्दावन
2–	श्रीकमलनयनाचार्य शास्त्री	–	जूनागढ़
3–	श्री निवासाचार्य शास्त्री	–	वृन्दावन
4–	श्री रामानुजाचार्य शास्त्री	–	''
5–	श्री वंशीधर शास्त्री	–	अमृतसर
6–	श्री वासुदेवाचार्य शास्त्री	–	वियानीपञ्जाव
7–	श्री महावन शास्त्री	–	'' ''
8–	श्री राम मिश्र शास्त्री	–	काशी
9–	श्री भागवताचार्य शास्त्री	–	''
10.	श्री तुलाराम शास्त्री	–	अयोध्या
11.	श्री भागवताचार्य शास्त्री	–	''
12.	श्री चिरञ्जीलाल शास्त्री	–	मथुरा

''रहस्य ग्रन्थ में पारदर्शी''

1.	श्री बलराम स्वामी	–	वृन्दावन
2.	श्री महान्त रामप्रपन्नाचार्य	–	देउरा
3–	श्री परमहंस राजेन्द्राचार्य	–	त्रेटपाली
4.	श्री परमाले स्वामी	–	वृन्दावन
5.	श्री रामानुज स्वामी	–	''
6.	श्री मैथिल जी	–	''
7.	श्री सूरदास जी	–	''
8.	श्री सङ्कर्षणाचार्य शास्त्री	–	''
9.	श्री गोविन्दाचार्य शास्त्री	–	विलसी

केवल मात्र जो ये उक्त महापुरुष तत्तत् शास्त्र पारदर्शी ही थे, ऐसा नहीं अपिच वहुदर्शी भी थे। वे सभी आचार्यत्व उपयोगी गुणगण से भूषित होकर अपने आचार्य के आश्रय में कालक्षेप करने लगे। श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज के तिरो भाव के पश्चात् वे सभी भारत के विभिन्न स्थानों में मठ स्थापना करके आचार्य रूप से विराज करने लगे।

6– धर्मग्रन्थ प्रणयन – ''श्री सम्प्रदाय'' निज सम्प्रदायगत ज्ञान गर्भ बहुमुखी ग्रन्थ सम्भार से परिपूर्ण है। ये सभी ग्रन्थ अधिकांश दशम शताब्दी से यामुन मुनि के समय से षोडश शताब्दी के मध्य में अर्थात् वेदान्त देशिक स्वामी एवं श्री वरवर मुनि स्वामी के समय तक विरचित हुए हैं। उसके पश्चात् मौलिक ग्रन्थ रचना का प्रयोजन विशेष नहीं अनुभूत हुआ। अधिकांश स्थल में ही ये सब ग्रन्थ विभिन्न भारतीय भाषा में एवं अंग्रेजी भाषा में अनूदित होते आ रहे हैं। ऐसा कि श्री वरवर मुनि स्वामी के ग्रन्थ भी अधिकांश मूल तामिल से संस्कृत भाषा में अनुवाद ग्रन्थ हैं।

''संस्कृत भाषा में बहु ग्रन्थ प्रणयन''

श्रीरङ्गदेशिक स्वामी का अधिकांश ग्रन्थ ही अनुवाद ग्रन्थ है। मूल ग्रन्थ प्रायः सभी ''तामिल अथवा मणिप्रवाल (तमिल और संस्कृत शब्द मिलाकर भाषा विशेष मणिप्रवाल) भाषा में रचित हैं। इन सभी ग्रन्थों को श्री रङ्गदेशिक स्वामी तामिल भाषा में अनभिज्ञ ज्ञान पिपासु भक्त वृन्दों के कल्याण कामना से संस्कृत भाषा में अनुवाद करके प्रकाश कर गये हैं। मूल तामिल अथवा प्रवाल अमूल्य ग्रन्थ राशि का अमूल्य विषय वस्तु जिससे उत्तर भारतीयों को सरलता से उपलब्ध हो सके इसी महत उद्देश्य से रङ्गदेशिक स्वामी अमानुषिक परिश्रम करके यह विराट कार्य साधन किये हैं।

जहाँ तक हो सका है इन सव तामिल अथवा मणिप्रवाल भाषा में रचित ग्रन्थों का श्री स्वामी जी के द्वारा संस्कृत भाषा में अनुवाद ग्रन्थों की एक सूची आगे दी जा रही है।

1– श्री शठकोप आड़वार रचित ''तिरुवायमोड़ि'' नामक दिव्य प्रबन्ध महाग्रन्थ की श्रीकृष्ण स्वामी विरचित विशाल व्याख्या (इडू व्याख्या) सह संस्कृत अनुवाद '' श्री भगवतद्विषय'' नाम से प्रख्यागत हुआ।

2–श्री गोदाम्बा आड़वार कृत''तिरुप्पावै''दिव्य प्रबन्ध कृष्णपाद स्वामी की व्याख्यासहित।

3– ''तिरुप्पलाण्डु'' विष्णुचित्त आड़वारकृत मङ्गलाशसनात्मक दिव्यप्रवन्ध।

4– वार्त्तामाला – पेरुमालजीयर स्वामी संगृहीत 433 पूर्वाचार्यगणों का उपदेश और अनुभव सम्वलित अमूल्य वार्ता।

5–श्री वचन भूषण'' लोकाचारी स्वामीकृत (वरवर मुनि की टीका सहित)। वैष्णव सिद्धान्तों का अपूर्व मीमांसा ग्रन्थ।

6–मुमुक्षुप्पड़ि – मन्त्रार्थ ग्रन्थ – लोकाचारी स्वामीकृत (वरवर मुनि की टीका सहित)।

7–निगम पड़ि – मन्त्रार्थ ग्रन्थ – लोकाचारी स्वामीकृत (वरवर मुनि की टीका सहित)।

8–परन्दपड़ि– मन्त्रार्थ ग्रन्थ – लोकाचारी स्वामीकृत।

9–तत्वत्रय तत्त्व ग्रन्थ लोकाचारी स्वामी कृत। (वरवर मुनि की टीका सहित)।

10– अर्थ पञ्चक – लोकाचारी स्वामीकृत (वरवर मुनि की टीका सहित)।

11– तत्व शेषर– तत्त्व ग्रन्थ – लोकाचारी स्वामीकृत।

12– अर्चिरादिमार्ग– लोकाचारी स्वामीकृत (वरवर मुनि की टीका सहित)।

13– गद्यत्रय–रामानुज स्वामीकृत व्याख्या सह।

उपरोक्त ग्रन्थ के अलावा श्री स्वामी जी कई एक ''मूलवाद ग्रन्थ'' रचना किये हैं। (1) दुर्जन पञ्चानन, (2) दुर्जन मुखभङ्ग चपेटिका (3) व्यामोह विद्रावण–।

इन सब अनुवाद ग्रन्थों में स्वामी जी विविध तत्व ज्ञान, रस ज्ञान, जिसका धन भण्डार, जो तामिल भाषा में अर्गलवद्ध था संस्कृत भाषा में अनुवाद करके उसको उन्मुक्त कर दिये। और उन्मुक्त करके उत्तर भारत का महान उपकार साधन करके गये हैं। इसी कारण स्वामी जी हम लोगों के महोपकारक कहे जाते हैं। उनके अनूदित ग्रन्थ समुद्र से रत्न आहरण करके उत्तर भारतवासी सैकड़ों वर्ष से कृतकृत्य होते आ रहे हैं।

इस महान उपकारक की कोई तुलना नहीं हो सकती। अपरिशोधनीय यह महा उपकार है।

परिपूर्णता– इन सब ग्रन्थों के रचना काल में श्री स्वामी जी महाराज तर्क शास्त्र में विशेष ज्ञान के लिए वंग देश में नवद्वीप धाम पधारे थे। वहाँ तर्क शास्त्र में पारंगत श्री पार्वती चरण भट्टाचार्य महोदय के समीप कुछ दिन तक तर्क शास्त्र अध्ययन किए।

7– स्वीयधर्म प्रतिष्ठा :– श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के प्रकट काल में सिद्धान्त निर्णय के उद्देश्य से कई बार साधु वृहत, मण्डली की सभा हुई। ये सभा दो प्रकार से बुलाई जाती है। धर्म प्राण राजाओं के द्वारा, अथवा

कोई एक धर्म सम्प्रदाय दूसरे कोई धर्म सम्प्रदायों के प्रति कटाक्ष वा आक्षेप करे तब प्रतिपक्ष इस प्रतिवाद विचार के विषय की मीमांसा के लिए एक धर्म सभा आह्वान करके पूर्व पक्ष को तर्क एवं विचार करने के लिए आह्वान करते हैं। इस प्रकार की सभा में जो पक्ष विजयी होता है उसकी प्रतिष्ठित सिद्धान्तावलीको विजित पक्ष स्वीकार कर लेता है यह चिराचरित रीति है। प्रथम धर्म सभा '' बूँदी'' के राजा साहब द्वारा आहूत हुई । वे अयोध्या, काशी, वृन्दावन, मथुरा दिल्ली आदि विभिन्न विद्या केन्द्रों के महा पण्डित मण्डली एवं साधु मण्डली के निकट निमंत्रण भेज कर विद्वानों और साधुओं को सम्मान के सहित अपने राज्य में धर्म सभा के द्वारा सिद्धान्त निर्णय के लिए आह्वान किये थे। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज निमत्रण रक्षार्थ कतिपय उपयुक्त शिष्यों के सहित धर्म सभा में योगदान किये। वहाँ बहुत श्रेष्ठ विद्वानों का समावेश हुआ। निर्धारित समय पर विचार आरम्भ हुआ। कई दिन लगातार उत्साह के सहित विभिन्न पक्षों का वादानुवाद चलने लगा। परिशेष में श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज सबको परास्त करके विजय माल्य लाभ किये। बूँन्दी के राजा साहेब स्वयं श्री स्वामी जी की विचार पद्धति एवं विचार से प्रभावान्वित हो गये। वे श्री स्वामी जी के निकट दीक्षा लाभ के लिए प्रार्थना किये। स्वामी जी महाराज राजा साहेब की प्रार्थना पूर्ण करके उनको समाश्रित किये। उस धर्म सभा में झालर पाटन के राजा साहेब भी उपस्थित थे। वे भी स्वामी जी के ज्ञान, भक्ति एवं अनुष्ठान के प्रभाव से प्रभावित होकर प्रार्थना पूर्वक समाश्रित हुए। दोनों राजा साहेब ही एक एक करके ग्राम अपने गुरुदेव के चरण में निवेदन किये। स्वामी जी के द्वारा सिद्धान्त निर्णय द्वितीय विचार सभा के द्वारा नहीं हुआ, वादी–प्रतिवादी पक्ष के स्वरचित वाद ग्रन्थ के द्वारा हुआ था। इस क्षेत्र में स्वामी जी स्वेच्छा से वाद में प्रवृत्त नहीं हुए, दूसरे की इच्छा से वाद में प्रवेश किये थे। उस समय सङ्कर्षण नाम से एक जनतान्त्रिक विद्वान वास करते थे। सुना जाता है वे प्रेत सिद्ध थे एवं प्रेत के उद्देश्य से मांसादिक वलि देते थे। इस कारण से शुद्धाचार निष्ठ श्री वैष्णवों के प्रति उनका सद्भाव नहीं था। वे द्वेष पर वश होकर श्री वैष्णव मत खण्डन के उद्देश्य से ''श्री वैष्णव मत प्रदीप नामक एक पुस्तिका छपवा कर विभिन्न पण्डित मण्डली के मध्य वितरण करने लगे। इसी समय दैबात एक पुस्तिका स्वामी जी के हस्तगत हुई। वे इस पुस्तिका को आदि से अन्त तक पढ़कर उसका प्रत्येक आक्षेप का खण्डन करते हुए एक ''दुर्जन मुखभङ्ग चपेटिका'' नामक एक छोटा सिद्धान्त ग्रन्थ प्रणयन करके विद्वान साधु समाज में श्री वैष्णव सिद्धान्त सुस्थिर किये। तृतीय सिद्धान्त निर्णय सभा काशी में व्यवस्थित हुई। यह सभा तीनों सभाओं के मध्य वृहत्तम सभा थी। जयपुर के राजा रायसिंह विभिन्न धर्म मतों की विवेचना के लिए पण्डित लक्ष्मणगिरि गोस्वामी के द्वारा 64 प्रश्न प्रस्तुत कराकर विभिन्न स्थानीय वैष्णव समाज में उत्तर के लिए प्रेषित किये। इन सभी प्रश्नों के यथोचित प्रत्युत्तर प्रदान के लिए श्री वैष्णव लोग श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी के निकट सनिर्वन्ध प्रार्थना किये। स्वामी जी प्रश्नावली का असम्बद्ध शैली पर्यवेक्षण करके क्षुब्ध हो गये। इसके भावार्थ के उत्तर में ''दुर्जनकरिपञ्चानन'' नामक एक ग्रन्थ लिखकर प्रश्नकर्ता पण्डितगणों के निकट जयपुर में भेज दिये। जयपुरस्थ समस्त पण्डित मण्डली मिलकर स्वामी जी से प्रेरित इस 'उत्तर ग्रन्थ' का

आशय निर्धारण नहीं कर पायी। तब राजा साहेब दिल्ली से पण्डित हरिश्चन्द्र को बुलाये। वे प्रश्नोंत्तर देख राजा साहेब से कहने लगे कि मैं इस ग्रन्थ का आशय ठीक ठीक समझ गया हूँ, तथापि काशी विद्वन्मण्डली का अभिप्राय जानने के लिए मैं काशी जा रहा हूँ।' वे ग्रन्थ को लेकर काशी चले गये। स्वपक्षी, विद्वानों की सहायता से स्वामी जी के उत्तर ग्रन्थ ''दुर्जन करि पञ्चानन'' का खण्डन ग्रन्थ ''सज्जन मनोंनुरञ्जन'' नामक पुस्तक रचना करके काशी के कुछ विद्वानों से हस्ताक्षर कराके विद्वत् समाज वितरण किये। इस प्रकार उभय पक्ष में वाद कोलाहल का उपशमन नहीं हो रहा है देखकर श्री वैष्णवगण प्रार्थना से श्री स्वामी जी काशी आगमन किये। उनके आने पर प्रतिपक्ष विवाद में प्रवृत्त होने का साहसी हुआ। काशीस्थ समस्त पण्डितवर्गने स्वामी जी महाराज के मत वाद को अङ्गीकारपूर्वक अपना अपना हस्त कर दिया। जिस से पण्डित हरिश्चन्द्रकृत खण्डन ग्रन्थ– ''सज्जन मनोनुरञ्जन'' पुस्तक पढ़ने पर किसी व्यामोह (भ्रान्ति) उत्पन्न न हो इसके लिए श्री स्वामी जी महाराज अपने ''दुर्जन करिपञ्चानन'' का उप स्वरूप'' व्यामोह विद्रावण'' नामक एक वृहद ग्रन्थ प्रणयन करके काशीस्थ समस्त पण्डित वर्गो का हस्त कराकर मुद्रित कर दिये। उनके दिव्य जीवन के चरित्र के मध्य में इस प्रसङ्ग में निम्नलिखित श्लोक उल्लेख है –

प्रश्नावलींनरपतेरुचितोत्तरैस्त्वं,
निर्धूय दुर्जन करन्द्रिभृगाधिपाख्यम् ।
ग्रन्थ विधायजनरञ्जन खण्डनार्थम्,
व्यामोहविद्रावण नाम कथं चकर्थ ।।
गर्वा विधूय जय पत्तनराजवन्धोः,
काश्यां प्रकाश्य यतिराजमतं वुधेषु ।।

नरपति (जयपुरराज) की प्रश्नावली का समुचित उत्तर प्रदान के लिए ''दुर्जनकरि सिंह नामक रचना करके प्रश्नावली का आक्षेप दूर किये थे, एवं ''जन रञ्जन' नामक पुस्तक खण्डन के लिए ''व्या विद्रावण'' नामक ग्रन्थ रचना करके जयपुर राज वन्धू का गर्व खर्व करके यतिराज रामानुज का मत धाम में पण्डित मण्डली के मध्य प्रकाश किये थे।

हम लोगों के मन में शङ्काउदय हो सकती है कि साधू महात्मा लोग साधन भजन लेकर ही कालक्षेप शास्त्रीय वाद वितण्डा में वे लोग योग क्यों देंगे? इसके समाधान में कहा जा सकता है कि साधन भजन दृढ़ता के लिए उसके अनुकूल ज्ञान का अवश्य प्रयोजन है। सिद्धान्त ज्ञान में उदासीन रहना जो उचित यह सर्ववाद सम्मत है। श्री चैतन्य महाप्रभु कहे हैं, ''सिद्धान्त बलिया चित्तेना कर अलस'' (चैतन्य चरित किन्तु इस ज्ञान की गरिमा लेकर पण्डित समाज में वाद वितण्डा की सृष्टि करना उचित नहीं है। द्वेषवशतः यदि कोई अथवा पर मत के खण्डन में प्रवृत्त हो आत्म रक्षार्थ निज पक्ष का समर्थन अवश्य

चाहिए। धर्म प्रवर्तक लोगों की कथा स्वतंत्र है, वे अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए अपना मत संरक्षण एवं प्रसार के लिए बाद ग्रन्थ प्रणयन अथवा देश देशान्तर में जाकर तर्क विचार में प्रवृत्त होते हैं – यह अति प्राचीन काल से एवं देश की प्रचलित रीति है। यह धर्म प्रवर्त्तक साधकों के साधन का अङ्ग विषेष है।

8– धर्म प्रचार :– धर्म प्रचार विषय में रङ्गदेशिक स्वामी का विशेषत्व यही है कि वे देश विदेश में जाकर धर्म प्रचार में प्रवृत्त नहीं हुए वृन्दावन में अवस्थान करके ही श्री रङ्ग मन्दिर को केन्द्र कर वे वैष्णव धर्म का बहुत प्रचार कर गये हैं। इसी स्थल में रहकर हजारों मुमुक्षु जीवों को दीक्षा दान किये हैं। वैराग्यवान उपयुक्त शिष्यों को अपने मठ में रखकर शिक्षादान,साधन भजन का तत्त्वावधान, उपयुक्त शिक्षा की अनुकूलता के लिए तमिल भाषा से विशिष्ट धर्म ग्रन्थों का संस्कृत अनुवाद करना स्वयं उसका नियमित रूप से पढ़ाना अपने ज्ञान एवं अनुष्ठान के द्वारा आदर्श साधु का सजीव दृष्टान्त असंख्य नर–नारियों के सम्मुख उपस्थित करना, इन समग्र दुस्कर कार्यो के सुसम्पादन द्वारा उनका धर्म प्रचार सुदूर प्रसारी सुदृढ़ भित्ति से प्रतिष्ठित हुआ था। उनको केन्द्र कर के आज सारे भारत वर्ष में विशेष करके उत्तर भारत में श्री वैष्णव धर्म का सर्वत्र प्रसार लाभ किया है। उनके परवर्त्ती काल में उनके प्रधान प्रधान शिष्य विभिन्न स्थल में विभिन्न मठ मन्दिर स्थापना किये हैं। उसके बहुत शाखा–प्रशाखा विस्तार लाभ करके आज समग्र भारत वर्ष में तीर्थ यात्रा का विवरण विशेष उल्लेख योग्य है। वे 1861 खृष्टाब्द में इस तीर्थ यात्रा में बाहर हुए इसके पहले उनके द्वारा रङ्ग मन्दिर निर्माण, विविध ग्रन्थ–प्रणयन एवं धर्म सभा में वा धर्म विचार में विजय लाभ यह सब कार्य सम्पन्न हो गया है। उनकी प्रसिद्धि समग्र उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम भारत में व्याप्त होकर प्रसारित हो गई है। सर्व विदित महापुरुषों में वे उस समय प्रख्यात है। इस तीर्थ यात्रा में वे बहुत तीर्थो में बहुत साधुओं द्वारा बहुत सम्मानित हुए थे। वे पहले पूर्व देश श्री जगन्नाथ क्षेत्र (पुरी) में गमन किये, वाद में वहाँ से दक्षिणाभिमुख कूर्माचल, सिंहाचल, मङ्गलगिरि श्रीवेङ्कटेश होकर काञ्चीपुरी में पहुँचे। वहाँ से रामानुज का अवतार स्थान भूतपुरी दर्शन करके श्रीरङ्गधाम, सेतु बन्ध, दर्भशयन एवं गोदा देवी का अवतार स्थल श्री विल्लिपुत्तूर में गमन किये। तदनन्तर तोताद्रि पहुँचे। तोताद्रि मठ के अध्यक्ष श्री वाणाद्रि जीयर स्वामी उनका यथेष्ठ स्वागत, सम्भाषण एवं बहुमान करके कहने लगे– कि सुविख्यात एवं सुन्दर विवरण से अलङ्कृत पथ प्रदर्शक दिव्य शास्त्र ''श्रीवचनभूषण'' एवं अन्यान्य ग्रन्थ को मणि प्रवाल भाषा से संस्कृत में अनुवाद आज तक कोई भी पूर्वाचार्य नहीं किये। आप यह महान कार्य सुसम्पन्न करके असंख्य जीवों का उद्धार साधन किये हैं।'' इस भाव से उनकी भूयसी प्रशंसा करके स्नेह दृष्टि से देखते हुए कहे – आप क्या सौम्य जामातृ मुनि (वरवर मुनि) हैं? उस स्थल से वे शठकोप स्वामी का अविर्भाव स्थल ''आड़वार तिरुनगरी'' दर्शन करने गये। यह परम पवित्र नगरी बहुत आचार्य एवं साधु सन्तों का निवास स्थल है। श्री शठकोप स्वामी कृत ''सहस्रगीति'' (तिरुवायमोड़ि) दिव्य प्रबन्ध का एवं श्रीकृष्णपाद स्वामी कृत ''ईडूव्याख्यान'' का श्री स्वामी जी कृत संस्कृत अनुवाद ग्रन्थ देखकर तत्रस्थ समग्र पण्डित मण्डली प्रशंसा पूर्वक कहने लगी कलि सन्तप्त जीवों के कल्याण के लिए

भगवदाज्ञानुसार श्री शठकोप स्वामी जी अवतार ग्रहण पूर्वक द्राविड़ भाषा में ''तिरुवाय मोड़ि ग्रन्थ प्र कर गये हैं। देशान्तरीय साधुगणों के पक्ष में यह भाषा दुर्वोध्य थी, इस दिव्य प्रबन्ध को आप संस्कृत में अनुवाद करके सुवोध्य कर दिये – इससे उन लोगों का महान् उपकार साधन किये हैं। आपका यह अ अलौकिक भाव सरलता एवं माधुर्य से परिपूर्ण है। आपका स्वयं ''शठकोप स्वामी'' रङ्गदेशिक स्वामी में आविभूर्त हुये हैं'' अतः पर भूतपुरी से श्री स्वामी जी यादवाद्रि, पम्पा सरोवर, पण्ढरपुर, नासिक, द्वा पुष्कर होकर श्री वृन्दावन प्रत्यावर्त्तन किये। समस्त तीर्थ स्थल में ही वे साधुगणों का बहुमान एवं सत्कार तीर्थ यात्रा से प्रत्यावर्त्तन करके श्री स्वामी जी महाराज अन्नादि प्रसादत्याग करके केवल दुग्ध और फ प्रसाद ग्रहण करने लगे। अपने गृह देवता श्री वेणुगोपाल की सेवा पूजा में एवं एकान्त भाव से भगवदनु निरत रहते। अतः पर वे मात्र 5/6 वर्ष पृथिवी पर विराज किये थे। अपने शिष्य वर्गो को अन्तिम उपदेश करते हुए श्रीमन्नारायण का अनुसन्धान करते करते श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज खृष्टाब्द 1874 1931 चैत्र शुक्ल दशमी तिथि वृहस्पतिवार में परम पद गमन किये। उनके परम पद के सम्वाद से शत सेवक समवेत होकर अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न किये। समुचित समारोह के सहित उनका वैकुण्ठोत्सव स हुआ। अद्यावधि प्रतिवर्ष श्री रङ्गदेशिक महाराज का जन्मोत्सव कार्तिक पुर्नवसु नक्षत्र वृन्दावन में दशदिन होकर होता आ रहा है। वे विद्वत् मण्डली के सम्राट थे, भक्त मण्डली के मुकुटमणि थे। करुणावात्स सौलभ्य प्रभृति कल्याण गुणों के आकर थे। महा पण्डित होकर विनय की प्रतिमूर्ति थे। ''विद्याददातिवि इस मौलिक वचन की सार्थकता उनके मध्य में विराज करती थी। इसी लिए उनकी शिष्य मण्डली तनियन् श्लोक गान करती हैं –

वाधूल वंश कलशाम्वुधिपूर्णचन्द्रम्,
श्री श्री निवास गुरुवर्य पदाब्ज भृङ्गम् ।
श्रीवास सूरितनयं विनयोज्ज्वलन्तम्,
श्रीरङ्गदेशिक महं शरणं प्रपद्ये ।।''

ये अवतार कल्प महापुरुष हम लोगों के परमाचार्य थे।

''गुरु परम्परा''

यहाँ तक अण्णन गद्दीं एवं गोवर्द्धन के संश्लिष्ट कई एक जन गुरुवरगणों का अतिसंक्षिप्त विवरण गया। अतः पर श्रीनारायण से आरम्भ करके हम लोगों के परम गुरुदेव श्रीरङ्गदेशिक स्वामी एवं उनके प्रधान शिष्य वर्गो के साथ हम लोगों के गुरुदेव श्री बलराम स्वामी जी पर्यन्त समस्त आचार्यगणों का पर्याय क्रम से एक नक्शा के द्वारा दिग्दर्शनाकार में प्रदर्शित हो रहा है।

1– श्रीनारायण (परम पद वैकुण्ठवासी)
2– श्री लक्ष्मी जी '' '' शिष्य
3– श्री विष्वक्सेनजी शिष्य
4– श्री शठकोप स्वामी (विष्वक्सेन के अवतार)
5– श्रीनाथमुनि (योगवल से दीक्षा लाभ) शिष्य
6– पुण्डरीकाक्ष स्वामी शिष्य
7– राममिश्र स्वामी शिष्य
8– यामुनाचार्य स्वामी शिष्य
9– महापूर्ण स्वामी शिष्य
10– रामानुज दाशरथि शिष्य
11– कूरेश शिष्य
रामानुज (शिष्य) 11 – गोविद् स्वामी शिष्य
वारणाधीश'' 12– पराशरभट्टर'' शिष्य (कूरेश पुत्र)
इ या रामानुज'' 13– वेदान्ती स्वामी जी(जीयर) शिष्य
देवाधीश'' 14– श्री कलिवैरिदास स्वामी शिष्य
देवाचार्य'' 15– कृष्णपाद '' '' (पुत्र)
देवराज गुरु'' 16– लोकाचारी '' ''
17– श्री शैलनाथ '' ''
18– वरवरमुनि '' ''
पुत्र– 19– वरद नारायण (अण्णन स्वामी)'' अण्णन गद्दी आरम्भ
वर वर मुनि प्रतिष्ठित अष्ट्दिग्गजों में एक दिग्गज
20– श्री निवास स्वामी भ्राता, शिष्य
21– प्रणतार्त्ति स्वामी पुत्र, ''
22– वरदेशिक'' '' ''
23– वेङ्कटेश '' '' ''
24– वरददेशिक '' '' ''
25– नतार्तिहर '' '' ''
26– वेङ्कटाचारी '' '' ''
पुत्र 27– वेङ्कटेश स्वामी (भ्राता) ''

28– वरददेशिक स्वामी	पुत्र शिष्य
29– प्रणतार्ति हर स्वामी	पुत्र शिष्य
30– वरदाह्वय ''	पुत्र शिष्य
31– श्री निवास''	पुत्र शिष्य
32– श्री शठकोप स्वामी	शिष्य, गोवर्द्धन गद्दी
33– वेङ्कटेश स्वामी	''
34– श्रीकृष्णाचार्य ''	''
35– शेषाचार्य ''	''
36– श्रीनिवास ''	''
37– रङ्गदेशिक ''	''

प्रधान शिष्य वर्ग

श्री निवासाचार्य	(पुत्र एवं शिष्य)
श्रीबलरामाचार्य	(वृन्दावन, अयोध्या)
श्री सुदर्शनाचार्य	(वृन्दावन)
श्री कमलनयनाचार्य	जूनागढ़
श्री रामप्रपन्नाचार्य	देउरा
श्री राजेन्द्राचार्य	त्रेटपाली
श्री वासुदेवाचार्य	वियानी
श्री महावलाचार्य	''
श्री रामभिश्राचार्य	काशी
श्री भागवताचार्य	''
श्री तुलारामाचार्य	''
श्री गोविन्दाचार्य	जम्मू
श्री रामाचार्य	वँसाँव





योनित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्म ,
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धोः ,
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥

रामानुजाचार्य, मैथिलाचार्य, सङ्कर्षणाचार्य, गोविन्दाचार्य प्रभृति उक्त की गुरु परम्परा शिष्य वर्ग द्वारा जिस से नित्य पाठ एवं नित्य अनुसंधान सुलभ हो इस उद्देश्य से एक संक्षिप्त गुरु परम्परा रचना किया गया है–

श्रीरङ्गदेशिक गुरुं कमलानिवासं,
शेषार्य कृष्ण गुरु वेंकटसूरि वर्यान् ।
श्रीमच्छठारि गुरुवर्य रमा निवासौ,
श्रीमद् गुरुं वरददेशिक माश्रयेऽहम् ।। 1।।
प्रणतार्तिहराचार्य वरदंवेङ्कटं गुरुम् ।
वेङ्कटाचार्य वर्यनतार्तिहरमाश्रये ।। 2।।
वरद गुरु वेङ्कटाचार्य श्री वरदाचार्यनतार्तिहर सूरिम् ।
श्रीवास वरद नारायण –वर कान्तान् समाश्रये नित्यम् ।।3।।
श्री शैलेश्वर लोक देशिक गुरु श्री कृष्ण पादान्सदा,
वन्देऽहं कलिवैरिदास निगमान्ताचार्य भट्टारकान्।।
श्री गोविन्द यतीन्द्र पूर्ण यामुनावास्तव्यरामान् भजे,
पद्माक्षाह्वयनाथ योगि – शठजित् सेनेश पद्मा–हरिम् ।।4।।

यह संक्षिप्त गुरु परम्परा मात्र चार छोटे छोटे श्लोकों में अति संक्षिप्त किया हुआ है, समग्र श्री वैष्णव कर्तृक नित्य आराधना काल में यह श्लोक अबश्य स्मरणीय एवं पठनीय है। लक्ष्मीनाथ समारम्भाम् नाथयामुन मध्यमाम् अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम्। लक्ष्मीनाथ नारायण से अस्मद् आचार्य देव श्रीबलराम स्वामी जी पर्यन्त गुरु परम्परा संक्षेप से वर्णित हुई। रामानुज (10) कर्तृक इस श्री सम्प्रदाय दृढ़ प्रतिष्ठा, शठकोप (4) स्वामी से वरवरमुनि (18) अवधि इस सम्प्रदाय का ज्ञान, भक्ति, रस, एवं रहस्य उभय वेदान्त सम्बन्धीय ग्रन्थप्रणयन विषयक एवं अनुशीलनादि, क्रमवर्द्धमान रूप से विकास, तत्परवर्ती आचार्यो के द्वारा उस उभय वेदान्त का अनुशीलन एवं उपदेशावलीका धारावाहिक संरक्षण इस श्री सम्प्रदाय में परिलक्षित होता है। उक्त पूर्वाचार्यगण सभी जो ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य के सागर विशेष थे, यह उन लोगों के तनियन श्लोक के द्वारा सम्यक् उपलब्धि की जाती है। यथा –

1– नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्ट ज्ञान वैराग्यराशये।
नाथाय मुनयेऽगाध, भगवद् भक्ति सिन्धवे।। नाथमुनि 5।।
वेदान्तवेद्यामृतवारिराशये, वेदार्थ सारामृत पूरमग्रयम्।
आदाय वर्षन्तमहंप्रपद्येकारुण्यपूर्णकलिवैरिदासम्।। कलिवैरिदास ।। 14।।
3– वाधूलधुर्य वरदार्य दयैक पात्रं,
श्रीवेङ्कटेश गुरुवर्यतनूजरत्नम्।

वेदान्तयुग्म विशदी करणैकदीक्षं,
क्षान्त्यर्णवं वरददेशिकवर्यमीडे।। वरददेशिक 24।।

'' श्री रङ्गदेशिक महाराज की परम पद प्राप्ति के पश्चात्''–

श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज के परम पद प्राप्ति के समय में वृन्दावन में स्थित श्रीरङ्ग जी का मं एवं आश्रम की अवस्था यथायथ भाव से वर्णन करना कठिन है। प्रायः एक सौ वर्ष पहले 1874_ खृ उनका परम पद हुआ। तत्कालीन साधुगणों के मध्य कोई इस समय जीवित हैं ऐसा स्मरण में नहीं आ यद्यपि कोई कहीं हों भी तथापि उनका सन्धान हम लोग नहीं जानते। तो भी साधु परम्परा से जितना ज्ञात है उसके द्वारा तत्कालीन अवस्था का अधिकतर अंश में अनुमान किया जाता है।

श्री स्वामी जी महाराज के प्रकट कालीन अवस्था में उनको जो सब दिग्गज शिष्य वर्ग आश्रम को अल करके विराजमान थे, उन लोगों की एक संक्षिप्त नामावली इसके पहले प्रदत्त हुई है। वे सभी ज्ञान, भक्ति एवं वै के आकर स्वरूप थे। उत्तर में जम्मू काश्मीर से दक्षिण में मध्य प्रदेश का दक्षिण प्रान्त, पश्चिम में गुजरात से में विहार प्रान्त पर्यन्त समग्र उत्तर भारत के विभिन्न स्थान में जन्म ग्रहण करके वे अनेक अल्पवयस में ही वैराग्य अधिकारी होकर अपना अपना जन्म स्थान परित्याग करते हुए महाचार्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के श्री चर आश्रय ग्रहण किये थे। एवं आश्रमवासी होकर धर्म जीवन यापन करते थे।

''श्री निवास स्वामी''

सदाचार्य की कृपा दृष्टि से, उनके उपदेश से, एवं परिचालना से वे प्रायः सभी धर्म जगत के अर्द्ध पर आरुढ़ थे। अपने आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी के परम पद के बाद उनके शिष्य वर्ग स्वामी जी के स श्री निवास स्वामी को पिता के स्थान पर आचार्य पद में अभिषिक्त कर श्री निवास स्वामी का अनुवर्तन करके पूर्व की तरह आश्रम कार्य निर्वाह करने लगे। स्वाचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी के प्रकट काल में जो जिस कि सेवा में नियुक्त थे, गद्दीनसीन श्री निवास स्वामी के अनुमोदन क्रम से वे उन सब कैङ्कर्यका ही निर्वाह क लगे। श्री रामप्रपन्नाचार्य जी आश्रम के अधिकारी रूप से साधारण कार्यभार निर्वाह करने लगे। श्री सुद शास्त्री जी साधु समाज में वेदान्त न्याय मीमांसा आदि की अध्यापना में निरत रहे। अस्मदाचार्य श्री बल स्वामी जी महराज आड्बार एवं पूर्वाचार्यगणों के रचित दिव्य प्रबन्ध तथा रहस्य शास्त्र विषय में साधु गो नियमित कालक्षेप (उपदेश) करने लगे। श्री राजेन्द्र सूरि तदीयाराधन (भागवत् सेवा) का भार निर्वाह क लगे। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के ये सब प्रधान प्रधान शिष्य वर्ग प्रत्येक ही आचार्य उचित गुणों से भूषित थे। लोगों के मध्य में कोई कोई स्थानान्तर में जा कर अपना अपना मन्दिर और आश्रम स्थापन किये। बहु धर्मप्राण नर–नारी उन लोगों के निकट समाश्रित होकर परितृप्त हुए। इस भाव से श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जि

वर्ग द्वारा समग्र उत्तर भारत में एवं दक्षिण भारत में भी कुछ श्री मन्दिर एवं आश्रम प्रतिष्ठित हुआ। श्री वैष्णव सम्प्रदाय का आदर्श समृद्ध होने लगा। दिग्दर्शन स्वरूप इस प्रकार का कई एक दृष्टान्त नीचे दिया जाता है। श्री वासुदेव और महावन शास्त्री दोनों पञ्जाब में प्रतिष्ठित हुए। परम हंस श्री राजेन्द्र सूरी विहार में पटना के निकट त्रेटपाली में, श्रीरामभिश्रशास्त्री काशी में, तुलारामाचार्य अयोध्या में आश्रम स्थापन किये। जूनागढ़ बसाव आदि अन्यान्य स्थान में भी श्री रङ्गदेशिक स्वामी के दिग्गज शिष्यगण अपना अपना स्थान निर्वाचन किये। प्रत्येक स्थान में ही बहुधर्मार्थी नरनारी उन लोगों के शरणागत हुए। इस प्रकार कुछ काल के मध्य ही उत्तर भारत में श्री वैष्णव गोष्ठी बहुप्रसार लाभ किया। किसी किसी स्थान में विदेशी धर्मार्थीगण भी वैष्णवत्व अवलम्बन करने लगे। काशी धाम में श्री राम मिश्र आचार्य की सन्निधि में चार जन यूरोपीय (पाश्चात्य देशवासी) भक्त वेदान्त का श्री भाष्य अध्ययन करने लगे। इन चार जनों के मध्य जर्मन देशीय डाक्टर थिव थे। अन्यतम। ये कोलकाता विश्व विद्यालय के रजिस्ट्रार थे। वेदान्त के श्री भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद करके गये हैं। यह अनुवाद ग्रन्थाकार में कोलकाता विश्व विद्यालय से प्रकाशित हुआ है 70, 75 वर्ष पूर्व प्रतिष्ठित इन सब मूल प्रतिष्ठानों के अधिकांश स्थान से इस समय शाखा प्रशाखा विस्तार लाभ करके इस समय समग्र उत्तर भारत में नाना स्थान में श्री वैष्णव मठ, मन्दिर शोभित हो रहा है। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी की गद्दी गोवर्धनगद्दी जो श्रीरङ्गमस्थ अण्णनगद्दी की शाखा है। वह इसके पूर्व यथा स्थान पर उल्लिखित हुआ है। इस अण्णन् गदी के व्यतिरिक्त अन्यान्य मूल गद्दी के शाखा रूप में बहु श्री वैष्णव स्थान इस समय उत्तर भारत में परिव्याप्त हो गया है। इन सवों की मूलगद्दी प्रधानतः तोताद्रि गद्दी और काञ्ची गद्दी है। उल्लिखित श्लोक में विभिन्न गद्दी सम्पर्कित उत्तर भारतीय शाखाओं का एक संक्षिप्त उल्लेख पाया जाता है।

विख्यापियन् द्रविणे प्रपत्तिम
पूर्वार्यवर्यो अदभ्रदयो विरक्ताः ।
संज्ञान्तरं प्राप्य पराङ्कुशाद्याः
ते पुण्य भूमौ पुनराविरासन् ।।
श्रीरङ्ग योगीन्द्रगुरुन् मुकुन्दान्
कारुण्यलब्ध श्रुति मौलिवेद्यान् ।
रामाचार्य मुनिंजनार्दन गुरुं राम प्रपन्नं ततो,
मेघ श्यामं च तथा परम हंसं फलाहारिणं ततो
रामान्तादितुलाविधं रघुनृपं गोविन्ददास त्रिकम्
शास्त्रीञ्च सुदर्शनं शठरिपुं गोपालमश्वाननम्।।
श्रीनारसिंहं बलरामसूरिं वासुञ्च महावनम् ।

वंशीधरञ्च वालमुकुन्द युग्मं गोविन्द युग्मं रघुनाथदासम् ।।
श्रीराघवंश्री मथुरा प्रपन्नं, श्रीराममिश्रं कमलाभनेत्रम् ।
श्रीविष्वक्चमूं श्रीवलभद्रदासं श्रीशालिकंमाधव प्रपन्नम् ।।
प्रातः समुत्थाय विशुद्धधिया, निरन्तरं मङ्गल मातनोति।।
(ये श्लोक जिस रुप में संगृहीत हुए हैं, उसी तरह प्रकाशित हुए)

इन सब आचार्यगणों के नाम प्रतिष्ठित आश्रम एवं मूल गद्दी का यथा सम्भव उल्लेख किया जाता है।

आचार्य	आश्रम	मूल गद्दी
1– श्रीरङ्गदेशिक स्वामी	वृन्दावन श्रीरङ्ग जी के मन्दिर प्रतिष्ठाता	अण्णन्
2– मुकुन्दाचार्य	वसाँव (आराविहार)	अण्णन्
3– रामाचार्य मुनि	पण्ढरपुर (महाराष्ट्र प्र.)	काञ्ची
4– जनार्दन गुरु	रीवाँ मध्य प्रदेश	काञ्ची
5– रामप्रपन्नाचार्य	देवरा (उ0प्र0)	अण्णन्
6– मेघश्यामाचार्य	चित्रकूट (उ0प्र0)	अहोवल
7– परमहंस राजेन्द्र सूरि I	त्रेटपाली (पटना विहार)	अण्णन्
8– फलाहारी स्वामी	श्रीरङ्गम् (द0भा0)	तोताद्रि
9– श्री रामाचार्य I	काशी (उ0प्र0)	अण्णन्
10– तुलाराम शास्त्री I	,, ,, ,,	अण्णन्
11– रघुराज सिंह	रीवाँ ,, मध्यप्रदेश	काञ्ची
12– लक्ष्मीचन्द सेठ I	वृन्दावन विशाल	अण्णन्
13– राधाकिशन सेठ I	श्रीरङ्ग मन्दिर के	,,
14– गोविन्द दास सेठ I	निर्मातागण	,,
15– सुदर्शन शास्त्री	वृन्दावन	,,

16– श्रीशठकोप स्वामी I	वृन्दावन	अण्णन्
17– गोपालाचार्य I	खुरासा (सौराष्ट्र)	तोताद्रि
18– हयग्रीव स्वामी I	वृन्दावन	अण्णन्
19– नारसिंह स्वामी I	गिर्नार पर्वत (म0प्र0)	काञ्ची
20– बलराम स्वामी I	श्री विजयराघव मन्दिर, अयोध्या (उ0प्र0)	अण्णन्
21– वासुदेव शास्त्री I	वियानी (पञ्जाब)	''
22– महावन शास्त्री I	'' ''	''
23– वंशीधर स्वामी I	अमृतसर (पञ्जाब)	''
24– वालमुकुन्द स्वामी	डिडवाना (माड़वार)	तोताद्रि
25– वालमुकुन्द स्वामी	पुष्कर	अहोवल
26– गोविन्दाचार्य I	जम्मू (काश्मीर)	अण्णन्
27– गोविन्दाचार्य I	चन्दौसी (उ0प्र0)	''
28– रघुनाथ शास्त्री I	थाईवाड़ी (बद्री नारायण)	''
29– राघवाचार्य	भेटद्वारका	मेल्कोटा
30– मथुरा प्रपन्न स्वामी I	बद्रीनाथ	अण्णन्
31– राममिश्र स्वामी I	काशी	''
32– कमलनयन शास्त्री I	जूनागढ़ (सौराष्ट)	''
33– विष्वक्सेन स्वामी	वक्सर (विहार)	काञ्ची
34– बलभद्र स्वामी	अयोध्या (उ0 प्र0)	तोताद्रि
35– शलिग्राम स्वामी	बलिया (उ0 प्र0)	''
36– माधव प्रपन्न स्वामी	काशी (उ0 प्र0)	''

द्वितीय प्रवाह

प्रथम अध्याय

श्री बलराम स्वामी जी का अवतरण

''ईश्वर का अवतरण''

अवतरण शब्द का अर्थ होता हे ऊपर से उतर कर नीचे आना। जो उतर कर आते है उसको ही अवतार क जाता है। इस अवतार शब्द से साधारणत: हम लोग ईश्वर का ही अवतरण समझते हैं। वे ही मनुष्य इतर जा जीवों के मध्य में अवतार रूप से आगमन करते हैं। उनके इस अवतार का कारण उनकी इच्छा। वे ''अ (जन्मरहित) होकर भी अपनी इच्छा से बहुत रूप में जन्म ग्रहण करते है। यह कथा वहु प्रकार से श्रुति, राम महाभारत पुराणादि शास्त्र कहते हैं। ''अजायमानो बहुधा विजायते'' (श्रुति)''

अजोऽपिसन्नव्ययात्मा, भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय, सम्भवाम्यात्म मायया ।।'' गीता 4/6।।

उनका इस अवतरण के सङ्कल्प का उद्देश्य धर्म स्थापन है।। उनका धर्म स्थापन होता है धर्म परायण साधु परित्राण में ये साधु विद्वेषी का, साधु के अनिष्टकारी दुष्कृत के दमन में (इसी से गीता–गान करते हैं:-

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ।। गीता 4/8।।

उनके इस अवतार में कोई निर्दिष्ट कालाकाल नहीं है। युग युग में जब धर्म का क्षय एवं पाप की वृ होती है तभी वे अवतार रूप से आविर्भूत होते हैं।

यदा यदा हिं धर्मस्य क्षयोवृद्धिश्च पाप्मन: ।
तदानुभगवानीश, आत्मानं सृजते हरि ।। भा0 9/24/56।।

गीता भी इसी वाक्य को कहता है :–

यदा यदाहि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। गीता 4/7।।

इस अवतार की संख्या निर्णय नहीं की जा सकती। कहीं दश अवतार कहा गया है। और चौबीस अवता कहा गया है। प्रकृत पक्ष में ईश्वर के अवतार असंख्येय हैं। ''अवताराह्यसंख्येया:''। यह अवतार मुख्यत: प्रकार का, प्रथम–स्वयं अवतार उनके अप्राकृत दिव्य विग्रह का स्वयं अवतरण, यथा राम, कृष्ण, नृसिं वामन, वराहादि अवतार। इन समस्त साक्षात् अवतार में अनन्त शक्तिमान्, अनन्त गुण पूर्ण ईश्वर अप

सर्वशक्ति का सर्वगुण का प्रकाश नहीं करते, जो जो अवतार में जिस जिस शक्ति का अथवा गुणों के प्रयोजन होता है केवल उसी को करते हैं। सभी भगवदवतार पूर्ण हैं, सब अवतारों में पूर्णत्व विराजमान है। केवल उनके सङ्कल्पानुगुण एवं प्रयोजनानुगुण इस पूर्णत्व के प्रकाश का तारतम्य मात्र होता है। इस महामूल्य तत्व को हम लोगों को भूलना नहीं चाहिये। इसी लिये शास्त्र का कहना है:– ''पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते''। द्वितीय–ईश्वर की शक्ति का अवतार। किसी विशिष्ट कार्य साधन के लिए ईश्वर अपनी कोई विशिष्ट शक्ति किसी जीव के मध्य में प्रवेश किये रहते हैं। यह असाधारण ऐसी शक्ति सम्पन्न जीव ही ''आवेश अवतार'' नाम से परिगणित है। यथा–वेदव्यास,परशुराम' प्रभृति धर्म संस्थापन के लिए ईश्वर स्वयं अवतरण नहीं भी कर सकते हैं। अधिकांश समय वे अपने नित्य अथवा मुक्त जीवों को प्रेरण करते हैं। ये अति मानव होते हुए भी मानव जगत में अवतरण करते हैं। अवतार पद्वाच्य ये हैं, अति मानुष अवतार ये ही मनुष्य रूप में एवं महाचार्य रूप में ईश्वर कर्त्तृक नियुक्त होकर जीव हित के लिये आत्म नियोग करते हैं।

महापुरुष साधु महात्मा लोग साधारण भाव से मनुष्य पशु पक्षी प्रभृति सब जीवों के कल्याण में ही आत्म नियोग करते हैं। ईश्वर के निर्देश से वे व्यक्तिगत भाव से विशेष विशेष पात्र के प्रति विशेष भाव से कृपा करते रहते हैं। निर्दिष्ट कृपा पात्र के प्रति निर्दिष्ट महापुरुष का आचार्यत्व भगवान् का विधान है। इस विशिष्ट विधान का विषय महापुरुष लोग जानते हैं, एवं तत् निर्दिष्ट जीव को शिष्य रूप में स्वीकार करके उपयोगी ज्ञानोपदेश एवं तदनुगुण अनुष्ठान, ग्रन्थ प्रणयन आदि के द्वारा आत्मोज्जीवन के पथ प्रदर्शक रूप से उनके कल्याण साधन में व्रती होते हैं। इन सब अति मानव आचार्यगणों के मध्य ऐसी शक्ति का अपरूप प्रकाश देखकर निज निज़ अनुभव अनुयायी कोई उनकी भगवान् के साक्षात् रूप में पूजा करते हैं, और कोई कोई वा उन लोगों की भगवत्प्रेरित महापुरुषों में गणना करते हैं। भगवत्कृपा से साधारण बद्ध जीवों के मध्य में भी जो साधन मार्ग में उच्चावस्था लाभ किये हैं वे भी इस जीव हित कार्य में ज्ञाना भाव से इन सब आचार्यो का आनुकूल्य करते रहते हैं।

अवतार तत्व का एक संक्षिप्त दिग्दर्शन दिया गया। जीव के परम कल्याण साधन में यह श्री भगवान् का एक महा कौशल है। इस महा कौशल के मध्य जो कितनी कितनी कुशलता निहित है, वह हम लोगों की धारणा के अतीत है। साधन भजन में अग्रसर होने पर धीरे धीरे इस विषय में उपलब्धि होती रहती है, एवं इस अलौकिक व्यापार में आस्तिक्य बुद्धि आती रहती है। ईश्वर का यह सब अवतार लीला का प्रसङ्ग एवं अति मानव अवतार ग़णों का लीला प्रसंग महापुरुषगणों का जीवनी प्रसङ्ग हम लोगों के अध्यात्म जीवन का परम उपकार करने वाला है। यह सवप्रसङ्ग हम लोग जितना ही अनुशीलन करेंगे, उतना ही हम लोगों के मन की मलीनता अच्छी तरह धुल जायेगी, आस्तिक्य बुद्धि निर्मल रहेगी, उतना ही भगवान की अभिमुखता प्रबल होकर धर्म जीवन व्यतीत करने में हम लोग उद्बुद्ध होंगे। केवल निरवयव शास्त्र ज्ञान आलोचना की अपेक्षा सावयव ईश्वर का अथवा अतिमानव के लीला विषय का अनुशीलन जो धर्मानुष्ठान में हम लोगों को प्रवलतर प्रेरणा देगा यह सर्ववादी सम्मत है वह समझने में हम लोगों को विलम्ब न होगा। स्वयं ईश्वर का अवतार

अवतार विरल होता है, सुतरां इस प्रायश: संघठित नहीं होता, अतिमानव महात्मागणों के अवतार से ईश्वर का साक्षात भगवद् अवतार के सहित प्रत्यक्ष भाव से दर्शन, स्पर्शन क महा सौभाग्य कदाचित कभी सम्भव होता है अति मानव अवतारगण एवं उनके सहचर महापुरुषगण किन्तु अपेक्षाकृत सुलभ हैं। वे मध्य मध्य में हम लोगों का हित करने के लिए हम लोगों के निकट आदर्श सदाचार्य रूप से अवतीर्ण होकर हम लोगों के ही एक जन होकर प्रत्यक्ष भाव से दर्शन स्पर्शन, भाषण दान के द्वारा कृतकत्य करते हैं। उन लोगों का साक्षात् उपदेश श्रवण एवं साक्षात् अनुष्ठान दर्शन और अनुभव हम लोगों के धर्म जीवन का परम उद्दीपक है। और हम लोगों के धर्मानुष्ठान में प्रकृष्ट पथ प्रदर्शक है। उन लोगों के प्रसाद से हम लोग अनायास धर्म सोपान पर आरोहण करने में समर्थ होते हैं। उन लोगों के सहित साक्षात् संश्रव लाभ का परम सौभाग्य जिन्हें नहीं मिला वे भी इन सब महापुरुषगणों की इह लीला के प्रसङ्ग का अध्ययन करने से आलाप, आलोचना से एवं अनुभव से पूत पवित्र होकर धर्म जगत में जो परम लाभवान् होंगे यह सुनिश्चित,अतिसत्य है।

''श्रीबलराम स्वामी''

जिनकी दिव्य लीला के स्मरण में, जिनके पुण्य चरित्र के कीर्त्तन में हम लोग प्रवृत्त हो रहे हैं, वे इसी प्रकार के एक जन अति मानव थे। इन अति मानव की कृपा लाभ से जो लोग धन्य हुए हैं– यह क्षुद्र लेखक उनके मध्य में अन्यतम है। इस सदाचार्य की सन्निधि लाभ कर उनके निकट उपदेश श्रवण, धर्म ग्रन्थ अध्ययन, उनका गम्भीर भाव, एवं उनकी अनुष्ठानावली को प्रत्यक्ष दर्शन करने का परम सौभाग्य लाभ के द्वारा मादृश क्षुद्रव्यक्ति कृतार्थ हुआ है। उनका अमिय जीवन चरित्र लिपिबद्ध करना, उनके अलौकिक अनुष्ठानों का अन्तर्निहित गम्भीर उद्देश्य उद्‌घाटित करना हमारी क्षुद्र शक्ति से वाहर है। जिसकी कृपा से पङ्गु गिरि लङ्घन करता है, मूकवाचाल होता है, अन्धा अच्छी तरह से देखने लगता है, दीन के प्रति उस गुरु गोविन्द की पर कृपा स्मरण करके इस दुष्कर कार्य प्रवृत्त होने का साहस हो रहा है। आत्मशुद्धि के लिए एवं मानव कल्याण के लिए इस दुर्लभ अलौकिक अमिय दिव्य चरित्र आलोचना कर रहा हूँ। इन सब अति मानवों के जन्म का एवं बाल्य लीला का इतिवृत्त प्राय: ही तमसावृत रहता है– यह सत्य तथ्य इस स्थल में अति सत्य है उसका विशेष कारण भी है। हम लोगों के गुरुवर श्री बलराम स्वामी अति बाल्यकाल में ही संसार परित्याग करके साधु जीवन आरम्भ किये थे। सारा जीवन उनका वैराग्य इतना प्रबल था कि पूर्वाश्रम की कथा जानने की प्रार्थना करने पर भी वे कहना नहीं चाहते थे एवं इस प्रकार के प्रश्न से प्रसन्न नहीं होते थे। इसलिए इस प्रकार का प्रश्न करने का कोई भी भक्त साहस नहीं करता था। न्यूनाधिक अर्द्धशताब्दी तक उनकी सेवा में नियुक्त नित्य अनुचर कृपापात्र शिष्य दो जन पुरुष विरक्त पुरुष हमें (श्री भागवताचार्य शास्त्री, श्री राम प्रपन्नाचार्य शास्त्री) निकट जिस प्रकार सुने हैं, एवं हम लोगों के सनिर्वन्ध अनुरोध से वे लोग जिस प्रकार लिपिबद्ध करा दिये हैं, उसी लिपि से ही उनका जन्म वृत्तान्त एवं बाल्य जीवन का एक संक्षिप्त विवरण दिया

जाता है। आर्त्तभक्त के आह्वान से भक्त के घर भगवान का अवतार होता है। दशरथ के कातर आह्वान से श्रीरामचन्द्र का अवतार हुआ। अति आर्त्त देवकी और वसुदेव के आह्वान से श्रीकृष्णचन्द्र का अवतार देवकी के निकट हुआ। आर्त्त देवताओं के आह्वान से त्रिविक्रम वामन देव का अवतार हुआ, आर्त्त प्रह्लाद के वाक्य की सत्यता विधान करने के लिए नृसिंह देव का अवतार स्तम्भ से हुआ। साधकों के जन्म जन्मान्तर की साधना के अनुसार उनका जन्म साधकों के गृह होता है। उसी प्रकार अति मानुष का जन्म भी शुचि एवं श्रीमन्त कुल में शोभनीय कुल में पवित्र परिवेश के मध्य होता रहता है। इन सब महापुरुषों के माता पिता सात्त्विक भाव से युक्त होते हैं। उन लोगों की वृत्ति भी पुण्यमय होती है। उन लोगों के पूतपवित्र आधार से जन्म लेकर आशैशव जात पुण्य परिवेश में लालित पालित होकर इन सब अवतार पुरुषों के सहसात्विक भाव शीघ्र ही विकसित हो उठता है। जीवों के दु:ख का निवारण करना, धर्मग्लानि का विनाश करना, धर्म प्रचार करना, धर्म की रक्षा करना, इस प्रकार जो महत कार्य के लिए उन लोगों का आगमन होता है, उसी कार्य साधन की अनुकूल वृत्ति सकल स्फुटित होने की सुविधा होती है। सिद्ध महापुरुषों का जीवन चरित्र केवल उनके जीवन का एक एक पृथककृत विच्छिन्न विवरण नहीं है। प्रकृतपक्ष में यह सदाचार्य वंश का गुरु परम्परागत पूर्वाचार्यगण का वैराग्य ज्ञान और भक्ति एवं आशीर्वाद से परिपुष्ट उत्तराचार्यो की सम्यक् स्फुटित जीवन लीला का प्रकृष्ट विवरण हैं। इस धारणा से दृढ़ होकर सिद्ध महात्माओं को जीवन लीला विशिष्ट चित्त से अभिनिवेशपूर्वक अध्ययन करना कर्तव्य है।

''जन्म'' – जिस महापुरुष के जीवन चरित्र की आलोचना में हम लोग प्रवृत्त हो रहे हैं, उनके क्षेत्र में भी इस नियम का व्यतिक्रम नहीं हुआ। विहार भोजपुर मण्डल में वर्तमान आरा जिला के अन्तर्गत धमवल ग्राम में (धँउवावा, घमोया गाँव) उनका जन्म हुआ। उनके पितामह का नाम शिवदेव मिश्र था। वे शाडिल्य गोत्रावतंस कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे गाँव के एक जन गणमान्य एवं धर्मप्राण महाशय व्यक्ति थे। उनके एक पुत्र का नाम राम अवतार था। ये राम अवतार एकजन सात्त्विक पुरुष एवं पण्डित थे। धनवान् होते हुए भी स्थानीय लोगों के निकट पण्डित राम अवतार नाम से प्रसिद्ध थे। अतिथि सत्कार में उनका विशेष आग्रह था। पथचारी साधु सन्यासी उनके घर पर आने पर अति आदर के साथ व उन लोगों के सब तरह सत्कार में प्रवृत्त होते। उन लोगों के भोजन शयनादि की व्यवस्था कर देते। श्री बलराम स्वामी, वे इन साधु सेवी सद्बुद्धि, पण्डित रामावतार महाशय के पुत्र थे। इन महापुरुष की गर्भ धारिणी का नाम संग्रह करने में हम लोग समर्थ नहीं हुए। ऐसा कि,उनका, पिता माता का दिया हुवा नाम की भी बहुत दिन तक विशेष अनुसन्धान करने पर भी संग्रह करने में हम लोग समर्थ नही हुए। पश्चात् हम लोग दैव कृपा से,दैव सहयोग से जान पाये कि उनके पूर्वाश्रम का नाम था ''विष्णु देव''। आरा जिला निवासी उनके एक प्राचीन शिष्य श्री वैकुण्ड स्वामी के निकट से हम लोग नाम जानने में सक्षम हुए हैं।

मन में साधारण कौतूहल हो सकता है कि जिसका आदर्श जीवनी प्रसङ्ग आलोचना की जा रही है, उसका नाम ही जाना नहीं गया यह एक अपरूप व्यापार है। इसका कारण अनुधावन करने पर किन्तु इस

अपरूप व्यापार के अलौकिकत्व विषय में अवगत होना कठिन नहीं होगा। श्री स्वामी महाराज के प्रथमावधि वैराग्य इतना तीव्र था कि उनके पूर्वाश्रम का नाम धाम आत्मीय स्वजन की कथा किसी के जिज्ञासा करने पर वे अप्रसन्न होते एवं प्रश्न का कोई उत्तर नहीं करते। उपरन्तु वे कभी भी शास्त्र की विधि का अतिक्रमण नहीं करते। शास्त्र कहता है कि – 'एकान्ती व्यय देष्टव्य नैवग्रामकुलादिभि:' श्री स्वामी जी महाराज का प्रथमावधि वैराग्य इतना तीव्र था कि उनके एक निष्ठ प्रपन्न पुरुष को पूर्वाश्रमीय नाम धाम कुल से आह्वान नहीं करना। इस शास्त्र विधि को भी वे अक्षर अक्षर पालन करते। उनका यह सब नियम इतना कठोर था कि उनके पूर्वाश्रम का नाम उनके अन्तरङ्ग सहचर सेवक शिष्य वर्ग के निकट भी अविदित था। इसी कारण इस व्यापार का अलौकिकत्व है। सम्वत् 1899 (1843 खृष्टाब्द) चैत्र मास शुक्ल एकादशी तिथि में अश्लेषा नक्षत्र को पवित्र करके भविष्य आचार्यवर्य ''विष्णुदेव'' जन्म ग्रहण किये। हम लोगों की धारणा है अश्लेषा एवं मघा ये दोनों नक्षत्र मङ्गल सूचक नहीं है। साधारण नियम अनुयायी यह धारणा प्रचलित होने पर भी विशेष नियम में इस धारणा का स्थान नहीं है। साधारण और विशेष शास्त्र के नियम में अनेक पार्थक्य है साधारण नियम से तृतीया, चतुर्थी, एवं अष्टमी, नवमी प्रभृति तिथि के मध्य उत्कर्ष का विशेष प्रभेद नहीं है,एकादशी, पूर्णिमा तिथि का उत्कर्ष अधिक है। विशेष नियम से जब अष्टमी तिथि श्रीकृष्ण चन्द्र के आविर्भाव के सहित युक्त होती है, एवं जब नवमी तिथि श्री रामचन्द्र के आविर्भाव के सहित युक्त होती है तब तब यह तिथि पवित्र रूप धारण करती है। उसी प्रकार रोहिणी नक्षत्र का जब श्रीकृष्ण के जन्म के सहित सम्बन्ध होता है तब उस रोहिणी का ही उत्कर्ष होता है साधारण शास्त्र कहता है कि – तीर्थ, पवित्र स्थल है, साधुगण का तीर्थ वास ही नियम है। विशेष शास्त्र कहता है कि – साधुगण तीर्थ में निवास करते हैं इसी लिए तीर्थ का तीर्थत्व और पावनत्व है। वे ही ''तीर्थं कुर्वन्ति तीर्थानि''। साधारण शास्त्र कहता है कि धर्म, कर्म, अनुष्ठान में पवित्र देश एवं शुभलग्न प्रयोजन है, विशेष शास्त्र कहता है– कि भगवान के निकट शरणागत का अनुष्ठान करने के लिए शुभ देशकाल का कोई प्रयोजन नहीं है। जिस किसी देश में जिस किसी काल में भगवत् शरणागति रूप महत् कर्म का अनुष्ठान किया जाता है वही परमशुभ देश, एवं काल है। विभीषण जब रामचन्द्र की शरणागति करते हैं, तब इस शुभ देशकाल के विचार में रामायण, गान करता है कि ''स एव देशकालश्च'– अर्थात् यद्यपि साधारण नियमानुसार से युद्ध के प्राक काल में शैन्य शिविर में राक्षस विभीषण की शरणागति अविधि है, तथापि विशेष शास्त्र कहता है कि शरणागति ऐसा शुभकार्य है कि जिस देश में वा जिस क्षण में यह अनुष्ठित होता है, वही देश वही क्षण ही पवित्र कहकर परिगणित होता है। उसी प्रकार अति मानव महापुरुषगण जीवों के परम कल्याण विधान के लिए जिस देश में जिस तिथि में जिस नक्षत्र में जन्म ग्रहण करें वही परम मङ्गल सूचक है। यही विशेष नियम है विशेष शास्त्र है।

उनके लड़कपन की कथा अल्प ही जानी गई है। बाल्य के प्रारम्भ में ही वे अपने ग्राम में एक प्राथमिक पाठशाला में विद्या शिक्षा आरम्भ किये। शिशुमति होने पर भी प्रथम से ही वे नियम पूर्वक पाठशाला में जाकर

मनोयोग के साथ विद्या का अभ्यास करना आरम्भ किये। उनका शान्त स्वभाव और विद्या शिक्षा में आग्रह देखकर शिक्षक महाशय स्नेह पूर्वक उनको शिक्षा देने लगे। इसके परिणाम से यह बालक शीघ्र विद्या शिक्षा में अग्रसर होने लगा। अति बाल्यकाल से ही जो सब साधु–सन्त इनके घर अतिथि रूप में आते, इस शिशु बालक का उनके निकट रहना प्रसन्न करना स्वभाव था वे लोग भी छोटे लड़के को स्नेह की दृष्टि से देखते। अतिबाल्य काल में वे बीच बीच में मातुलालय (मामा के घर) जाकर वास करते/ पिता के घर से 2,3 कोश उनके मामा का घर था, गाँव का नाम था ''मलउर'' उनके मामा का नाम था भागीरथी मिश्र। इस ग्राम सन्निकट में गुण्डी नामक एक बर्द्धिष्णु ग्राम है। यह एक वैष्णव प्रधान ग्राम है, कई विष्णु मन्दिर में आज भी अर्चा विग्रह नारायण अथवा रामचन्द्र की नियमित सेवा पूजा चली आ रही है। इस गुण्डी ग्राम में विष्णु चित्त नामक इस बालक के एक आत्मीय थे। वे श्री वैष्णव थे। उनकी पत्नी का नाम रामानुज दासी था। इस बालक की कथावार्ता और चाल–चलन से मुग्ध होकर वे अतिशय स्नेह करतीं। एवं यह बालक जब तक अपने मामा के घर रहता, प्रायः ही इसको अपने घर में ले जाकर राखतीं एवं विशेष आदर यत्न करतीं। इस सात्त्विक वैष्णव दम्पती के संस्पर्श से ही इस बालक के सुप्त धर्म भाव उन्मेष आरम्भ होता रहा। उन लोगों का भजन पूजन सात्त्विक भोजन आचार अनुष्ठान इस बालक के ह्रदय में रेखा पात करना आरम्भ किया। मूल पाण्डे– इस बालक के मामा भागीरथी मिश्र के एक बाल्य बन्धु थे, उनका नाम मूल पाण्डे था। इस मूल पाण्डे का परिवार वर्ग आज भी मलउर ग्राम में वास करता है। इन लोगों के घर में अयोध्यावासी विरक्त साधु श्री धरणीधर स्वामी बीच बीच में आकर रहते हैं। धरणीधर स्वामी का उस समय आयु 87 वर्ष का था। मूल पाण्डे के साथ इनका साक्षात् परिचय था। उनके निकट धरणीधर स्वामी इस बालक के बाल्य जीवन का उक्त अंश श्रवण किये हैं। हम लोग उन्हीं के निकट से इस तथ्य को संग्रह किये हैं।

''पितृ वियोग तदनन्तर स्वप्ननिर्देश 11 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग''

विद्यारम्भ के कई एक वर्ष बाद ही इस बालक विष्णु देव का पितृ वियोग हुआ। इस घटना से उनके मन में भावान्तर दिखाई दिया। संसार की अनित्यता वे समझना आरम्भ किये। उनके 11 वर्ष की अवस्था में उनके ग्राम में वसन्त (चेचक) रोग का प्रादुर्भाव हुआ एवं अतिशीघ्र महामारी रूप से भयङ्कर मूर्ति धारण किया। ऐसे समय एक दिन रात्रि में वे स्वप्न देखे कि एक दिव्य मूर्ति महापुरुष उनके निकट आकर स्नेह कण्ठ से कह रहे हैं – कि बेटा! इस ग्राम को छोड़कर तुम अभी चले जाओ, नहीं तो इस महामारी से परित्राण नहीं पाओगे, हमारे इस वाक्य को अमान्य नहीं करना संसार का बहुत कल्याण साधन के लिए एवं बहुत मनुष्यों के उद्धार के लिए तुम्हारा जन्म है – यह बात मन में रखना, एवं इसी उद्देश्य से नूतन जीवन–यात्रा आरम्भ करो। इतना कहकर साधु अन्तर्हित हो गये। वे स्वप्न के इस निर्देश को दैव निर्देश समझे। यह दैवादेश शिरोधार्य करके वे

गृह त्याग में कृतसङ्कल्प हुए वे अपनी माता, आत्मीय स्वजन बन्धु बान्धव, गृह वित्त आदि की माया विसर्जन देकर मात्र 11 वर्ष की उम्र में सहायक सम्बलहीन निःस्वअवस्था में अर्थादि कोई द्रव्य संग्रह बिना ही दूसरे दिन एक वस्त्र से अकेले बाहिर हो गये। और एक अजाना भविष्य के गर्भ में कूद पड़े। अति बाल्यावस्था में पिता वियोग, उसके कुछ दिन बाद ही स्वप्न और स्वप्न मैं साधु निर्देश इन दो विलक्षण घटना द्वारा ही उनके वैराग्य का उदय एवं उनका अत्युज्ज्वल धर्म जीवन का सूत्रपात हुआ। इस समय उनके मन की वास्तविक अवस्था क्या थी उसे जानने का कोई भी उपाय नहीं है।

''तत्कालीन मनोभाव''

यद्यपि इस अनिर्दिष्ट यात्रा के प्राक्काल में उनके मानसिक अवस्था की कथा उनके मुख से कोई नहीं श्रवण किया तथापि इस यात्रा के परवर्ती आचार, अनुष्ठान से उनका मनोगत भाव अनुमान किया जाता है। शिशु काल में गुण्डी ग्राम में शुचिमान् वैष्णव दम्पती के संस्पर्श से उनके जिस धर्म भाव का उन्मेष आरम्भ हुआ था वह इस समय से ही जो धीरे धीरे क्रमशः उनके हृदय में प्रकाश लाभ कर तथा, एवं महापुरुष के स्वप्नादेश से यह धर्मभाव जो क्षण काल में प्रदीप्त हो उठा था, उसका अनुमान करना कठिन नहीं है। उनके गृह त्याग के वाद की घटनाएँ इस अनुमान को सम्पूर्ण समर्थन करती हैं। ये सब घटना विश्लेषण करने पर ही हम लोग अच्छी तरह से समझ सकते हैं कि इस समय उनके मानसिक वैराग्य की तीव्रता का परिमाण कितना अधिक था, धर्म के अनुसन्धान का आग्रह कितना प्रबल था।

गृह त्याग करके पश्चिम की तरफ रवाना हुए। वे सहाय सम्बलहीन, निःस्व, बालक अकेले पैदल ही चलने लगे। कई एक घण्टा के बाद जगदीशपुर पहुँचे। एवं वहाँ रात्रि वास करके दूसरे दिन बक्सर नगर में उपनीत हुए, किन्तु कोलाहल पूर्णघन लोकालय यह शहर उनके मनः पूत नहीं हुआ।

''गङ्गा तट पर चरित्रवन श्री वैष्णव आश्रम में 3 दिन यापन''

वहाँ से ताड़का की वध भूमि बक्सर के थोड़ी ही दूर पर चरित्रवन नामक अपेक्षाकृत निर्जन स्थान में गमन किये। वहाँ गङ्गा जी के तट पर फलाशी नामक स्थान में विशिष्ट वैष्णव आश्रम था। उसमें 3 दिन अवस्थान किये। आश्रम में रहने वाले महात्मा लोग इस बालक के अद्भुत वैराग्य और धर्मभाव को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उनके इस साधु संकल्प में उत्साह देने लगे, यही उनका प्रथम विरक्त साधु संग है। इन लोगों का सत्सङ्ग पाकर, सदुपदेश सुनकर, सदनुष्ठान देखकर इस वैराग्यवान् बालक की धर्म पिपासा अभिवृद्ध हुई। ज्ञानान्वेषण में उनकी लालासा तीव्र हो उठी। चरित्रवन में तीन दिन रहने के बाद वे वहाँ के साधुओं से अनुमति लेकर वे चरित्रवन से पैदल चलकर काशी धाम चले गये।

''काशी आगमन, और व्याकरण अध्ययन''

काशी में पहुँच कर तीन चार दिन के मध्य ही वैयाकरणिक राम स्वामी नामक पण्डित के पास संस्कृत

व्याकरण अध्ययन करने लगे। वे समझे थे कि धर्म विषयक ज्ञान अर्जन करने में आगे संस्कृत ज्ञान भण्डार से संस्कृत ज्ञान का अर्जन करना चाहिए, संस्कृत भाषा ज्ञान के लिए व्याकरण के ज्ञान का विशेष प्रयोजन होता है। इसी कारण वे पहले व्याकरण के अध्ययन में मनो निवेश किये। अध्ययन करते थे साथ ही साथ अवसर पाने पर साधुसङ्ग भी करते थे एवं उन लोगों का उपदेश श्रवण करते थे। इसी समय से ही परिमित भोजन करने का एवं अल्पकाल मात्र शयन करने का अभ्यास करने लगे। उनका अन्य कोई कार्य नहीं था। इस कई एक घण्टा शयन काल को छोड़ कर अवशिष्ट काल वे अध्ययन एवं साधुसङ्ग में यापन करते। यही उनकी साधना का आरम्भ है। इस कठोर साधना के द्वारा अति अल्पकाल के मध्य में ही व्याकरण के विषय में एवं साधु मार्ग के विषय में एक अन्तर्दृष्टि लाभ किये। कई एक मास इसी भाव से व्यतीत कर माघ मास के प्रारम्भ में वे प्रयाग (इलाहाबाद) चले गये।

''प्रयाग में आगमन, और कल्पवास पालन''

प्रयाग में गङ्गा जी के तट पर माघ मास में कल्पवास किये। इस कल्पवास के समय वे श्री वैष्णव तुलाराम स्वामी नामक एक शुद्ध महात्मा के बाड़ा में अवस्थान किये। यहाँ दिन रात्रि साधु परिवेश साधु सङ्ग, सदालोचना, और सदनुष्ठान से उनके अन्तर में जो एक धर्म का चित्र परिस्फुट हो उठा उसे कहना ही अत्युक्ति है। वे जो उस समय प्रकृत धर्म मार्ग का वास्तव रूप से अवलम्बन करने के लिए किस प्रकार से व्याकुल हो गये, पागल की तरह अधीर हो गये, उसे उनके परवर्ती आचरण के द्वारा स्पष्ट समझा जा सकता है।

''अयोध्या धाम में आगमन''

माघ मास के अन्त में प्रयाग का कल्पवास समाप्त होते ही वे श्रीरामचन्द्र की जन्मभूमि अयोध्या धाम जाने के उद्देश्य से प्रयाग से पैदल ही बाहर हो गये। वे रास्ते में भृगु क्षेत्र, बलिया, आजमगढ़, इन स्थलों में एक एक दिन अवस्थान करते हुए अयोध्यापुरी पहुँचे। दिव्य देश श्री अयोध्या धाम में बहुत मठ मन्दिर, बहुत आश्रम, एवं अखाड़ा विद्यमान हैं। बहुत ज्ञानीगुणी, भक्त एवं साधु सन्तों का निवास है एकादशद्वादश वर्षीय बालक एकाएक घर से निकलकर आहार निद्रा प्रायः त्यागकर बराबर साधु संग साधु उपदेश श्रवण में, निरन्तर शास्त्र अध्ययन में 6 मास अतिवाहित करके पूर्ण वैराग्यवान् हो गये।

''सद्गुरु के सन्धान में तीव्र आकांक्षा, और सर्वत्र अन्वेषण''

इस समय वे अच्छी तरह समझ गये कि उज्जीवन के लिए सन्मार्ग प्रदर्शक सद्गुरु के चरण का समाश्रयण करना एकान्त प्रयोजन है वे अच्छी तरह उपलब्धि किये कि सदाचार्य की कृपा के भिन्न उद्धार का कोई अन्य उपाय नहीं है। इस अयोध्या धाम में वे आकर ज्ञान एवं अनुष्ठान के सहित नियमित कठोर साधना करने लगे, एवं ज्ञान, भक्ति–वैराग्यपूर्ण सदाचार्य का अन्वेषण करने लगे। बहु अन्वेषण करने पर भी उन्हें अपने मनोमत दीक्षा ग्रहण के उपयुक्त सद्गुरु का सन्धान नहीं मिला। इस समय वे वहाँ 6 मास काल अवस्थान किये

थे। यहाँ अपना उद्देश्य सफल नहीं हो रहा है, देखकर सद्गुरु के पाने की तीव्र आकांक्षा को लेकर वे अयो से बद्रीनारायण धाम के अभिमुख यात्रा किये। अयोध्या से बद्रीनारायण न्यूनाधिक 6 सौ मील का दुर्गम पथ

द्वादश वर्षीय यह किशोर बालक वित्तहीन –सहाय –सम्बलहीन अवस्था में यदृच्छालब्ध फल मूल अवलम्बन कर तीव्र वैराग्य अधिकारी होकर परम उत्तारक सदाचार्य पाने के लिए दु:सह उद्वेग छाती में ध कर सुदूर दुर्गम एक अज्ञान दुर्गम महातीर्थ के अभिमुख पैदल यात्रा किया। यद्यपि परवर्ती काल में कभी निज शिष्य के निकट अपने उस समय के मनोभाव की कथाव्यक्त नहीं किये, तथापि उनके इस सम बाह्विक अनुष्ठान एवं आचरण मनोनिवेश के साथ पर्यालोचन और विश्लेषण करने पर उनका अ असाधारण दुर्लभ अलौकिक मानसिक अवस्था का विषय हम लोग उपलब्ध कर सकते है, इस प्रकार असाधारण मानसिक भाव लेकर निरन्तर भगवद्विषय का अनुसन्धान करते करते पैदल पाँच सौ मील ज्यादा पथ अतिक्रमण करके बद्री नारायण धाम के द्वाररूपी हरिद्वार में उपनीत हुए। दो एक दिन के हरिद्वार से ऋषीकेश गमन किये, एवं वहाँ से बद्रीनारायणगामी पार्वत्य पथ अवलम्बन किये। यथा क्रम लक्ष झूला, देव प्रयाग श्रीनगर, कर्ण प्रयाग, नन्द प्रयाग, लालसाँगा, जोशी मठ, विष्णु प्रयाग हनुमानचट्टी सभी दुर्गम स्थानों पर कुछ कुछ विश्राम करके अथवा कहीं पर रात्रि यापन करके, मात्र एक कम्बल अवलम्बन से इस बर्फ से ढके हुए पार्वत्य पथ का अतिक्रमण करके चिरवाञ्छित वदरिकाश्रम में पहुँच ह्रषीकेश तक के रास्ते में कुछ फल मूल पाया जाता था किन्तु इसके बाद के रास्ते में फल मूल के अभाव कारण यत्किञ्चित् मिला हुआ केवल दुग्ध पान ही उनके जीवन धारण का अवलम्ब था। वदरिकाश्रम पहुँच अपने अभीष्ट देव श्री बद्रीनारायण भगवान का दर्शन करके कृत कृत्य हो गये। बदरिकाश्रम के पारिपार्श्वि मुख्य मुख्य स्थानों का दर्शन किये एवं केवल मात्र दुग्ध और फलाहारी होकर साधु सङ्ग में दिनातिपात क लगे। यहाँ बहुत अन्वेषण करने पर भी अपने सदाचार्य के लाभ में कृतकार्य नहीं हुए। उनके किसी किसी प्राचे शिष्य के निकट सुना हूँ कि बद्रीनारायण से उनकी लौटने की इच्छा नहीं थी किन्तु अत्यधिक शीत एवं उ पास शीत वस्त्र का अभाव था, इस कारण शारीरिक पीड़ा होती थी एवं सद्गुरु लाभ में विफल मनोरथ हु इसी कारण से लौटने के लिए बाध्य हुए। हम लोगों की समझ में आता है कि यह सब कारण वाह्यिक का था। जो भविष्यत् में अगणित मानवों का कल्याण साधन करेंगे,उनके द्वारा बहुत मुमुक्षु नरनारियों का भग उद्धार करायेंगे, उनको वे दुर्गम निर्जन पार्वत्य बद्रीनाथ धाम में क्यों आवद्धरुप से रखेंगे। मङ्गलमय भग अपने इस महान उद्देश्य की सिद्धि के लिए मनुष्यों के परममङ्गल साधन के लिए लोकालय में फिर उन इसीलिए तदनुगुण प्रवृत्ति दिये। हम लोगों की भावना जो अमूलक नहीं है यह उनके परवर्ती जीवनचरित्र प्रति पन्न हुआ है।

द्वितीय प्रवाह
द्वितीय अध्याय

''सद्गुरु का सन्धान और दीक्षा लाभ''
''सद्गुरु लाभ में विफल मनोरथ होकर अयोध्या में प्रत्यावर्त्तन''

बद्रीनाथ में एक मास काल आचार और निष्ठा के सहित यापन करके श्री बलराम स्वामी फिर वहाँ से पैदल चलकर अयोध्या धाम में लौट आये। सदा सर्वदा ही आदर्श सद्गुरु के निकट दीक्षा लाभ की उत्कट उत्कण्ठा अन्तर में विद्यमान है एवं उद्देश्य की सिद्धि के लिए अत्यधिक अनुसन्धान उनको एक दिव्य देश से दूसरे दिव्य देश में लेकर भ्रमण करा रहा है। इस बार अयोध्या धाम में एक मास काल निवास किये एवं अनुसन्धान करने पर भी अपनी आन्तरिक मनोवाञ्छा पूर्ण नहीं हो रही है ऐसा देखकर तीर्थराज प्रयाग चले गये। वहाँ गङ्गा,यमुना एवं सरस्वती के सङ्गम स्थल पर त्रिवेणी के किनारे अपना आसन स्थापन किये एवं सद्गुर के अन्वेषण तथा सत्सङ्ग में कालातिपात करने लगे। वहाँ भी उनकी हार्दिक आत्यन्तिक वासना चरितार्थ नहीं हुई--देख कर वे अत्यन्त अधीर हो पड़े। प्रयाग में पन्द्रह बीस दिन अवस्थान करने के बाद अपने अभीष्ट पूर्ति के लिए वे श्री गोविन्द के चरण में ऐकान्तिक भाव से प्रार्थना करते करते पैदल सुदूर वृन्दावन के अभिमुख यात्रा किये। इस सुदीर्घ पाँच सौ मील पथ में सामान्य मात्र उपलब्ध फल मूल का भोजन ही उनके देह का धारक था। श्री भागवताचार्य शास्त्री, श्रीरामप्रपन्नाचार्य शास्त्री, श्री पराङ्कुश शास्त्री आदि अपने प्राचीन शिष्यों की प्रार्थना से वे इस पैदल यात्रा के अवस्था की कथा बाद में उनके निकट कुछ कुछ कहे थे। यह विषय उनके निकट सुनने का सौभाग्य हम लोगों को मिला था। उन लोगों के निकट जो सुने हैं उसका सार तात्पर्य लिखा जा रहा है :– ''प्रयाग से वृन्दावन के मार्ग के बीच में आपको फलहार आदि की कठिनाई पड़ती रही होगी, क्योंकि आप बहुत ही छोटे बालक थे और माँगने याचने में नितान्त असमर्थ थे। आप कहा करते थे कि हम स्वतः ही याचना नहीं करते थे। जो कोई स्वतः बुलाकर फल या गुड़ दे देता उसी से जीवन व्यतीत करते हुए हम मथुरा धाम में पहुँच गये।'' अब वे चौदहवें वर्ष में पदार्पण किये हैं न्यूनाधिक दो वर्ष का समय आत्यन्तिक साधन और अनुष्ठान के द्वारा उनके तपस्या से दुर्वल शरीर में एक दिव्य भाव का प्रकाश प्रस्फुटित होने लगा।

''काशी प्रयाग मथुरा परिभ्रमण''

उनके मथुरा में पहुँचने पर अल्पवयस्क इस बालक के देह में, दिव्य भाव, अपूर्व वैराग्य और भक्ति के दर्शन से मथुरावासी रामानन्दीय परम वैष्णव रामानुज सम्प्रदायाभिमानी साधुअग्रेसर जयरामदास जी महाराज अपने आश्रम श्री यमुना बाग सदर स्थान में उनको आदरपूर्वक रहने का स्थान दिये। उस जगह अल्पदिन रहने

के बाद वे श्री जयरामदास जी की आज्ञा लेकर गिरिराज श्री गोवर्द्धन चले गये। (श्रीगोवर्द्धन में यतिपुरा ना
प्रदेश श्री वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्ध योगिराज श्रीनाथमुनि का योग सिद्धि का स्थल है।

''श्री गोवर्द्धन आगमन यतिपुरा''

वहाँ श्रीनाथमुनि एक बड़ी गुफा में अष्टम अथवा नवम शतब्दी में योग सिद्ध हुए थे। तब से यह जन
यतिपुरा श्री वैष्णवों का एक पीठ स्थान हुआ। बहुत विरक्त वैष्णव इस स्थान में रहकर साधन भजन करते
ये प्रायः सभी अशेष वैराग्य के आधार परिपक्व ज्ञान और प्रेम भक्ति के अधिकारी थे। एवं तदनुगुण अनुष्ठा
आदर्श पुरुष थे। यतिपुरा में इसी स्थान पर ही श्री वैष्णव सम्प्रदाय की गोवर्द्धन गद्दी अवस्थित है। वहाँ पर
वाले श्री वैष्णवगण गोवर्द्धन गद्दी के ही अन्तर्भुक्त थे। मथुरा मण्डल के साधु महात्मा मात्र ही इस गोवर्द्धन
के प्रति आन्तरिक गम्भीर श्रद्धा भक्ति पोषण करते हैं। मथुरा में रहने के समय में गोवर्द्धन गद्दी की महिमा
सुनकर प्रलुब्ध होकर यह किशोर बालक मथुरा से गोवर्द्धन में जाकर यतिपुरा में वास करने लगे। गोवर्द्धन
के तत्कालीन अधिपति श्री 1008 रङ्गाचार्य स्वामी जी थे। वे उस समय अपने निर्मित भारत प्रसिद्ध वृन्दावन
श्री रङ्गनाथ जी के मन्दिर में प्रायशः ही रहा करते। वे उस समय मथुरा मण्डल के आदर्श सिद्ध परम वै
थे। गोवर्द्धन परिक्रमा के समय भारत वर्ष के नाना स्थानों से बहुत साधु सन्यासी योग देते थे। वे सभी वृन्दा
में श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी के दर्शन से मुग्ध हो जाते। उनके अगाध ज्ञान, भक्ति, वैराग्य एवं अनुष्ठान
अनुभव से कृत कृत्य होते।

'' श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी का साक्षात् लाभ, और तत्कर्त्तृक आकृष्ट होना''

परिक्रमा निरत इन महात्माओं के निकट वृन्दावन के सिद्ध अलौकिक श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी महा
की अद्भुत गुणराशि एवं अमित प्रभाव की कथा क्रमागत सुनकर उनके दर्शन करने की तीव्र आकांक्षा
गोवर्द्धन से वृन्दावन आकर ज्ञान गुदरी के सन्निकट अपलाचार्य जी के कुञ्ज में निवास करने लगे। अ
श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी सर्वदा ही आचार्य निष्ठ भक्त और शिष्य गोष्ठी के द्वारा परिवेष्टित रहते। दूर से
के द्वारा ही उज्जीवनकामी यह किशोर बालक उनके प्रति अनुरक्त हुए। वे स्वामी जी महाराज के सहित सा
परिचय के लिए अत्यन्त व्यग्र हो गये, एवं सुयोग अनुसन्धान करने लगे। इस किशोर बाल की अद्भुत
और वैराग्य से अनेक श्रेष्ठ वैष्णवों की दृष्टि उनके ऊपर पड़ी। वे बालक का स्नेह आदर करने लगे।
एकान्त आग्रह से ये वैष्णवगण एक शुभ मुहूर्त्त में उनको श्री रङ्गदेशिक स्वामी की सन्निधि में उपस्थित
इतने अल्पवयस में उनका इस प्रकार वैराग्य,भगवत प्रेम, भजन निष्ठा एवं अनुष्ठान देखने से श्री रङ्गदे
स्वतः अत्यन्त सन्तुष्ट हुए एवं उनको नित्य अपने कालक्षेप में भी योगदान करने की अनुमति दिये।
पिपासु बालक भी कृत कृत्य होकर अति हर्ष के साथ योगदान करने लगे। स्वामी जी का सान्निध्य
प्रतिदिन जितना ही उनकी बहुविधि गुणावली का अवलोकन करते हैं, जितना ही उनका औदार्य,
असाधारण पाण्डित्य, अपरिमित ज्ञान और भक्ति देखते हैं, एवं उनका अनुष्ठान शिष्यगणों के प्रति

श्रीमते रामानुजाय नमः



वाधूलवंशकलशाम्बुधिपूर्णचन्द्रं
श्री श्रीनिवासगुरुवर्य्यपदाब्जभृङ्गम् ।
श्रीवाससूरितनयं विनयोज्ज्वलन्तं
श्री रङ्गदेशिकमहं शरणं प्रपद्ये ॥



अभिमान आदि अलौकिक गुणगणों का अनुभव करते हैं ये किशोर बालक उतना ही भीतर भीतर उनको अपने आचार्य रूप में स्वीकार करने लगे। अपने चिर अभीक्षित धन को समीप में पाकर उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी भी इस बालक का तीव्र वैराग्य, ज्ञानार्जन और साधन भजन में दृढ़ निष्ठा देखकर उसके प्रति आकृष्ट होने लगे। भगवान की इच्छा से उभय पक्ष में ही उपयुक्त क्षेत्र प्रस्तुत हो गया। इस भक्तिमान् वैराग्यवान् बालक के प्रति स्वामी जी महाराज के ज्ञानी और गुणी शिष्य वर्गो और अनुचरवर्गो की स्नेह प्रीति अभिवृद्धि होने लगी। यह किशोर बालक इन सब भक्त गोष्ठी की सहायता से अपनी मनोवासना स्वामी जी के निकट निवेदन किये। स्वामी जी भी आनन्द पूर्वक उनको समाश्रित करनेके लिए स्वीकृत हुए।

''श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी कर्त्तृक दीक्षादान''

1859 रवृष्टाब्द में सोलह वर्ष की अवस्था में शुभ दिन शुभ लग्न में आदर्श आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज पञ्च संस्कार से संस्कृत कर के दीक्षादान कर इस बालक की चिर पुष्ट तीव्र आकांक्षा पूर्ण किये। इस बालक शिष्य का नाम श्री बलराम रामानुजदास राखे। पञ्च संस्कार से पहले जो गार्हस्थ्य नाम रहता है, उसका प्रथम अक्षर लेकर ही पञ्च संस्कार के समय दीक्षा गुरुकर्त्तृक नाम भगवतभागवत सम्बन्धी उपयुक्त नाम से शिष्य का नामकरण होता है यही श्री वैष्णवगणों की शास्त्र प्रचलित चिर प्रथा है। बलराम रामानुज दास नाम से यह निश्चय कहा जा सकता है उनका पूर्वाश्रम नाम के पहला अक्षर ''व'' था। इसके पहले कहा गया कि इनका गृहाश्रम का नाम विष्णु देव था। बालक बलराम भी सद्‌गुरु के चरण में समाश्रित होकर जन्म सफल किये। इस समय से आदर्श सद्‌गुरु श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी कर्त्तृक इस नव दीक्षित बालक का नूतन नाम, नूतन धाम, नूतन जीवन आरम्भ हुआ। ब्राह्मणगण को द्विज कहा जाता है अर्थात् वे लोग उपनयन के समय द्वितीय जन्म लाभ करते हैं। उपनयन के यज्ञोपवीत धारण करने के बाद ही वेदादि शास्त्र अध्ययन करने का अधिकारी होता है इसीलिए उसी समय से ही उन लोगों का प्रकृत जन्म लाभ होता है। शास्त्र के अध्ययन का चरम उद्देश्य संसार से मुक्ति लाभ करने के उपयोगी ज्ञान का अर्जन करना है 'सा विद्या या विमोक्षये।'' उसी तरह जितने दिन तक मानव अज्ञान अन्धकार में डूबा रहता है उतने दिन तक शास्त्र उन लोगों को ''असत्‌कला'' नाम से आख्यात करते हैं, अर्थात् उतने दिन तक उन लोगों का अस्तित्व नहीं रहने के ही समान है? अर्थात् असत कल्प के समान है मुमुक्षु पुरुष सद्‌गुरु का चरण आश्रय करके दीक्षा लाभ के बाद वे सतकल्प नाम से कहे जाते हैं। अर्थात् तभी उन लोगों का प्रकृत विशिष्ट जन्म लाभ होता है जिसके द्वारा मनुष्य जन्म का प्रकृत उद्देश्य सफल करना सुगम हो जाता है। मनुष्य देह अवहेलना से काटने के लिए नहीं है। यह दुर्लभ मानव जन्म संसार सागर उत्तीर्ण होने की दृढ़ नौका है। इसीलिए शास्त्र कहता है :–

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभम्,
प्लवंसुकल्पं गुरुकर्ण धारम्।। भागवत 11।20। 17।।

इस परमार्थ साधन के लिए चाहिये साधु सङ्ग गुरु उपदेश, एवं हरिभजन :-

दुर्लभ मानव जनमसत्संगे तरय भवसिन्धुरे।।

मानव कल्याण के लिए ईश्वर प्रेरित दिव्य पुरुषगण प्रायशः साधारण मानव की तरह हम लोगों के मध्य आविर्भूत होते हैं। साधारण भाव से लड़को के सङ्ग खेला घूला करते हैं। किन्तु बीच बीच में उन लोगों की बुद्धिवृत्ति एवं आचरण में एक वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है। वयोवृद्धि के साथ-साथ यह अलौकिक वैशिष्ट्य नाना दिक् से प्रतिभात् होता रहता है। साधारण परिवेश के मध्य वे लोग वर्द्धित होने पर भी उन लोगों के मध्य अनेक असाधारण घटनायें संघटित होती देखी जाती हैं। इन घटनाओं के द्वारा ही दिव्य पुरुषगणों की जीवन धारा एक निर्दिष्ट मार्ग में प्रवाहित होती रहती हैं। आपाततः दृष्टि में ये सब घटनाएँ आकस्मिक हैं ऐसा मनः होते हुए भी, निविष्ट चित्त से चिन्ता करके प्रतिपन्न होता है कि ये सब घटनाएँ भगवद् अभिप्रेत हैं एवं उनके पूर्व परिकल्पित हैं।

''दीक्षा पूर्व कर्म धारा का विश्लेषण''

शिशु काल में यादृच्छिक भाव में साधु सङ्ग लाभ, शिशु सुलभ सेवा के द्वारा उन लोगों का सन्तो विधान एवं कृपा लाभ अतिवाल्य काल से ही लोक गोचर के अन्तराल में धीरे धीरे वैराग्य एवं धर्म बुद्धि का उदय, स्वप्न में दैवादेश से मात्र 11 वर्ष की अवस्था में निःस्व असहाय अवस्था में गृह त्याग, यह सब हुआ दिव्य पुरुष श्रीबलराम स्वामी के धर्म जीवन का <u>प्रथम पर्याय</u>।

गृह त्याग के बाद से ही फलमूल आहार, क्रमागत साधु संग के लिए व्याकुलता, ज्ञानार्जन का अद उत्साह और अध्यवसाय शास्त्राभ्यास साधुओं का उपदेश श्रवण और मनन साधुओं का अनुष्ठान दर्शन अ अनुकरण,यह सब हुआ <u>द्वितीय पर्याय</u>। इसके फल से तीव्र वैराग्य का उदय, ज्ञान और भक्ति का विकास, सद्‌गुरु लाभ की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हुई। इस सद्‌गुरु के अन्वेषण में आरा से सुदूर बद्री नाथ धाम तक आकुल होकर एकाधिकवार पैदल अविश्रान्त भाव से गमनागमन, दो वर्ष बाद गिरि गोवर्द्धन में सद्‌गुरु सन्धान लाभ एवं वृन्दावन में आदर्श आचार्य रङ्गदेशिक स्वामी जी के चरण में समाश्रयण एवं दीक्षा लाभ-य सब उनके जीवन का <u>तृतीय पर्याय</u> हुआ।

यहाँ तक जो लिखित हुआ वह श्री बलराम स्वामी के मुख्य रूप से वाह्यिक वृत्ति का एक संक्षिप्त आंशिक आख्यान मात्र। वे अपनी इच्छा से किसी दिन ही अपनी प्रथम अवस्था की ये सब घटनाएँ घुनाक्षर से भी किसी के भी निकट प्रकाश नहीं करते थे। भक्तगण भी उनका अनभिप्रेत समझ कर एकान्त इच्छा रहने पर भी उन विषयों में उनसे प्रश्न करने का साहस नहीं करते थे। कदाचित कोई अंतरंग शिष्य वा भक्त के ससंभ्रम प्रार्थना से वे थोड़े वाक्य में उत्तर देकर उस प्रसङ्ग को समाप्त कर देते थे। गृह त्याग के समय वा तत्परवर्ती परिभ्रमण के समय में उनका कोई सहचर नहीं था। सुतरां उनके प्राचीन शिष्य वर्ग के पक्ष में दूसरे व्यक्ति के निकट इस समय का विस्तृत विवरण संग्रह करना सम्भव नहीं हुआ। आंशिक इतिवृत्त होने पर भी जो घटनाएँ इस ग्रन्थ

लिखित हुई उनमें कोई भी घटना कल्पना प्रसूत नहीं है सभी वास्तविक हैं। यह सब तथ्य उनके प्राचीन शिष्य त्रय के निकट से पाया गया हैं। उन लोगों का नाम–श्री भागवताचार्य शास्त्री, श्रीरामप्रपन्नाचार्य शास्त्री व श्री पराङ्कुश शास्त्री। उन लोगों के इस महा उपकार का विषय स्मरण करके उन लोगों के प्रति आन्तरिक कृतज्ञता से हम लोगों का ह्रदय भर जाता है। अलौकिक दिव्य पुरुष हम लोगों के परमाराध्य आचार्य देव श्री बलराम स्वामी का प्राथमिक वैराग्य, ज्ञान और भक्ति अर्जुन की कठोर साधना सदाचार्य प्राप्ति के लिए तीव्र लालसा और आकुलता का विषय अनुभव एवं उपलब्धि के लिए जो कुछ तथ्य संग्रह सम्भव हुआ है धीर एवं अभिनिविष्ट चित्त से उन सबका विश्लेषण करना चाहिए उनकी तत्कालीन अन्तर्निहित भाव धारा, आकुल धर्म पिपासा, हम लोगों के निकट सुस्पष्ट प्रतिभात हो जाती है। इन सब विरल सात्त्विक गुणों के पीछे सर्वदा ही जो भगवान् के प्रति उनकी भक्ति, एवं भगवत प्राप्ति के लिए अति आकुलता और आर्तिनिहित थी उसका सन्धान भी हम लोगों को मिलता है। प्रायः सब अलौकिक महापुरुषों की साधना के प्रथम अवस्था में इस तरह दुर्निवार तीव्र वैराग्य, आचार्य प्राप्ति और भगवत प्राप्ति के लिए अत्यन्त व्याकुलता की कथा सुनी जाती है। प्रायः ही इस विषय में वास्तव तथ्यावली लिपिबद्ध नहीं मिलती एवं नानाकरणों से मिलना भी सम्भव नहीं है।

''श्री रघुनाथ दास गोस्वामी के सहित बलराम स्वामी के साधन जीवन का सादृश्य''

हम लोगों के सौभाग्य से यत्किञ्चित् जो लिपिबद्ध है उसके मध्य में, गौड़ीय छ जन गोस्वामी के मध्य श्री रघुनाथ दास गोस्वामी के वैराग्य की तीव्रता एवं साधन भजन की कठोरता के सहित श्री बलराम स्वामी जी महाराज के साधन भजन का बहुसादृश्य देखा जाता है। सप्त ग्राम के चाँदपुर में किशोरावस्था में श्री हरिदास ठाकुर के सहित श्री रघुनाथ दास का सङ्गलाभ होना, तदनन्तर उनके प्रथम वैराग्य का उदय होना, एवं हरिदास ठाकुर के प्रभाव से गौराङ्ग दर्शन की लालसा उत्पन्न होना, अनुराग, पश्चात् पानी हाटी में नित्यानन्द प्रभु का दर्शन करना एवं कृपा लाभ, वैराग्य का प्राबल्य और अनुराग की तीव्रता, गौराङ्ग दर्शन की व्याकुलता एवं घर से पलायन, कंकड़मय, कण्टकमय मार्ग में पैदल सप्त ग्राम से नीलाचल में 300 से अधिक मील मार्ग मात्र 12 दिन में अतिक्रमण करके श्री गौराङ्ग महा प्रभु के सन्निधि में पहुँचना, गौराङ्ग के आदेश से श्री वृन्दावन में जाना, एवं श्री रूप, सनातन के निकट रहना और शिला प्राप्त करना यह सब घटनायें श्री रघुनाथ दास के प्रथम जीवन की इतिहास है। इस अप रूप इतिवृत्त के सहित श्री बलराम स्वामी का प्रबल वैराग्य तीव्र अनुराग, एवं अभीष्ट पाने के लिए अमोध सङ्कल्प एवं कठोर साधना का अद्भुत सादृश्य अच्छी प्रकार देखा जाता है। परवर्ती साधन भजन के जगत में भी उभय महापुरुषों के मध्य अपरूप सादृश्य है। बाल्यावस्था से ही ये दोनों महापुरुषों में वैराग्य का उदय एवं भजन निष्ठा समतुल्य है। रघुनाथ दास के भजन में दो तीन मूल मंत्र देखा जाता है–

(1) वैरागीर कृत्य सदा नाम सङ्कीर्त्तन ।
शाक–पत्रे फल–मूले उदर पूरण ॥

(2) रघुनाथेर नियम येन पाषाणेर रेखा ।
(3) एइ वृन्दावन मोर साधन भजन ।
एइ स्थाने देह त्याग आमार नियम।। श्री चैतन्यचरितामृत।

यह समस्त अङ्गही श्रीबलराम स्वामी के साधन में भी आदि से अन्त तक विद्यमान था। किशोरावस्था से ही सारा जीवन 75/80 वर्ष फलमूल भोजन, निरन्तर स्फुरिट अधर से मंत्र स्मरण प्रभृति पाषाण की रेखा तुल्य नियम का पालन करते हुए अवस्थान

त्यजि अन्नाशन फलादि भोजन नियत साधनेरत ।
तत्त्वेर पिपासा मिटाइते प्रभु निलेये कठोरव्रत ।। (आचार्य प्रकाश)

रघुनाथ दास गोस्वामी का भजनकाल 56 दण्ड एवं शयन काल 4 दण्ड था इस रूप से लिखित है।

सार्द्धसप्त प्रहर करे भक्तिर साधने ।
चारि दण्ड निद्रा सेह नहे कोन दिने ।।
चारि दण्ड शुति थाके स्वप्ने । राधाकृष्ण देखे
एकतिल व्यर्थ नाहि जाय।। (चैतन्य चरितामृत)

श्री बलराम स्वामी भी उसी तरह सारा जीवन सात प्रहर भजन में रत रहते। मात्र एक प्रहर शयन करते एवं शयन और स्वप्न में भी भगवद् अनुभव में निमग्न रहते।

शयने स्वपने रहे अनुभव विनु नहे । स्वरूप विभव रूपगुण ।। (आचार्य प्रकाश)

बाल्य काल से वृद्धावस्था तक कठोर भजन के पश्चात् 90 वर्ष की अति वृद्धावस्था में दोनों ही नित्य धाम में चले गये। श्री रघुनाथ दास कठोर नियम में जीवन धारा के लिए ज्ञाता भक्तगणों के द्वारा ''रतिमञ्जरी'' नाम से प्रसिद्ध हुए। गोस्वामी नाम से अभिहित हुए– नित्य स्मरणीय रूप सनातन आदि छ गोस्वामी में अन्तर्भुक्त होकर रहे।

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ । श्री जीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ ।।

श्री बलराम स्वामी के दिव्य जीवन चरित्र में भी मानसिक व्याकुलता अध्यवसाय साथ एवं आचरण, जो इति पूर्व में वर्णित हुआ है एवं परवर्ती साधन में जो सब कठोर कृच्छ साधन एवं कठोर नियमानुवर्तिता परिलक्षित हुई है, उसके साथ उनके सिद्ध दशा का अपरिसीम ज्ञान एवं अलौकिक ज्ञान और भक्ति श्री रघुनाथ गोस्वामी के ज्ञान और भक्ति के तुल्य ही समान भाव से अनुभव के योग्य है। वह सब अनुभव करने से हम लोगों को मुग्ध और विस्मित हो जाना पड़ता है। हम लोगों का मन प्राण उनके प्रति भक्ति से भर जाता है। आवाल्य वार्धक्य सुदीर्घ जीवन में उनकी प्रति नियत अति कठोर दिनचर्या का अनुभव करके एवं उनके ज्ञान और अनुष्ठान का दर्शन करके वैष्णव समाज उनको नित्य स्मरणीय नित्य सूरि कहकर आख्यात किये हैं।

ए हेन नित्य सूरि तुलना दिवारे नारि सेइ मोर एक मात्रगति ।। (आचार्य प्रकाश)

द्वितीय प्रवाह
तृतीय अध्याय

दीक्षा लाभ के पश्चात्

दीक्षा लाभ के आगे तक इस अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए बालक बलराम की दो तीन वत्सर व्यापी उत्कट उत्कण्ठा एवं कठोर प्रयत्न और साधना के विषय का एक आभास पूर्व दोनों अध्यायों में दिया हुआ है। अब सदाचार्य के चरण में समाश्रयण के बाद उनके अति नियमित ऐकान्तिक कठोर साधन की दशा का एक दिग्दर्शन प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।

सदाचार्य लाभ के पश्चात् उनकी उत्कण्ठा उपशमित हुई। उसके जगह पर साधन भजन में एक अपूर्व नित्य नियमित अलौकिक निष्ठा एवं दृढ़ता प्रगट होने लगी।

''कठोर नियम और आचार्य निष्ठा''

दिन पर दिन, मासपर मास, इस षोडश वर्षीय बालक की एतादृश नियमित कठोर साधन में दृढ़ता अवलोकन कर समस्त साधु गोष्ठी विस्मित और चमत्कृत होने लगी। अल्पकाल के मध्य ही इस बालक शिष्य के प्रति आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी की दृष्टि विशेष भाव से आकृष्ट हुई। वे प्रसन्न चित्त से इस बालक साधक को उपयोगी उपदेश के द्वारा कृतार्थ करने लगे। दीक्षा लाभ के पश्चात् भी श्री बलराम पहले की तरह वृन्दावन में ज्ञान गुदरी में अपलाचार्य–कुञ्ज में निवास करने लगे। साधन भजन का नूतन नियम दृढ़ भाव से अवलम्बन किये।

''दिनचर्या''

प्रतिदिन रात्रि 2 बजे के समय शय्या त्याग करके हस्त पादादि प्रक्षालन करके आसन पर बैठकर भगवान के स्मरण में मग्न हो जाते। अति प्रत्यूष में 4 बजे यमुना में स्नान करने जाते स्नानान्तर लौट करके द्वादश तिलक धारण करते। तदनन्तर एक छोट कोठरी में कपाट बन्दकर भजन में प्रवृत्त होते। दूसरे प्रहर 11 बजे कोठरी से बाहर आते। इस दीर्घ 6/7 घण्टा तक वे किस भाव से साधन भजन में निरत रहते उस विषय को कोई भी नहीं जानता। अन्दाज वेला 12 बजे भगवान का भोग लगाया हुआ। कुछ फल मूल और दूध सेवन करते। तदनन्तर अन्दाज आधा अण्टा विश्राम करने के बाद प्राय दो घण्टा प्रत्यह शास्त्राभ्यास में मनोनिवेश करते। वेदान्त रामायण, महाभारत भागवतादिक ग्रन्थ की आलोचना में यह समय अतिवाहित होता। प्रत्यह वेला 2 बजे से आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी अपने शिष्यों को विभिन्न उपयोगी शास्त्रीय ग्रन्थ अध्यापना करते। किशोर बलराम उस समय उस शिष्य गोष्ठी में सम्मिलित होते थे।

''सिद्धान्त और रहस्यादि ग्रन्थ में प्रवेश''

इस कालक्षेप के समय में वे ज्ञानाधिक वयोवृद्ध साधुओं के पीछे अपने ग्रन्थ को सामने खुला रख निविष्ट चित्त से आचार्य मुखनिःसृत अर्थ श्रवण करते। कालक्षेप के अन्त में अपनी कोठरी में आकर इन अर्थो को पुनः पुनः मनन करते उनका अभ्यास था कि जिस ग्रन्थ का जो प्रसङ्ग पढ़ाया जायेगा उसको अपने अध्ययन कर लेते बाद में कालक्षेप में योगदान करते, कालक्षेप को मनो योगसह श्रवण करते, काल के अन्त में अपनी कोठरी में लौटकर फिर से सुने हुए उस प्रसङ्ग की आलोचना करते। इस आलोचना के में यदि कोई शंका अथवा सन्देह रहता तब उस स्थल को ज्ञान वृद्ध महात्माओं के निकट परिस्फुट कर ले यही उनका नित्य नियमित अभ्यास था। इस प्रणाली के अवलम्बन से अल्पकाल के मध्य ही वे सिद्धान्त ग्र में व्युत्पत्ति लाभ किये। तदनन्तर वे रहस्य ग्रन्थों की तरफ मनोनिवेश किये। साधन मार्ग में पहले तत्व सिद्धान्त में ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। सिद्धान्त में दृढ़ता आने पर ही साधन भजन में दृढ़ निष्ठा हो सम्भव है। इस तत्व की आलोचना में साधारणतः हम लोग आकृष्ट नहीं होते, दुर्वोध जान कर हट साधारणतः हम लोग रस ग्रन्थ की तरफ ही आकृष्ट होते हैं एवं उसमें आनन्द पाते हैं। किन्तु हम लोगों को में समझ रखना चाहिए कि सिद्धान्त में दृढ़ नहीं होने से रसास्वादन में दृढ़ता नहीं आती। 'सिद्धान्तबलि चित्तेनाकर अलस'' सिद्धान्त समझ कर चित्त में आलस्य नहीं करना चाहिए, यही कथा श्री गौराङ्ग देव कहे इसी तरह ही साधक श्री बलराम भी सिद्धान्त ग्रन्थ में प्रवेश किये एवं अधिकार लाभ किये। उसके बाद अल्पावस्था में ही रहस्य ग्रन्थ एवं रस ग्रन्थ के अध्ययन में तत्पर हुए थे।

गुरुवर श्री रङ्गदेशिक स्वामी के वैकालिक नित्य कालक्षेप के स्थल पर उनके उच्च कोटि के शिष्य का निजनिज स्थान निर्द्धारित था। इनके मध्य में विशेष उल्लेख योग्य नाम श्री सुदर्शनाचार्य, देवरा वाले रामप्रपन्नाचार्य त्रेटपाली के परमहंस रामचन्द्र सूरि, जूनागढ़ के कमलनयन शास्त्री, शठकोप स्वामी (ह वाले), दामोदर स्वामी (वृन्दावन), रामानुज स्वामी (बड़े पण्डित), वियानी निवासी वासुदेव शास्त्री, जगन्न स्वामी (खटला वाले), आदि सभी वयो ज्येष्ठ थे, कालक्षेप के समय वे लोग, अध्यापक अपने आचार्य सामने नित्य उपवेशन करते थे। बालक श्री बलराम सभास्थल के पीछे अपेक्षाकृत अलक्षित स्थान पर अ आसन निर्वाचन किये थे । ज्येष्ठ गुरु भ्राताओं को यथोचित मर्यादा देने के लिए ही वे इस व्यवस्था अवलम्बन किये थे। सभा स्थल में पीछे बैठने पर भी वे कालक्षेपकारी अपने आचार्य की दृष्टि से बहिर्भूत थे। उपदेश के समय स्वामी जी अपने गुणी ज्ञानी शिष्य वर्ग के ऊपर जिस तरह दृष्टि रखा करते इस न किशोर शिष्य के कालक्षेप कालीन क्रियाकलाप के प्रति भी उसी तरह तीक्ष्ण दृष्टि रखा करते।

'' ज्येष्ठ साधु महात्माओं का सानुरागस्नेहलाभ''।

इस बालक के अमानी और मानद व्यवहार से उनके अद्भुत निष्ठा और अध्यवसाय को देखने से भ्रातागण भी और अन्यान्य साधुगण सभी उनको स्नेह और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। नित्यकालक्षेप के

विकाल में यह सब ज्ञानी भक्तिमान महात्मागण श्री रङ्गनाथ मन्दिर के बगीचा में जाकर परस्पर नाना विधशास्त्र की आलोचना और अनुभव में निरत रहते। अनुरागी श्री बलराम भी अनुगमन पूर्वक इस विद्वत्साधुगोष्ठी में योगदान करते। वे सब भी इस वैराग्यवान् बालक को आदर के सहित अपनी गोष्ठी भुक्त कर लेते। तत्कालीन इस विलक्षण साधु गोष्ठी का शास्त्रलाप एक दर्शनीय, अनुभव योग्य अभिनव व्यापार था।

इस गोष्ठी में आये हुए महात्मागण प्रत्येक ही ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य के प्रकृष्ट आधार थे। प्रत्येक ही भगवद्गत चित्त, एवं तद्गत प्राण थे। इस गोष्ठी में प्रत्येक ही अपने अपने अनुभव की कथा विवृत करते, दूसरे श्रवण करके आनन्द में निमग्न हो जाते –

मच्चित्ताः मद्गत प्राणाः बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्चमां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।। (गीता)

गीतोक्त इस श्लोक की वास्तविक परिपुष्टि इस गोष्ठी में प्रगट हो जाती। और प्रत्येक ही अपनी अपनी शङ्का वा सन्देह का उत्थापन करते, परस्पर आलोचित होकर परस्पर की इन शङ्काओं का निरसन किया जाता। कदाचित् किसी कठिन समस्या का समाधान सम्भव नहीं हो पाता, तब कि वे सब सम्मिलित होकर ज्ञान और भक्ति के सजीवमूर्ति अपने गुरुदेव श्री रङ्गदेशिक स्वामी के निकट इस विषय में निवेदन करते, एवं वे भी उठाई हुई इन शङ्काओं का सुन्दर सरल समाधन कर देते। ये साधु वर्ग भी तब सन्तुष्ट चित्त से हर्ष से भरपूर कृतज्ञ हृदय से गुरुदेव को साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपने अपने भजन कुटीर में प्रत्यावर्तन करते, प्रत्यह इस प्रकार का व्यापार एक अपरूप दृश्य था। यह पवित्र साधु गोष्ठी लोक साधारण के निकट इतना गौरव और मर्यादा अर्जन किया था कि सभी कहते कि ये सब इस जगत् के मानव नहीं हैं, सभी नित्य धाम के नित्य सूरि, वृन्दावन में अवतीर्ण होकर लीला कर रहे हैं।

इस साधु गोष्ठीके सभी सन्ध्या के पहले अपने अपने कुटीर में लौट आते। शौच स्नानादि समाप्त करके पुनः मन्दिर में श्रीरङ्गनाथ भगवान् का एवं मन्दिरस्थ और पूर्वाचार्यगण के अन्यान्य अर्चा विग्रह की आरती में योगदान करते। आरति के अन्त में स्तोत्रादि पाठ करके अपने अपने स्थान पर चले जाते। बालक बलराम भी साथ साथ आर्द्रचित्त से स्तोत्रादि पाठ करते।

'स्तोत्र पाठ का बैलक्षण्य''

साधक श्री बलराम स्तोत्र पाठ के समय शब्द का विशुद्ध उच्चारण और छन्द के प्रति एवं स्तोत्रगत अर्थ के प्रति विशेष सतर्क दृष्टि राखते। शास्त्रज्ञगण शास्त्र स्तोत्रादि के शब्दों को एवं तद्गत अर्थो को उसके देह और प्राण के सहित तुलना किये हैं। स्तोत्रगत शब्द के ह्रस्वदीर्घ प्रभृति भेद से उसका सुस्पष्ट उच्चारण, वाक्यों के छन्दों का वैशिष्ट्य और स्वर का उदात्त अनुदात्त प्रभृति को देह के सहित, एवं स्तुति वाक्यगत, शब्द के अर्थ को प्राण के सहित तुलना किया हुआ है। उक्त देह एवं प्राण का एकत्र समावेश होने पर ही स्तोत्रादि का

पाठ सजीव होता है। और स्तोत्र पाठ सार्थक एवं सफल होता है। स्तोता और श्रोता के मन में पुलक उत्प करता है एवं शक्ति का सञ्चार करता है। 'श, ष, स, न, ण,क्ष्म, स्म, य् अथवा व् ह्रस्व इ, दीर्घ ई, ह्रस्व दीर्घ ऊ ह्रस्व–दीर्घ ऋ, य, व प्रभृति अक्षरों का यथा यथ विशुद्ध उच्चारण विशेष भाव से प्रतिफलित होने ही स्तोत्र पाठ का वैलक्षण्य एवं मर्यादा सुरक्षित होती है। साधक श्री बलराम को बहुकालव्यापी इस अभ्यास फल से बाद में यह विशुद्ध उच्चारण उनके स्वभाव में परिणत हो गया था। उनकी प्रवीण अवस्था में उन कण्ठ से नि:सृत ये सब सजीव स्तोत्रों को श्रवण करने का महा सौभाग्य हम लोगों को हुआ था। उनका उदात्त कण्ठ स्वर स्वत: स्फूर्त अनायास सुस्पष्ट एवं विशुद्ध उच्चारण, उच्चारण में सुललित छन्द एवं स्नात उच्चारित शब्दों को सुनने से मर्म स्थल भेद करके हम लोगों का ह्रदय एक अपूर्व आनन्दमय भाव से जाता। उनके इस स्तोत्र को सुनने से मुग्ध होकर ''आचार्य प्रकाशगान'' किये हैं –

कीर्तन मधुर स्वर भेदि मर्म स्थल ।
स्तुतिमारवा दिव्य स्वर भासाय दुकूल ।
चराचर से पर से पूत पुण्यमय ।।

40–45 वर्ष पहले सुना हुआ उनके श्री कण्ठ नि:सृत हुआ इस मधुर स्तोत्र पाठ की सुमधुर ध्वनि आज भी हम लोगों का कर्णकुहर एवं मर्म स्थल अधिकार करके विद्यमान है। स्तोत्र पाठ के अन्त में श्री बलराम कुटीर में आकर द्वार बन्द कर के एकान्त साधन भजन में प्रवृत्त हो जाते। रात्रि 11/12 बजे तक इसी भाव से रहते बाद में कुछ फलाहार करके शयन करते, फिर रात दो बजे शय्या त्याग करते। इस समय उनके नित्य के अन्तर्गत जो जो अङ्गावली थी वह गोपन ही थी। इस विषय में कोई उनसे जिज्ञासा करने का भी साहस किया। इसीलिए यह गोपन विषय सबके लिए अविदित ही रह गया।

अस्मद् गुरुभ्यो नम:

''साधन भजन की गोपनीयता''

जिससे उनके साधन भजन का गोपनीय रहस्य प्रकाशित न हो, इस विषय में वे विशेष सतर्क रह तथापि उनकी प्रवीण अवस्था में बीच बीच में उनके स्वत: स्फूर्त आचरण में अथवा किसी किसी कथा वार्ता द्वारा एतत्ससंक्रान्त कुछ कुछ तथ्य प्रगट हो जाता ये अमूल्य तथ्य उनकी चिराभ्यस्त साधन अवस्था विशि गोपनीय प्रणाली के विषय में अल्प विस्तार आलोकित कर देता। यह विषय सुस्पष्ट करने के लिए दो दृष्टान्त का उल्लेख किया जाता है।

उस समय उनकी वृद्धावस्था। श्री धाम अयोध्या में पीड़ित नेत्र में अत्यन्त क्लेश अनुभव कर रहे हैं। क मस्तक अवनत करते कभी उन्नत कर रहे हैं। कई एक जन साधु उनके दर्शन करने के लिए आये हैं। एक उनसे मर्यादा के सहित निवेदन किये स्वामी जी महाराज! निरन्तर मन्त्र जप कीजिये, आपके क्लेश निश्चय उपशम होगा। यह कथा सुनकर वे कोई उत्तर नहीं दिये नीरव ही रहे। वे साधुगण विदा लेकर जब

गये, तब वे मृदु हासी हँस कर निकटस्थ साधुगण से कहने लगे ''मन्त्र तो हमारी हड्डी – हड्डी में घुस गया है''। उनके श्री मुख की एक कथा से ही कई शब्दों में हम लोग उपलब्धि कर सकते हैं कि साधन अवस्था के प्रथम से ही उनकी इस मन्त्र की साधना कितनी अद्भुत थी, कितनी गम्भीर और आत्यन्तिक थी। इस वाक्य को कहने के समय उनकी मृदुहाँसी अपने आँख देखने एवं इस वाँक्य को अपने कान से सुनने का दुर्लभ सौभाग्य लेखक का हुआ था। साधनावस्था में इस तरह निरन्तर मंत्र का अभ्यास रूप अनुष्ठान करना तो एक प्रकार असम्भव कहना ही होगा। अनुष्ठाता के निज मुख निःसृत इन सर्वउक्ति को साक्षात् श्रवणगोचर होना महा सौभाग्य और अतीव विरल है। इस दृढ़ उक्ति के साथ – साथ उनकी सुमधुरं हाँसी आज भी हम लोगों के हृदय में सुस्पष्ट भाव से जागरूक है। मन्त्र दाता गुरुपदिष्ट मन्त्र जो उनके मज्जा मज्जा में ओतः प्रोत भाव से मिलकर एक हो गया था उसका ज्वलन्त साक्ष्य उनके और एक स्वतः स्फूर्त आचरण से मिलता है। उनकी सन्निधि में रहने वाले व्यक्ति मात्र ही देखे हैं कि उनका दोनों ओष्ठ सदा सर्वदा ही स्फुटित हो रहा है। किसी के भी सहित वार्तालाप के समय यह स्फुरण लक्ष्य नहीं किया जाता, किन्तु यह वार्तालाप बन्द होते ही फिर से यह स्वतः स्फूर्त अधर स्फुरण परिलक्षित होता। यह निरन्तर अधर स्फुरण निरन्तर मन्त्र जप का ही लक्षण है। कारण विशेष शास्त्र इस मन्त्र जप की विधि निर्देश के समय कहते हैं– ''संततः स्फुरिताधरः'' शास्त्र विधि का यथायथ पालन करना उनका एक स्वभाव सिद्ध अनुष्ठान था।

वे शास्त्र विधि के सजीव मूर्ति थे। नाथ मुनि, यामुनमुनि रामानुज आचार्य प्रभृति पूर्वाचार्यो का विलक्षण अनुष्ठान, परिपक्व अवस्था में, उनके अनुष्ठान में मूर्तिमान हो उठा था। इस आदर्श अनुष्ठान का वीजवपन जो उनकी साधन दशा के प्रारम्भ में ही हुआ था वह सहज में ही अनुमेय है।

''शास्त्र विधि पालन में कठोर निष्ठा''

सिद्ध अवस्था के इन दो दृष्टान्तों से उनके साधन अवस्था की किसी किसी गुप्त प्रणाली का विषय और किसी किसी यन्त्र निहित निधिका विषय अधिकांश में उपलब्धि किया जा सकता है। जितना भी उपलब्धि किया जाता है उसके द्वारा ही साधन में उनकी अद्भुत दृढ़ निष्ठा एवं अपरूप दिव्य चेष्टा का विषय अनुमान करना कठिन नहीं होता। कठोर साधना के साथ – साथ उनका अपनी अमानिता, और साधु गोष्ठी के प्रति समुचित मर्यादा प्रदान एवं सकल के प्रति उनका मधुर व्यवहार भी प्रस्फुटित हो उठा था। यह अमायिक और विनम्र मधुर व्यवहार सबके पास ही उनको प्रिय कर दिया था। इस अमानी और मानद वृत्ति के कारण साधु गोष्ठी उन्हें स्नेह की दृष्टि से देखने लगी। उनकी नित्य नियमित भजन निष्ठा देख समग्र वृन्दावन वासी उन्हें सविशेष श्रद्धा भक्ति करने लगे।

''श्री शठकोप स्वामी का आशीर्वाद लाभ''

उस समय शठकोप स्वामी नामक एक अतिवृद्ध स्थविर अन्ध उच्च स्तर के साधु श्री वृन्दावन में श्री रङ्गनाथ मन्दिर के निकट अपनी त्रिमाली (भजन कुटी) में वास करते थे। वे आचार्यवर्य श्रीरङ्ग देशिक स्वामी

के अत्यन्त और श्रद्धा पात्र शिष्य थे। अल्पवयस बलराम का तीव्र वैराग्य, आत्यन्तिक शास्त्राभ्यास, ज्ञान... एवं ऐकान्तिक साधन भजन की कथा शीघ्र ही उनके कर्णगोचर हुई। वे इस बालक साधु के सहित परि... करने के आग्रह से उन्हें अपने भक्त के द्वारा त्रिमोली में आने के लिए अनुरोध कर भेजे। यह अनुज्ञा प्राप्त हो... बालक बलराम अविलम्ब से शठकोप स्वामी के सान्निध्य में उपस्थित हुए। भक्तगण स्वामी जी के सहित... किशोर साधु बलराम का परिचय करा दिये। शठकोप स्वामी के नेत्र दृष्टि शक्ति नहीं थी। सुतरां उन्हे देख... सकने का क्षोभ प्रकाश करके स्नेह के सहित उनके शरीर पर हाथ फेरते फेरते कहने लगे – 'इस ... बाल्यावस्था में तुम्हारी भक्ति और साधन निष्ठा सुनकर हमें बहुत संतोष हुआ। क्या करें नेत्र नहीं है, नहीं... तुमको आँख से देखते, और संतोष होता। सम्प्रदाय में तुम्हारी निपुणता और आचार्य निष्ठा सुनकर हमें ... ही संतोष है। हमारे पास प्रायशः आयाकरो, प्रभु जी तुम्हारी अभिलाषापूर्ण करें।' बालक बलराम उत्तम ... साधु का आशीर्वाद शिरोधार्य करके कृतकृत्य बोध किये, एवं उस दिन से प्रायः ही उनका दर्शन करने ... उपदेश सुनने जाते। वृन्दावनस्थ अन्यान्य महात्मागण भी षरस्पर मुक्त कण्ठ से इस किशोर साधु के ... भक्ति, वैराग्य की भूयसी प्रशंसा करने लगे।

गृहत्याग से यहाँ तक (5/6 वर्ष की) श्री बलराम स्वामी जी महाराज का जितना कुछ इतिवृत्त हम ... जानने में समर्थ हुए हैं और लिपिबद्ध कर पाये हैं वह अति अल्प होने पर भी अमूल्य है। ये सब गूढ़ तथ्य ही साधुगण के साधन रहस्य की सजीवमूर्ति है। सिद्ध आचार्य गण की जीवन लीला स्वतः साधारण के लि... प्रगट हो जाती है। किन्तु उनके साधन अवस्था का कठोर संग्राम, उनका क्रमबर्द्धमान दिव्य अनुभव, ... उन्नतर दशा में क्रम पदक्षेप का विषय उनके अन्तरङ्ग सहचर के निकट भी अधिकतर अंश में अविदित ... जाती है। कारण – 'आपन साधन कथा, ना कहि वे यथा तथा' अर्थात् अपने साधन की बात किसी से न ... कहनी चाहिए। वे किसी के भी निकट अपनी अपनी उपलब्धि का विषय, नूतन नूतन अवस्था लाभ का वि... अपने मुख से कभी प्रकाश नहीं करते। उनका दैनन्दिन कृत्य, आचार, व्यवहार शयन भोजन प्रभृति देख... यह अनुमान कर लेना चाहिए एवं इन सब व्यापारों को विश्लेषण द्वारा साधन रहस्य कुछ कुछ उन्मोचन ... लेना चाहिए। इस प्रकार उद्घाटित तथ्यों से शास्त्रगत तत्त्व हम लोग उपलब्धि करने में समर्थ होते ... आचरणगत तथ्य के द्वारा इसका अन्तर्निहित तत्त्व समर्थित हो जाने पर बाद में हम लोग शास्त्रगत तत्त्व ... विश्वासशील हो उठते हैं। इस दृष्टि भङ्गी को लेकर साधु के चरित्र की आलोचना का जितना ही सु... सुविधा होगी हम लोगों का दृढ़ विश्वास उतना ही दृढ़ होगा। दृढ़ विश्वास ही निष्ठा का मूल है, निष्ठा से ... अनुष्ठान आरम्भ होता है, निष्ठा पूर्वक अनुष्ठान ही साधन मार्ग पर चढ़ने का उत्कृष्ट सोपान (सीढ़ी) है। ... सब सोपानों पर निष्ठा पूर्वक चढ़ने की इच्छा और चेष्टा, चढ़ने में सफलता यह सब श्री गुरुदेव और इष्ट ... की कृपा सापेक्ष्य है।

इसके अलावा उनके साधन जीवन से और भी एक विशेषतत्त्व के विषय में हम लोग शिक्षण पा सकते हैं

वैराग्य, ज्ञान, एवं भक्ति शब्द तीनों पृथक् पृथक् अर्थ बोधक होने पर भी वस्तुतः एक ही समष्टि वस्तु के तीनों अंश मात्र हैं, परस्पर के परिपोषक हैं। साधरणतः हम लोगों की धारणा है कि ज्ञान मार्ग एवं भक्ति मार्ग परस्पर भिन्न हैं। धीरभाव से विश्लेषण करने से समझा जा सकता है कि यह धारणा यथार्थ नहीं है।

''ज्ञान भक्ति और वैराग्य का स्वरूप व समाञ्जस्य''

वैराग्य के आधार से ज्ञान और भक्ति का उदय एवं वृद्धि लाभ होता है। ज्ञान और भक्ति के पुष्टि लाभ के साथ साथ वैराग्य पूर्णता की तरफ अग्रसर होता रहता है। इस प्रसङ्ग में ज्ञान शब्द का अर्थ है, पाँच विभिन्न विषयों का ज्ञान–ब्रह्म, जीव, ब्रह्म प्राप्ति का उपाय, ब्रह्म प्राप्ति का फल एवं ब्रह्म प्राप्ति का प्रतिबन्धक इन 5 विषयों का ज्ञान, ज्ञान है। सभी शास्त्र किसी न किसी भाव से इन पाँचों विषयों की बात ही जनाते हैं।

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः ।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्ति विरोधि च ।।
वदन्ति सकलाः वेदाः सेतिहास पुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानोः वेदाः वेदान्तवेदिनः ।।

अनुवाद– प्राप्य वस्तु ब्रह्म का रूप, प्राप्ता जीव का रूप, जीव के द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का उपाय, ब्रह्म प्राप्ति का फल, एवं ब्रह्म प्राप्ति के प्रतिबन्धक इन पाँच विषयों को ही वेद, इतिहास (रामायण महाभारत) पुराणादि शास्त्र, मुनिगण, महात्मागण व वेद वेदान्त के जानने वाले एक कण्ठ से कहते हैं। ''ब्रह्म'' के रूप शब्द का अर्थ ब्रह्म का स्वरूप, रूप, गुण, लीला एवं विभूति है। ''जीव के रूप शब्द में उसका स्वरूप, रूप,गुण एवं ब्रह्म के सहित जीव का सम्बन्ध समझा जाता है। उपरोक्त विषय पञ्चक का ज्ञान ही अध्यात्म जीवन में सोपान एवं भक्ति लाभ का सहायक है। महान् विषय में प्रीति का नाम भक्ति है ''महनीय विषये प्रीतिः भक्तिः।'' ब्रह्म वस्तु वा भगवद् वस्तु का स्वरूप, रूप, गुण, महिमा के विषय में जितना ही ज्ञान होगा उनके प्रति भक्ति की उतनी ही अभिवृद्धि होगी यह स्वाभाविक है। इस स्वरूप, रूप, गुण, एवं महिमा का अनुचिन्तन भक्ति साधन का एक विशिष्ट अङ्ग है। इस प्रकार अनुचन्तिन से ही नूतन नूतन ज्ञान का उन्मेष होता है। ब्रह्म और जीव के विषय में ज्ञान को प्रसारित करता है। फिर इस तरह ज्ञान का प्रसार ही भगवत्प्रीति व भक्ति को बढ़ाने का प्रकृष्ठ सहायक होता है। भगवान् ही हम लोगों के जन्मदाता हितकामी पिता हैं, प्रसवित्री पालन कर्मी प्रिय कारिणी माता हैं, वे ही सर्व विध बन्धु एवं सखा हैं, वे ही विपद् में परित्राता हैं, उनके सहित हम लोगों का यह सम्बन्ध ज्ञान जितना ही दृढ़ होगा, उनके प्रति हम लोगों का आकर्षण और प्रीति उतनी ही पुष्ट होती रहेगी। भक्ति की अभिवृद्धि भी उतनी ही होगी। अतएव स्पष्ट समझा जा सकता है कि ज्ञान एवं भक्ति परस्पर विशेष रूप से परिपोषक हैं। सम्पूर्ण रूप से स्वतंत्र वस्तु नहीं हैं। ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य का परस्पर साहचर्य अभिवृद्ध होकर साधक का उद्देश्य सिद्ध करता है। ये तीनों ही समवेत भाव से प्राप्य वस्तु लाभ के उपाय स्वरूप हैं। भक्ति शब्द की यौगिक उत्पत्ति 'भज' धातु से होती है। 'भज' सेवायां' भज धातु का अर्थ सेवा है। भगवत सेवा कहने पर हम लोग

समझते हैं भगवान के नाम रूप गुणादिकों का स्मरण करना, स्तवन, कीर्तन, साष्टाङ्ग प्रणाम, प्रदक्षि मन्दिर सम्मार्जन, अर्चना, आरती-दर्शन घड़ी घण्टा बजाना, पुष्प चयन करना, माला बनाना, बगीचा लगा इत्यादि। विविध प्रकार कायिक वाचिक एवं मानसिक सेवा। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी कई एक श्लोक में अर्थ ही ज्ञापन। किये हैं –

सततं कीर्तयन्तो मां यजन्तश्च दृढ़व्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्य युक्ता उपासते ।। (गीता 09-14)
मन्मना भव मद्‌भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।।

यह पंक्ति वे गीता के मध्य में एवं अन्त में (9134-18/65) दो बार उपदेश के द्वारा कहे हैं। विभिन्न के अधिकारी कोई कोई भक्त भगवान् के रूप, गुण एवं लीला की चिन्ता की अपेक्षा उनके स्वरूप प्रतिपा गुणगण के विषय में अधिक चिन्ताशील रहते हैं। भगवान् जो स्वरूपतः सर्वव्यापक हैं, सूक्ष्म, अथवा जगत में जितनी चैतन्य और जड़ वस्तुएँ हैं उनमें जीवान्तर्याभी परमात्मा रूप से उनके देही रूप से विद्यमान अतएव वस्तुतः देवतिर्यग, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतङ्गादि जङ्गम एवं वृक्ष, लता, वन ' उपवन, पर्वत स्थावर रूप से विविध विचित्र जगत् सर्वत्र ही अन्तरात्मा रूपों में अवस्थित एक ब्रह्म वा भगवान के शरीररूपी है एवं यह विविध विचित्र जगत जो ब्रह्मात्मक है, चिदचिद् विशिष्ट परमात्मा रूप में एक ही अ वस्तु है – परिदृश्यमान् बहुत के मध्य में इस एकत्व के अनुसन्धान पूर्वक कोई कोई ईश्वर अथवा ब्रह्म भजन करते रहते हैं। इस प्रकार से अधिकारी भक्त की भजन को गीता में ज्ञानयज्ञ के द्वारा भजन नाम अभिहित किया हुआ है।

ज्ञान-यज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्त्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम् ।। (गीता 9/15।।)

इस प्रकार के भजन में भक्त के द्वारा परमेश्वर के स्वरूप की चिन्ता धारा ही प्रवल होती है। किन्तु के ज्ञान चिन्तन के द्वारा इस प्रकार अक्षर, अनिर्देश्य एवं अव्यक्त की उपासना अधिक क्लेश कर है उसे गी में द्वादश अध्याय के प्रथम ही श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं व्यक्त किये हैं –

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।। (गीता 12/3)

क्लेशोऽधितकतर स्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुखं देहवद्भिरवाप्यते ।। (गी0 12/5)

''भगवद् भक्ति लाभ का उत्तरोत्तर स्तर विभाग''

ज्ञान एवं भक्ति की धारा एक गाम्भीर्य और माधुर्य पूर्ण अविच्छिन्न धारा है। तथापि इस धारा की गति

एवं अवस्था को सुबोध्य करने के लिए ज्ञानी पुरुषगण इसको उत्तरोत्तर विभिन्न स्तर में विभक्त किये हैं, यद्यपि इस विभिन्न विभाग के स्तर में कोई सीमा रेखा निर्धारण नहीं की जाती। शास्त्रानुगत भाव से वे लोग उपदेश दिया करते हैं– प्रथमावस्था में भगवान् की स्तुति, नमस्कृति, प्रदक्षिणादि अङ्ग साधन करते करते भगवान् के रूप गुणादि का विषय जानने के लिए भक्त की लालसा उत्पन्न होती है। एवं सत्सङ्ग में उपदेशादि श्रवण से इस विषय में कुछ कुछ ज्ञानार्जन करता है। इस प्रकार प्राथमिक भक्ति से प्राथमिक ज्ञान दशा होती है, ज्ञान लाभ और ज्ञान का अभ्यास एवं अनुशीलन भगवान् के प्रति भक्त का आकर्षण एवं प्रीति क्रमशः अभिवृद्ध होकर अन्त में पराभक्ति रूप में परिणत हो जाता है।

''पराभक्ति''

इस पराभक्ति को रामानुज स्वामी अपने गीता भाष्य में कहे हैं– ''अत्यर्थ प्रिय अनुभव रूपा पराभक्तिः''। तब भगवान् का स्वरूप, रूप गुण, एवं महिमा के विषय में विशद भाव से जानने के लिए प्रवल आकांक्षा जागती है। इस अवस्था में प्रकृतज्ञानवान् साधु का सङ्ग शास्त्राभ्यास एवं साधन भजन जनित अनुभव और उपलब्धि के द्वारा भगवद् विषय में वह सब ज्ञान क्रमशः यथातत्त्व समृद्ध होकर परिशेष परिपक्वदशा लाभ करता है भक्त के यह पर ज्ञान की अवस्था गीता शास्त्र में, अन्तिम अध्याय में वर्णित हुआ है।

''भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः''।। (18–55)

''परम भक्ति''

ज्ञान की इस परिपक्क दशा से भक्त के हृदय में भगवान् का स्वरूप रूप, स्वभाव, गुण और विभूति का तैलधारा की तरह निरवच्छिन्न प्रीतिपूर्ण स्मरण एवं अनुभव चलता रहता है। इसको ही ज्ञानीगण परम भक्ति की अवस्था कह कर वर्णन किये हैं। परमभक्ति को रामानुज स्वामी गीता भाष्य में कहते हैं –

दर्शन समानाकारं स्मृति संतानमत्यर्थ प्रियम। इस प्रकार निरवच्छिन्न दर्शन समानाकार (अर्थात् जैसे साक्षात् दर्शन–कर रहे हैं इस भाव से) भगवान् का स्वरूप, स्वभाव गुण और विभूति की उपलब्धि के बाद ही साक्षात् रूप से भगवत् साक्षात्कार लाभ होकर उनके विषय में साक्षात् तत्व ज्ञान लाभ होता है। यही परम ज्ञान की अवस्था, सिद्धावस्था है।

''सिद्धावस्था''

रामानुज स्वामी अपने गीता भाष्य में कहते हैं –

'तत्वतः स्वरूप स्वभाव गुण विभूति दर्शनोत्तर काल भाविन्या अनवधिकातिशय भक्तया मां प्राप्रोति।'' अर्थात् निरन्तर आत्यन्तिक अनुचिन्तन के फल से यथार्थ स्वरूप स्वभाव गुण और विभूति की प्रकृष्ट उपलब्धि होने पर तब इस अनवधिक अतिशय भक्ति के द्वारा साधक सिद्धावस्था प्राप्त करते हुए हमको प्राप्त होता है। इस उत्कृष्ट अवस्था में भी सिद्ध साधक परा भक्ति एवं पर ज्ञान विशिष्ट होकर अत्यन्त प्रेम के सहित भगवान् के रूप, गुण, लीलादि का अनुसन्धान, भजन, यजन, नमस्कार आदि विविध आचरण के अनुष्ठान में

विभोर रहते हैं। ज्ञान एवं भक्ति जो परस्पर कितने घनिष्ठ भाव से संश्लिष्ट एवं किस भाव से परस्पर सह करके परिशेष में भगवत प्राप्ति तक करा देती है वह विवृत हुआ। परम्परागत समस्त आचार्य ही इस वि सम्पूर्ण अवहित हैं इस परम्परा में प्रत्येक आचार्य ही अपनी साधन अवस्था में अपने आचार्य के उपदेश से एवं भक्ति दोनों का ही अनुशीलन समान रूप से करते रहते हैं एवं वे अपनी आचार्य अवस्था में भी अपने-अ शिष्य वर्ग की साधन दशा में उसी तरह निर्देश देते आ रहे हैं।

श्री बलराम स्वामी जी के क्षेत्र में भी उनकी साधन दशा में इस चिराचरित प्रथा का कोई व्यतिक्रम हुआ। स्वयं ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य के निधि अपने आचार्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के निर्देश एवं परिचालना ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निष्ठा के सहित समान भाव से ज्ञानानुशीलन और भक्ति साधना में अग्रसर लगे।

''बलराम स्वामी की साधन दशा में उपरोक्त पर्याय क्रम''

तीन चार घण्टा निद्रा एवं शौच स्नानाहार का अल्प समय भिन्न प्रायः समस्त दिन रात्रि कठोर सा में व्याप्त रहते। गुरुवर श्रीरङ्गदेशिक स्वामी की प्रसन्नता एवं कृपा उनके प्रति वर्षित होने लगी, एवं वे न भाव से उपदेशादि के द्वारा परिचालना करके महा अध्यवसायशील दुष्कर साधन में अल्पवयस्क श्री बल को द्रुत आत्मोज्जीवन के पथ में अग्रसर करने लगे। अल्पकाल में ही वे सर्व शास्त्र निष्णात हो गये, एवं ान भजन के अनुभव में पुष्ट होने लगे। शास्त्र ज्ञान अर्जन करके ही वे सन्तुष्ट नहीं रहते, वे अच्छी तरह स लिए थे कि ज्ञानानुगुण अनुष्ठान नहीं रहने से ज्ञान पुष्ट नहीं हो सकता। इसी कारण ज्ञान के स उपलब्धि के लिए तद्नुगुण अनुष्ठान का एकान्त प्रयोजन है। इसीलिए शास्त्र और उपदेश लब्ध ज्ञान श्रवण मनन एवं अनुचिन्तन के द्वारा दृढ़ करके वे प्रथमाबधि से ही ज्ञानानुगुण अनुष्ठान में दृढ़ प्रतिज्ञ प्रथमावधि साधन दशा से ही ज्ञानानुगुण अनुष्ठान का यह अभ्यास परवर्ती काल में सिद्ध दशा में मज्ज स्वभाव में परिणत हो गया था। यह ज्ञान और अनुष्ठान का ओतः प्रोत समवाय ही उनका अतुलनीय वैशिष्ट असाधारण वैलक्षण्य था। विज्ञान और अनुष्ठान के एक अपरूप प्रति मूर्ति थे। भजन पथ में जितना अग्रसर होने लगे उनमें उतनी ही अपना दैन्य साधु मण्डली के प्रति विनम्र व्यवहार, प्रगट होने लगा उनके अमानी और मानद आचार, व्यवहार से जो कोई भी व्यक्ति सम्पर्क में आता वह ही इनके अमानी मानद व्य से मुग्ध हो जाता भगवद् भागवत आचार्य की प्रसन्नता भी उत्तरोत्तर समृद्ध होने लगी। उन लोगों की प्रसन्न तथा आशीर्वाद के फल से वे अल्पकाल में आदर्श साधु रूप में परिगणित होने लगे। विविध शास्त्र की व्यु के साथ साथ श्री बलराम स्वामी जी अनुभव किये कि सामान्य शास्त्र की अपेक्षा विशेष शास्त्र बलवान है, यह भी उपलब्धि किये कि रहस्य शास्त्र में प्रवेश एवं दृढ़ता के लिए ही तत्व गर्भ शास्त्र ज्ञान का प्रयोजन है। इसी कारण विभिन्न तत्व विषयक ज्ञान में अग्रसर होने के बाद वे क्रमशः विशेषशास्त्र एवं रहस्य की आकृष्ट हुये, इन सब शास्त्रों के अभ्यास एवं शास्त्रों की आलोचना में उत्तरोत्तर अधिक मनो निवेश

लगे। प्रयोजन समझकर पाठक पाठिका की अवगति के लिए विशेष शास्त्र रहस्य शास्त्र, एवं रस तत्व के विषय में इस स्थल पर यत्किञ्चित् आलोचना की जा रही है।

''विशेष शास्त्र''

विधि निषेध रूप करणीय एवं अकरणीय निर्देशात्मक वाक्य समूहों की समष्टि शास्त्र नाम से अभिहित है। 'शासनात् शास्त्रम्''। सब विधि एवं निषेध में ही एक साधारण और एक विशेष अङ्ग है। साधारण विधि में जो करणीय है, वह ही विशेष विधि में अकरणीय हो सकता है। और साधारण विधि में जो अकरणीय है वही विशेष विधि में करणीय कहकर धार्य हो सकता है।

''विशेष शास्त्र–असाधारण विशेष विधि''

जो विधि निषेध नियम के अधीन है वही विशेष शास्त्र नाम से अभिहित है। कई एक दृष्टान्त के द्वारा परिस्फुट किया जाता है– साधारण शास्त्र कहता है कि अस्थि वा विष्ठा अत्यन्त अपवित्र वस्तु है, किन्तु विशेष शास्त्र में शङ्ख अस्थि, एवं गोमय विष्ठा होते हुए भी पवित्र कहा जाता है शङ्ख अस्थि होने पर भी इतना पवित्र है कि मन्दिर में अथवा पूजा में यह अपरिहार्य है। आस्तिक समाज और साधु गोष्ठी की विधि है कि प्रातःकाल अह्निक। पूजादि समाप्ति के बाद भोजन करना उसके पहले नहीं करना, किन्तु विशेष विधि है कि भगवत प्रसाद –

''प्राप्ति मात्रेण भोक्तव्यम्''।

''दृष्टान्त''

महाप्रभु श्री गौराङ्ग के निर्देश से सर्वभौम महाशय नीलाचल में इस विधि का पालन किये थे। साधारण विधि होती है कि स्नान के बाद चतुर्थ पंञ्चम वर्णीय व्यक्ति को स्पर्श नहीं करना। इस विषय में विशेष विधान यह है कि – निम्न वर्णीय व्यक्ति यदि कोई उत्तम साधु, उत्तम वैष्णव हो तो स्नानान्तर उसको स्पर्श करने से पवित्रता वृद्धि होती है। रामानुज स्वामी कावेरी स्नान के बाद बहुत ब्राह्माण शिष्य संग में रहने पर भी निम्न वर्णीय महाभक्त धनुर्धरदास के हाथ को पकड़ कर मठ में प्रत्यावर्तन करते। साधारण शास्त्र कहता है– कि ब्राह्मण अन्य वर्णो की अपेक्षा श्रेष्ठ है, किन्तु विशेष शास्त्र कहता है कि ब्राह्मण यदि पद्मनाभ नारायण के चरण कमल से विमुख रहता हो तो उस ब्राह्मण से नारायण के चरण कमल में प्रेम रखने वाला चाण्डाल श्रेष्ठ है –

विप्राद् द्विषड्गुणयुत्तादरविन्दनाभ ।
पादारविन्द विमुखात् श्वपचंवरिष्ठम् ।।

साधारण शास्त्र कहता है कि सर्प काटने से मृत्यु अपमृत्यु है इससे सद्गति नहीं होती। किन्तु परम वैष्णव परीक्षित सर्प के काटने पर भी सद्गति प्राप्त किये। साधारण शास्त्र कहता है– कि कर्म योग, ज्ञान योग वा भक्तियोग भगवत्प्राप्ति का श्रेष्ठ मार्ग वा उपाय है, विशेष शास्त्र कहता है – उपरोक्त मार्गत्रय की अपेक्षा भगवान के चरण में शरणागति ही उनको लाभ करने का श्रेष्ठ उपाय है। उक्त मार्गत्रय की भगवत प्राप्ति में उपाय रूपता

का वर्जन करते हुए शरणागति मार्ग का अवलम्ब करो। यही विशेष शास्त्र है – अतएव गीता में कर्मयोग, ज्ञान योग एवं भक्ति योग के उपदेश के बाद स्वयं श्रीकृष्ण चन्द्र की उक्ति –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामिमाशुचः।। गीता ।। (18/

यह वचन है श्री कृष्णचन्द्र का गुह्यतम वचन एवं परम वचन । साधारण शास्त्र कहता है कि जीव कर्मानुगुण, ईश्वर उसको फल भोग कराते हैं, जो जीव जिस प्रकार के फल भोग का अधिकारी होता है तदनुरूप सांसारिक मनोवृत्ति, एवं बुद्धि वृत्ति देकर तदनुरूप परिवेश में जन्मदान करते हैं।

'शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते'

आदि शास्त्र वाक्य इसी का प्रतिपादन करते हैं। विशेष शास्त्र कहता है – जो व्यक्ति ईश्वर का दृढ़ से भजन करते हैं वे इन सब बाँधे नियमों के वाहिर है उन लोगों के लिए ईश्वर का विशेष नियम है। जिस में जिस उपाय से ये सब दृढ़ भक्तगण उनको सुगमता से पा सके उस भाव से ही ईश्वर व्यवस्था कर देते तदनुरूप उनको बुद्धिवृत्ति प्रदान करते हैं।

''ददाभिबुद्धियोगंतं येन मामुपयान्ति ते ''।

भगवान अपने कन्धे पर इन दृढ़ भक्तगण का योग क्षेम वहन करते हैं 'योग क्षेमं वहाम्यहम्'– यह उन मुख निःसृत वाणी हैं। विशेष कारण से विशेष शास्त्र साधारण शास्त्र की अपेक्षा बलवान है विशेष शा विशेष अनुभव का विलक्षण वस्तु है। इसकी महिमा समझना कठिन है। सभी इसकी मर्यादा नहीं रख सक विशेष अधिकारी के निकट ही इस विशेष शास्त्र की महिमा प्रतिभात होकर विशेष भाव से समादृत होती है।

''रहस्य शास्त्र''

विभु वस्तु ब्रह्म, पर वस्तु परमात्मा एवं गुण पूर्ण भगवान् पर्यायवाची है। **'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।'** श्रीमद्भा : 1/2/11 वे अखिल कोटि ब्रह्मांड की सृष्टि, स्थिति, प्रलय, नियमन एवं हित करने हैं। और ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज गुणों से युक्त होकर उक्त कार्यो का निर्वाह करते रहते हैं। लोग उनके द्वारा सृष्ट जीव हैं, वे हम लोगों के प्रकृत हित कामी पिता हैं। हम लोगों के उद्धार के लिए ये वि असीम पुरुष असीम रूप से जीवगण के मध्य अवतार रूप में अवतीर्ण होकर उनके मध्य में निरन्तर मि मिशा करते हैं और किसी किसी समय में किस किस तरह छलबल कौशल से आश्रित रक्षण, दुष्कृति द आदि कार्य साध करते हैं वह साधारण बुद्धि के एकान्त अगम्य है। वे अपनी इस भावना धारा, कार्यधारा स्वतः नहीं समझाने से कौन समझ सकता है।

''रहस्य शास्त्र भगवद्विषय में अनुभव सिद्ध महात्माओं का उपलब्ध तत्व समूह''

उनकी इस विस्मयकर अमावनीय निगूढ़ कार्य करण प्रणाली का निरन्तर आत्यन्तिक अनुसन्धान

श्रीमते रामानुजाय नमः



वाधूलाब्धिसरोजसौम्यविकसद् रङ्गार्यदौहित्रकं,
श्रीमत्कोविद्श्रीनिवासतनयं सौशील्यभूषान्वितम् ।
श्रीमद्वेङ्कटयोगिराजचरणे न्यस्तात्मभावंमुदा,
श्रीरङ्गार्यगुरुं भजामि सततं कारुण्यवारांनिधिम् ॥

अनुचिन्तन एवं अनुभव के द्वारा भगवत्कृपा के फल से अनुभव सिद्ध साधुगण अपने हृदय में यह निगूढ़ गोपन रहस्य का विषय उपलब्धि करते रहते हैं, अति यत्न पूर्वक यह अमूल्य विधि अपने अपने हृदय गुफा में संरक्षित कर रखते हैं। ये उपलब्धि सिद्ध महात्मागण इस अमूल्य रहस्य विधि को अधिकारी भक्त के निकट उपदेश एवं अनुष्ठान के द्वारा यथायोग्य रूप से एक एक करके प्रकाश करते रहते हैं।

साधारण शास्त्र में ज्ञान लाभ करने के बाद विशेष शास्त्र में अधिकार होता है। विशेष शास्त्र में व्युत्पन्न होने पर साधक रहस्य शास्त्र का अधिकारी होता है, तब वे इस रहस्य शास्त्र की उपयुक्त मर्यादा और महिमा समझ सकते हैं। तब वे उपलब्धि करने में समर्थ होते हैं कि केवल तर्क के द्वारा धर्म तत्व यथार्थ रूप से निर्द्धारित नहीं होता, विशेष विशेष अधिकारी के लिए ऋषिगण का विभिन्न मतवाद प्रवर्तित है एवं धर्म का प्रकृत गूढ़ तत्व और प्रकृत रहस्य, अनुभवी सिद्ध माहत्मागण के हृदय गुहा में निहित हैं अमूल्य यह रहस्य रत्नराजि अति यत्न के सहित उनके हृदय कन्दर में संरक्षित रहता है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः ऋषयो विभिन्नाः,
नायं ऋषिर्यस्य मतं नभिन्नम् ।
धर्मस्यतत्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः सपन्थाः ।। (महाभारत)

अर्थात् केवल तर्क के द्वारा प्रकृत मीमांसा नहीं होती। भिन्न अधिकारियों के उपकार साधन के लिए नाना मुनि का नाना मत है। धर्म का प्रकृत तत्व उपलब्धि सिद्ध साधुओं के हृदय गुहा में निहित रहता है। वे जिस पथ का अबलम्बन करें, वही उत्कृष्ट पथ है एवं वही पथ ही अवलम्बन करना चाहिए। इस प्रकार शास्त्रगत निगूढ़ रहस्य वेत्ता सिद्ध महापुरुष अतीव विरल हैं। यह धर्म साक्षात् भगवत प्रणीत है। ऋषिगण नाना विध संयम अवलम्बन पूर्वक आत्यन्तिक अनुचिन्तन के द्वारा अपौरुषेय इस धर्म के मूलतत्व का दर्शन करके अति संक्षेप में दुर्वोध्य अल्पाक्षरी श्रुति शास्त्र से उसकी रक्षा कर गये हैं। ये सब तत्व रामायण, महाभारत (इतिहास) में एवं विभिन्न पुराणों में उपवृहित (विवृत) होकर विस्तृत भाव से दृष्टान्त के सहित आलोचना के द्वारा अपेक्षाकृत बोधगम्य किया हुआ है। अतएव शास्त्र कहता है–

''इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्''

इस प्रकार से बहुधा विश्लेषण द्वारा सरल किया हुआ होने पर भी साधारण धर्म पिपासुगण के निकट साक्षात् भगवत्प्रणीत इस धर्म का प्रकृत तात्पर्य बहुलांश में दुर्वोध्य ही रह गया है।

धर्मं तु साक्षाद्भगवत् प्रणीतं,
न वै विदुः ऋषयो नापि देवाः।
नसिद्धमुख्याः असुरा मनुष्याः,
कुतो नु विद्याधर चारणादयः।। भागवत् 6/3/19।।

यमराज अपने दूतों से कहते हैं– कि इस भागवत धर्म का यथार्थ तत्व केवल द्वादश महाजन जानते हैं

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो वलिर्वैयासकिर्वयम्।।
द्वादशैते विजानीमः धर्मं भागवतं भटाः। भाः 6/3/20,21।।
(कुमारः सनत्कुमार, वैयासकि–शुकदेव)

केवल शास्त्र पढ़ने से ही परमेश्वर के विषय में गुह्य समस्त तत्वों का ज्ञान नहीं होता। रहस्यवेत्ता महा के मुख से बिना सुने बिना समझे विभ्रम उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। **'शास्त्र ज्ञानं बहुक्ले बुद्धे :चपल कारणम्?**

अधीत्य चतुरान् वेदान, धर्म शास्त्राणि चानघ।
सर्वेश्वरं न जानाति दर्वीपाकरसं यथा।।

विराट धर्म के भण्डार में निहित यह सब परम उपादेय परम कल्याण कर यह रहस्य तत्व व तथ्य समू प्रकृत सन्धान पाने के लिए इन्द्रिय संयम और अध्यवसाय चाहिए, ऐकान्तिक आत्यन्तिक अनुचिन्तन ध्यान चाहिए, उपार्जित ज्ञान के अनुगुण अपना अनुष्ठान चाहिए, एवं सर्वोपरि महाजनो की कृपा, उनक का उपदेश श्रवण, एवं उनके ज्ञान अनुष्ठान का अनुधावन और अनुवर्त्तन चाहिए।

''रहस्य शास्त्र, अल्पाक्षरी शास्त्र का परिपूरक और रहस्य ग्रन्थि का उन्मोत्तक''

ज्ञान एवं अनुष्ठान परस्पर का सहायक और पुष्टि साधक है। अनुष्ठान ही ज्ञानोपलब्धि का प्रकृष्ट है। अतएव रहस्य विद्गण कहते हैं – ''ज्ञानेन सत्ता, अनुष्ठानेन समृद्धिः।'' सब धर्म शास्त्र ही पाँच विषय उपदेश देते हैं – 1– ब्रह्म स्वरूप वा भगवत्स्वरूप, 2– जीव का स्वरूप, 3– जीव के द्वारा भगवत् प्राप्ति उपाय, 4– भगवत प्राप्ति का फल, 5– भगवत प्राप्ति का प्रतिबन्धक। इन पाँचों विषय के प्रत्येक के मध्य सब निगूढ़तत्व निहित है। उपरोक्त उपाय से ये सब रहस्य की ग्रन्थि जितना ही शिथिल होती रहेगी, ऐकान्ति साधक नव नव उद्घाटित धर्म रहस्य के अनुभव में उतना ही मुग्ध होता रहेगा। रहस्य ज्ञान लोलुप साधक मन और प्राण उतने ही आनन्द में भर जायेगा।

धर्म जगत के इस अमूल्य रहस्य तत्व का प्रकृत स्वरूप दृष्टान्त के द्वारा परिस्फुट करने की चेष्टा की रही है – सांसारिक मनुष्य साधारणतः विषय प्रवण होते हैं। स्त्री, पुत्र, कन्या, आत्मीय स्वजन, धन, जन क्षेत्रादि प्रत्यक्ष इष्ट भोग्यवस्तु के लिए उनकी आसक्ति और प्रावण्य रहता है। और कोई कोई इस सांसारिक भोग को असार समझ कर, अदृष्ट स्वर्गादि भोग को सार वस्तु समझते हुए उन भोग्य वस्तुओं लाभ की आशा से यज्ञादि कर्म सम्पन्न करके देहान्त में स्वर्ग भोग करते रहते हैं।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते,
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्र लोकाम् अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्''। गी0 9/20।।

''श्रीमद्भगवद् गीता का परम रहस्य विषय''

इस श्रेणी के व्यक्ति की अपेक्षा अल्पतरव्यक्ति स्वर्गादि फल को अनित्य उपलब्धि करके (क्षीणे पुण्ये प्रविशन्ति–मर्त्यलोकम्)' तदपेक्षा नित्यफल जो संसार विमुक्ति है उस सारतर वस्तु की तरफ आकृष्ट होकर मोक्ष लाभ के लिए प्रयत्न शील रहते हैं। अपनी अपनी प्रकृति एवं अधिकार के भेद से वे अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए कर्म, ज्ञान, वा भक्ति मार्ग का अवलम्बन करते हैं। मोक्षाभिलाषी मोक्ष–शास्त्र – वेदान्त, ब्रह्मसूत्र, एवं गीता– यह प्रस्थानत्रय, उक्तमार्गत्रय के वैभव को वर्णन करने में मुखर है।

द्वितीय प्रवाह

चतुर्थ अध्याय

''रहस्य तत्व – रसतत्व''

रहस्य तत्व – गीता में कर्म, ज्ञान एवं भक्तियोग का उपदेश समाप्त होने पर परिशेष में 18/66 श्लोक में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अर्जुन को गुह्यतम अर्थात् सारतम रहस्य विषय का उपदेश दिये हैं। यह उनका चरम, परम उपदेश है। इसके बाद वे और कोई भी उपदेश नहीं दिये। इसको सर्व ''गुह्यतमं परमं वचः कहकर आख्यात किये हैं। यही उनका सर्व गुह्यतम चरम रहस्य उपदेश है।

''सारतम रहस्य विषय शरणागति''

यह सारतम परम गुह्य उपदेश शरणागति का उपदेश है। अर्थात् संसार विभुक्ति पूर्वक भगवत् प्राप्ति के लिए भगवत चरण में शरणागति सर्वोत्कृष्ट उपाय है। गीता में और एक स्थल पर श्री कृष्णचन्द्र अपने उपदेश को गुह्यतम अर्थात् परम रहस्य विषय कहकर नवम अध्याय में अभिहित किये हैं।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।। (9/1)

इस नवम अध्याय में परम रहस्य विषय का उपदेश है। (1) परम पुरुष भगवान् की सर्वव्यापकता (9/4) (2) जीव के सहित उनका मातृत्व, पितृत्व, सर्वबन्धुत्व आदि सम्बन्ध (9/17,18) (3) मानुष शरीर धारण करके अवतार के समय में भी उनकी परमपुरुष सत्ता (9/11) (4) अनन्य भक्ति का माहात्म्य (9/30–32) । उपदिष्ट प्रत्येक विषय परम गुह्य वस्तु परम रहस्य वस्तु है।

इस प्रकार प्रत्येक रहस्य का विषय ऐकान्तिक और आत्यन्तिक अनुभव के द्वारा पुङ्खानु पुङ्ख रुप से विश्लेषण करते हुए तदन्तर्गत छिपी हुई अमूल्य निधियाँ पृथक पृथक भाव में सम्यक् उद्धार कर अनुभवी महाजनगण अपने अपने हृदय गुफा में यंत्न के सहित रक्षा करके रखते हैं। रहस्य लोलुप उपयुक्त अधिकारी के निकट वे परम अनुग्रह पूर्वक यह सब महाधन अति आनन्द पूर्वक वितरण करते रहते हैं।

''रहस्य शास्त्र, अनुभव और उपलब्धि का विषय''

अनुभव और उपलब्धि के द्वारा उद्घाटित एवं प्रत्यक्षीकृत ये सब निगूढ़ तत्व समूह ''रहस्य तत्त्व'' नाम से अभिहित है। यह दुर्बोध्य गुह्य रहस्य अतीव मूल्यवान् है तथा इसका ज्ञान ही मोक्ष को देने वाला है यह विभिन्न शास्त्र ग्रन्थ मुक्त कण्ठ से गान किया हैं – ''गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते' (भाग 6/3/2) यह गुह्य रहस्य शास्त्र अति विशुद्ध एवं दुर्बोध्य है। इसके मर्म की उपलब्धि हो जाने पर तब इससे निर्गत रस के आस्वादन में रहस्य विद् साधक का प्राण मन परितृप्त हो जाता है। वर्णित सारतमतत्व के ऊपर मर्मज्ञसिद्ध पुरुषगण एक और सर्वश्रेष्ठ विषय की बात कहे हैं। उसको वे सार गुह्यतम विषय कह कर अभिहित किये हैं।

''सार गुह्यतम रहस्य विषय– धर्मतत्व का अज्ञात विशेष मर्म''

इन रहस्य विद् महाजनों की चिन्ता धारा एवं अनुभव प्रणाली हम लोगों के निकट सम्पूर्ण अज्ञात कारण इस विषय में वे कभी कुछ प्रकाश नहीं करते। उनका मन अत्यन्त गम्भीर एवं गम्भीर होता है। संसार नृपतिगण वा धनाढ्यगण बहुमूल्यरत्न दृढ़ सन्दूक में अच्छी तरह ताला बन्द करके तदनन्तर विशेष रूप निर्मित किसी सुदृढ़ घर के भीतर (STRONG - ROOM) में अति यत्न के सहित अत्यन्त गोपन सुरक्षित रखते हैं। इस ताला के उपयुक्त चाभी (काटी) भी रहती है – उसके बिना ताला खोलना सम्भव न होता। एवं इन सब सन्दूकों से रत्नराजी उद्धार करना सम्भव नहीं है। उसी तरह धर्म जगत के विभिन्न शा की अमूल्य रहस्यावली भी विभिन्न दृढ़ सन्दूक में सुदृढ़ ताला बन्द रहती है। नियत अनुभव निरत महात्मागण निरन्तर ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक अनुभव के द्वारा उक्त सुरक्षित ताला बन्द सिन्दूक के भी स्थित विभिन्न रहस्य की उपयुक्त चाभी काटी का संग्रह करने में समर्थ होते हैं। उस चाभी काटी के द्वारा रहस्यावली का विशिष्ट विशिष्ट अभिप्राय, विशिष्ट विशिष्ट मर्म उद्धार करते रहते हैं। रहस्यगत मर्म उद्धाटन में समर्थ ये महात्मागण ही सदाचार्य पदवाच्य हैं। रत्नपूर्ण सिन्दूक का सन्धान मिलने पर धन व्यक्ति की जो दशा होती है रहस्यगत गर्भार्थ लुब्ध आचार्य पुरुष अथवा उच्च साधक कभीं धर्म रहस्य जगत मर्मार्थ के सन्धान पाने से सौभाग्यवान् होकर उसी रूप अवस्था को प्राप्त होते हैं, आनन्द से आत्महारा हो जा हैं। शिष्यगण को रहस्यावृत अज्ञात मर्मार्थ के उद्धाटन की चाभी का सन्धान देना ही सदाचार्य का प्रधान होता है। आचार्य के इस श्रेष्ठ कृत्य को ही शास्त्र ''अज्ञात ज्ञापन'' कहकर महिमान्वित किया है, इसी का से आचार्य को अज्ञान ज्ञापक कह कर अभिहित किया है।

इस दुर्बोध्य रहस्य विषय एवं उसके मर्मार्थ विषय को कथंचित् परिस्फुट करने के लिए कई एक दृष्टा उल्लेख किया जाता है – शास्त्र कहता है –

अहल्याद्रौपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा ।
पञ्चकन्यां स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ।।

नित्य प्रात:काल जगकर इन पाँच कन्याओं का नित्य स्मरण करना चाहिए यही शास्त्र की आज्ञा है। सभी के मन में शङ्का हो सकती है कि इन पाँच कन्याओं में प्रत्येक ही में कोई न कोई निन्दनीय आचरण है – गौतम पत्नी का इन्द्रगमन, द्रौपदी के पाँच पति, पाण्डु पत्नी कुन्ती का सूर्यगमन, तारा और मन्दोदरी का एकाधिक पतित्व, सभी निन्दार्ह था। फिर किस कारण से उनका नित्य स्मरण करेंगे! इस विषय में क्या रहस्य है? उसे जानने के लिए सभी में, आग्रह होता है। निम्नलिखित श्लोक इस रहस्य के उद्घाटन की एक चाभी काटी है–

शास्त्ताथ भारती पुण्या, पतिव्रतां च द्रौपदी ।
तद्धवा पाण्डवाः पुण्याः प्रसन्ने श्री निकेतने ।।

श्री निकेतन अर्थात् जिसके वक्षस्थल में श्री देवी (लक्ष्मी देवी) निवास करती हैं वही नारायण (श्रीकृष्ण चन्द्र जी) द्रौपदी और पाण्डवों के प्रतिप्रसन्न थे अतएव द्रौपदी पुण्यवती और नित्य स्मरणीय है मूर्तिमान् पुण्य विग्रह श्री भगवान् की प्रसन्नता ही पुण्य का हेतु है यत् तत् प्रियं तदेव पुण्यम्'। और द्रौपदी के प्रति प्रसन्नता का कारण श्रीकृष्ण जी के चरण में द्रौपदी की एकान्त निर्भरता है।

''पञ्चकन्या का चिरस्मरणीयत्व का कारण श्री भगवान के चरण में शरणागति''

दुर्योधन की राज्य सभा में प्रकाश्य भाव से रजस्वला द्रौपदी का वस्त्र हरण किया जा रहा है, वीर पञ्चपति पञ्च पाण्डव इस सभा में उपस्थित थे किन्तु प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण वे इस असह्य अवस्था में भी निर्वाक् और निश्चय थे। एकान्त असहाय अवस्था में द्रौपदी अपनी लज्जा रक्षा और वस्त्र रक्षा के लिए अपने से कोई चेष्टा ही नहीं की। एकान्तभाव श्रीकृष्ण के शरणागत होकर इस महा आपातकाल में वे अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर करबद्ध रूप से रक्षा के लिए अतिकातरता के सहित श्रीकृष्ण चन्द्र को पुकारी थीं –

हे कृष्ण द्वारकावासिन् क्वासि यादवनन्दन ।
इमामावस्थां सम्प्राप्तां किमर्थंत्वंमुपेक्षसे ।।

इस कातर प्रार्थना को सुनते ही आश्रितवत्सल श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका से स्वयं वस्त्र रूपी होकर द्रौपदी की लज्जा रक्षाकिये थे। द्रौपदी का यह कातर आह्वान श्रीकृष्णचन्द्र को इतना अभिभूत कर दिया था कि उनको कहना पड़ा था।

हा कृष्णेति यदाक्रन्दत् कृष्णा माँ दूरवासिनम् ।
ऋणं प्रवृद्धमेव मे ह्रदयान्नापसर्पति ।।

वे कहे थे, कि द्रौपदी का यह आकुल आह्वान हमको ऋणबद्ध कर दिया है हमें चिर ऋणी कर रखा है। द्रौपदी की तरह अहल्या, कुन्ती, तारा एवं मन्दोदरी ये चारों कन्याएँ भी श्री भगवान् के चरण में एकान्त भाव से शरणागता थीं। स्त्री जाति होते हुए भी कुन्ती श्री कृष्ण को एवं अहल्या, तारा, मन्दोदरी रामचन्द्र को साक्षात् पर ब्रह्म नारायण रूप से चीन्ह सकी थीं, एवं उनके एकान्त शरणागता हुई थीं। रावणबध के बाद मन्दोदरी

रामचन्द्र को दर्शन करके ही कहीं थीं– ''तमसः परमो धाता शङ्ख चक्र गदघरः।। हे राम! आप ज्योतिर्मय धाता शङ्ख चक्र गदाधारी साक्षात् नारायण हैं।

महाभारत युद्ध में अर्जुन की रक्षा करने के लिए, ''युद्ध में अस्त्र धारण नहीं करूँगा'' अपनी इस प्रतिज्ञा को भङ्ग करके श्रीकृष्णचन्द्र रथचक्र धारण किये।

''श्रीकृष्ण का पाण्डव पक्ष पातित्व का रहस्य – श्रीकृष्णचन्द्र पर एकान्त निर्भरता''

आकाश में सूर्य के रहते हुए भी अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा सूर्य को आच्छादन करके रात्रि का प्रकट करके प्रवञ्चना करते हुए अर्जुन से जयद्रथ वध कराये थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का इस पक्षपातित्व रहस्य का मूल कारण उनके ऊपर पाण्डवों की एकान्त निर्भरता है। और एकान्त शरणागति एवं आश्रितवात्सल्य गुण है।

''कृष्णाश्रयाकृष्णवलाः कृष्ण प्राणाः हिपाण्डवाः''।।

पाण्डवों के प्राण श्री कृष्ण थे, श्री कृष्ण ही उनके बल और सर्वस्व थे। इसी हेतु से पाण्डव भी श्रीकृष्ण के प्राण थे। 'मम प्राणाहि पाण्डवाः। यहतत्व कृष्ण का पाण्डव पक्ष पातित्व रूप रहस्य के उद्घाटन की चाभी कुंजी है।

''नृसिंह देव के आविर्भाव का रहस्य – प्रह्लाद के वचन की सत्यता की रक्षा''

(3) हम लोग जानते हैं कि परब्रह्म भगवान स्वरूप से सर्वत्र व्याप्त हैं। इस सर्वत्र व्याप्ति के कारण उन का नाम विष्णु है। किन्तु अपने दिव्य रूप से भी वे सर्वत्र व्याप्त हैं उसका सन्धान हम लोग साधारणतः नहीं जानते। तो भी इस विषय में हम लोग उनके नृसिंह रूप से आविर्भाव के रहस्य द्वारा जान सकते हैं। परम प्रिय भक्त प्रह्लाद का वचन सत्य करने के लिए ही स्तम्भ से नृसिंह रूप में उनका आविर्भाव हुआ है।

'सत्य विधातुं निज भृत्य भाषितम्'।। श्रीमद्भा: 7।8।18।।

नृसिंह विग्रह के धारण का यही प्रकृत रहस्य है। इसी हेतु से हिरण्य कशिपुका वध हुआ। यह रहस्य कितना निगूढ़ है वह अनुभव सिद्ध महापुरुषों के गर्भार्थ पूर्ण श्लोक से अधिकतर परिस्फुट हुआ है।

क्लेदंवपुः क्वचवयः सुकुमार मेतत्,
कृत्वा प्रमत्त इह दारुण यातनास्ते ।
आलोचितं विषय मेतदभूत पूर्वम्,
क्षन्तव्यमङ्ग! यदि मे समयो विलम्बम् ।।

स्तम्भ से आविर्भाव के पश्चात् नृसिंह भगवान् हिरण्य कशिपु के द्वारा बहु प्रकार से प्रह्लाद के निपीड़न से अत्यन्त क्लिष्ट होकर अतियत्न के सहित उनको गोद में लेकर आदरपूर्वक कहते हैं– हे प्रह्लाद ! तुम्हारे यह सुकुमार शरीर, यह वाल्यावस्था, यह प्रमत्त हिरण्य कशिपु तुम्हें कितना यातना दिया था! तुम्हारी यह अभूतपूर्व यातना का विषय हमने बार–बार अनुभव किया है। हे प्रिय! पहले ही तुम्हारे पास आना चाहिए था।

हमारे आने में विलम्ब हुआ है इसके लिए हमें क्षमा करो। भगवान् के इस प्रकार का भक्तानुग्रह कातर' स्वभाव ही उक्त रहस्य की चाभी काठी है।

(4) पाण्डवगण श्री कृष्ण के अत्यन्त प्रिय थे। पञ्च पाण्डव के लिए श्रीकृष्ण दुर्योधन से पञ्च ग्राम देने को कहे थे, उसके उत्तर में दुर्योधन ने कहा था 'कि सूच्यग्र मेदिनी भी हम उन लोगों को नहीं देंगे।''

''महाभारत युद्ध का रहस्य–द्रौपदी केशवन्धन''

इसी कारण कौरव और पाण्डव का युद्ध संघटित हुआ था। एवं अर्जुन को ज्ञानोपदेशदान के लिए ही गीता शास्त्र की अवतारणा हुई, यह हम लोग जानते हैं। यहीं साधारण शास्त्र है। किन्तु रहस्य अन्य रूप से कहता है। ''द्रौपद्याः केशानां विकीर्णतया तद्बन्धनार्थं कर्तव्यमजानत् अपवरकस्थितं वहिर्विससर्ज। (भट्टार्यः)। रहस्यज्ञ वैष्णवाचार्य महापुरुष भट्टर स्वामी कहते हैं – दुर्योधन की राजसभा में दुःशासन कर्त्तृक आलुलायित केशा द्रौपदी के केश बन्धन के लिए ही यह महाभारत युद्ध हुआ एवं कृष्ण कर्त्तृक अर्जुन को गीता का उपदेश मिला। द्रौपदी के केशाकर्षण के समय पञ्च पाण्डव वीर होते हुए भी प्रतिज्ञा रक्षा रूप साधारण धर्म पालन के लिए सभा में निश्चल होकर बैठे ही रहे। द्रौपदी के इस प्राणान्त विपद में कोई ने इस सभा में अङ्गुलीतक नहीं उठाये। महाविपन्ना द्रौपदी ने इस सभा में प्रतिज्ञा किया था दुःशासन के रक्त से ही मैं अपना छूटा हुआ केश बन्धन करूँगी अन्यथा बन्धन नहीं करूँगी। अनन्यशरणा द्रौपदी की इस प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए ही भक्त प्राण कृष्ण उक्त सभा के एक कोने में बैठे हुए पञ्च पाण्डवों को खींच कर बाहर ले आये और भारत युद्ध करने के लिए उत्साहित किये थे। अर्जुन को युद्ध में उद्बुद्ध करने के लिए कृष्ण के द्वारा गीता की अवतारणा हुई थी। इसलिए ही हम लोग गीता के उपदेश में बहुत स्थल पर कृष्ण के द्वारा अर्जुन को युद्ध करने लिए उत्साहित करते हुए देखते हैं।

'धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते?' गीता 2/30।
'निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः। गीता– 3/30।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भारत।'
मामनुस्मर युद्ध्यच।'

रहस्य शास्त्र कहता है – परम शरणागता द्रौपदी के केश बन्धनार्थ ही श्री कृष्ण यह महाभारत युद्ध संघटन कराये थे।

''भगवत्प्राति का श्रेष्ठ साधन आचार्याभिमान''

(5) साधारण शास्त्र कहता है – कि कर्म, ज्ञान भक्ति भगवत प्राप्ति का उपाय है। विशेष शास्त्र कहता है कि भगवान् के चरण में शरणागति ही उत्कृष्ट उपाय है। रहस्य शास्त्र कहता है–कि आचार्यभिमान ही सर्वोत्कृष्ट एवं सर्व सुलभ उपाय है।

ऊपर कहे हुए कई एक दृष्टान्त इस रहस्य विषय एवं रहस्य उद्घाटन के लिए निहित तत्वावली एक

दिग्दर्शन मात्र है। श्री भगवान की रहस्यमयी लीला का मर्मार्थ अनुभव के लिए प्रयोजन, उनके दि कल्याणमयगुणों का अनुभव करना, और उस विषय में अन्तर्दृष्टि रखना है। ये दो अमूल्य मूल वस्तु अ सिद्ध महान आचार्यो के ह्रदिगुफा में सुनिर्दिष्ट भाव से निहित और सुरक्षित रहता है। इन सब रहस्य विषयों मर्भार्थ उपलब्धि करने के लिए मर्मज्ञ आचार्य की सन्निधि में वास करना होगा। अनुवर्तन और सेवन आदि द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करके उपयुक्त काल समझ कर समुचित भाव से प्रश्न करना होगा। तभी इन सब अ दुर्वोध्य वस्तुओं की इन सब दुर्वोध्य रहस्यावलियों का रहस्य उद्‌घाटित होगा।

''रहस्य शास्त्र का प्रधानतम रहस्य–मन्त्र रहस्य''

रहस्य शास्त्र का प्रधानतम रहस्य मन्त्र प्रद आचार्य के द्वारा प्रदत्त महामन्त्र है। यह मन्त्र ही सर्व जप रहस्य विषय का वीज स्वरूप है। इसी कारण मन्त्र एवं रहस्य समपर्यायवाचक शब्द रूप से व्यवहृत होते मन्त्र कहने से तीन वस्तु समझी जाती है। मन्त्र, मन्त्र प्रद गुरु, एवं मन्त्रगत देवता। मन्त्र अल्पाक्षरी होते इस अल्पाक्षरी मन्त्र के मध्य में उक्त तीनों विषयों का ही गूढ़ रहस्य निहित है। मुमुक्षु व्यक्ति के जानने योग्य रहस्य इसमें निहित हैं। मन्त्र जप से सिद्ध सदाचार्यगण निरन्तर इस मन्त्र के मर्मार्थ को अनुसन्धान के तद्‌गत समस्त रहस्यावली उद्धाटित करते रहते हैं। (मन्त्रगत देवता का स्वरूप, रूप गुण, लीला, विभूति विषय वे सदाचार्यगण यह मन्त्र अवलम्बन करके तथा इस मन्त्र के अनुसन्धानकर्ता पूर्वाचार्यगणों अनुष्ठान सदा स्मरण करके मनन एवं अनुचिन्तन द्वारा यह सव विषय प्रत्यक्ष की तरह उपलब्धि करते हैं

''मन्त्र रहस्य का स्वरूप और तात्पर्य्य''

ये सब रहस्य वेत्ता सदाचार्यगण उपदेश एवं अनुष्ठान के द्वारा अपने शिष्यों के भीतर मन्त्रगत अज्ञात रहस्यों का ज्ञान प्रदान करते रहते हैं। यह अज्ञात ज्ञापन ही आचार्यो के द्वारा शिष्यों के प्रति श्रेष्ठ है। शास्त्र कहता है – ''जप्तव्यं गुरु परम्परा मंत्र च''। सद्‌गुरु निरन्तर मन्त्र जप में मन्त्रार्थ के अनुसन्धान एवं गुरु परम्परा के चिन्तन में निश्चय ही सिद्धिलाभकिये हैं। इसका फल होता है, गुरु परम्परा की कृपा कृपा से मन्त्रगत रहस्य, मन्त्र देवता एवं मन्त्र प्रद स्व आचार्य विषय में भी सिद्धि लाभ प्राप्त होना आचार्यगण इन सब अज्ञात रहस्यों की सारतम वस्तु जानकर अपने शिष्यगण को भी इस विषय में व्युत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकार सदाचार्य की कृपा से सत्सम्प्रदायगत आचार्य परम्परा के में मन्त्रगत रहस्य और उसका मर्भार्थ शिष्यों के मध्य उत्तरोत्तर प्रकाश पाता है। और पुष्टि लाभ करता है। आचार्य परम्परा ही अपने शिष्य परम्परा के भीतर इन समस्त रहस्य तत्वों का शिक्षा दान करते हुए शि परम्परा को रहस्य ज्ञान में ज्ञानवान् करके अपने भी कृत कृत्य होते हैं। सदाचार्य लाभ का यही साफल्य चिराचरित प्राचीन सम्प्रदाय का वैशिष्ट्य यही है।

''रसानुभव–रसधारा–रसतत्व''

आनन्द को हम सभी चाहते हैं– हम सभी थोड़ा बहुत सांसारिक आनन्द भोग किये हैं। इन्द्रिय ग्राह्य

आनन्द अल्प एवं अस्थिर होता है इसे भी अच्छी तरह समझ गये हैं। धन, जन, मान, पूजा, प्रतिष्ठा आदिक वस्तु हम लोगों को तात्कालिक आनन्द देता है। परन्तु इन सब उपभोग्य वस्तु लाभ के साथ साथ ही भावी दु:ख मिला हुआ है। जो तात्कालिक आनन्द से अधिक दु:ख को देने वाला है। जब प्राप्त धन, वा जन का क्षय होगा, स्त्री पुत्रादि का वियोग होगा, मानद उच्च पद अपदस्थ होगा तभी आनन्दावसान में दु:ख का उदय होगा।

''आनन्द का स्वरूप, लौकिक और अध्यात्म, जीवन में''

अनेक धनी व्यक्ति स्वास्थ्य भङ्गावस्था में निर्धन साधारण श्रमिक के स्वच्छन्द भोजन का आनन्द देखकर परिताप पूर्वक कहते हैं – हमारे पास अर्थ न रहकर यदि इन लोगों की तरह स्वास्थ्य होता तो हमें अधिक आनन्द मिलता पक्षान्तर में निर्धन स्वस्थ श्रमिक व्यक्ति भावना करता है कि स्वास्थ्य के बदले अगर धन पाता तो आनन्द से रहता। सांसारिक आनन्द की यही धारा है। किन्तु पारमार्थिक आनन्द तद्रूप नहीं है। यह होता है, अविमिश्र आनन्द, क्रम वर्द्धमान् दिव्य आनन्द। यह आनन्द होता है, प्रथभावस्था में ज्ञान लाभ का आनन्द, अन्त में यह संसार विमुक्ति पूर्वक साक्षात भगवत् अनुभव के महाआनन्द में यह पर्यवसित होता है। इस विशुद्ध एवं विराट् आनन्दानुभव के सन्धान में ही दु:ख वहुल त्रिताप सेतप्त हम लोग साधन मार्ग में प्रवृत्त होते हैं। इस जगत के धर्मक्षेत्र की मुख्यतम प्राप्य वस्तु होती है, ब्रह्मानुभव, वा भगवदनुभव। ये ब्रह्म वा भगवान् एकाधार में स्वयं आनन्द वस्तु एवं आनन्दमय वस्तु हैं। आनन्द इनका स्वरूप एवं गुण है। ये जीव को आनन्द दान करते हैं, एवं आनन्द दान करके स्वयं भी आनन्द का उपभोग करते हैं। उपनिषद् कहता है :–

''आनन्दं ब्रह्म' 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेतिकुतश्चन''

'एषहि आनन्दयाति ये आनन्द धन भगवान् आस्वादनीय'

आनन्द रस भी हैं। श्रुति कहती है– 'रसो वैस:' 'ससर्व रस:सर्व गन्ध:'। ब्रह्म के अनुभव वा भगवान् के अनुभव का यह आनन्द एक इन्द्रियातीत अलौकिक वस्तु है। घन आनन्द ही लौकिक एवं अलौकिक सकल आनन्द का मूल उत्स है। समस्त आनन्दतटिनी इस मूल आनन्द सागर में अनुप्रवेश करती हैं। साधन राज्य के इस अलौकिक आनन्द का प्रकृत स्वरूप प्रकाश कर के कहना एकान्त दु:साध्य है। लौकिक आनन्द की तरह प्रकाश करके कहा नहीं जा सकता। इसीलिए ही इस अलौकिक महा आनन्द की आलोचना में लौकिक दृष्टान्त ले आना पड़ता है। यद्यपि भगवदनुभव के अप्राकृत विशुद्ध आनन्द की उपयुक्त उपमा ढूढ़ने से नहीं मिलती तथापि इस गुप्त आनन्द की वाणी और सम्वाद कथञ्चित् प्रकाश करने के लिए दिग्दर्शन रूप से वैषयिक प्राकृत आनन्द की उपमा दी जाती है। यह आनन्द, अनुभव की वस्तु है। यह आस्वादन करने योग्य एक अपूर्व रस वस्तु है। प्रारम्भ में साधक का भगवदनुभवजनित यह आनन्द तरल अवस्था में रहता है। क्रमश: जब भगवद्विषयक गम्भीर चिन्ता एवं ध्यान के फल से इस साधक कर्त्तृक भगवान का स्वरूप रूप गुण लीला एवं विभूतिका अनुभव एक प्रत्यक्ष आकार धारण करता है। तब अनुभवी मर्मज्ञ साधक के हृदय में यह प्रत्यक्ष अनुभव के रूप फल से निविड् आनन्द धन भाव धारण करता है।

''रसतत्व का स्वरूप''

उच्च कोटि साधक एवं सिद्ध महापुरुष के हृदय में यह आनन्द सदा ही विद्यमान रहता है। किसी भी अपसृत नहीं होता। हृदयस्थ यहघन आनन्द तब आस्वादन योग्य एक अपूर्व रस रूप में परिणत हो जाता इस आनन्द घन इसके अधिकारी सिद्ध महा पुरुषगण, इस आनन्द रस को इक्षु रस, मधु, परिपक्व स्वादु एवं अमृत के सहित तुलना किये हैं। क्रम बर्द्धमान इस अप्राकृत घन आनन्द रस से लौकिक तुलना देते परिशेष में खोजने से अन्य कोई भी उपमान पाकर अधिकारी अनुभवसिद्ध महापुरुषगण इसको अतृप्त कहकर अभिहित किये। घन आनन्द स्वरूप घन आनन्दमय ब्रह्म वा भगवान स्वयं आनन्द के इस रस परिणत हो जाते हैं। अनुभवी भक्त यह महा रस आस्वादन करते करते उस रस सागर में डूब जाते हैं, तन्मय जाते हैं।

भगवदनुभव जनित इस महा आनन्द रस की कोई तुलना नहीं हो सकती इति पूर्व उसंका उल्लेख हि हुआ है। तथापि किसी प्रकार से इस महारस वस्तु का एक सन्धान देने के लिए रसज्ञ पुरुषगण द्वारा सांसा आनन्द की उपमा दी गई है। साधारणतः विषय प्रवण सांसारिकों के आनन्द का उत्स होता है, पति, प पुत्र, कन्या, आत्मीय, स्वजन वन्धु – वान्धव और धन जन। इनके सङ्ग से उत्पन्न अनुभव के द्वारा ही वि सांसारिकों को आनन्द रस का उपभोग होता है। भगवदनुभव से उत्पन्न अव्यक्त आनन्द रस धारा को किसी प्रकार से अभिव्यक्त करने के लिए, इस सांसारिक आनन्द धारा को खींचकर उपमा रूप में लाया जाता पति – पत्नी, पिता वा माता – पुत्र, बन्धु–बान्धव, प्रभु–भृत्य, धनैश्वर्य प्रभृति विविध प्रकार वैशिष्ट्य सम्बन्ध जनित उपभोग्य आनन्द रस की उपमा का दृष्टान्त दिया हुआ रहता है।

''रसतत्व की विभिन्न धारा''

यह सब रस ही वैष्णव जगत में मधुर रस, वात्सल्य रस, सख्य रस, दास्य रस, और शान्त रस कहा प्रख्यात हैं। प्रकृत पक्ष में और समस्त रसों के मध्य ही दास्य रस अन्तर्निहित है। मधुर रस की प्रकृष्ट गोपियाँ (श्रीमद्भागवत गोपी गीत में) कहती है– ''किङ्करीस्मनः'' हम सभी तुम्हारी दासी हैं। सख्य रस प्रकृष्ट पात्र कृष्ण सखागण कृष्ण से कहते हैं– ''बिना मूल्ये एमन नफर आर कोथा पाति भाई बिना मूल्य ऐसा नौकर और कहाँ पाओगे। जीव का स्वरूप विचार करने से भी यह कथा प्रतिभात होती है। जीव के स्व विषय में शास्त्र कहता है–

''आत्म दास्यं हरेः स्वाम्यं स्वभाव च सदास्मर।।''
'' दास भूताः स्वतः सर्वे, ह्यात्मानः परमात्मनः।।''

और शास्त्र वाक्य देखने में मिलता है – स्त्री प्राय सकलंजगत'' समस्त जगत् ही भगवान का स्त्री– है। वे ही एक मात्र पुरुष है। अर्थात् स्त्री जिस प्रकार से स्वामी के एकान्त परतंत्र है, सारा जगत् उसी प्र भगवान् के एकान्त परतंत्र है, स्त्री के निकट स्वामी जिस प्रकार एकान्त उपभोग्य वस्तु होता है, जीव के नि

श्री भगवान् भी उसी प्रकार स्वरूपतः उपभोग्यवस्तु है। यहीं आत्मा के साथ परमात्मा का स्वाभाविक सम्बन्ध है। जीवात्मा के सहित परमात्मा का यह अप्राकृत नित्य सम्बन्ध, यह महातत्व सम्यक् उपलब्धि नहीं कर सकने पर मधुर रस अथवा श्रृंगार रस का अधिकारी नहीं हो सकता, इस मधुर रस में सांसारिक पति पत्नी सम्बन्ध का ज्ञातदूप कोई मनोवृत्ति का कोई संश्रव नहीं है। परमात्मा रूपपति के सहित जीव रूप पत्नी का नित्य अप्राकृत सम्बन्ध है, यह जीवात्म परमात्म के मिलन का महा आनन्द रस है। भक्त भागवान् के मिलन में इस महा आनन्द रस की विभिन्न धारा का एक आभास देने के लिए ही उक्त दास्य सख्य, वात्सल्य एवं मधु रस शास्त्र में विवृत हुआ है।

भगवान् के कन्दर्प कोटि लावण्यमय विग्रह का अशेष कल्याणमय गुणगण का एवं वैचित्र्यमय मधुर लीला के रसास्वादन के आनन्द से भक्तगण जिस प्रकार से आत्महारा हो जाते हैं, भक्तों के इस महा आनन्द के अनुभव से भगवान भी उसी प्रकार अथवा उससे अधिक मुग्ध हो जाते हैं। अतएव रसज्ञ सिद्ध महात्मागण कह गये हैं – स व्यामोहति, व्यामोहयति।'' भगवान प्रति मुग्ध होते हैं, भक्त को भी अपने प्रति व्यामुग्धकरा देते हैं। भक्त भगवान् के इस पारम्परिक रस के आस्वादन में भगवान् ही अधिक आनन्द लाभ करते हैं।

''सदीर्घ व्यामोहवान्।'

श्रीकृष्ण को देखकर विदुर पत्नी आनन्द से इतनी आत्महारा हो गई थीं कि वे उनके मुख की तरफ विभोर होकर देखती ही रह गई, सारा विश्व ब्राह्माण्ड भूलकर उनके मुखार विन्द के सौन्दर्य सागर में डूब गई। ''भूख से व्याकुल हुआ हूँ'' कहकर श्रीकृष्ण उनसे खाने के लिए भोजन माँगे, भोजन माँगने पर विदुर पत्नी कृष्ण के मुख की तरफ देखते रहकर ही भोजन के लिए केला देने की आकांक्षा से भोज्य अंश फेककर परित्याज्य अंश छिलका लेकर उनके मुख में रखीं। श्रीकृष्ण परमपरितृप्तिके साथ छिल्का भोजन किये। एवं यह ही उनकी क्षुधा निवृत्ति कर दिया। भक्त के इस अपूर्व व्यामुग्ध भाव को देखने के लिए ही,और अनुभव करने के लिए ही मालूम होता है आश्रित वात्सल्य विवश श्रीकृष्ण क्षुधा प्रकाश करके विदुर पत्नी के निकट भोजन करना चाहते थे। रास लीला के पूर्व में कृष्ण की साङ्केतिक वंशी ध्वनि सुनने पर गोपीगण श्री कृष्ण के मिलन के लिए उन्मत्त हो उठीं तत्क्षणात् जो जिस अवस्था में थीं उसी अवस्था में ही अपने अपने घर से श्रीकृष्ण के पास में, मिलित होने के लिए आत्महारा भाव से बाहर हो गई।

''रासलीला में गोपियों का दृष्टान्त''

कोई पैर का भूषण हाथ में पहन कर ही बाहर हुई कोई वा एक आँख में ही अञ्जन लगाकर बाहर हुई। कृष्ण के मिलन में जाने के समय उन लोगों को इतनी त्वरा थी। कि नीवीवन्ध वसन भूषण छूटकर गिरने लगा। इस विषय में उनका भ्रूक्षेप ही नहीं। कृष्ण मिलन के लिए उन लोगों की प्राणभरी आकुलता इतनी प्रवल थी कि एक गोप वाला कृष्ण मिलन में अपने घर बाधा पाकर कृष्ण चिन्ता करते करते उसी घर पर ही प्राण त्याग कर दिया। यह ही कृष्ण के प्रतिव्यामोह का परिचय है। इस व्यामोह के लिए ही कृष्ण का भी गोपियों के

प्रति इतना व्यामोह है। इसीलिए वे गोपीजन वल्लभ, इसीलिए उनकी रासलीला, इसीलिए है उक्ति–'सव्यामोहति, व्यामोहयति च।

''श्री भगवान की आर्त्तत्राण परायणता''

आर्त्त भक्तों की आर्तित्राण कल्प में भगवान् की एकान्त तत्परता का परिचय हम लोग पाते हैं – ग्राह मुक्त करके आर्त्त गजेन्द्र के रक्षण में, सुग्रीव रक्षण के लिए वालि–वध में, वस्त्र हरण समय में द्रौपदी लज्जा निवारण में, इत्यादि। भगवान् के इस प्रकार बहु मधुर दिव्य आचरण में हम लोग उनके आर्त परायण कल्याण गुण का परिचय पाते हैं। इस प्रकार लीला रस के अनुभव में रस लोलुप भक्तगण आनन्द के समुद्र में डूब जाते हैं। श्री भगवान का दूसरा एक मधुमय गुण ''आश्रितवात्सल्य'' है। आश्रित पाण्डव लिए कृष्ण का व्यामोह वहुधा प्रकाश पाया है। उनके इस महान् गुण के अनुभव में मर्मज्ञ भक्तगण विभो जाते हैं। अनन्तगुण में आकर श्री भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की गुणपना का दो एक दृष्टान्त इस स्थल पर प्रस्तु किया जाता है। भारत युद्ध में द्रोण का वध करना होगा। उनके पुत्र अश्वत्थामा वध के बिना द्रोण का असम्भव जानकर कौशली कृष्ण मिथ्या का आश्रय ग्रहण किये। जो जीवन में कभी मिथ्या नहीं बोले हैं महासत्यवादी युधिष्ठिर को कृष्ण मिथा कथा कहवाये। मिथ्यावाद के कुफल की आशङ्का में कृष्ण अनुरोध से डरे डरे अगत्या युधिष्ठिर मिथ्या बोले–**''अवश्त्थामा ह्तो ।।** साथ ही साथ उस मिथ्या घोषणा छिपाने के लिए युधिष्ठिर बोले– **''नरो वा कुञ्जरो वा''** जिससे युधिष्ठिर की यह शेषोक्ति विपक्षीयगण न सके इसलिए श्री कृष्ण शेषोक्ति के समय खूब जोर से शंख बजा दिए द्रोणाचार्य समझे कि सत्यवादी ष्ठिर का वाक्य कभी मिथ्या नहीं हो सकता। निश्चय ही पुत्र अश्वत्थामा युद्ध में निहत हो गया। इसके ब युद्ध में प्राण त्याग किये। एकान्त आश्रित पाण्डव रक्षा के लिए भगवान् मिथ्या का आश्रय ग्रहण किये, प्रभृति किसी से भी पश्चात् पद नहीं हुए। 'किसी से भी पीछे नहीं रहे सुदर्शन चक्र के द्वारा सूर्य को आच्छ मिथ्या आचरण से जयद्रथ वध कराये। अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करके भीष्म वध प्रभृति इस प्रकार बहुत क उनका आश्रित के प्रति पक्षपातित्व का परिचायक है। भगवान के इस आश्रित वात्सल्य रूप गुण का अनु आश्रित भक्त के प्रति उनके व्यामोहरूप परम गुण का अनुभव भक्त प्राण को आनन्द रस से विगलित कर है। भक्त की यहद्रवी भूत अवस्था जो कितने महा आनन्द रस के अतृप्त आस्वादन का निदर्शन है। उसको लोग निम्नोक्त वाक्य से समझ सकते हैं। **'मधुरा मधुरा लापा मधुः श्रोत्रेण पास्यति।'** अर्थात् नागरीगण कृष्ण के रूप से गुण से वाक्य से इतनी व्यामुग्ध हो गई थीं कि उनकी मधुर वाणी वे कर्ण द्वारा पान करती थीं। यही भगवान के प्रति भक्त के व्यामोह का परिचय है। अपर पक्ष में तनु, मन, धन, जन, सर्व त्यागी भगवत् शरणागत एकान्त भक्त के अनुभव से भगवान की क्या दशा हो जाती है उसका परिचय लोग शरणागत विभीषण के प्रति रामचन्द्र की दशा देखकर पाते हैं। यह दशा होती है ''लोचनाभ्यां पिबन्नि अर्थात् शरणागत विभीषण के प्रति रामचन्द्र को इतना व्यामोह हुआ कि मालूम होता था, जैसे दोनों नयन

विभीषण को पान कर रहे हैं। कर्णेन्द्रिय द्वारा भक्त कर्तृक भगवान के रूप माधुर्य रस का पान करना मधुर रस का आस्वादन पान करना, एवं चक्षुरिन्द्रिय द्वारा भगवान कर्तृक भक्त का माधुर्य पान करना एक अचिन्तनीय व्यापार है। यही भक्त और भगवान का पारस्परिक व्यामोह है, सव्यामोहति व्यामोहयति च'वाक्य का यही तात्पर्य है।

''अण्डालआड्वार का गोपी प्रेम और व्याकुलता''

आड्वार अण्डाल देवी अपने तिरुप्पावै (श्रीव्रत) नामक दिव्य प्रबन्ध में सर्वत्यागी ब्रज गोपियों के कृष्ण प्रेम का रहस्य एवं कृष्ण का भी तदनुरूप आदर्श गोपी प्रेम का रहस्य उद्घाटन करके इस अनुपम प्रेम रस की निर्झरिणी प्रवाहित कर दिये हैं। अतीव प्रभात में दयित कृष्ण को जगाने के लिए उनके गृहद्वार पर आकर ब्रज बालाएँ कह रही हैं– हे कृष्ण: हम सब गोप बालाएँ तुम्हारे पास आयी हैं, तुम जग जाओ। कृष्ण उठ नहीं रहे हैं देखकर फिर से कहती हैं–

हम लोग तुम्हारी भक्ता आयी हैं, तब भी कृष्ण को निरुत्तर देखकर और कहती हैं– तुमको छोड़ हम लोग और कुछ नहीं जानतीं हम अब अनन्य प्रयोजना हैः तुम्हारे द्वार पर खड़ी हैं, तुम जाग जाओ। तो भी कृष्ण निरुत्तर ही हैं। परिशेष में गोपाङ्गनाएँ कहती हैं हम सब तुम्हारे दु:ख की हरण करने वाली हैं, हम लोगों के विरह जितना क्लेश और दु:ख तुम्हें हुआ, उस दु:ख को हरण करने के लिए ही हम सब तुम्हारे पास आयी हैं, हम लोगों के विरह में तुम्हें कितना दु:ख है उसे समझ कर उस दुख को दूर करने के लिए हम सब स्वयं तुम्हारे द्वार देश पर आकर अपेक्षा कर रही हैं, तुम जागो। श्रीकृष्णचन्द्र गोपियों के मुख से अमृतसम यह सम्वाद सुनने के लिए ही, यह महारस आस्वादन करने के लिए ही अपेक्षा करते थे। परम आर्य प्रेत, परम उपादेय वाक्य को सुनने पर कृष्णचन्द्र उसी क्षण शय्या त्याग करके उठ पड़े, एवं गोपियों, के सहित मिलित हुए। गोपियाँ कृष्ण के लिए अपना कुल, शील, मान लज्जा, गृह, परिजन, सर्वस्व त्याग किये थीं, कृष्ण के बिना कुछ और दूसरा कोई प्रयोजन नहीं था। कृष्ण जो एक मात्र उनके दु:खहारी थे, इसीलिए कृष्णचन्द्र भी उनके लिये लालायित थे। यह संवाद शास्त्र में बहुत स्थल पर देखा जाता है। किन्तु गोपियाँ कृष्ण की ही दु:खहारिणी एवं प्राणस्वरूपा थीं, गोपी सदृश अनन्य प्रयोजना महा भागवती का सङ्गलाभ के लिए कृष्ण आतुर होकर घूमते थे, इस महान तत्त्व का, इस महा वाक्य का सन्धान विरल है। यह महातत्व, रसामृत सिन्धु का मथित तत्व है। भगवान् के विश्लेष में भक्तगण जितना क्लेश पाते हैं, भक्त के विश्लेष में उनके दु:ख से भगवान् तदपेक्षा अधिक क्लेश पाते रहते हैं। यह महातत्व कृष्ण– गोपी संवाद का सारतम रसतत्व है।

साधन मार्ग से नूतन नूतन तत्व जान सकने पर भगवद्विषयक अनुचिन्तन में नूतन नूतन तत्व अनुभूत होने पर आचार्य के मुख से साधु के मुख से उपदेश सुनने से नया नया रहस्य उद्घाटित होने पर साधक के मन में एक अपूर्व आनन्द दिखाई देता है। क्रमशः यह आनन्द घनीभूत होकर आस्वादनीय परम उपभोग्य रस का आकर धारण करता है। अनुभवी सिद्ध महात्मागण लोक के हित साधन के लिए अपने अपने अनुभव से लब्ध,

रहस्यावृत इस आस्वादनीय रस तत्व को यत्नसहित संरक्षण करते जाते हैं। उन लोगों के पास से परम्परा परवर्ती रसिक महापुरुषगण उस अमृत समान रस तत्व को आहरण करके रस लोलुप भक्त समाज अकातरभाव से वितरण करते रहते हैं। इस मधुर महा रस को आस्वादन करके रस लुब्ध भक्तगण आ सागर में आप्लुत हो जाते हैं, आत्महारी हो जाते हैं।

''साधक भक्त का रसानन्द अनुभव और आस्वादन का वैशिष्ट्य''

यह रसतत्व जो कितना मधुर कहाँ तक उपभोग्य है मुख से कहा नहीं जा सकता। वहलेखनी से प्र नहीं किया जा सकता, यह विशुद्ध अनुभव की वस्तु है। अनुभवी सिद्ध महापुरुषगण इस महा रस को अमृ सहित तुलना किये हैं। अमृत के सहित तुलना देकर सन्तुष्ट नहीं हो पाकर इस अतुलनीय रसतत्व को अ अमृत'' कहकर वर्णन किये हैं। अभिप्राय यही कि भगवान् के रूप, गुण, लीलादिकों के अनुभव द्वारा उ जो महा आनन्द रस, जिसको अमृत के सहित तुलना किया है, वह अमृत रस पान कर कभी तृप्त नहीं हु जाता, उत्तरोत्तर इसके आस्वादन की व्याकुलता अभिवृद्ध होती रहती है। अतएव श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ देखा जाता है यह रस 'स्वादुस्वादु पदे पदे?

वेद व्यास अपने श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में कहते हैं –

निगमकल्पतरोर्गलितंफलं
शुकमुखादमृतद्रव्वसंयुतम् ।
पिवत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुविभावुका ।। श्रीमद्भा।। 1।1।3

इस श्लोक का तात्पर्य– वेद कल्पवृक्ष के समान है। भगवान के विविध दिव्य चरित्र, भक्त भगवान् पारस्परिक प्रीति, एवं पारस्परिक व्यामोह का रहस्य उद्घाटित करते हुए एक परम उपभोग्य रस अनुसन्धान देता है। रस भरे दिव्य चरित्रों के विवरणों से पूर्ण श्रीमद्भागवद् ग्रन्थ वेद रूपी कल्पवृक्ष का परि स्वादुफल है। यह परिपक्क स्वादुफ़ल श्रीमद्भागत परम भागवत् रसज्ञ श्री शुकदेव के मुख से नि:सृत हो अमृत रस में विगलित हुआ है। हे रसलिप्सु भावुकगण! अहरहः रस के आलय इस श्रीमद्भागवत का आनन्द रस पान कर के कृतकृत्य हो जाओं।

द्वितीय प्रवाह
पञ्चम अध्याय

गुरु भाव का प्रारम्भ

कई एक वर्ष धर कर अदम्य उद्यम उत्साह एवं निरवच्छिन्न अध्यवसाय के साथ आक्लान्त परिश्रम के द्वारा श्री स्वामी जी महाराज की अभिलाषा पूर्ण हुई! अपने आचार्य की सन्निधि में वास करके, उनकी सेवा में निरत रहकर एवं सर्वतो भाव से उनकी आज्ञा पालन करके उनकी कृपा कटाक्ष से सिञ्चित होने लगे। इस भाव से न्यूनाधिक दस वर्ष काल तक वे एक निष्ठ साधन भजन से साधारण शास्त्र, विशेष शास्त्र एवं रहस्य शास्त्र में व्युत्पन्न हो गये। तदनुगुण ज्ञान और अनुष्ठान में परिपक्क हो गये।

'' श्री बलराम स्वामी कर्तृक सर्वविध शास्त्र में पारङ्गता और अध्यापना का अधिकार लाभ''

श्री स्वामी जी साधु समाज में आचार्य स्थानीय रूप से परिगणित होने लगे। उनके आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी उनके इस ज्ञान और अनुष्ठान से प्रसन्न होकर क्रमशः उनको अध्यापना का अधिकार प्रदान किये। इस भाव से सिद्ध सदाचार्य कर्तृक युवक श्री बलराम के मध्य में भविष्य आचार्यत्व का अङ्कुर स्थापित हुआ। इस समय से लेकर श्री बलराम स्वामी अपने साधन भजन के साथ–साथ अपने आचार्य के निर्देश से नियमित भाव में शास्त्र के अध्यापना का कार्य आरम्भ किये । यही उनके गुरुभाव का पूर्वाभास है।

1875 खृष्टाब्द में 65 वर्ष की वयस् में महान् आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी मर्त्यधाम परित्याग कर परम पद में प्रस्थान किये। इस समय में बलराम स्वामी का वयक्रम 32 वर्ष का था। उस समय वे पूर्वोक्त अपलाचार्य के कुञ्ज में ही निवास करते थे और अपना साधनभजन, अनुभव एवं अध्ययन करते थे। साथ ही साथ स्वीय आचार्य देव की आज्ञा पालन में यत्नवान् हुए। नित्य नियमित रूप से अध्यापना भी आरम्भ कर दिये थे। इस अध्यापना काल में समुचित स्थल पर अवश्य कर्तव्य विवेचना से उपदेश भी देने लगे। पाषाण की रेखा की तरह अतिस्थिर नियमित नियमानुवर्तन नियम पालन श्री स्वामी जी का असाधारण स्वभाव था जिस अनुपम नियम और निष्ठा के सहित वे साधन भजन एवं शास्त्राभ्यास करते वे ठीक उसी प्रकार के नियम और निष्ठा के सहित अध्यापना के कार्य में व्रती हुए। विशेष विशेष अधिकारी को विशेष शास्त्र एवं रहस्य शास्त्र की अध्यापना ही उनका विशेषत्व था। यही श्री बलराम स्वामी के गुरुभाव का प्रथम सोपान है। उनका आकुमार ब्रह्मचर्य, अद्भुत सम्प्रदाय निष्ठा, साधना की तीव्रता एवं ज्ञानानुगुण निर्मूल वास्तव अनुष्ठान नियत सदाचार और सद् व्यवहार देखने पर सारे वृन्दावन में तथा उनके चारों तरफ रहने वाले साधु महात्मागण उनकी प्रशंसा में मुखर हो उठे।

''साधु महात्माओं के द्वारा बलराम स्वामी के ज्ञान निष्ठा और अनुष्ठान की प्रशंसा''

इस समय में आदर्श आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज के परम पद प्राप्ति के वाद श्री बलराम स्वामी जी के इन समस्त गुण राशि से आकृष्ट होकर केवल विद्यार्थी ही नहीं– अन्यान्य धर्मपिपासु मुमुक्षु व्यक्ति भी उनके सान्निध्य में आने लगे। उस समय अपलाचार्य के कुञ्ज में ही अध्यापना और कालक्षेप का कार्य शुरू हुआ। मथुरा निवासी करोड़पति धनी श्रेष्ठ सेठ लक्ष्मीचन्द्र राधाकृष्ण एवं गोविन्द दास– ये तीनों भाई श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी के शिष्य थे। वे ही कई एक कोटि रुपया व्यय करके वृन्दावन में विराट् श्री रङ्ग जी का मन्दिर निर्माण एवं श्री रङ्गनाथ एवं श्री गोदाम्बा जी की श्री मूर्ति प्रतिष्ठा करके अपने गुरुदेव को अर्पण कर दिये थे। इसके पहिले दो ज्येष्ठ भ्राता लक्ष्मीचन्द्र एवं राधाकृष्ण का परम पद हो गया था। केवल सेठ गोविन्द दास जी जीवित हैं। वे अतिशय धर्मानुरागी और सम्प्रदाय निष्ठ थे। एवं रङ्ग जी के मन्दिर के बहुव्यापार पर्यवेक्षण करने अपने गुरुवर श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी के सहवास से एवं कृपा से उनकी धारणा क्रमशः दृढ़ होने लगी कि भगवत् अनुभव के लिए 'एकान्त वास' अत्यन्त प्रयोजनीय अपनी इस सात्विक भावना को कार्य में परिणत करने के लिए वे वृन्दावन और मथुरा के मध्यवर्ती वन भूमि–जिस स्थल पर श्रीकृष्ण मथुरा से यज्ञ पत्नियों के निकट से अन्न मँगा कर भोजन किये थे उस ''भात् रौन' नामक स्थान पर एक बगीचा में वास करने लगे। वे वाह्यिक रूप में धनी व्यवसायी गृहस्थ होने पर भी प्रकृत पक्ष में एक सत् निर्लिप्त उच्च स्तर के अनुभवी श्री वैष्णव थे।

स्वाचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी के परम पद के बाद सेठ गोविन्द दास जी श्री बलराम स्वामी के असाधारण वैराग्य, ज्ञान, भक्ति प्रभृति गुणराशि से विशेष भाव में आकृष्ट होने लगे।

''सेठ गोविन्द दास जी का स्वामी जी के गुणपना से आकृष्ट होना व उनके पास कालक्षेप सुनना''

गोविन्द दास एक दिन स्वयं स्वामी जी का निवास स्थल अपलाचार्य के कुञ्ज में जाकर उनके निकट सम्प्रदाय ग्रन्थ अध्ययन करने के लिए एवं उपदेश श्रवण के लिए सनिर्वन्ध प्रार्थना किये। उनकी ऐकान्तिक प्रार्थना से श्री स्वामी जी सम्मत हुए। गोविन्द जी प्रत्यह तीसरे पहर 3 बजे के समय श्री स्वामी जी के निकट गाड़ी भेज देते, श्री स्वामी जी 'भात्रौन' जाकर गोविन्द दास जी को एक घण्टा काल भागवती कथा श्रवण कराते, एवं वैष्णवता की शिक्षा देते। जितने दिन तक गोविन्द दास जी जीवित थे उतने दिन तक स्वामी उनको इसी भाव से कालक्षेप (भागवती कथा) सुनाये हैं। 1878 खृष्टाब्द में गोविन्द दास जी का परम पद हुआ। उनका समस्त परिवार वैष्णव धर्म मतावलम्बी और समुचित आचार निष्ठ थे। उनमें वैकुण्ठवासी उनके मध्यम भ्राता राधाकृष्ण जी की विधवा पत्नी आदर्श वैष्णवी थीं। पूजा–पाठ एवं सदाचार में उनकी विशेष निष्ठा थी।

''गोविन्द दास जी की भौजी''

वे गोविन्द दास जी की भौजी थीं। इसीलिए मथुरा मण्डल में भौजी के नाम से प्रसिद्ध थीं। एवं उनको सभी उसी नाम से सम्बोधन करते थे। श्री स्वामी जी का कालक्षेप गोविन्द दास जी की तरह भौजी भी निकट

श्रीमते रामानुजाय नमः



सप्तांकांकधरायुतेऽश्वयुजिभे लग्ने च मीनोदये,
माघे शुक्लमृगान्विते दिनकरे सोमे च वारे नगे ।
श्रीरङ्गार्यपदाब्जभृंगमतुलं शाण्डिल्यगोत्रोद्भवं,
वन्दे श्री बलरामसूरिमनिशं दिव्यावतारं गुरुम् ।।

श्रवण करती थीं। श्री गोविन्द दास जी के परम पद के बाद परम भागवती भौजी स्वामी जी के सन्निधि में प्रार्थना कीं कि आप इतने दिन तक जिस प्रकार काल क्षेप श्रवण कराये हैं, इस समय भी उसी प्रकार प्रतिदिन अपने कालक्षेप और उपदेशामृत द्वारा कृपा करके हम लोगों का जीवन सार्थक कीजिये। भौजी की कातर प्रार्थना स्वामी जी स्वीकार कर लिए। एवं पहले की तरह प्रत्यह भात्रौन में एक घण्टा कालक्षेप चलने लगा। बहुत दिन तक स्वामी जी भौजी को कालक्षेप सुनाये थे।

श्रीमती भौजी परम वैष्णवी थीं। वे स्वामी महाराज को आचार्य के तुल्य ही सम्मान देने लगीं।

''श्री रङ्गनाथ मन्दिर के प्राङ्गण में स्वामी जी की प्रतिष्ठा और निवास''

भौजी की इच्छा हुई कि आचार्य सदृश बलराम स्वामी जी महाराज, अपलाचार्य का कुञ्ज परित्याग करके श्री रङ्ग जी मन्दिर के प्राङ्गण मध्य ही निवास करें। इस विषय में स्वामी जी के चरण में एकान्त भाव से प्रार्थना की। इससे स्वामी जी महाराज भौजी के पुनः पुनः किये हुए इस प्रस्ताव का अनुमोदन किये। अतः पर इसी अभिप्राय से भौजी श्री रङ्गदेशिक स्वामी के पुत्र तत्कालीन महान्त श्री निवासाचारी स्वामी जी महाराज से इस विषय में आग्रह पूर्वक प्रार्थना किये। महान्त महाराज की अनुमतिसे श्री रङ्ग जी मन्दिर के वहिः परिक्रमा के भीतर पूर्व द्वार के निकट श्री बलराम स्वामी जी के निवास के लिए छः सात कोठरी से युक्त एक पृथकृ घर का बन्दोबस्त करने लगी। कोठरी निर्मित होने के पश्चात् समीप में एक कूप का भी खनन हुआ एवं बड़ा चबूतरा भी पक्का करके बँधा दिया गया। अतः पर स्वामी जी महाराज नये गृह में निवास करने लगे। उनका कालक्षेप (पाठ और उपदेश) नियमित भाव से इसी तरह चलने लगा। श्री स्वामी जी के इस नूतन निवास स्थल पर श्री भौजी उनकी सेवा के लिए अपने घर से दूध और फल मूल भेजना आरम्भ किये। श्री स्वामी जी महाराज अपने कोठरी में अपने नित्य सेवित ''शाल ग्राम शिला श्री नृसिंह भगवान् को दुग्ध आदि भोग लगाकर वह प्रसाद भोजन करते। श्री स्वामी जी महाराज का कालक्षेप नियमित सुनने के फल से तथा उनका ज्ञान और अनुष्ठान अनुभव करते करते उनके प्रति भौजी का भक्तिभाव क्रमशः गाढ़तर होने लगा। श्री स्वामी जी महाराज के तत्कालीन इस निवास स्थल में उपयुक्त एक कोठरी में गोपाल जी की श्री मूर्ति एवं स्वामी जी के नित्य पूजित नारायण शिला श्री नृसिंह भगवान की प्रतिष्ठा हो, यह विशुद्ध भाव भौजी के हृदय में उदय हुआ।

श्री भौजी के द्वारा श्री स्वामी जी महाराज के गोपाल जी का दिव्य विग्रह और श्री नृसिंह भगवान की प्रतिष्ठा के लिए मन्दिर निर्माण और उनकी सेवा पूजा के लिए पक्का बन्दोबस्त करना'' क्रमशः यह शुद्ध भाव आवेग में परिणत हुआ। एक दिन अपनी इस अभिलाषा का विषय वे स्वामी जी महाराज के निकट निवेदन की एवं अपनी इस प्रार्थना को स्वीकार करने के लिए उनके चरण में सनिर्वन्ध अनुरोध ज्ञापन कीं। यह सङ्कल्प कार्य रूप में परिणत करना और प्रतिष्ठित विग्रह की नित्य सेवा पूजा अर्चना का निर्वाह व्ययसाध्य है यह भौजी जानती थीं। श्री स्वामी जी महाराज के सदृश साधु महात्मा के पक्ष में यह

व्यय भारवहन करना सम्भव नहीं यह भी वे जानती थी। प्रतिष्ठित विग्रह की नित्य सेवा के प्रबन्ध का समुचित पक्का बन्दोबस्त नहीं होने पर स्वामी जी महाराज दूरदर्शी, इस प्रस्ताव में सम्मत नहीं होंगे यह सत्य उपलब्ध करके बुद्धिमती भौजी श्री स्वामी जी के अन्यान्य समर्थ अनुगत भक्तों के सहित परामर्श करके नित्य सेवा के अनुकूल एक व्यवस्था कर दीं। गोपाल जी की प्रतिष्ठा के विषय में प्रार्थना के समय इस नि सेवा के विषय का आनुकूल्य भी वे स्वामी जी के चरण में निवेदन की। इस प्रस्ताव में परम भागवती श्री भौजी के स्वतः प्रणोदित तीव्र अनुराग दर्शन से, यह शुभ कार्य भगवत्सङ्कल्प से इङ्गित समझ कर स्वामी उपलब्धि किये। एततसंश्लिष्ट अन्यान्य अवश्य प्रयोजनीय विषय में भौजी एवं अन्यान्य वैष्णवों के सं आलोचना कर जब वे प्रतिष्ठित श्री विग्रह की नित्य सेवा के विषय में सन्तुष्ट हुए तब वे अन्यान्य भक्त वृन्द सहित नित्य सेवा के सहित भौजी की ऐकान्तिक प्रार्थना से वे इस शुभ कार्य में सम्मत हुए। इस समय श्री जी के मन्दिर के महन्त परम पदगत श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी के पुत्र श्री निवासाचार्य स्वामी थे। मन्दिर प्रा में इस प्रकार श्री विग्रह की प्रतिष्ठा के विषय में सब से पहले उनके अनुमोदन की प्रयोजनीयता समझ श्रीमती भौजी, अन्यान्य कतिपय प्रभावशाली श्री वैष्णवों के सहित श्री महान्त जी महाराज के निकट इस सङ्कल्प का विषय निवेदन की एवं उनका अनुमोदन लाभ कीं। उनके माध्यम में श्री रङ्ग मन्दिर की कार्य नि कमेटी का भी अनुमोदन लाभ की। श्री बलराम स्वामी जी महाराज के ज्ञान और अनुष्ठान के प्रभाव से ही इ प्रकार का अनुमोदन सम्भव हुआ। तदनन्तर विशाल श्री रङ्ग मन्दिर के वहि प्राङ्गण में पूर्व द्वार के निकट उपयुक्त कमरा में मन्दिर निर्मित हुआ। दक्षिण भारत से श्री गोपाल जी की मूर्ति आनयन करके उसका प्रति कार्य सम्पन्न हुआ। परम भागवती श्रीमती भौजी की अभिलाषा भगवान् पूर्ण किये। वे कृत कृत्य हो गई। इ इस महान कैंकर्य से श्री बलराम स्वामी जी महाराज उनके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। एवं श्री भगवान् के नि उनकी मंगल प्रार्थना किये। श्री स्वामी जी महाराज परमतृप्ति के सहित श्री गोपाल जी की पूजा अर्च भोगराग प्रभृति समस्त श्री मन्दिर का सेवा कार्य अपने हाथों से करने लगे। श्री भौजी पहले की तरह नि दुग्ध फलमूल गोपाल जी के मन्दिर में निवेदन करने लगीं। श्री स्वामी जी यह सब नैवेद्य गोपाल जी समर्पण कर वह प्रसाद साधु गोष्ठी में वितरण करते, एवं स्वतः भी एकान्त में कुछ ग्रहण करते। श्रीमती भौ एवं अनुगत भक्तगण मिलकर कई एक हजार रूपया प्रतिशत 6 सूद पर मूल मन्दिर में श्री रङ्ग जी के खज़ा में जमा कर दिये। सूद बावद प्राप्त इस अर्थ से श्री गोपाल जी के मन्दिर का व्ययभार निर्वाह होने लगा। तब लेकर आज भी (प्रायः 90 वर्ष से) श्री रङ्ग मन्दिर के अभ्यन्तर इस श्री मन्दिर में गोपाल जी की पूजा अर्च भोग राग नियमित भाव से चली आ रही है।

ईश्वर परम स्वतंत्र पुरुषोत्तम हैं। उनको शास्त्र 'परमः स्वराट् कहता है। साधारण भाव से यही उन ईश्वरत्व का ऐश्वर्य है। हर एक कार्य में छोटा हो चाहे बड़ा उनकी अनुमति की अवश्य प्रयोजन है स्वामी महाराज के श्री मुख से सुने हैं कि – उनकी अनुमति के बिना तृण तक नहीं हिल सकता, यही हम लोगों

गुरुदेव श्री बलराम स्वामी जी की श्रीमुखनिसृत वाणी थी। पक्षान्तर में भगवान जीव मात्रों के दु:ख से विशेष दु:ख पाते रहते हैं।

'' अर्चावतार का स्वरूप और महिमा''

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दु:खित:''। यही उनका माधुर्य है। साधुगण, भक्तगण भगवान के जीव दु:खहारी, इस कार्य में प्रधान सहाय हैं। उनके माध्यम में वे जीव कल्याण साधित करते रहते हैं। मनुष्यों के इस कल्याण के लिए ही जन हितकारी साधुगण उनके परम प्रिय हैं और प्राण स्वरूप हैं। साधुगण उनके हृदय को ग्रास किये हुए हैं, वे ''साधुभि: ग्रस्त हृदय:'। अधर्म की ग्लानि दूरकरने के लिए ही साधुगण उनके विशेष सहाय होते हैं। जभी अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तभी साधुओं की लाञ्छना होती है साधुओं की सङ्कट दशा उत्पन्न होती है। इस साधु सङ्कट काल में साधु परित्राण के लिए भगवान का धरा पर अवतार होता है। महाभक्त प्रह्लाद के परित्राणार्थ नरसिंह भगवान का अवतार, इन्द्रादि देवताओं के कातर आह्वान से उनके संकट त्राण के लिए वामन देव का अवतार, अहल्योद्धार के लिए और दण्डकारण्यवासी आर्त्त ऋषियों की कातर प्रार्थना से श्री रामचन्द्र का अवतार, देवकी वसुदेव, यशोदानन्द गोप के जन्म जन्मान्तर की कातर प्रार्थना से श्रीकृष्णचन्द्र का अवतार हुआ। इन समस्त भगवत् अवतार की प्रकटावस्था के समकालीन जीवगण जिस प्रकार उपकृत हो सके अन्य वैसा उपकृत नही हो सकते।

''अर्चावतार और अति मानव''

इस अभाव के दूर करने के लिए श्री भगवान् का अर्चावतार रूप में अविर्भाव होता है। अर्चना के उपयोगी श्री विग्रह धारण करके वे मठ मन्दिर में विराजमान हैं । इस अर्चावतार रूप से सब समय सब मानवों के प्रत्यक्ष गोचर रहकर वे भूत, भविष्यद्, वर्तमान सर्वकालीन उपकार साधन करते रहते हैं। मानवगण को खींचकर धर्म पथ पर ले आने के लिए, उन लोगों को धर्म पथ पर अग्रसर कर देने के लिए यह अर्चावतार केन्द्रिय शक्ति होती है, साधुगण की कातर प्रार्थना से अर्चावतार प्रतिष्ठित होते हैं। और जाग्रत रहते हैं। इस अर्चावतार को अवलम्बन कर के ही अर्चक साधु महात्मागण अपना धर्मानुष्ठान, धर्म जीवन अपने जनहित कर व्यापारों को सक्रिय रखते हैं। इस अर्चावतार को केन्द्र करके रामानुज, शङ्कर, मध्व, विष्णु स्वामी, निम्बादित्य, श्री चैतन्य प्रभृति अति मानवगण लुप्त प्राय धर्म को पुनर्जीवन दान कर गये हैं। परवर्ती युग में हम लोग जान सकते हैं, रामकृष्ण देव, श्री रङ्गदेशिक स्वामी, कठिया दास बाबा जी प्रमुख महापुरुषगण इस अर्चावतार को अवलम्वन करके सिद्धि लाभ किये हैं जन मानव का बहुत कल्याण साधन कर गये हैं। आधुनिक काल में भी हम लोग प्रत्यक्ष देख पाते हैं कि अर्चावतार का अवलम्ब करके बहुत साधु महात्मा आध्यात्मिक उज्जीवन में सफल काम हुए हैं। साधु का हृदय ही अर्चावतार का जङ्गम अभिमान है। यह अर्चावतार साधुगण के हृदय में अपनी विशेष महिमा दिखाते रहते हैं। साधुगण यह उपलब्ध महिमा जन समाज में प्रकाशित करने में समर्थ होते हैं। अर्चावतार को अवलम्ब करके वे लोक संग्रह करते रहते हैं।

अर्चावतार की उपरोक्त महिमा के विषय में हम लोगों के गुरुदेव श्री बलराम स्वामी जी महराज स... अवहित थे। इसीलिए भौजी की कातर प्रार्थना स्वीकार किये थे एवं वृन्दावन में अपने स्थान पर श्री गोपाल... के श्री विग्रह स्थापन में एवं समस्त कैङ्कर्य भार, और उसके निर्वाह करने का भार ग्रहण करने में वे स्वीकृत... थे।

''श्री बलराम स्वामी की तत्कालीन दिनचर्या''

इस छोटे श्री मन्दिर का निर्माण एवं गोपाल जी के श्री विग्रह की प्रतिष्ठा के समय से श्री स्वामी... महाराज सर्व साधारण के निकट आचार्य रूप में प्रकट हुए। इस समय उनकी अवस्था 33/34 वर्ष की थी।... समय यौवन कालोचित उत्साह, सक्रियता, एवं अध्यवसाय में परिपूर्ण थे। आकुमार ब्रह्मचारी, बाल्यकाल ही... फल मूल भोगी एवं एकाग्र साधन निष्ठ ये महापुरुष इस समय अपूर्व रूप और गुण के अधिकारी हुए। उन... दीर्घ गौरवपूर्ण अवयव दिव्यकान्ति से भर गया। गुम्फ, श्मश्रु, मस्तक मुण्डित, सुदीर्घ शिखा प्रशस्त ललाट... उज्ज्वल नयन युगल, विलम्बित कर्णद्वय, अजानुलम्वित बाहु, सुवृहत् कर और चरण, सुदीर्घ अङ्गुलि नि... शोभित दिव्य अवयव एक अलौकिक रूप धारण किया। वे कभी अङ्ग में तैल मर्दन नही करते थे। तथा... उनका सर्व प्रत्यङ्ग सर्वदा मसृण एवं उज्ज्वल रहता था। वे पान ताम्बूलादि सेवन कभी नहीं करते थे। उनकी... सुविन्यस्त दन्तपङ्क्ति मुक्ताके सदृश शोभा पाती थी उनका हास्य मधुर था, वाक्य धीर था और सुविन्यस्त ... सुमधुर था पदक्षेप, क्षिप्र था उनकी कार्यकारिता सुचिन्तित सुष्ठु थी, उनका मनोभाव गम्भीर था भाव... सुसंयत था। उनका उत्साह, उद्यम व अध्यवसाय निरलस और अदम्य था। इस समय में वे प्रातःकाल ... नवप्रतिष्ठित अर्चावतार श्री गोपाल जी का मन्दिर मार्जन से आरम्भ कर श्री विग्रह का उत्थापन, पूजा, अर्चन... भोग, प्रसाद वितरण, रात्रिकाल में उनकी शयन से आरती एवं शयन सेवा तक जितनी सेवा है समस्त ही अ... हाथों से सुष्ठुभाव में सम्पन्न करते। सेवाकाल के अतिरिक्त समय वे भगवत् चिन्ता अध्ययन, अध्यापना में ... कालक्षेप में अतिवाहित करते थे प्रातःकाल 8 बजे से 9 बजे तक श्री रङ्ग जी मन्दिर के पश्चाद्भाग ... तिरुमाली (दालान) में, तथा तीसरे पहर 3 बजे से 5 बजे तक गोपाल जी मन्दिर संलग्न प्राङ्गण में एक वृ... वृक्ष के नीचे एवं रात्रि में सन्ध्या आरती के पश्चात् 7.30 बजे से 9 बजे तक गोपाल जी के मन्दिर ... सन्निधि में इस प्रकार अतिवाहित करते। द्विप्रहर के बाद कालक्षेप सुनने के लिए ये शताधिक साधु महात्मा ... समागम होता। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, गीता, श्रीमद् भागवत, सिद्धान्त ग्रन्थ, रहस्य ग्रन्थ यही उनके... कालक्षेप का विषय वस्तु था। सुपरिकल्पित प्रणाली से वे धारावाहिक रूप में नियमित इन सब ग्रन्थों ... कालक्षेप के माध्यम में समागत साधु मण्डली का उज्जीवन साधन करने लगे। वे रात्रि 11 बजे शयन का... रात्रि 2/2.30 बजे जाग्रत होकर शय्या त्याग करते। मुख प्रक्षालानादि के बाद एकान्त स्थल में आसन ... उपविष्ट होकर प्रातः 4 बजे तक वे निरन्तर भगवत् चिन्ता एवं भगवदनुभव में निमग्न रहते। तदनन्तर वे शौच... स्नानादि समापन के अन्त में अर्चावतार श्री गोपाल जी का उत्थापन–पूजन–अर्चन में निरत होते। वे 24 घण्...

के मध्य मात्र 3/4 घण्टा शयन करते। दैनन्दिन दो बार केवल फलमूल और दुग्ध सेवन करते। अपने हाथ से अपना भोजन पात्रमार्जन करते, अपना वस्त्र धौत करते, यही उनका कठोर नियम था। स्वामी जी महाराज की यही अपरूप और अलौकिक दिनचर्या का तदानीन्तन परिचय था। श्री स्वामी जी महाराज के युवावस्था से जीवन के अन्तिम काल तक इस प्रकार दिव्य दिनचर्या अव्याहत भाव से चली आती थी। समय पर यह अभ्यास स्वभाव में परिणत हो उठा था। जो प्रत्येक अनुष्ठान पाषाण की रेखा के सदृश अविचल रहकर सब आनुष्ठानिक नियमावली घड़ी के काँटा के तुल्य चलती रहती उनके अतिवृद्ध अवस्था में भी इसी प्रकार स्वभाव सिद्ध इस प्रकार कठोर दिनचर्या दर्शन करने का महा सौभाग्य हम लोगों का हुआ था। उनका इस प्रकार अतीव दु:साध्य आदर्श ज्ञान और अनुष्ठान, दर्शन एवं अनुभव करके हम लोग विस्मित हो जाते।

साधन मार्ग में अग्रसर होते रहने पर साधक के निकट क्रमशः कुछ असाधारण अलौकिक शक्ति आ जाती है। मानसिक पवित्रता के लिए उनकी दूर दृष्टि,भविष्यत् दृष्टि कुछ कुछ खुल जाती है। दैहिक वा मानसिक व्याधि उपशम की शक्ति कुछ कुछ अधिगत हो जाती है। इन समस्त असाधारण शक्तियों को 'सिद्धाई' कहा जाता है। इन सकल शक्तियों के द्वारा साधारण मानवों के सांसारिक दुख का कथञ्चित् उपशम हो सकता है। इस दु:ख के लाघव करने के उद्देश्य से इस प्रकार शक्ति सम्पन्न साधुगण के निकट में बहुजन समागम भी देखने में आता है। किन्तु प्रकृत साधुगण इन अलौकिक असाधारण शक्तियों को प्रश्रय नहीं देते। वे जानते हैं कि ये समस्त शक्तियाँ और उनके व्यवहार मुख्य उद्देश्य लाभ का महा अन्तराय है। ये सब शक्ति ज्ञान और भक्तिलता के मूल में दुर्वाआदितृण के समान हैं, वे ज्ञान और भक्तिलता को बढ़ने नहीं देती, रोक देती हैं । यहाँ तक कि परिशेष में विनष्ट भी कर डालती हैं। प्रकृत साधुगण इस सब अवान्तर शक्तियों को समूल उत्पाटित कर देते हैं। वे लौकिक पूजा और प्रतिष्ठा की तरफ प्रलुब्ध नहीं होते। अपने मुख्य उद्देश्य को सर्वदा सामने रखकर वे साधन मार्ग में एकनिष्ठ भाव से अग्रसर होते रहते हैं। असार संसार का महा दु:ख एवं सारतम वस्तु परम ब्रह्म भगवान् का परम आनन्द उपलब्धि पूर्वक वे संसार विमुक्ति, भगवदनुभव, भगवत्प्राप्ति, भगवत्कैङ्कर्य्य को एकमात्र उद्देश्य रूप से अवलम्बन करके अग्रसर होते हैं।

''श्री स्वामी जी की अलौकिक दिव्य शक्ति''

जब तक उन साधुगण लोगों का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता तब तक वे लोग वैराग्य, ज्ञान भक्ति एवं भक्ति की परिपूर्ति के लिए अनुध्यान, अभ्यास एवं अनुष्ठान में एकान्त भाव से निरत रहते हैं। इस ज्ञान व अनुष्ठान को देखने पर धर्म पिपासु व्यक्ति उनकी तरफ आकृष्ट होते हैं। श्री स्वामी जी महाराज भी इस समय में इसी प्रकार की भावना को पोषण कर के साधन–भजन मार्ग में विचरण कर रहे थे। इस समय किस प्रकार की अलौकिक शक्ति उनमें दिखाई पड़ती थी। उस विषय में हम लोग अनभिज्ञ हैं। तथापि दो एक विशिष्ट घटना के द्वारा उनकी कोई कोई अलौकिक शक्ति अतर्कित भाव से प्रकट हो जाती थी एतत्सम्पर्कीय एक घटना का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

"दृष्टान्त गोपाल जी को अति गरम दुग्ध भोग निषिद्ध करना"

श्री स्वामी जी महाराज प्रायशः श्री गोपाल जी के भोग अपने ही हाथ बनाकर उनकी अर्चना करते। कभी कभी उनके निर्देश से अपर एक सेवक उनके इस कार्य में सहायता करता। एक दिन रात्रि में श्री स्वामी जी महाराज ने अपने एक अन्तरङ्ग सेवक द्वारा श्री गोपाल जी के लिए भोग बनाया था। एवं निवेदन भी करा था। श्री स्वामी जी महाराज उस समय गोपाल जी की सन्निधि में उपस्थित नहीं थे। दूसरे दिन वे बहुत ही सेवक को बुलवाये। उद्ग्रीव भाव से उससे पूँछने लगे – "कलरात्रि में तुम गोपाल जी को जो दुग्ध निवेदन किया था, क्या अधिक गरम था?" वह इस प्रश्न से आश्चर्यान्वित होकर सशङ्क – भाव से बोला स्वामी जी हाँ गरम था। तव वे शासन के स्वर से उसको आदेश करने लगे–" तुम भविष्यत् में और कभी इस प्रकार का गरम दूध भोग नहीं लगाना, ये बात जैसे मन में रहे। तुम्हारे द्वारा निवेदित अति गरम दुग्ध पान से गोपाल जी गत रात्रि में विशेष कष्ट पाये हैं। जभी किसी अर्चावतार का भोग रन्धन करना, अथवा भोग निवेदन करना उस समय में मन में रखना कि वे अतिसुकुमार बालक हैं – सर्वदा इस भावना से उनकी सेवा शुश्रूषा करना। गोपाल जी अति गरम दुग्ध पान करने से रात्रि में अति कष्ट पाये यह प्रत्यक्ष अनुभव स्वामी जी के किस प्रकार हुआ उसे प्रकाश नहीं किये, तथापि गोपाल जी स्वप्न में अथवा अन्य किसी इङ्गित से उनको यह विषय ज्ञात किये इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस समय से अभी तक अति गरम किसी भी प्रकार का भोग गोपाल जी की सेवा में नहीं लगता, बन्द हो गया। तब से (60/65 वर्षव्यापी) आज भी यह नियम श्री स्वामी जी प्रतिष्ठित अयोध्या में अर्चावतार श्री विजय राघव जी की भोग सेवा में चला आ रहा है।

"अर्चावतार की सेवा के विषय में स्वामी जी का उपदेश"

उन्हें (अर्चावतार को) एक प्राणवन्त अति सुकुमार सुकोमल बालक रूप में चिन्ता करते हुए ये सेवा करनी चाहिए, इस भावना को लेकर ही सेवा करना एकान्त कर्त्तव्य, उस विषय में एक उज्वल दृष्टान्त श्रीरामानुज स्वामी की उक्ति एवं अनुष्ठान में दिखाई पड़ता है। यह आदर्श निम्नोक्त घटना से परिस्फुट होगा। श्री रामानुज स्वामी के अन्यतम प्रधान शिष्य कूरेश स्वामी थे। उनके पुत्र पराशर भट्टर रामानुज स्वामी के प्रिय पुत्र थे। वे श्री रङ्गधाम में रङ्गनाथ भगवान के प्रधान अर्चक थे। एक दिन प्रातःकाल श्री रामानुज स्वामी दर्शन करने के लिए मन्दिर में आकर श्रीरङ्गनाथ भगवान् श्री विग्रह एकाग्र चित्त दर्शन कर रहे थे पास में ही पराशर स्वामी खड़े थे। दर्शन करने के बाद रामानुज स्वामी पराशर जी से जिज्ञासा किए कि आज श्रीरंगनाथ भगवान का मुख – कमल मलीन क्यों देख पड़ता हैं? पराशर निरुत्तर, समझ नहीं पाये कि क्या उत्तर दें। उनको नीरव देख कर रामानुज स्वामी फिर प्रश्न किये कि कल रात्रि में उनको किसी दुष्पाच्य द्रव्य का भोग निवेदन किया गया था क्या? पराशर जी कहने लगे मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता हूँ, लेकिन कलरात्रि में अमरूद भोग दिया गया।" इसको सुनकर रामानुज स्वामी बोले – तुम लोग बहुत अन्याय किये हो। कोई दुष्पाच्य भोग आर्चाविग्रह को कभी नहीं देना।

''अर्चावतार की सेवा के विषय में रामानुज स्वामी का उपदेश''

श्री अर्चा विग्रह के अर्चक के हृदय में यह सुदृढ़ मूल यहः ज्ञान अवश्य रहना चाहिए कि अर्चा विग्रह अत्यन्त सुकुमार जीवन्त दिव्य विग्रह हैं। वे अपना परम स्वतन्त्र, सर्व नियन्त्रकत्व एवं सर्वेश्वरत्त्व, इस ऐश्वर्य भाव को विस्मृत हो जाते हैं। अत्यन्त सुकोमल अर्चा विग्रह रूप से अर्चक के पराधीन होकर साक्षात् विराज मान रहते हैं। उनके इस माधुर्य भाव को समझ कर सेवा करना एकान्त कर्त्तव्य है। नहीं तो सेवक के द्वारा आत्मवत् सेवा नहीं हो सकती। पद पद पर सेवापराध दिखाई देगा। गतकाल तुम लोग रङ्गनाथ जी को अमरूद भोग दिये थे यही उनके क्लेश का कारण है। आज से उनको जैसे अमरूद का भोग कभी नहीं दिया जाये। यह हमारा निर्देश जानना? हम लोग सुने हैं कि उस वक्त से आज तक श्री रङ्गनाथ भगवान् को अमरूद भोग और नहीं लगता। अर्चावतार सिद्ध महापुरुष को अपना दिव्य दर्शन तथा दिव्य अनुभव देकर धन्य करते हैं, इस विषय में सन्देह का कोई अवकाश नहीं है।

''आचार्यत्त्व का विकास''

हम लोगों के आचार्य श्री स्वामी जी महाराज का एतादृश असाधारण ज्ञान एवं अलौकिक नियत कठोर अनुष्ठान का विषय शीघ्र ही देश देशान्तर में फैल गया। उसके सौरभ से आकृष्ट होकर वङ्गाल विहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पञ्जाव प्रभृति विभिन्न प्रदेश से मुमुक्षु व्यक्तिगण उनके निकट में आकर उपस्थित होने लगे अनेक उनके पास समाश्रित होने लगे। उस समय से शिष्य के प्रकृत कल्याण साधन करने के लिए, उनके प्रति आदर्श सदाचार्य का कर्तव्य पालन करने में सचेष्ट हुए। शीघ्र ही उनकी इस आदर्श आचार्यत्व की सुख्याति देश देशान्तर में विस्तृत होने लगी। इस समय से ही स्वामी महाराज की आचार्य दशा का आरम्भ हुआ। उस समय उनकी अवस्था मात्र 34/35 वर्ष की थी। इस वयस में ही वे आदर्श साधु नाम से दूर देशान्तर में ख्याति लाभ किये।

'' श्री स्वामी जी महाराज का वैराग्य''

स्वामी जी ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य के सजीव मूर्ति रूप से आदृत होने लगे। उनके परिधान में जानू पर्यन्त, परिसर (लम्बा) प्रायः पाँच हाथ का वहिर्वास था और उसी तरह की उत्तरीय भी थी। शीतकाल में आवरण में कम्बल था बैठने के लिए कम्बल का आसन और शयन करने के लिए कम्बल की शय्या थी। भोज का पात्र था – शाल पत्ते का पत्तल, जल पान के लिए एक आधसेर के उपयोगी काँसे का लोटा (भितरिया) था, एवं शौचादिकार्य के लिए एक और वाहरिया बड़ा लोटा था। चौबीस घण्टे का भोजन था– कुछ फलमूल और आध सेर दूध/ मध्ययाह्न में एवं सन्ध्या के बाद में। अपने श्री अङ्ग में कभी तैलमर्द्दन नहीं करते थे। प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्या में स्नान करते थे कभी कभी मध्याह्न में भी स्नान करते थे। प्रातः यमुना में स्नान करते एवं सन्ध्या में आश्रमस्थ कुँए पर स्नान करते। साधु एवं धर्मार्थी – भिन्न ग्रामीण व्यक्ति के साथ वार्ता उनका प्रयोजन नहीं

रहता था। शास्त्रालाप भिन्न कभी किसी के साथ ग्राम्य वार्ता नहीं करते थे। भगवद्भागवत् सेवा भिन्न प्रयोजन में वे अर्थव्यय नहीं करते थे। अपने भोग के लिए कोई भी द्रव्य स्वीकार नहीं करते थे। यह उनके का निदर्शन था।

उनके अलौकिक दिनचर्या की कथा इससे पहले संक्षेप में उल्लेख किया हुआ है। प्रत्यह 24 घण्टे मध्य वे 3/4 घण्टा शयन करते, शौच, स्नान एवं प्रसाद ग्रहण में 2 घण्टा जाता। शेष 16/18 घण्टे का भगवदनुचिन्तन में, धर्म ग्रन्थ के अध्ययन एवं अध्यापना में, साधु गोष्ठी में कालक्षेप से, भगवान् की अर्चना एवं भागवत् सेवा में अतिवाहित करते।

''स्वामी जी का अनुष्ठान एवं अनुष्ठानलब्ध ज्ञान और भक्ति'' वे केवल शास्त्रोपलब्ध ज्ञान ज्ञानी नहीं थे। उनके इस शास्त्र जन्य ज्ञान की परि समाप्ति तदनुगुण अनुष्ठान में थी। वे जानते थे "ज्ञ सत्ता अनुष्ठानेन समृद्धिः'' वे अच्छी तरह से समझे हुए थे कि अनुष्ठान भिन्न, केवल ग्रन्थ अध्ययन ज्ञान के यथार्थ मर्म की उपलब्धि नहीं की जा सकती। ग्रन्थ पाठ से होने वाला ज्ञान, निरवय व ज्ञान होता अनुष्ठान के द्वारा वह ज्ञान सावयव होकर सजीव मूर्ति धारण करता है। इसी लिए ही उनके दिव्य जीवन एक विशेष बैलक्षण्य अनुष्ठान था। उनका त्रुटिहीन अनुष्ठान जो लोग देखते वे ही विस्मित हो जाते। शास्त्र ययन से होने वाला ज्ञान, इस ज्ञान के अनुगुण अनुष्ठान, अनुष्ठान लब्ध प्रकृत धर्म तत्व, धर्म के प्रकृत मर्म अनुभव, तदनुगुण भगवद् भागवत् की सेवा, एवं अपना दैन्य, यह उनका असाधारणवैशिष्ट्य था। यही ज्ञान और भक्ति का निदर्शन था।

भक्ति की परिणति होती है, शरणागति। भगवान् को सर्वेरक्ष की भवना, तथा विश्वास एवं उनके चरण आत्मनिक्षेप – यह दो शरणागति का मूल मंत्र है। यह दो मौलिकतत्व उनके दैनन्दिन प्रत्येक आचरण अनुष्ठान में दिखाई पड़ता था। उनके श्रीमुख से प्रायः ही सुना जाता प्रभु की अनुमति के बिना तृणतक हिलता है।'' ब्रह्मा से लेकर पिपीलिका तक सभी जीव उनके नियन्तृत्व के अधीन हैं। अनादि काल से वे स्वामी और सर्व जीव उनका दास है। **'तव प्राचीन दासोऽहम्'** मैं तुम्हारा नित्य दास हूँ, यही उनकी स्व सिद्ध उक्ति थी। उनके सङ्गलाभ में सौभाग्यवान् भक्तगण उनके श्रीमुख निःसृत यह स्वतः स्फूर्त अतर्कित प्रायः ही सुन पाते।

''श्री स्वामी जी की शरणागति''

आपद् विपद् में वे अस्थिर नहीं होते। फलाफल का विषय भगवान् के चरण में निर्भर करके अवस्थान कर यहाँ तक जीवन के मरणापन्न अवस्था में भी रक्षा का भार भगवान् के चरण में अर्पण करके निर्भर रहते। वे कृत्य के तथा अकृत्य के विवेकी महापुरुष थे। भगवद्भागवत के प्रतिकूल का विषय उनका अकृत्य था, इन लोगों अनुकूल विषय उनका कृत्य था। उनके दिव्य जीवन के यावत अनुष्ठान का उद्देश्य भगवत् भागवत का मुख्य अर्थात् भगवान् एवं भागवतों का सन्तोष विधान था।

उनका और एक वैलक्षण्य था शुद्धता एवं परिच्छिन्नता भक्त एवं भगवान् के मध्य में जो सम्बन्ध है वह माधुर्यमय होता है। भगवान् भक्त के हृदय स्वरूप हैं, भक्त भी भगवान् का हृदय स्वरूप है। भगवान जिस प्रकार भक्त के हृदय में वास करते हैं, भक्त भी उसी तरह भगवान के हृदय में वास करता है, इसीलिए शास्त्र कहता है – ''साधवो हृदयं मह्यम्, साधूनां हृदयत्वहम्।'' भगवान परम पवित्र वस्तु, ''पूतात्मा'' हैं।

''श्री स्वामी जी की आचार और अनुष्ठान–निष्ठा''

यह सब तत्व उपलब्धि करके साधुगण अपना शरीर और मन दोनों ही पवित्र रखने की चेष्टा करते हैं। निरन्तर भगवान् के अनुसन्धान से उनका मन परिशुद्ध रहता है, एवं आचार–और निष्ठा के द्वारा अपने शरीर को वे शुद्ध राखते हैं। धर्म मार्ग में अग्रसर होने के लिए जिस प्रकार मनःशुद्धि का प्रयोजन है उसी प्रकार शरीर शुद्धि का भी प्रयोजन है। शरीर शुद्धि, मनःशुद्धि का सहायक है। श्री स्वामी जी महाराज के श्री मुख से आचार के विषय में हम लोग दो वाक्य श्रवण कर पाये हैं। ''आचार प्रभवो धर्मः'' आचार ही ना न पुनन्तिवेदाः'' अर्थात् आचार के प्रभाव से धर्म पुष्ट होता है, जो आचारहीन हैं उनको वेद भी पवित्र नहीं कर सकता। वे केवल श्री मुख से ही यह वाक्य नहीं कहते थे उनके समस्त अनुष्ठान में भी शुद्धाचार परिलक्षित होता किस भाव से शरीर को वाह्यतः शुद्ध रखना चाहिये, मलमूत्र त्याग के बाद किस भाव से एवं कितनी बार जल शौच करना चाहिए, करतल एवं पद तल, मलद्वार ऐसा कि मूत्रद्वार भी किस भाव से एवं कितनी बार मृत्तिका और जल द्वारा परिशुद्ध करना चाहिए, तदनन्तर किस भाव से कितनी वार शुद्ध जल कुल्ला करना चाहिये, हाथ पैर और मुख धो डालना चाहिए उसकी विधि, दैनिन्दिन स्नान की विधि, विभिन्न द्रव्य का स्पर्श दोष, स्पर्श शुद्धि की विधि और निषेध का विधान, पान – भोजन की पात्र शुद्धि, पान – भोजन की वस्तु शुद्धि प्रभृति का शास्त्रीय विधि निषेध भोजन शयनादि का विधेय काल प्रभृति विविध आचार अनुष्ठान की विधि विभिन्न स्मृति शास्त्र में निर्दिष्ट है। कलिकाल में ''पाराशर स्मृति' का प्राधान्य विहित है। 'कलौपाराशर स्मृति।'' इस पाराशर स्मृति की विधि – निषेध वे यथायथ पालन करते। उपयुक्त शुद्ध अधिकारी भिन्न अन्य किसी साधु के हाथ से पान भोजनादि अन्तरङ्ग सेवा के ग्रहण नहीं करते। गात्र स्पर्श, सह भोजन एवं सहवास के द्वारा पारस्परिक दोष गुण परस्पर के मध्य अति सूक्ष्म रूप से सञ्चारित होता रहता है। यही, सूक्ष्म वेत्ता शास्त्रकारों का सुस्पष्ट अभिमत है। जनसाधारण, विशेष करके पाश्चात्य शिक्षा से शिक्षित सम्प्रदाय में अनेक ही समझते हैं ये सब विशेष आचार – अनुष्ठान का क्या प्रयोजन? इसे छोड़ कर क्या धर्म जीवन लाभ नहीं किया जा सकता। यह तो शुचिवाई का रूपान्तर मात्र है? जूता पहन कर खाने पीने से क्या दोष होता है? इस युग में होटल (भोजनालय) में भोजन नहीं करने से जीवन यात्रा क्या सम्भव हो सकती है? इन समस्त प्रश्नों के विषय में तर्क वा समालोचना का स्थान यह ग्रन्थ नहीं है। केवल दो एक वाक्य कहकर शुद्धि, अशुद्धि प्रसङ्ग को यहाँ समाप्त कर देना चाहते हैं। अस्त्रचिकित्सक (SURGEON) अस्त्रोपचार के पहले तत् सम्बन्धीय यन्त्र पाति नाना उपाय से परिशुद्ध (STERELIZE) करते हैं। अपना और सहकर्मियों का हाथ सावुन जल एवं विविध

शोधक जलीय पदार्थ के द्वारा शुद्ध करते हैं। उससे भी सन्तुष्ट ना होकर उसके ऊपर दोनों हाथों में परिशु दास्ताना पहन लेते हैं। रोगी का भी व्याधि ग्रस्त स्थान ही उसी तरह परिशुद्ध कर लेते हैं। चिकित्सक अपने रोगी को आपाद मस्तक परिशुद्ध वस्त्र से आच्छदित करके तभी अस्त्रोपचार कार्य आरम्भ करते हैं। हम तो इस स्थल पर कोई समालोचना नहीं करते, वरन शुद्धि के विषय में कोई त्रुटि न रहे वह विषय स कराने की चेष्टा करते हैं। हम लोग जानते हैं, चारो तरफ विक्षिप्त जीवाणु (BACTERIA) क्षत स्थान सङ्क्रामित होकर विषाक्त कर देंगे। अतएव अस्त्रोपचार में सुफल लाभ करने के लिए उपरोक्त परिशुद्धि अ करणीय है। चिकित्साजगत् में चिकित्सा शास्त्र का यह निर्देश विशेषज्ञों के निर्देशानुयायी परिशुद्धि का यथा यथ परिपालन किया जाता है। ठीक उसी तरह धर्म जगत् में शुद्धाचार इस परिशुद्धि के विषय धर्मशास्त्र का निर्देश धर्म के प्रकृत मर्मज्ञों का अभिमत भी अवश्य पालनीय है। शास्त्र कहता है :-

आलापाद् गात्र संस्पर्शात्सह भोजनात् ।
सञ्चरन्ति हि पापानि, तैल विन्दुरिवाम्भसा ।।

अर्थात् जल में तैल विन्दु निक्षेप करने पर जिस प्रकार वह सूक्ष्म रूप में समस्त जल में ही परिव्याप्त जाता है। उसी तरह–गात्र संस्पर्श, आलाप, सह भोजन एवं सहवास के द्वारा पारस्परिक दोषगुण परस्पर मध्य में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से सञ्चारित होता रहता है।

अभिमान गर्भ तर्क से इस विषय में कोई फल लाभ नहीं होता। इस शुद्धा शुद्ध आचार के उपकारि किंवा हानि के विषय में कोई प्रकृत ज्ञान लाभ नहीं होता। शास्त्रविधि मान कर अनुष्ठान पूर्वक चलने क्रमशः शुद्धाशुद्ध आचार की उपकारिता, अनुपकारिता हृदयङ्गम होती रहती है। धर्म जगत् में विधि निषेध प्रकृष्ट प्रमाण होता हैं शास्त्र वाक्य, गीता शास्त्र कहता है :-

'तस्माच्छास्त्रंप्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ'

धर्म पथिक का यही प्रकृष्ट पन्था है। यदि धर्म जगत् में उन्नति करना हो, यदि धर्म के विषय में उ फल लाभ करना हो तो शास्त्र वाक्य मानकर चलना पड़ेगा, शास्त्रीय ज्ञान में ज्ञानी साधुओं का अनु अनुकरण करना पड़ेगा। साधुगण जो सांसारिकों के साथ मिलना नहीं चाहते, स्पर्श नहीं करना चाहते धारणामूल धारणा है। उन लोगों का आदर्श होता है शास्त्रीय विधि के अनुसार अपने परिशुद्ध रहकर उप देने से तथा ऐसी परिशुद्धि का अनुष्ठान प्रदर्श करने से उपदिष्ट व्यक्तिगण भी ऐसी परिशुद्धि का दृष्ट तथा महिमा देख कर स्वतः भी ऐसा अनुकरण करके लाभ उठायेगे। प्रकृत साधुगण एकाधार में पूत एवं पाव अर्थात् वे अपने जिस तरह पवित्र होते हैं उसी तरह दूसरों को भी पवित्र कर देते हैं। श्री बलराम स्वामी महाराज की आचार निष्ठा का यही मर्माथ था। इसी कारण श्री सम्प्रदाय की आचार निष्ठा एक आदर्श है इसीलिए श्री सम्प्रदाय को, आचारी सम्प्रदाय कहा जाता है।

श्री स्वामी जी महाराज के अलौकिक बैराग्य, ज्ञान भक्ति और अनुष्ठान तथा आचार निष्ठा का

संक्षिप्त परिचय दिया गया। आदर्श आचार्य के इस गुण गण का दिव्य सौरभ शीघ्र ही चारों तरफ फैल गया। नाना देश प्रदेश से धर्म पिपासु उनकी सन्निधि में आने लगे। उन लोगों के मध्य अनेक ही उनके निकट दीक्षा ग्रहण करने लगे। दीक्षा प्रार्थियों के मध्य में उपयुक्त अधिकारियों को पञ्च संस्कार से संस्कृत कर वे दीक्षा दान करने लगे।

''शिष्य: समाश्रयण''

प्रथम में प्रतापगढ़ निवासी एक धर्मप्राण व्यक्ति श्री स्वामी जी महाराज के निकट पञ्च संस्कार से संस्कृत होकर समाश्रित हुये। इनका गार्हस्थ नाम हम लोगों को मालूम नहीं, वैष्णव नाम, वैष्णव दास था। धर्मीय विविध सिद्धान्त के विषय में ज्ञान सम्पन्न थे इस हेतु से वे सिद्धान्ती रामानुज दास नाम से परिचित थे। ये श्री स्वामी जी महाराज के सर्व प्रथम शिष्य थे। तदनन्तर आरा निवासी श्री चिरञ्जीवलाल और भगवान् दास जी उनका शिष्यत्व ग्रहण किये। पश्चात क्रमशः बहु शरणार्थी उनके निकट समाश्रित हुए उन लोगों के नाम धाम का विषय हम लोगों को मालूम नहीं। तदनन्तर सागर जिला निवासी कान्यकुब्ज वंशावतंस षोडषवर्षीय वैराग्यवान् सौम्यदर्शन एक बालक भागवत दास जी समाश्रित हुए। इनका भी गर्हस्थ्य नाम हम लोग नहीं जान सके। अनन्तर ये श्री भागवताचार्य स्वामी नाम से भारत प्रसिद्ध हुए थे। उनका दर्शन करने का एवं सङ्ग करने का सौभाग्य हम लोगों का हुआ था। श्री स्वामी जी महाराज इनकी प्रखर बुद्धि प्रतिभा, वैराग्य एवं सुशील स्वभाव देख कर इनके प्रति विशेष सन्तुष्ट हुए। श्री भागवत दास जी समाश्रित होने के बाद श्री स्वामी जी महाराज का वैराग्य ज्ञान, भक्ति, अनुष्ठान देखकर अत्यन्त अभिभूत हो गये। वे गार्हस्थ्य आश्रम परित्याग करके वैराग्य करके वैराग्यवान् हो विरक्त आश्रम ग्रहण किये। अपना गृह परिजन परित्याग करके वृन्दावन में अपने आचार्य के आश्रम में आचार्य सन्निधि में वास करने लगे। श्री स्वामी जी का विशेष कृपा कटाक्ष उनके ऊपर पड़ा। सदाचार्य के कृपा कटाक्ष के फल से इस सौभाग्यवान शिष्य भागवत दास जी का वैराग्य एवं ज्ञान पिपासा अभिवृद्ध होने लगी। उनकी ज्ञान पिपासा एवं विद्या ग्रहण शक्ति देखकर प्रीत होकर श्री स्वामी जी महाराज उनको, अपने ज्येष्ठ गुरु भ्राता विद्यामार्त्तण्ड उभय वेदान्त प्रवर्त्तकाचार्य सुदर्शनाचार्य महाराज के निकट विद्या अध्ययन के लिए समर्पण किये। श्री सदुर्शनाचार्य महाराज जी की कृपा से एवं तत्त्वावधान से भागवत दास जी अल्प दिन के मध्य ही न्याय शास्त्र एवं वेदान्त शास्त्र में व्युत्पन्न हो गये। उनकी आचार्य निष्ठा, आचार्य सेवा, आचार्य अनुवृत्ति एवं विद्यावत्ता प्रभृति गुण क्रमशः उज्वलतर होने लगा। गुणग्राही साधु समाज इस सुकुमार ब्रह्मचारी ज्ञानी एवं भक्तिमान अल्प वयस्क भागवत दास जी को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगा, एवं उनको भागवताचार्य नाम से अभिहित करने लगा। श्री स्वामी जी महाराज के धर्म प्रचार एवं धर्मसङ्गठन कार्य में भागवताचारी जी क्रमशः उनकी दक्षिण वाहु रूप में परिणत हो गये।

''दक्षिण भारत में तीर्थ यात्रा''

इस समय स्वामी जी महाराज की एकान्त अनुगता श्रीमती भौजी एवं गोविन्द दास जी के पुत्र दक्षिण

भारत में, श्री रङ्गम् (रङ्गनाथ), श्री काञ्ची, श्री जगन्नाथ क्षेत्र प्रभृति तीर्थ यात्रा कराने के लिए श्री स्वामी जी को विशेष भाव से निवेदन किये। इस परम भक्त परिवार की सनिर्वन्ध प्रार्थना श्री स्वामी जी ने स्वीकार कर लिये। उपयुक्त शिष्य द्वय सिद्धान्ती रामानुज दास जी भागवताचारी जी, श्रीमती भौजी उनके परिवार वर्ग सहित सब मिलाकर 26 जन वैष्णव सङ्ग लेकर दक्षिण भारत की तीर्थ यात्रा में श्री जी महाराज निर्गत हो गये। आड्वारगण दक्षिण भारत के विविध अर्चावतारों का अनुभव कर गये हैं। श्री काञ्ची, वेङ्कटाचल, मैल कोटा प्रभृति विविध दिव्य देशों की सम्यग् अनुभूति, वैभव एवं इतिवृत्त आड्वार रचित द्विव्य प्रबन्धों में वर्णित हुआ है। सविशेष श्री स्वामी जी महाराज इन सब दिव्य प्रबन्धों में विशेष पारङ्गत थे। जब वे दक्षिण यात्रा में जिस दिव्य देश में पहुँचते थे, जिस समय जिस अर्चावतार के दर्शन में उनके होते थे, तभी उनकी दिव्य महिमा, पूर्ववृत्त का विषय अपने अनुचर वर्ग को परिस्फुट भाव से समझा देते सब शिष्य और भक्तगण भी अर्चाविग्रह का अश्रुत अपूर्व वैभव सुनकर अपने को चरितार्थ समझते थे।

'' विभिन्न दिव्य देश परिभ्रमण''

वे प्रत्येक दिव्य देश में यथा योग्य भाव से अर्चावतारकी आराधना, तत्रस्थ वैष्णवगण की आ... उनको परिधान के लिए वस्त्रादि देना, भोजन के लिए विविध भोज्य द्रव्यअर्चावतार को भोग लवाकर... उस प्रसाद का वितरण करना, महान्त एवं उच्चकोटिके वैष्णवगण को दक्षिणा देना, एवंतत्तत् विग्रह के... वा आचार्यगण का यथाविध उपयुक्त सत्कार करते गये। इन सब अनुष्ठानों में सामान्य अर्थ का व्यय नहीं... श्रीमती भौजी आग्रह के सहित सानन्द ये सब व्यय भार वहन किये थीं। इन सब दिव्य देशों में कहीं पर... दिन और कहीं पर उससे अधिक समय वे अवस्थान किये थे। इस अवस्थान के समय अवसर पर वे... अनुगामी भक्त गोष्ठी में नियमित भगवद्विषय का कालक्षेप करते थे। आड्वारगण के समग्र दिव्य प्रबन्ध... स्वामी जी महाराज अपने आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी महाराज के निकट अध्ययन करके बाद में... में चिन्ता के द्वारा समस्त दिव्य प्रबन्ध में पारदर्शी हुए थे। श्री स्वामी जी महाराज तीर्थ भ्रमण करते... भक्तिसार आलवार का आविर्भावस्थल ''त्रिमूसी''नामक स्थान मे उपस्थित हुए। तत्रत्य महाविद्वान... कुण्डलाचारी स्वामी आड्वारगण के समस्त तमिल दिव्य प्रबन्धों के विशेषज्ञाता थे। त्रिमूसि में उनका... लाभ करके उनके ज्ञान और अनुष्ठान से मुग्ध होकर श्री स्वामी जी महाराज इस प्रख्यात प्रवीण आ... निकट फिर से इस दिव्य प्रबन्ध के कालक्षेप श्रवण करने का लोभ संवरण नहीं कर पाये। अतएव... विनीत नम्र भाव से, कुछ दिन रहकर निरन्तर उनके निकट 'भगवद्विषय' प्रबंन्ध का अध्ययन किये। स्वामी जी महाराज एकजन विशिष्ट सदाचार्य होने पर भी, उनके सङ्ग में आज्ञावाही बहु ज्ञानी गुणी अनु... रहने पर भी, वे दक्षिण यात्रा के समय में अत्यन्त दीनता के सहित, तत्रत्य आचार्य एवं भागवद् गो... सत्कार में स्वयं नियत रहते थे।

''श्री स्वामी जी का अमानित्व''

उनके इस ज्ञान, अनुष्ठान एवं आदर्श वैष्णवोचित नम्रता और दैन्य को देखकर तत्रत्य आचार्यगण एवं सम्प्रदाय ज्ञाता महापुरुषगण सभी एक कण्ठ से उनकी प्रशंसा करने में मुखर हो उठे थे। उनके इस दैन्य और अमानित्व के उदाहरण रूप में एक घटना का उल्लेख किया जाता है। इस तीर्थ भ्रमण काल में किसी एक दिव्य देश में उपस्थित होने पर तत्रत्य गद्दीनसीन आचार्य श्री स्वामी जी महाराज से उनका नाम जिज्ञासा किए – स्वामी जी उत्तर में बोले – ''श्री बलराम रामानुज दास।'' इस भाव में उनका उत्तर सुनकर उपयुक्त अवसर पर एकान्त में उनके प्रियशिष्य श्री भागवताचारी सविनय निवेदन किये कि स्वामी जी महाराज आप अपने नाम के पीछे रामानुज दास कह दिये, इससे अनर्थ हो जायेगा। आप आचार्य हैं, आपको उत्तर प्रदेश में सब कोई श्री स्वामी जी महाराज बोलकर सम्मान देते हैं। यह देश बड़ा कठिन स्थल है, यहाँ पर वैष्णव गण अत: पर आपको आचार्य – समुचित सम्मान नहीं देगें, आदर नहीं करेंगे। अपने नाम के पीछे 'स्वामी' शब्द योजना करने से समीचीन होता था। अपने आचार्य के सम्मान रक्षा कारी प्रियशिष्य की यह बात सुनकर श्री स्वामी जी महाराज उत्तर किये– 'अरे भैया हम तो थोड़े ही दिन के लिए दक्षिण यात्रा किये हैं। हमारा स्वरूप 'रामानुज दास' है। हमारा आदर हो या न हो अपने स्वरूप को हम कैसे बिगाड़ सकते हैं? अत: पर रामानुदास कहना ही समीचीन है। स्वरूप का रक्षक है। स्वरूपानुरूप है। श्री बलराम स्वामी नाम कहकर, नाम के पीछे स्वामी योजना करने से स्वरूप बिगड़ जायेगा। श्री स्वामी जी महाराज के इस दुर्लभ सिद्धान्त को श्रवण करके भागवताचारी जी निरुत्तर रहे, अभिभूत और विस्मित हो गये।

जब आचार्य स्वत: अपना नाम लिखेंगे तो नाम के पीछे रामानुज दास शब्द की योजना करेगे। अन्य कोई लिखने के समय अथवा उनके सहित वार्तालाप के समय स्वामी जी लिखेंगे अथवा बोलेंगे। अपने शिष्य को लिखने के समय अपने नाम के पीछे स्वामी योजना करना भी शिष्टाचार सम्मत है। – यही स्वामी जी महाराज का सिद्धान्त था।

इस प्रकार से दक्षिण भारत के आदृत समस्त दिव्य देश एवं अर्चाविग्रह का दर्शन, भगवद् आराधन, भागवद् आराधन, एवं तत्रस्थ शिक्षणीय विषय में निज अनुगामी शिष्य और भक्तगण को शिक्षा देते हुए, तथा स्वयं कुछ शिक्षा लाभ करते हुए स्वामी जी कृतकत्य होकर एवं भौजी और भक्तगण को कृत कृत्य कराकर दो तीन मास के बाद श्री वृन्दावन में अपने आश्रम पर प्रत्यावर्तन किये।

''श्री वृन्दावन में प्रत्यावर्तन''

वृन्दावन में लौट आने के बाद बहुत धर्म प्राण स्त्री पुरुष उनके चरण में समाश्रित होने लगे। उनमें कई एक व्यक्ति श्री स्वामी जी के सन्निधि में वास करने लगे। तथा उनके उपदेश सुनकर, उनके अनुष्ठान को देखकर, उनका अनुवर्तन करके ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के अधिकारी हो गये। उनमें से चार व्यक्तियों का नाम विशेष भाव से उल्लेख किया जा रहा है।

''श्री स्वामी रामप्रपन्नाचार्य शास्त्री''

बलिया जिला के अन्तर्गत रुद्रपुर गायघाट निवासी श्री रामप्रपन्नाचार्य जी इनके पूर्वाश्रम का नाम मालूम नहीं) मात्र षोडश वर्ष की अवस्था में धर्म जीवन यापन करने के लिए आग्रहान्वित होकर गुरु की खोज में वहिर्गत हुए। अयोध्या, प्रयाग, काशी, प्रभृति नाना तीर्थ स्थानों में घूम कर मनोमत आचार्य लाभ में विफल मनोरथ होकर अन्त में वृन्दावन आये। वहाँ लोगों के मुख से श्री स्वामी जी महाराज की महिमा सुनकर उनकी सन्निधि में उपस्थित हुए। श्री स्वामी जी के अलौकिक ज्ञान, भक्ति, वैराग्य एवं अनुष्ठान को देख कर मुग्ध हो गये। और उन्हें आचार्य रूप में वरण कर लिए। एवं उनसे समाश्रित हो गये। इनकी ज्ञान लिप्सा और तीक्ष्ण बुद्धि देखकर श्री स्वामी जी महाराज इन्हें न्याय, वेदान्त की शिक्षा देने के लिए अपने गुरु भ्राता सर्व शास्त्र विद् पूज्य श्री सुदर्शनाचार्य जी महाराज के हाथ में समर्पण किये। स्वयं भी अवसर के समय रहस्य शास्त्र की शिक्षा देते। ये बाद में एकजन दिग्गज पण्डित हो गए, और न्याय मीमांसा एवं वेदान्त शास्त्र में आचार्य रूप से परिगणित हो गये थे। ज्ञानार्जन भिन्न भी ये आकुमार ब्रह्मचारी, भक्ति निष्ठ होकर श्री स्वामी जी महाराज की सेवा में नियत थे। श्री स्वामी जी महाराज के परम पद के बाद उनके उत्तराधिकारी रूप में ये ही स्वामी राम प्रपन्नाचार्य शास्त्री जी अयोध्या के आश्रम का महन्त हुए थे।

'' श्री पराङ्कुश शास्त्री''

श्री स्वामी जी महाराज की गुणावली का सौरभ थोड़े ही दिन में प्रसारित होकर वङ्गदेश तक व्याप्त हो गया है। इस विशुद्ध परिमल से आकृष्ट हो कर वङ्गीय प्रान्त चटग्राम से सद्ब्राह्मणवंशीय काव्य तीर्थ पण्डित श्री पराङ्कुश जी, '(यह इनका वैष्ण नाम है, पूर्व नाम मालूम नही है)' वृन्दावन में आकर श्री स्वामी जी महाराज के चरण में समाश्रित हुए।

दूर वङ्ग जाति परिमले माति धाय यथा वृन्दावन ।
साधु जनार्दन पराङ्कुशधनं लभिलाये श्री चरण ।। (आचार्य प्रकाश)

तदनन्तर कई एक मास उनके श्री चरण प्रान्त में वास करके उनसे सम्प्रदाय ग्रन्थ का अध्ययन करने तथा अपने आचार्य के पास विद्या शिक्षा के अन्त में कई एक मास बाद उनकी अनुमति लाभ कर श्री पराङ्कुश शास्त्री फिर चटग्राम में लौट आये। ये बाद में, संस्कृत भाषा में श्लोकबद्ध करके श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य जीवन के विषय में एकाधिक स्तोत्र रचना कर गये हैं। उसके मध्य से एक श्लोक उल्लेख किया जाता है।

श्रियः पतेरङ्घ्रि प्रपत्ति हेतवे, पदाश्रितानां भवसिन्धु सेतवे ।
जितादिषड्वर्ग महानिजारये, सुमङ्गलं श्री बलराम सूरये ।।

यह श्लोक आज भी श्री स्वामी जी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित शिष्य भक्त वृन्द के द्वारा प्रतिष्ठित जितने आश्रम हैं सब में भक्ति के सहित गाया जाता है।

''श्री जनार्दनाचारी स्वामी''

तदनन्तर उड़ियावासी श्री जनार्द्दन जी उनके चरण में समाश्रित हुए वे श्री स्वामी जी महाराज के ज्ञान भक्ति वैराग्य एवं अनुष्ठान को देखने से मुग्ध हो गये। तथा अपना गृह त्याग कर उनकी सन्निधि में रहकर अन्तरङ्ग सेवा में निरत रहे। वे श्री स्वामी जी महाराज के अत्यन्त प्रिय थे, एवं जीवन के शेष दिन तक स्वामी जी महाराज के साथ साथ रहकर उनकी अन्तरङ्ग सेवा करते रहे।

कुछ काल बाद सारस्वत वंशीय सत्वनिष्ठ ब्राह्मण, व्याकरण एवं अद्वैत वेदान्त में पारङ्गत योगिवर पण्डित पंजाब निवासी श्री रघुनाथाचार्य शास्त्री श्री स्वामी जी की सन्निधि में उपस्थित हुए। श्री वृन्दावन में रहकर श्री स्वामी जी महाराज के सहित वाद विवाद एवं तर्क के बाद अपने सन्देह के दूर हो जाने पर उनको दीक्षागुरु रूप में उनके निकट पञ्च संस्कार से संस्कृत हुए। उसके बाद वे स्वामी जी महाराज की इच्छा से पूज्यपाद श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री के निकट वेदान्त का श्री भाष्य अध्ययन किये, एवं अपने आचार्य श्री स्वामी जी महाराज के निकट रहस्य ग्रन्थ की शिक्षा लाभ किये। उपरोक्त ज्ञान सम्पन्न भक्ति निष्ठ संसार त्यागी शास्त्री शिष्य चतुष्टय, श्री भागवताचार्य, श्रीराम प्रपन्नाचार्य, श्री जनार्दन स्वामी, एवं श्री रघुनाथाचार्य, श्री गोपाल जी के मन्दिर में, श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में अवस्थान करते हुए, ज्ञान एवं भक्ति का सार–भूत वस्तु जो आचार्य–सेवा है उसी सेवा में निरत रहे। आचार्य के अभिमत विविध कैङ्कर्य साधन करके उनकी प्रसन्नता अर्जन करने लगे। इन चारो में प्रथम दो जन अग्रगण्य भ्राता का साक्षात दर्शन करने का, सत्संग करने का महा सौभाग्य हम लोगों को मिला था। श्री रघुनाथ शास्त्री जी महाराज परवर्ती काल में श्री बद्रीनाथ धाम में निरन्तर वास करते थे। अतएव उनके दर्शन का सौभाग्य हमें नही हुआ। श्री जनार्दन स्वामी इस जगत में अधिक दिन वर्तमान नहीं थे एतद्भिन्न और भी कई शिष्य आश्रम में निवास करते हुए मन्दिर मार्जन, जल आहरण भोग रन्धन आदि विविध कैंकर्य में लिप्त रहते इतने गुणी शिष्य के विद्यमान रहते हुए भी श्री स्वामी जी महाराज श्री गोपाल जी के पूजा अर्चना प्रभृति श्री विग्रह की समस्त अन्तरङ्ग सेवा अपने ही हाथों से सम्पन्न करते इस समय से ही उनके शिष्यगण अनुभव करने लगे कि स्वामी जी के अर्चाविग्रह श्री गोपाल जी के विषय में दर्शन आदि का झलक (सामयिक प्रत्यक्ष उपलब्धि) आती रहती है। श्री स्वामी जी महाराज अत्यन्त गम्भीर पुरुष थे, अपनी इस प्रत्यक्ष अनुभूति की बात वे कभी घुणाक्षर में भी किसी से नहीं कहते थे। तथापि अतर्कित भाव से कभी कभी कुछ प्रकाशित हो जाती ।

''दिव्य अनुभव का सूत्रपात व दृष्टान्त''

श्री भागवताचारी स्वामी एवं श्री रामप्रपन्नाचारी स्वामी के निकट एतत् संक्रान्त दो चार अलौकिक घटना सुननें का सौभाग्य हम लोगों को हुआ है। उनमें से एक घटना का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है –

एक दिन स्वामी जी महाराज प्रत्यूष के पूर्व ही रसोइयाँ को बुलाये और रुष्ट स्वर से उससे पूँछने लगे

''काल रात्रि में भोग के समय श्री गोपाल जी को जो दुग्ध निवेदन किया हुआ था। वह क्या अत्यन्त गरम था? अत्यन्त सङ्कोच के साथ उसी तरह रसोइयाँ स्वीकार किया था कि सविशेष गरम था। तब वे उसी तरह रूक्ष स्वर से कहे– ''उस गरम दूध गोपाल जी की जिह्वा में अत्यन्तवेदना हुई है, तुम महा अपराध किये हो, एवं साथ – साथ हमको भी महा अपराधी कर दिये हो। सावधान! इस तरह गरम किसी प्रकार का भोग निवेदन के लिए अर्पण न किया जाय। मूर्ख! अर्चावतार को सर्वदा कोमल सुकुमार श्री विग्रह समझ कर जानना, इसी बुद्धि से उनकी सेवा करते रहना।''

निवेदित अति गरम दूध गोपाल जी जो पान किये थे, एवं पान करने के समय उनकी जिह्वा में जो विशेष वेदना लगी थी, वह श्री स्वामी जी किस तरह जान सके, स्पष्ट रूप में उनसे यह प्रश्न करने का कोई साहस नहीं कर सका। तथापि उनके आकार और इङ्गित से, अन्तरङ्ग ज्ञानी शिष्यगण नि:सन्देह समझ सके थे कि गोपाल जी स्वयं इस विषय में उन्हें ज्ञापन करा दिये थे। इसी तरह की कई एक अन्य दिव्य घटना के द्वारा एवं स्वामी जी महाराज की शान्त मूर्ति, दिव्य भाव एवं ज्योतिर्विग्रह देखकर उनके अन्तरङ्ग शिष्य गण उपलब्धि कर लिये थे कि इस समसामयिक काल में श्री स्वामी जी महाराज श्री भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन लाभ करके धन्य हो गये थे। वे सिद्धि लाभ में कृतकृत्य हुए थे। इस समय से उनके निकट सदुपदेश श्रवण एवं सत्सङ्ग लाभ के लिए परमहंस त्यागी परम भक्त महात्मागण आगमन करने लगे।

''श्री भागवताचारी शास्त्री को गोपाल जी के मन्दिर का महान्त पद अर्पण''

बहुत से मुमुक्षु व्यक्तिगण उनके निकट समाश्रित होने लगे। इसी तरह कुछ समय व्यतीत होने के बाद श्री स्वामी जी महाराज अपने श्रेष्ठ एवं सर्व ज्येष्ठ विरक्त एवं आकुमार ब्रह्मचारी शिष्य भागवताचार्य शास्त्री जी को रजिस्ट्री दलील द्वारा गोपाल जी के मन्दिर का महन्त पद का उत्तराधिकार प्रदान कर दिये।

वृन्दावन में उनकी प्रतिभा यश एवं कीर्ति तथा महिमा शीघ्र ही अभिवृद्ध हो रही है देखकर श्री स्वामी जी महाराज सशङ्कित हो उठे। वे अच्छी तरह जानते थे कि ''प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा'' प्रतिष्ठा सभी अहङ्कारों का मूल है एवं अहङ्कार ही अद्यापतन और सर्वनाश का कारण होता है। और अपनी इस असाधारण प्रतिष्ठा को देखने पर पश्चात् कोई असूयान्वित हो उठे, यह सब विषय विचार कर दूरदर्शी स्वामी जी महाराज कुछ दिन के लिए वृन्दावन त्याग करने की चिन्ता मन ही मन करने लगे।

''श्री वृन्दावन परित्याग''

इस समय में और एक ऐसी कुछ अप्रत्याशित घटना घटी जिससे स्वामी जी महाराज विशेष भाव से क्षुब्ध हो उठे। श्री वृन्दावन परित्याग का सङ्कल्प उनके मन में दृढ़ हो गया। इसके पहले उल्लेख किया हुआ है कि स्वामी जी श्रीरङ्ग जी मन्दिर के कोष में कई एक हजार रूपया जमा किये थे, एवं उसी रूपये के सूद से

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्रीमत् काश्यपवंशपद्मविपिने विद्योतनं भास्करं,
वेदान्तद्वयतर्कशास्त्रविशदीकारैकवाणीपतिम् ।
स्वामि श्रीबलरामदेशिकपदप्रेमालयं पावनं
वन्दे भागवतार्यदेशिकवरं विद्यापगावारिधिम् ॥

गोपाल जी की सेवा कुछ कुछ निर्वाह होती थी। इस रुपये की जमा और सूद की व्यवस्था इतने दिन तक मौखिक रूप में ही थी। अब वे विचार किये कि इस व्यवस्था का एक पक्का – पक्की व्यवस्था होना समीचीन होगा। श्री रङ्ग जी मन्दिर के कार्यकर्तागण स्वामी जी के इस प्रस्ताव में सम्मत नहीं हुए। वो बोले – कि यह बन्दोबस्त जिस तरह इतना दिन चला आ रहा हैं, उसी तरह रहना उचित है किसी तरह का परिवर्तन करना समीचीन नहीं होगा। श्री मन्दिर में प्रदत्त अर्थ की यदि पुनर्वार अन्य रूप में व्यवस्था की जाये तो दानकर्ता दत्तापहारी दोष से दूषित हो जायेगा।'' श्री मन्दिर के कार्यकर्ताओं के इस प्रकार मन्तव्य से, इस प्रकार दोषारोप से स्वामी जी महाराज ह्रदय में तीव्र आघात पाये। इस घटना के फल से उनके वृन्दावन परित्याग का सङ्कल्प अतीव ही दृढ़ हो उठा। वे गोपाल जी के चरण में अनुमति भिक्षा पूर्वक कातर प्रार्थना ज्ञापन किये। गोपाल जी भी भक्त के ह्रदय की वेदना को अनुभव करके व उनका यह सङ्कल्प अनुमोदन किये।

पश्चात उनका यह सङ्कल्प बाहर प्रकाशित होने पर विघ्न हो इस आशङ्का से वे अपने सङ्कल्प को अतियत्न से गोपन ही राखे। एक दिन किसी को भी कुछ न कहकर केवल अपने अन्तरङ्ग सेवक एवं शिष्य श्री जनार्दन जी को साथ में लेकर, वृन्दावन का समस्त ऐश्वर्य परित्याग करते हुए साथ में पूजा की पेटी, एक भीतरिया और एक वाहरिया लोटा और एक कम्बल लेकर एक वस्त्र से वृन्दावन से वाहिर हो गये। श्री जनार्दन जी श्री स्वामी जी महाराज को नहीं बताकर एक स्वर्ण मुद्रा साथ में लिए थे। इस भाव में इस अवस्था से भागवताचारी प्रमुख वृन्दावनस्थ जितने शिष्य थे उनके अनजान में अत्यन्त छिपकर ये सिद्ध महापुरुष अयोध्या की तरफ यात्रा कर दिये। उनके सर्वत्यागी इस सिद्धान्त का हेतु कितना कल्याण कर था वह केवल सर्वज्ञ परमेश्वर ही जानते थे। अन्तर्यामी रूप से स्वामी जी महाराज के ह्रदय में सर्वेश्वर द्वारा इस प्रेरणा का फल कितना शुभ कितना जनहित कर था वह कोई नहीं जान सके। किन्तु उसे इस समय हम लोग सम्यक् उपलब्धि कर पा रहे है। अयोध्या में उनके आगमन से वङ्गदेश महा सौभाग्यवान् हुआ है। वहुवङ्गवासी उनके श्री चरण में समाश्रित होने का सौभाग्य पाये हैं। सौ सौ वङ्गवासी उनके दिव्य जीवन के दिव्य चरित्र का सन्धान पाये हैं। इस दिव्य जीवन के अनुचिन्तन से वे लोग अपने जीवन की गति को उद्‌र्ध्व मुखी करने का प्रयत्न किये हैं, एवं आज भी कर रहे हैं।

तृतीय प्रवाह

प्रथम अध्याय

श्री स्वामी जी महाराज वृन्दावन से आकर अयोध्या धाम में उपनीत हो गये। 1859 खृष्टाब्द से सुदीर्घ वर्ष वृन्दावन में वास कर कठोर साधना के अन्त में सिद्ध दशा लाभ कर अपने दिव्य ज्ञान, भक्ति एवं क्रि अनुष्ठान से वृन्दावन वासियों को व्यामुग्ध कर 1904 खृष्टाब्द में 62 वर्ष की अवस्था में केवल लोटा कम्बल पूजा की पेटी सम्बल कर अपने सभी शिष्य सेवक तथा गुण मुग्ध अनुचर वर्ग के अनजान में अकस्मात् रघुनाथ जी के चरण प्रान्त में निवास का दृढ़ सङ्कल्प लेकर अयोध्या धाम में उपनीत हुए।

''श्री स्वामी जी का हनुमान कुण्ड बड़ा खटला में आसन स्थापन''

वे पहले सरयू नदी के निकटवर्ती हनुमान कुण्ड पर बड़ा खटला नामक स्थान में जाकर उपस्थित हु आश्रम के अधिकारी इन अभ्यागत साधु की आकृति वेशभूषा एवं आचार अनुष्ठान को देखकर उन्हें उच्चस्तर के साधु रूप से समझे आश्रम के अधिकारी श्री स्वामी जी महाराज को आसन स्थापन के लि यथोचित स्थान र्निदिष्ट कर दिये। स्वामी जी महाराज स्नान पूजा समाप्त करके आश्रमस्थ मन्दिर में रघुनाथ जी का दर्शन किये। उस मन्दिर के अधिकारी जी कुछ फल एवं दुग्ध भोग लगाकर श्री स्वामी जी अर्पण किये श्री स्वामी जी उस प्रसादी फल दुग्ध सेवन कर वह दिन अतिवाहित किये। उनके सेवक व शि जनार्दन जी श्री मन्दिर का अन्न प्रसाद ग्रहण किये। उस दिन कथोपकथन के द्वारा स्वामी जी को मालूम हु कि जर्नादन जी साथ में एक गिन्नी (स्वर्ण मुद्रा) ले आये हैं।

'' शिष्य के स्खलन में शासन''

श्री स्वामी जी इस बात को जानते ही तिरस्कार करते हुए जर्नादन जी से कहने लगे—तुम्हारी यह सम्ब बुद्धि गर्हित है? शरणागत व्यक्ति को ऐसा करना बहुत अनुचित है? एक सोने की गिन्नी हम लोगों की कितने दिन तक कर सकती है? इसके खर्च हो जाने पर तब क्या करोगे? तुम क्या जानते नही हो कि भगवा जी सर्वरक्षक हैं? तुम क्या जानते नही कि उपरोक्त का विश्वास करते हुए उनको ही रक्षक रूप में स्वीका करना ही शरणागति का मूल मन्त्र है।

'रक्षिष्यतीति:विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा'। मैं यहाँ श्रीरघुनाथ जी के चरण में शरण ग्रहण कर आया हूँ। तुम हमारे साथ हमारी सेवा पूजा में सहायता करने तुम यहाँ के लिए आये हो। तुम्हारा शरणागति विषय में दृढ़ विश्वास नहीं रहने पर किस तरह हमारे साथ रह सकोगे! इस भाव से वे जनार्दन जी का, शा

तथा उपदेश करके शिक्षा दिये। शिष्य का कोई स्खलन देखकर उसके कल्याण के लिए शासन करना ही सद्गुरु का एक विशेष कृत्य है। सद्गुरु का एक विलक्षण लक्षण 'स्खालित्ये शासिता' है। दूसरे दिन ही श्री स्वामी जी महाराज उस स्वर्ण मुद्रा को खर्च करके खटला के श्री मन्दिर में विशेष भोग लगवा कर भागवत् सेवा की व्यवस्था कर दिये। इस भाव में गिन्नी का सद्व्यय हो जाने पर श्री स्वामी जी स्वस्थचित्त हुए। इस प्रकार की दिव्य भावना श्री सनातन गोस्वामी के दिव्य चरित्र में भी हम लोगों को मिलती है। जब वे पैदल वृन्दावन जा रहे थे उस समय उनके सङ्ग एक सेवक था। उसके पास कुछ संगृहीत अर्थ था। सनातन गोस्वामी जी जब इस सञ्चित अर्थ की बात जान पाये थे तुरन्त ही उस सेवक का यथेष्ट तिरस्कार किये थे। एवं इस अर्थ से विमुक्त हो जाने पर ही वे शान्त हुए थे। श्री स्वामी जी खटला आश्रम में निवास करने के प्रथम दिन से ही कालक्षेप आरम्भ कर दिए श्री स्वामी जी की इस असाधारण दिनचर्या को चार-पाँच दिन देखकर उस आश्रम के अधिकारी जी मन ही मन शङ्कित हो गये। शङ्का का कारण यह है कि इस प्रकार दिव्य ज्ञान एवं अनुष्ठान सम्पन्न आचार्य यदि आश्रम में रहेंगे तो हमारी मर्यादा क्षुण्ण हो जायेगी। आश्रम के मर्यादा की अपेक्षा इस आचार्य ही की मर्यादा अभिवृद्ध होगी। इस भावना से भावित हो करके स्वामी जी महाराज के प्रति कुछ औदासीन्य दिखाना आरम्भ किये। स्वामी जी भी यह विषय उपलब्धि किये। तब वे आश्रमाधिकारी की इस मानसिक अशान्ति को दूर करने के लिए खटला आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले जाने का सङ्कल्प किये।

''हनुमान कुण्ड त्याग, विभीषण कुण्ड गमन व नित्य कालक्षेप''

पाँच सात दिन निवास करने के बाद वे विभीषण कुण्डस्थ रामानुज कोट नामक आश्रम में चले गये। वहाँ के महान्त जी श्री स्वामी जी महाराज का प्रकृत परिचय जानकर आदर पूर्वक उनका स्वागत किये। आश्रम के कोई कक्ष व दालान के बदले तदन्तर्गत एक वृक्ष के नीचे उनके नित्य कालक्षेप की व्यवस्था कर दिये। स्वामी जी महराज यथेच्छा लाभ सन्तुष्ट महापुरुष थे। अयाचित भाव से जिस समय जो 'कुछ उनके निकट आ जाता उससे ही वे सन्तुष्ट रहते। कभी किसी के निकट कोई याचना नहीं करते। वृन्दावन में 45 वर्ष रहने के समय मात्र एक बार दक्षिण भारत में तीर्थ यात्रा करने के लिए गये थे, इसके अलावा कभी वृन्दावन त्याग कर अन्यत्र कहीं भी नहीं गये वा कुछ याचना नहीं किये। पश्चात् दीर्घकाल अयोध्या में रहने के समय अपना दिव्य जीवन उसी प्रकार से ही अतिवाहित किये। इसको ही तीर्थ सन्यास कहा जाता है। श्री स्वामी जी महाराज प्रकृत तीर्थ सन्यासी थे। आश्रम में प्रशस्त कक्ष रहने पर भी उनके कालक्षेप के लिए आश्रम प्राङ्गण के वृक्ष मूल निर्दिष्ट होने से भी वे किसी प्रकार द्विधाबोध नहीं किए। वे सन्तुष्ट चित्त से ही उसे स्वीकार कर लिये थे। उसी जगह ही उनका कालक्षेप चलने लगा। पाँच सात दिन के मध्य ही उनकी अलौकिक दिनचर्या, उनका ज्ञान एवं अनुष्ठान और कालक्षेप की ख्याति अयोध्या धाम में फैल गई। उनका कालक्षेप सुनने के लिए उनका सत्सङ्ग करने के

उद्देश्य से अयोध्या धाम के बहुत सन्त महन्त उनकी सन्निधि में आना आरम्भ किये।

'' महन्त राम मनोहर प्रसाद जी''

अयोध्या के मध्य रामानन्दीय सम्प्रदाय का सर्व प्रधान आश्रम बड़ा स्थान है। उसके महन्त सात्विक पु श्री 108 राम मनोहर प्रसाद जी थे वे प्रथम से ही स्वामी जी महाराज की गुणपना से आकृष्ट होकर उन सन्निधि में उपस्थित हुए। अल्प दिन के मध्य ही श्री स्वामी जी महाराज के सहित महन्त जी का स घनिष्ठ हो गया था एवं तत्सह ख्याति सम्पन्न सात्विक पुरुष महन्त श्री वल्लभाशरण जी का भी स्वामी जी सहित सम्बन्ध की घनिष्ठता हुई थी। श्री राममनोहर प्रसाद जी प्रत्यह ही स्वामी जी महराज के कालक्षे आने लगे। श्री स्वामी जी महाराज के ज्ञान अनुष्ठान और दिनचर्या से मुग्ध हो गये। एक दिक् में महान्त ऐश्वर्य सम्पन्न थे अन्यदिक् प्रकृत साधु सेवी थे। वे स्वामी जी महराज की नित्य सेवा के लिए दुग्ध एवं फल भेज देते थे। उनके तत्वावधान के लिए प्रत्यह, कालक्षेप समय के व्यतिरिक्त अन्य समय में भी अन्तत: एक उनके निकट अवश्य ही आते थे।

इधर रामानुज कोट के महन्त जी श्री स्वामी जी महराज की इस ख्याति का प्रसार एवं उनके निकट इ साधुओं का समागम लक्ष्य करके मन ही मन डरने लगे,

''श्री स्वामी जी महाराज की ख्याति का प्रसार आश्रमस्थ महन्त जी की भीति''

इस भाव से प्राय: एक मास समय व्यतीत होनेपर रामानुज कोट के महन्त जी सविनय श्रीस्वामी महाराज से जिज्ञासा किये–यहाँ पर आप अब और कितने दिन तक रहेंगे? महन्त जी के इस प्रश्न का अ स्वामी जी महाराज सम्यक् उपलब्धि करके मन ही मन इस स्थान को भी त्याग करने का निश्चय किये। म श्री राममनोहर प्रसाद जी प्रत्यह दो बार श्री स्वामी जी महाराज के निकट आते थे। उनके आने पर स्वामी महराज अपने इस अभिप्राय को उनसे कहे, वे बोले – मैं रघुनाथ जी के शरण में आया हूँ। परन्तु शङ्का है है कि प्रभु जी हमको स्वीकार नहीं करेंगे। अब मैं पतित पावन जगन्नाथ जी की शरण में चला जाऊँगा।''

स्वामी जी महाराज के इस निदारुण मनोभाव को सुनकर श्री राममनोहर प्रसाद जी भयभीत हो गये सविनय प्रार्थना करने लगे – कि स्वामी जी महाराज आप इस प्रकार शोक नहीं कीजिये। मैं आपके लि स्वआश्रम के लिए एक उपयुक्त स्थान का अच्छाबन्दोबस्त कर दूँगा। हमारे देख रेख में, अयोध्या में ब मन्दिर हैं, आपकी आज्ञा पाने पर उनमें किसी एक को आपके नाम से आइन (कानून) के अनुसार रजि कर दूँगा। यदि वह आपके अभिप्रेत न हो तो फिर आपके आश्रम के लिए एक खाली जमीन की व्यवस्था दूँगा।

महन्त श्री राममनोहर प्रसाद जी द्वारा मातगैंड पर श्री स्वामी जी के लिए जमीन संग्रह और वहाँ पर श्री स्वामी जी का अवस्थान

श्री स्वामी जी महाराज इस श्रीराम मनोहर प्रसाद जी के इस द्वितीय प्रस्ताव से सहमत हुए। अल्प दिन के मध्य ही महन्त राममनोहर प्रसाद जी विभीषण कुण्ड के रास्ता में ही मातृगैंड़ (मत्तगयन्द) नामक मोहल्ला में इस रामानुज कोट से शताधिकगज पूर्व दिशा में एक ऊँची जमीन नजूल शर्त से खरीद कर स्वामी जी महाराज के कर कमल में अर्पण किये। 1904 ई0 में यह क्रय कार्य सम्पन्न हुआ। श्री राममनोहर प्रसाद जी अपने व्यय से वहाँ एक आश्रम निर्माण कर देने की इच्छा प्रगट किये, स्वामी जी महाराज उस प्रस्ताव में सम्मत नहीं हुए। उसके बदले में स्वामी जी के अनुमोदन से उस जमीन में महान्त जी (फूस) तुष से निर्मित एक छोटी कुटी बनवा दिये। मासाधिक समय रहने के बाद विभीषण कुण्ड के महन्त जी की अनुमति लेकर स्वामी जी महाराज शुभमुहुर्त में सानन्दचित्त से इस, (फूस) तूष से बनाई हुई कुटीर में पदार्पण किये। इसी जमीन में वर्तमान् श्री विजय राघव जी का उच्च सुन्दर श्री मन्दिर एवं विस्तृत आश्रम विराजमान है। इस तूष के कुटीर में स्वामी जी महाराज विराज करने लगे, एवं उनके सेवक और शिष्य श्री जनार्दन जी श्री स्वामी जी की सर्व प्रकार की सेवा का कार्य निर्वाह करने लगे। पहले की तरह राममनोहर प्रसाद जी तत्वावधान में नियत रहने लगे। इस कुटीर के बाहर नित्य नियमित कालक्षेप चलने लगा। उस कालक्षेप काल में क्रमशः बहुत नूतन नूतन साधु सन्त महन्त का समागम होने लगा। इस अवसर पर स्वामी जी महराज का वृन्दावन परित्याग के बाद ही श्री भागवताचारी प्रमुख उनके शिष्य वर्ग, श्री सुदर्शनाचार्य प्रमुख गुरुभ्रातृ वर्ग, श्रीमती भौजी प्रभृति अनुरक्त भक्तगण अत्यन्त शोकाकुल हो गये। तत्रत्य शोकाकुल साधु समाज एवं वृन्दावनवासी, सकल ही अत्यन्त चिन्ताकुल हो गये।

"वृन्दावन प्रत्यावर्तन के लिए, श्री स्वामी जी के निकट तत्रत्य भक्तगण की प्रार्थना, उनकी असम्मति"

कई एक सप्ताह नाना दिशाओं में अनुसन्धान करने के बाद वे लोग जान पाये कि स्वामी जी महाराज अयोध्या धाम में विराज कर रहे हैं। उसी समय श्री भागवताचारी जी दो एक अन्तरङ्ग भक्तों के सहित श्री स्वामी जी के चरण प्रान्त में उपस्थित हुए। वे सकल ही श्री वृन्दावन लौट जाने के लिए स्वामी जी महाराज के चरण में आकुल प्रार्थना किये। किन्तु वे अटल, अचल अपने सङ्कल्प पर दृढ़ रहे। किसी तरह लौट जाने में सम्मत नहीं हुए। पुनर्वार श्री वृन्दावन से श्री सुदर्शनाचार्य स्वामी जी प्रभृति ज्येष्ठ गुरु भ्रातागण एवं श्रीमती भौजी प्रभृति महा महा भक्तगण सभी मिलकर वृन्दावन में प्रत्यावर्तन के लिए स्वामी जी महाराज को सनिर्वन्ध अनुरोध किये, तथापि रघुनाथ जी का शरण परित्याग करने के लिए स्वामी जी का अभिमत नहीं हुआ। सभी

उनको पुनर्वार वृन्दावन ले जाने की आशा में हताश हो गये। अगत्या श्री भागवताचारी स्वामी भी अपने गुरु की सन्निधि उसी कुटीर में वास करते हुए उनकी सेवा में आत्म नियोग करने के लिए प्रार्थना किये, किन्तु स्वामी जी महाराज किसी तरह उनकी यह प्रार्थना स्वीकार नहीं किये। उनको वृन्दावन लौट जाकर गोपाल का कैङ्कर्य निर्वाह करने का आदेश दिये। ''गुरोराज्ञा गरीयसी'' जानकर भागवताचारी जी गुरुदेव का निर्देश शिरोधार्य करके वृन्दावन लौट गये। श्री स्वामी जी के सङ्ग जनार्दन जी रह गये। वे इस समय शालग्राम शिला की अर्चना, भोगरन्धन, वर्तन मार्जन श्री स्वामी जी महराज का सर्वविध कैङ्कर्य, समस्त अकेले ही करने लगे। स्वामी जी के निर्देश से वे रात्रि में वे अन्य एक कोठरी में शयन करते थे। बहुत सवेरे आकर स्वामी जी की सेवा में लग जाते। समस्त दिन नानाविध सेवाकार्य के बाद श्री स्वामी जी महाराज के शयन किये जाने के बाद अपने कुटीर में चले जाते स्वामी जी महाराज समस्त दिन रात्रि अपनी तूष की झोपड़ी में भगवत आराधना, भगवत् चिन्ता और भगवदनुभव में निमग्न रहते थे। शौच स्नानादि के लिए निकटस्थ खेत में निकटस्थ कूप पर, अथवा सरयू में चले जाते।

''अयोध्या धाम में श्री स्वामी जी की ख्याति प्रसार''

नियमित समय पर कालक्षेप के समय में स्थान सङ्कुलान के लिए कुटीर के बाहर आसन करते। स्वामी जी महराज उसमे कालक्षेप के समय अपने अलौकिक ज्ञानतत्व का एवं भक्ति रस का अस्फुरन्त भण्डार उन्मुक्त करके उदार भाव से उसे वितरण करते। इस अमृत रस से प्रलुब्ध होकर क्रमश: अधिकतर साधु महान्त उनके कालक्षेप में समवेत होने लगे। उनके इस ज्ञान एवं भक्ति की ख्याति उनका विरल आचार अनुष्ठान एवं तीव्र वैराग्य का परिचय शीघ्र ही अयोध्या परिमण्डल में परिव्याप्त हो गया। कालक्षेप के समय छोड़कर अन्य समय में भी शास्त्र संश्लिष्ट उन लोगों के सन्देह निरसन के लिए श्री स्वामी जी के निकट साधु महात्मागण आंना आरम्भ किये। धीरे – धीरे महान्त राममनोहर प्रसाद जी स्वामी जी के विशेष अनुरागी अनुगत हो गये। प्रत्यह दो बार उनके निकट तो आते ही थे, उपरन्तु अवसर समय में अथवा विशेष प्रयोजन वश अन्य समय में स्वामी जी महराज का सङ्ग करते उन्हें देखा जाता था। इस भाव से उनकी दिनचर्या प्राय: एक प्रकार चली ऐसे इसे समय में एक भीषण दुर्घटना संघटित हुई।

''स्वामी जी को पागल श्रृगालकर्त्तृक दंशन''

उस समय ग्रीष्म काल था। निदारुण गरम के कारण स्वामी जी महाराज रात्रि में कुटीर का द्वार खोलकर शयन करते थे। एक दिन इस तरह से शयन कर रहे थे, ऐसे समय एक पागल श्रृगाल दौड़कर आकर उन्हें दंशन कर लिया। भीषण भाव से उनके श्री अङ्ग के बहुत स्थान पर क्षत विक्षत करके दौड़कर भाग गया। दंशन के बाद से ही उनके सर्व शरीर में ही तीव्र यन्त्रणा आरम्भ हुई। वे अहर्निश उस निदारुण

यन्त्रणा को नीरव रह कर सहन करने लगे। इस दुर्विषह यन्त्रणा की विस्मृति के लिए वे आहार निद्रा त्याग पूर्वक इष्ट देव के स्मरण में निमग्न हो रहे। शीघ्र ही इस दुर्घटना की बात मुहल्ले में चारों तरफ फैल गई। साधु सन्तगण सभी उन्हें देखने आये। सभी स्वामी जी महाराज के दिव्य देह में जलातंक रोग के संक्रमण करने की आशङ्का करने लगे। वे सब उनको कसौली में जाकर जलातङ्क निषेधक चिकित्सा ग्रहण करने के लिए बार– बार सनिर्वन्ध अनुरोध किये। पहले तो वे अनुरोध के उत्तर में नीरव ही रहे, क्रम से जब उनकी यन्त्रणा का उपशम नहीं हो रहा है देखकर सभी मिलकर कसौली जाने के लिए उनको विशेष भाव से आग्रह करने लगे, तब भी वे किसी तरह अयोध्या धाम छोड़कर एक पग भी दूसरी जगह जाना स्वीकार नहीं किए। श्री भगवान के ऊपर ही अपने जीवन मरण का समस्त भार अर्पण करके दृढ़ता पूर्वक वे सबसे हाथ जोड़कर कहने लगे। ''आप लोग सभी मेरे प्रणम्य हैं। मेरे ऊपर प्रेम से आप सब ऐसी कृपा, निर्देश कर रहे हैं। परन्तु मैं रघुनाथ जी के शरण में आया हूँ। अब मैं उनके चरण छोड़ कहाँ जाऊँ। ऐसा करना मेरा स्वरूप नहीं है। मेरे स्वरूप के विरूद्ध है। उनकी कृपा होने से यह सब आपद् क्षण भर में भस्मी भूत हो जा सकता हैं उनकी जैसी इच्छा होगी वैसा होगा। '' श्री स्वामी जी महाराज की ऐसी दृढ़ निष्ठा एवं आदर्श शरणागति को देखकर सभी साधु महात्मागण विस्मित हो गये। एवं उनकी चिकित्सा के लिए अन्यत्र के लिए फिर से अनुरोध करने का कोई साहस नहीं किया।

कई दिन तक क्षिप्त श्रृगाल के काटने की विष क्रिया उनके शरीर में अव्याहत रूप से चलती रही। वे अनुक्षण नीरव रहकर समस्त यन्त्रणा सहन करने लगे। वे प्रतिक्षण भगवत् चिन्तन में निमग्न रहते, उनका वक्षः स्थल सदा आर्द्र रहता। यही उनकी महौषधि थी। उनके निकट मात्र एकजन शिष्य–सेवक था। क्रमशः रोग यन्त्रणा धीरे–धीरे उपशम होने लगी। सम्पूर्ण निरामय होने में अवश्य बहुत दिन लगा था।

प्रकृत साधु को जीवन के ऊपर कोई माया नहीं रहती। उसे हम लोग जानते हैं। शरणागत साधु का सुख –दुःख शुभ – अशुभ, जीवन – मरण समस्त भगवान् के ऊपर न्यस्त रहता है। दुःख की निवृति हो अथवा न हो वे भगवान् को ही प्रकृत रक्षक जानकर उन्हें पकड़े रहते हैं। वे कहते हैं – '' दुःख निवर्त्तय मावा न वा मम रक्षकान्तरो नास्ति''। यही आदर्श शरणागत पुरुष का जप मन्त्र है। हम लोग इसको शास्त्र में पढ़ते जरूर हैं, साधु मुख से भी ठीक सुनते हैं किन्तु प्रकृत क्षेत्र में आदर्श शरणागति के अनुष्ठान देखने का सौभाग्य अत्यन्त बिरल होता है।

श्री स्वामी जी महाराज की इस दुर्घटना का संवाद पाते ही तुरन्त श्री भागवताचारी जी अयोध्या उनके चरण प्रान्त में दौड़कर आ पहुँचे। श्री स्वामी जी महाराज एक फूष के कुटीर में रहते थे। वहाँ रात्रि में कोई नहीं रहता था जनार्दन जी केवल दिन में उनके पास रहते थे, किन्तु रात्रि में नहीं रहते थे। ऐसी अवस्था में निश्चिन्त होकर वृन्दावन वास करना भागवताचारी जी का प्राण नहीं चाहा। वे एवं महन्त राममनोहर प्रसाद जी परामर्श पूर्वक दोनों मिलकर श्री स्वामी जी महाराज के चरण में प्रार्थना किए जिससे कि वे भागवताचारी को

अपनी सन्निधि में श्री अयोध्या रहने की अनुमति प्रदान करें।

'' श्री भागवताचारी का अयोध्या आगमन व स्वामी जी की परिचर्या''

श्री भागवताचारी की ऐकान्तिक प्रार्थना, एवं श्री राममनोहर प्रसाद जी के सनिर्वन्ध अनुरोध से श्री स्वामी जी महराज सम्मत हुए। भागवताचारी जी श्री स्वामी जी महाराज की सेवा में अयोध्या रह गये। श्री रामप्रपन्नाचार्य श्री वृन्दावन में गोपाल जी का कैङ्कर्य निर्वाह करने लगे।

उक्त प्रकार से पूर्व पूर्व सिद्ध सम्प्रदाय आचार्य के चिराचरित मार्ग में सिद्ध आचार्य श्री बलराम स्वामी जी महाराज की आदर्श दिनचर्या का निर्वाह होने लगा। वृन्दावन से श्री भगवताचारी शास्त्री प्रमुख उनका शिष्य वर्ग एवं भक्तगण उनकी अनुमति के बिना कोई ही अयोध्या आने का साहस नहीं करते थे। मध्य-मध्य में श्री चरण दर्शनार्थ अयोध्या आने के लिए उनकी अनुमति लाभार्थ, प्रार्थना करने पर वे वह भी सहसा स्वीकार न करते थे। परन्तु श्री स्वामी जी वृन्दावनस्थ अपने गोपाल जी की सेवा पूजा का समाचार प्रायः ही जान लेते। श्री स्वामी जी की अनुपस्थिति में गोपाल जी की सेवा पूजा श्री स्वामी जी महाराज के वृन्दावन त्याग करने के पश्चात् उनके द्वारा पहले ही यथा रीति नियुक्त महान्त उनके मुख्य शिष्य श्री भागवताचार्य शास्त्री गोपाल जी के समस्त कैङ्कर्य का भार निर्वाह करते आते थे। इस कैङ्कर्य के निर्वाह में श्रीराम प्रपन्नाचार्य शास्त्री उनके प्रधान सहायक थे। इस समय गोपाल जी के मन्दिर का बँधा आय मासिक केवल 11 रूपया था। कई एक वर्ष पहले श्री स्वामी जी महाराज के द्वारा श्रीरङ्ग जी के अर्थ कोष में रखे हुए कई एक हजार रूपये सूद के हिसाब में पाया जाता था। श्री स्वामी जी महाराज के अयोध्या चले आने के बाद इस सामान्य अर्थ द्वारा ही किसी प्रकार से गोपाल जी का कैङ्कर्य निर्वाह होता था। उनका सुस्पष्ट निर्देश था कि श्री गोपाल जी की सेवा-पूजा भोग-राग के भिन्न, अन्य किसी भी प्रयोजन में जैसे इस बन्धनी अर्थ का व्यय न हो। मन्दिर के महन्त, पुजारी, रसोइया का भोजन गोपाल जी के निवेदित से चलता रहेगा।

श्री वृन्दावन स्वामी जी महाराज की अनुपस्थिति में श्री भागवताचारी गुरु के निर्देशानुयायी होकर सवव्यवस्था अतिकष्ट से चलाते आ रहे थे। श्री गोपाल जी के दर्शनार्थी भक्तगण की प्रणामी अथवा भेंटी से जो अर्थ मिलता उसके द्वारा भागवत् सेवा इत्यादि कार्य सम्पन्न होता। महन्त श्री भागवताचारी के ज्ञान अनुराग एवं अमायिक व्यवहार से तथा उनके सहचर श्री रामप्रपन्नाचार्य शास्त्री की कर्म कुशलता से क्रमशः गोपाल जी के मन्दिर की ख्याति प्रसारित होने लगी। वहाँ भागवत् समागम एवं उनकी प्रणामी से भागवत् सेवा, उत्सव आदि की अभिवृद्धि होने लगी। इस अतिरिक्त कैङ्कर्य में अतिरिक्त अर्थ का प्रयोग होना है उसे आचार्य की इच्छा के अनुसार कैङ्कर्य निष्ठ ये परम भागवत् द्वय, विशेष करके श्री राम प्रपन्नाचारी अन्य अर्थ का संग्रह शास्त्र विहित उपाय से करते थे। भक्तगण के एकान्त अनुरोध से विभिन्न स्थल पर विभिन्न जिला में उन भक्तों के निवास भूमि जाकर रामायण महाभारत श्री मद्भागवत आदि ग्रन्थों का कालक्षेप करते। प्रणामी स्वरूप जो अर्थ

और द्रव्य वे लोग पाते, उसी के द्वारा इस अतिरिक्त भागवत् सेवा एवं उत्सव आदि का व्यय निर्वाह करते। श्री गोपाल जी के मन्दिर का इस अतिरिक्त व्यय का सम्वाद स्वामी जी के कर्ण गोचर हुआ गोपाल जी की सेवा के लिए व्यवस्था किया हुआ जो सामान्य अर्थ है, उसी से कुछ अर्थ इस अतिरिक्त कैङ्कर्य में लग रहा है, ऐसी शङ्का करके वे अपने शिष्यभागवताचारी के द्वारा वृन्दावन से श्री रामप्रपन्नाचारी जी को बुलवा भेजे।

''भगवद्भागवत् सेवा विषय में निर्दिष्ट अर्थ वा द्रव्य के व्यवहार सम्पर्क में स्वामी जी की कठोर सतर्कता व निर्देश''

उत्कण्ठित चित्त से उनको इस विषय में सतर्क करा कर वहाँ इस अतिरिक्त व्यय भार का किस तरह समाधान हो रहा है, उस विषय को जानने की चाहना किए आचार्य निष्ठ भागवतोत्तम श्रीराम प्रपन्नाचारी जी, श्री स्वामी जी महाराज के भगवद्भागतत्सेवा का सुचिन्तित सुदृढ़ सिद्धान्त के विषय में सम्यक् अवगत थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि भगवत्सेवा के लिए निर्दिष्ट अर्थ वा द्रव्य, अन्य सेवा में, ऐसा कि श्री स्वामी जी महाराज को भी व्यक्ति गत सेवा में नहीं लग सकेगा, यही उनका दृढ़ सिद्धान्त था। एवं इतने समय तक इस नियम को स्थिर एवं सुष्ठु भाव से ही पालन करते आ रहे हैं। श्री स्वामी जी महाराज की इस परम सात्विक प्रकृति के विषय में वे दोनों ही सम्यक् अवगत थे। अतएव उनकी इस उत्कण्ठा को दूर करने के लिए उनका श्री चरण स्पर्श करके श्री रामप्रपन्नाचारी जी निवेदन करने लगे कि भक्तगण के एकान्त अनुरोध से मैं बीच बीच में उनके ग्राम में जाकर श्रीमद्भागवत् का ''सप्ताह पाठ'' एवं दशम और एकादश स्कन्ध का पाठ करके तथा श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का ''नवाह पाठ'' करके प्रणामी स्वरूप जो अर्थादि द्रव्य पाया हूँ उसके द्वारा ही गोपाल जी के मन्दिर का अतिरिक्त उत्सवएवं सेवा का सङ्कुलान हुआ है। इस संवाद से स्वामी जी कुछ निश्चिंत हुए। तथापि वे भविष्य के लिए दृढ़ भाव से निर्देश देकर उनको आज्ञा दिये। ''भगवद्भागवत्सेवा के विषय में हमारा प्रवर्तित जो नियम इतने समय तक चला आ रहा है उसका जिससे व्यतिक्रम किसी भी प्रकार से न होने पाये, उसकी तरफ तुम लोग सतर्क दृष्टि रखना तुम दोनों को ही इस प्रकार का अनुष्ठान करना परम कर्तव्य है उसे तुम लोग कभी नहीं भूलना। कई एक दिन स्वामी जी महाराज की सन्निधि में वास करने के पश्चात् श्री रामप्रपन्नाचारी श्री वृन्दावन को लौट गये।

''अयोध्या में वर्तमान आश्रम की सूचना''

अत: पर इस निर्जन स्थान पर अर्गल विहीन तूष की झोपड़ी में श्री स्वामी जी महाराज वास करें, वह उनके शिष्य एवं भक्तवृन्द के मन में अच्छा नहीं लगा। तूष की झोपड़ी के बदले में इस स्थान पर एक दो पक्का गृह निर्मित होना चाहिए, इस विषय में शिष्य वर भागवताचारी जी एवं भक्तवर महान्त श्री राम मनोहर प्रसाद जी आलोचना करने लगे। महन्त श्री राम मनोहर प्रसाद जी इस विषय में पहले भी श्री स्वामी जी को बहुत दिन बहुत

प्रकार से प्रार्थना पूर्वक ज्ञापन किये थे। पक्का घर बनाने का समस्त व्यय भार अपने स्वतः लेना चाहे थे, कि स्वामी जी महाराज उसमें किसी दिन सम्मत नहीं हुए थे।

''स्थायी आश्रम निर्माण के लिए श्री राम मनोहर प्रसादजी और श्री भागवताचारी जी का उद्यो

श्री स्वामी जी महाराज को श्रृगाल दंशन रूप प्राणान्तकर दुर्घटना के बाद श्री राम मनोहर प्रसाद जी एवं भागवताचारी दोनों जन मिलकर श्री स्वामी जी महाराज से अपने हृदयगत भाव को आर्त्तभाव से निवेदन कि जिससे उन लोगों की आवेदन विफल न हो उसके वास्ते बहुधा प्रार्थना किये। इन दो जन परम भक्त के ऐका अनुरोध– उपरोक्त आर्त प्रार्थना स्वामी जी महाराज पुनर्वार अस्वीकार नहीं कर सके। इस जनविरल स्थान में की झोपड़ी के बदले पक्का गृह निर्माण का प्रस्ताव श्री स्वामी जी अगत्या अनुमोदन किये। तब वे परम भागवत इस गृह निर्माण विषय में उद्योग आरम्भ कर दिये। इसी समय श्री स्वामी जी महाराज का एक सामर्थ्य गुजराती शिष्य उनके चरणदर्शनार्थ अयोध्या में उपनीत हुआ। श्री भगवताचारी जी स्वामी जी महाराज के आश्रम के गृह निर्माण विषय का प्रस्ताव नवागत के गुरु भ्राता के निकट उत्थापन किये। यह प्रस्ताव वे समर्थन किये एवं उल्लासित होकर स्वतः ही, दो तीन कोठरी बनाने का एवं एक कूप खनन का समस्त व्यय वहन करने का आग्रह प्रकाश किये।

''एक जन गुजराती शिष्य का अर्थ साहाय्य''

आश्रम में कोठरी बनने के लिए वार्तालाप के पीछे पूर्वोक्त गुजराती शिष्य स्वप्रदेश में लौट गये। भगवताचारी जी के निकट इसी उद्देश्य से प्रयोजनीय अर्थ प्रेषित किये। श्री स्वामी जी महराज की अनुमति ले शुभ मुहूर्त्त में गृह निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। कई एक मास के मध्य ही, चार छोटा कमरा (घर) एक कूँआ निर्माण कार्य समाप्त हुआ। इस कार्य में न्यूनतम अधिक आठ हजार रूपया व्यय हुआ था।

''1907 खृष्टाब्द में नव निर्मित आश्रम गृह में प्रवेश''

अयोध्या धाम मातृगैंड़ (मत्तगयन्द) महल्ला में कनक मण्डप उत्तर द्वार नाम स्थल पर विभीषण कुण्ड के दिशा में निज स्थान में नव निर्मित इस छोटे गृह में 1907 खृष्टाब्द में यथा रीति श्री स्वामी जी महराज प्र किये। इस भाव से यथा विधि स्वामी श्री महराज के वर्तमान विराट आश्रम की सूचना आरम्भ हुई। अयोध्या स्थान के महन्त श्रीराममनोहर प्रसाद जी, श्री भागवताचारी जी प्रमुख शिष्य वर्ग का भक्त समूह का अभिलाष भगवान पूर्ण किये। एक कोठरी में स्वामी जी महराज विराजमान हुए। दूसरी एक कोठरी में भागवताचारी शास्त्री एवं जंनार्दन जी अवस्थान करने लगे। अपर एक कमरा कोठार गृह रूप से व्यवहृत हु शेष घर अभ्यागत शिष्य भक्तवृन्द के व्यवहारार्थ रक्षित हुआ।

इस भाव से स्वामी जी महाराज के वर्तमान आश्रम का वीजभूत प्राथमिक कई एक छोटे कमरे नि हुए। उनके शिष्यगण भी इस परिस्थिति को देखकर निश्चिन्त एवं सन्तुष्ट चित्त हुए। उनके मुख्य मुख्य शि

शिष्यों में से स्वामी जी भागवताचारी जी अधिकांश समय अपने आचार्य स्वामी जी महराज की सन्निधि में ही निवास करने लगे। श्री रामप्रपन्नाचारी जी वृन्दावन गोपाल जी के मन्दिर में रहकर उनकी सेवा का भार निर्वाह करने लगे। रघुनाथाचारी शास्त्री जी स्वाचार्य स्वामी जी महराज की आज्ञा लेकर बद्रीनाथ धाम में निवास करने लगे। वे ग्रीष्म काल में बद्रीनाथ धाम में रहकर, अध्ययन, अध्यापना, पूजा, अर्चना, और ध्यान – धारणा में निरत रहते एवं शीतकाल में बद्रीनाथ भगवान कपाट बन्द रहने के समय जोशी मठ से कुछ उत्तर अलकनन्दा नदी के तीर पर स्थित थाई बाड़ी नामक अपने आश्रम में अवस्थान करते हुए पूर्वोक्त प्रकार से कालातिपात करने लगे। साधु जनार्दन जी अयोध्या, श्री स्वामी जी महराज के चरण प्रान्त में रहकर स्वामी जी महराज की व्यक्तिगत सेवा में निरत रहने लगे।

अयोध्या में नवीन आश्रम निर्माण के पश्चात् श्री स्वामी जी महराज अपने लिए निर्दिष्ट एक क्षुद्र प्रकोष्ट में ही अधिकांश समय अध्ययन, अध्यापना, ध्यान, धारणा, अनुभव, उपलब्धि में कालातिपात करते थे। अपने दैनन्दिन कृत्य समापन के लिए नित्य निर्द्धारित समय में बाहर होते थे। अधिकांश दिन स्नान के लिएकई एक शिष्य को साथ लेकर सरयू नदी में जाते। उनकी गति द्रुत थी। स्वस्थ युवक भी उनके साथ जाने के समय पीछे पड़ जाता था। वे अपने वस्त्र को स्वतः ही धोते। शिष्य सेवक के अनुरोध पर भी प्रतिनिवृत्त नही होते। स्नान के बाद प्रत्यावर्तन के समय एक बड़े लोटा में अपने व्यवहार के लिए सरयू जी का जल ले आते थे। नित्य नियमित समय पर साधु गोष्ठी के सम्मुख आश्रम के प्राङ्गण में रामायण, महाभारत, श्रीमद् भगवद्गीता प्रभृति शास्त्र का कालक्षेप करना उनका प्रधान कृत्य था। प्रत्यह निर्दिष्ट समय पर अपनी शिष्य गोष्ठी एवं आग्रह शील वैष्णवगण को नियमित भाव से सम्प्रदाय ग्रन्थ एवं सम्प्रदाय रहस्य ज्ञान का उपदेश देना उनका दूसरा एक प्रधान कृत्य था। उनका विचित्र कालक्षेप सुनने से, उनके गम्भीर ज्ञान, एवं तीव्र वैराग्य के अनुभव से उनकी सुपवित्र आचार निष्ठा एवं अद्भुत अनुष्ठान देखने से उनके पवित्र सङ्गलाभ से धन्य हुए नरनारीगण क्रमशः अधिकतर संख्या में उनके प्रति आकृष्ट होने लगे। उनके अलौकिक गुण–गण का सौरभ देश विदेश में फैलने लगा। विभिन्न प्रदेशीय धर्म पिपासु व्यक्ति उनके चरण प्रान्त में समाश्रित होकर शिष्यत्व ग्रहण कर धन्य हुए उनको उनमें कोई कोई उपयुक्त शिष्य नवनिर्मित आश्रम के प्रसार कल्प में आश्रम का व्यय भार निर्वाह के लिए कुछ–कुछ सहायता करने के लिए अनुमति प्रार्थना करने लगे। अन्तर्दर्शी स्वामी जी महराज उनमें से किसी किसी शिष्य की वा भक्त की प्रार्थना पूर्ण करते।

अनुमानतः 1909 खृष्टाब्द में गोरखपुर निवासी एक माड़वारी पृथ्वीराज नामक व्यवसाय प्रतिष्ठान के सत्त्वाधिकारी सेठ हरिकृष्णजी श्री स्वामी जी महराज के चरण में समाश्रित हुए। आश्रम में स्थान नहीं पूरा हो रहा है देखकर और भी कई एक (घर कोठरी) बनने का अवश्य प्रयोजन मन में विचार करके वे इस विषय में स्वामी जी महराज के निकट अनुमति प्रार्थना किये। उनका अनुमोदन लाभ होने से कृतार्थ होकर 1910 खृष्टाब्द में वे अपने व्यय से अपने तत्वावधान में इस आश्रम में और भी चार कोठरी समस्त आश्रम के बाहर में

एक प्राचीर निर्माण करा दिये। अब इस व्यवस्था से आश्रम की विभिन्न सेवाकार्य के लिए एवं बाहर से आये भागवतों के अवस्थान के लिए मोटा मोटी स्थान पूरा हो गया। अलीगढ़ के विहारी लाल जी अपने (जन्म देश में एक जमीन का आश्रम के लिए बन्दोबस्त कर दिये। आश्रम से एक मील के मध्य बाग् बिजेसी नाम स्थान में 10/15 बीघा की एक खेती करने की जमीन (अयोध्या बड़े स्थान) नामक स्थान के अधिपति रामसनोहर प्रसाद जी इस आश्रम के नाम में रजिस्ट्री करके बन्दोबस्त कर दिये। इन समस्त जमीन व्यवस्था से इस आश्रम के कुछ नियत आय की सम्भावना जरूर हुई किन्तु व्यय के हिसाब से आय अल्प था। जो हो किसी प्रकार से अत्यन्त सङ्कुचित अवस्था में आश्रम के सेवा कार्य का निर्वाह होने लगा।

''रामाचारी स्वामी''

इस समय में जो समस्त, साधु नियमित भाव से स्वामी जी के सङ्गलाभार्थ आश्रम में आते थे। उन मध्य में एक जन तरुण, विरक्त, गृहत्यागी साधुका नाम विशेष उल्लेख योग्य है। इस साधु का नाम रामाचारी रामानुज दास था। ये अयोध्यास्थ राज सभा नामक आश्रम के महन्त हम लोगों के स्वामी जी महाराज के गुरु भ्राता के ज्ञान एवं भक्ति सम्पन्न शिष्य श्री भागवताचारी के चरणाश्रित हैं। ये रामाचारी रामानुज दास इस समय रामाचारी स्वामी 1911 – 12 खृष्टाब्द से स्वामी जी महराज का सङ्ग करना आरम्भ किये। उस समय उनकी अवस्था 20/21 वर्ष की थी। प्रथम प्रथम यह त्यागी तरुण युवक स्वामी जी महराज के साथ बातचीत करने का साहस नहीं करता था। केवल दूर से उनको देख कर एवं अन्यान्य प्रवीण साधुगण के सङ्ग में उनका कथामृत पान करके कृतार्थ होता था। क्रमशः स्वामी जी महराज की साधुता से उनके गुण से एवं अनुष्ठान से आकृष्ट होने लगा। एक बार की जगह दो बार, बाद में तीन बार स्वामी जी महराज की सन्निधि में जाकर बैठा रहता उनकी निष्ठा को देखकर क्रमशः स्वामी जी की कृपादृष्टि उनके ऊपर पड़ने लगी। वे रामाचारी जी के साथ वार्तालाप भी करने लगे। उनका आदर करने लगे, एवं कुछ ज्ञान का उपदेश भी देने लगे और भगवत् भागवत के कैङ्कर्य में उनका उत्साह देखकर श्री स्वामी जी आश्रम का कोई–कोई कैंकर्य उनके द्वारा करना आरम्भ किये। इन समस्त कैङ्कर्य के करने से रामाचारी भी अपने को कृत कृत्य मानने लगे। कई एक वर्ष के पीछे उनके आचार्य राज सभा के महन्त जी महराज श्री भागवताचारी का परम पद हो गया। इसके पश्चात् स्वामी जी महाराज के साथ रामाचारी का सम्बन्ध शीघ्र ही घनिष्ठ हो गया। वे अपने पूजा–पाठ प्रसाद ग्रहण के समय को छोड़ कर प्रायः समस्त क्षण ही स्वामी जी के सन्निधि में रहते अथवा आश्रम के विविध कैङ्कर्य के व्यापार में व्यस्त रहते। रात्रि में शयन के समय अपने स्थान पर चले जाते। परवर्ती समय में इन्हीं रामचारी स्वामी जी की कृपा से उनके निकट इस ग्रन्थ के रचना काल में श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य जीवन चरित्र की बहुत घटना एवं तथ्य संग्रह करने में यह दीन लेखक समर्थ हुआ है। उनका यह ऋण अपरिशोधनीय है। वे इस समय आचार्य स्थानीय उत्कृष्ट साधु रामाचारी स्वामी नाम से वैष्णव समाज में सर्वत्र परिचित और आदरणीय हैं।

"श्री भागवताचारी स्वामी का दक्षिण भारत गमन"

1911/12 खृष्टाब्द से श्री स्वामी भागवताचारी शास्त्री का स्वास्थ्य प्रतिकूल होने लगा। उनके सर्दी, खाँसी दमाँ रोग का सूत्रपात हुआ। उस समय उनकी अवस्था 50/55 वर्ष की होगी। अयोध्या, काशी प्रभृति स्थान में आयुर्वेदिक चिकित्सा से सामयिक उपचार जरूर होता था। किन्तु स्थायी उपचार की उपलब्धि नही हुई। तब वे श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति लेकर दक्षिण भारत चले गये। उनका दो उद्देश्य था– आड्वारों के दिव्य प्रबन्ध रूप विशेष शास्त्र का अध्ययन, एवं विशेषज्ञों से अपने रोग की चिकित्सा कराना। वे दक्षिण भारत जाने से ही पूर्ण उद्यम के साथ दोनों विषयों में मनोनिवेश किये। जितना ही उनके श्वास, खाँसी का उपशम होने लगा। उतना ही वे विशेष शास्त्र के अध्ययन में अधिकतर प्रयत्न करने लगे। इस उपलक्ष में श्रीरङ्गम्, काञ्ची भूतपुरी, प्रभृति विभिन्न स्थानों में रहते हुए विशेष शास्त्र में अभिज्ञ ज्ञानाधिक वैष्णवों के निकट शिक्षा ग्रहण करके शीघ्रतापूर्वक आड्वारों के दिव्य प्रबन्ध विषय में पारदर्शी हो गये। इन समस्त रहस्यपूर्ण दिव्य प्रबन्धों का अध्ययन अध्यापना हस्त लिखित पुस्तक के अवलम्ब से ही होता था। उत्तम आचार्यगण इस विषय का हस्त लिखित ग्रन्थ अपने पास रखते। इन ग्रन्थों में विशेष विशेष स्थल पर विशेष विशेष टिप्पणी भी अपने हाथ से लिखकर रखते उन लोगों के निकट यह सब हस्तलिखित पुस्तक अमूल्य रत्न स्वरूप थी। यह सब ग्रन्थ अवलम्बन करके ही वे लोग उपयुक्त शिष्य एवं सेवकों को शिक्षा देते थे। यह विशिष्ट प्रथा आज तक वैष्णव जगत में चल रही हैं। भागवताचारी स्वामी का हस्ताक्षर अति सुन्दर, मुक्ता माला के सदृश सुदृश्य था। वे अध्ययन करने के समय प्रत्येक दिव्य प्रबन्ध अपने हाथ से पुस्तक के आकार में लिख लेते थे। अध्ययन के समय स्मारक हिसाब से विशेष विशेष टिप्पणी भी लिख लेते थे। उनकी ये सब हस्त लिखित पोथियाँ श्री अयोध्या आश्रम के ग्रन्थागार में आज भी यत्न के सहित सुरक्षित होकर हैं।

तृतीय प्रवाह
द्वितीय अध्याय

''अर्चा विग्रह विजयराघवजी का अयोध्या आगमन''

1913 खृष्टाब्द के मध्य ही श्री भगवत्कृपा से श्री स्वामी जी महाराज के अयोध्या का आश्रम किसी प्रकार से निर्वाह होता रहे इस प्रकार एक बन्दोबस्त हो गया। उस समय आश्रम के एक घर में शालग्राम शिला श्रीनृसिंह देव की सेवा पूजा पहले से ही चली आ रही थी। श्री स्वामी जी महाराज के मन में अब इस सङ्कल्प का उदय हुआ कि मेरे आश्रम में श्रीरघुनाथ जी एवं अम्बा जी (सीता देवी) की अर्चाविग्रह स्थापित होकर यथा विधि अर्चित हो। कुछ दिन के मध्य ही उनका यह सङ्कल्प दृढ़ होने लगा। वे इस विषय में श्री रघुनाथ जी एवं अम्बा जी दोनों के चरण में कातर प्रार्थना किये। उन्हें ऐसी प्रार्थना से क्या इङ्गित पाये, क्या उत्तर पाये यह सब हम लोगों के ज्ञात नही है। श्री स्वामी जी महाराज शीघ्र ही दक्षिण भारत में निवासरत योग्य शिष्य श्री भागवताचारी शास्त्री जी को लिखकर भेजे कि वे दक्षिण देश से श्री रघुनाथ जी एवं अम्बा जी का विग्रह निर्माण कराकर, अथवा कोई, प्राचीन अर्चामूर्ति के उपलब्ध होने का सम्भव हो तो उस मूर्ति का संग्रह करके शीघ्र ही प्रतिष्ठा के लिए श्री अयोध्या भेज दें। उस समय भागवताचारी स्वामी आड्वार भक्तिसार स्वामी के आविर्भाव स्थल 'त्रिमूसी' नगर में मद्रास शहर से प्रायः 50 मील पश्चिम कुण्डलाचारी स्वामी के निकट आड्वारों के दिव्य प्रबन्ध की आलोचना करते थे एवं वैद्यराज श्री रामकृष्ण शास्त्री से अपनी व्याधि की चिकित्सा करा रहे थे। वैद्य जी प्रायः उनके समवयस्क एवं बन्धु के सदृश थे ये दोनों अवसर पाने से ही निकटस्थ विभिन्न दिव्य देश में मन्दिरों में दर्शन करने जाते। अर्चाविग्रह का सुवन्दोवस्त करने के लिए आचार्य का आदेश पत्र पाकर श्री भागवताचारी स्वामी इस विषय में सफलता के लिए श्री गुरु गोविन्द के चरण में आन्तरिक प्रार्थना किये। ''गुरोराज्ञागरीयसी'' जानकर यह आज्ञा पालन करने में सविशेष यत्नवान हुए नाना स्थानों में अनुसन्धान करने लगे । इसी समय एक अतीव विस्मय कर घटना संघटित हुई।

''पच्चे पेरुमाल भगवान्''

श्री भगवताचारी स्वामी और रामकृष्ण शास्त्री जी वैद्य, दोनों जन श्री रामानुज स्वामी जी के शिष्य तथा भागिनेय, श्री दाशरथी स्वामी (अण्डान स्वामी) के जन्म स्थान ''पच्चे पेरुमाल कोइल'' नामक (त्रिमूसी से प्रायः 25 30 मील दूर) स्थान में वहाँ का अर्चा विग्रह, एवं मन्दिर दर्शन करने के लिए गये। दक्षिण भारत में शास्त्रविधि के अनुसार दिव्य देश के मन्दिर निर्मित होते हैं। दो वहि प्रकोष्ठ के बाद गर्भ मन्दिर में अर्चावतार भगवान् विराजते हैं। फलतः इस गर्भ मन्दिर आलोक विशेष प्रवेश नहीं कर सकता है अतएव दीप अथवा कर्पूर

आरती की आलोक शिखा भिन्न अर्चाविग्रह का दर्शन स्पष्ट नहीं हो सकता। पच्चे पेरुमाल में श्री अर्च्चा मन्दिर की अवस्था भी इसी प्रकार थी। इन सब मन्दिरों में गर्भ मन्दिर को छोड़कर वहि:प्रकोष्ठ में भी अन्य अर्चा विग्रह, प्रतिष्ठित एवं पूजित होते रहते हैं। यहाँ के श्री मन्दिर का अर्चा विग्रह बहुत प्राचीन प्राय: दो सहस्र वर्ष पूर्व प्रतिष्ठित हुआ है, इस रूप से एक प्रवाद है। श्री भागवताचारी स्वामी एवं श्री रामकृष्ण शास्त्री वैद्य गर्भ मन्दिर में श्री पच्चे पेरुमाल भगवान् की कर्पूर आरती देखने के बाद बाहर आने के समय अन्धकाराच्छन्न मध्यम प्रकोष्ठ में श्री भागवताचारी स्वामी का उत्तरीय वसन (चादर) छूट कर माटी में गिर पड़ा। पुन: चादर को लेकर शरीर में लगाने के समय एक आँचल जैसे किसी चीज में फँस गया तो ऐसा मालूम हुआ किसी अर्चाविग्रह का है। घर में अन्धकार था। इस घर में भी अन्य अर्चावतार विराजमान थे। चादर खीचने से श्री विग्रह का शायद कोई अनिष्ट हो जाय इसके भय से भगवताचारी स्वामी जी अपना चादर जिस भाव से था वैसा ही रहने दिये।

''अयोध्या मन्दिर के लिए अर्चा विग्रह के सन्धान में विस्मय कर घटना''

और पुजारी को बुलाकर प्रदीप के प्रकाश में अपने चादर को छुड़ा देने के लिए कहे। पुजारी जी दीप को लेकर देखे कि इस चादर का आँचल अर्चा विग्रह श्री जानकी महारानी की एक अङ्गुली में फँसा हुआ है। पुजारी तुरन्त अतियत्न से धीरे – धीरे उस अँगुली से चादर को छुड़ा दिये। दीप के प्रकाश में लोग देखे कि उस प्रकोष्ठ में, श्री रघुनाथ जी,श्री जानकी जी, श्री लक्ष्मण जी एवं श्री हनुमान जी का श्री विग्रह विराजित है। वे लोग उस स्थल पर साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपने स्थान पर लौट आये। श्री भागवताचारी स्वामी जी उसी रात्रि में स्वप्न देखे– कि जनक नन्दिनी उनसे कह रही हैं–

''इस स्थल में हमारा मन नहीं लग रहा है, तुम हमें अयोध्या धाम ले चलो।''

शास्त्री जी इस स्वप्न को विशेष महत्व नहीं दिये वे इस स्वप्न का विषय चिन्ता करते करते फिर सो गये। वे तदनन्तर लगातार तीन दिन इसी प्रकार स्वप्न देखे। तब वे यह अपरूप स्वप्न का विषय अपने साथी श्रीरामकृष्ण वैद्य को सुनाये। सुनने के बाद वैद्य जी कहने लगे आप अत्यन्त भक्ति से युक्त होकर दर्शन के लिए मन्दिर में गये थे इसी लिए इस विलक्षण स्वप्न का दर्शन लाभ किये हैं – इस भाव से परस्पर विचार करके वे निश्चिन्त हो गये। इस दुर्लभ स्वप्न का अभिप्राय वे लोग जान नहीं पाये। दो एक दिन के बाद ही वैद्य रामकृष्ण जी भी तीन रात्रि ठीक एक ही प्रकार का स्वप्न देखे तब दोनों जनका ही चैतन्योदय हुआ। वे उस समय श्री सीता देवी के आदेशानुयायी उपरोक्त श्री सीता देवी, लक्ष्मण जी, हनुमान जी के सहित श्री रघुनाथ जी के अर्चाविग्रह को अयोध्या ले जाने के लिए सविशेष यत्नशील हुए। वे दोनों जन मिलकर तुरन्त मन्दिर के कर्मकर्ता के निकट गमन किये, एवं अपने अपने स्वप्न का वृत्तान्त आनुपूर्विक कह सुनाये। और यह सब अर्चाविग्रह को अयोध्या ले जाने के लिए कृपा पूर्वक दे देने की कातर प्रार्थना किये। इस विग्रह अर्पण में जो

मूल्य निर्धारित होगा–वह समस्त ही वहन करने के लिए सानन्द स्वीकृत हुए। इस अप्रत्याशित एवं अ प्रार्थना को सुनते ही श्री मन्दिर के सत्ताधिकारी कर्मकर्ता अत्यन्त रूष्ट होकर दोनों को ही भर्त्सना करते हु बोले– कि इस प्रकार निष्ठुर प्रस्ताव करने का साहस तुम लोगों का कैसे हुआ? इस अतिप्राचीन श्री मूर्ति अर्पण करने का क्या कारण हो सकता है! हम लोग किस तरह ही प्राण धारण करके इस प्रकार का महा अ ा कर सकेंगे? तुम लोगों के स्वप्न की यह बात भ्रम एवं वञ्चना के भिन्न और कुछ भी नहीं है।' इस प्रकार तिरस्कार वचन को सुनकर साधु द्वय निराश हो गये। और दोनों जन अपने स्थान को प्रत्यावर्तन किये। उसी रात्रि में मन्दिर के कर्मकर्ता स्वप्न देखे। स्वप्न में श्री अम्बा जी (सीता देवी) अत्यन्त रूष्ट स्वर से कह रहीं है – तुम शीघ्र ही हमें अयोध्या भेज दो, वहाँ जाने के लिए हमारा मन उत्सुक हो रहा है। हमारा मन और इस स्थल में नहीं लग रहा है। तुम हमारी इच्छा में किसी प्रकार विघ्न उत्पादन नहीं करना।'' कर्मकर्ता उपर्युपरि तीन रात्रि इस प्रकार का अशुभ स्वप्न देखकर अतीव भीत एवं चिन्तित् हुए। दूसरे दिन अत्यन्त व्याकुल होकर श्री मन्दिर के सभी कमेटी मेम्बरों को एकत्रित करके उन लोगों को चादर सम्बन्धी संश्लिष्ट घटना, श्री अम्बा जी प्रदत्त अपने प्रति स्वप्नादेश एवं अन्य दो महापुरुषों के प्रति भी स्वप्नादेश परस्पर के मध्य में कथोपकथन का सारा वृत्तान्त आद्यन्त विवरण पूर्वक कह सुनाये। उसके बाद वे सम लोग जाकर गर्भ मन्दिर के घटना के स्थान को सतर्क दृष्टि से परिदर्शन किये। फिर वे क्षुभित होकर भागवताचारी और राम कृष्ण जी को बुला लिये। उन लोगों के साथ कुछ काल वादानुवाद करते हुए आश्चर्य घटना की सत्यता, निश्चय किये।तव इस मन्दिर के परिचारकगण अत्यन्त विमर्ष हो गये। कि जानकी जी के निर्देश को अमान्य करने का कोई प्रकार साहस नहीं किये।

''श्री रघुनाथ जी प्रभृति विग्रह लाभ''

कमेटी के सदस्यगण सभी उस समय श्रद्धापूर्वक श्री अम्बा जी का निर्देश शिरोधार्य करके व्यथित ह से चारों अर्चाविग्रह को ही श्री भागवताचारी जी के हाथ में समर्पण कर दिये। तुरन्त ही यह अति शुभ संवाद भागवताचारी जी टेलिग्राम के द्वारा अयोध्या अपने आचार्य श्री बलराम स्वामी जी के पास ज्ञापन व निवेदन दिये एवं पत्र द्वारा इस अद्भुत घटना का विवरण भी लिखकर भेज दिये।

यथा योग्य व्यवस्था अवलम्बन करते हुए शास्त्र मर्यादा को अक्षुण्ण रखकर शास्त्रज्ञ भगवताचारी जी यह गुरु दायित्व वहन करके अति अप्रत्याशित भाव में श्री अम्बा जी की अशेष करुणा से अपने गुरु की आज्ञा पालन करने में सफल मनोरथ हुए। अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल चित्त से वे श्रीरघुनाथ जी, श्री जानकी, लक्ष्मण जी, श्री हनुमान जी का यह दिव्य विग्रह चतुष्टय को साथ लेकर अयोध्या धाम श्री गुरु देव सन्निधि में उपस्थित हुए। इसके पहले यह शुभ सम्वाद श्री स्वामी जी महराज को विदित हो गया था अन्यान्य अन्तरङ्ग साधु एवं भक्तगण के सहित इस अर्चाविग्रह चतुष्टय की भक्ति के सहित अभ्यर्थना के

श्रीमते रामानुजाय नमः



स्वामी श्री रघुनाथाचार्य जी महाराज

श्रीमत्सदार्य बलराम गुरोः पदाब्जम्,
संश्रित्यलब्ध निगमान्त रहस्य सारम् ।
नारायणाश्रमनिवासरतं महान्तं
श्रीमत्सदार्य रघुनाथ गुरुं भजेऽहम् ॥

अपेक्षा करने लगे। अयोध्या आश्रम में इन दिव्य मूर्तियों के शुभ पदार्पण करने के साथ ही साथ श्री बलराम स्वामी जी महाराज आनन्द में विह्वल होकर अश्रुपूर्ण अनिमेष नयनों के द्वारा इन सभी अपूर्व दिव्य मूर्तियों का दर्शन करने लगे, एवं अपने हाथ यथा विधि कर्पूर आरती करके भक्ति के सहित सादर अभ्यर्थना निवेदन करते हुए अपने को कृत कृत्य समझने लगे । अपने प्रति अम्बा जी की असीम करुणाधारा का वर्षण अनुभव करके अश्रुधारा विसर्जन करने लगे। श्री स्वामी जी महाराज के द्वारा कर्पूर आरती करने के बाद अयोध्या निवासी बहुत सन्त महन्त नवागत अर्चाविग्रह के चरण मूं भेंटी प्रणामी निवेदन करते हुए आनन्द के साथ इन सकल दिव्यमूर्तियों का दर्शन करने लगे। विभीषण कुण्ड के महन्त श्री वलभद्र स्वामी जी, बड़े स्थान के अधिपति श्री राममनोहर दास जी, श्री वल्लभाशरण दास जी, श्री रामकिशोर दास जी, श्री जयकरण दास जी प्रभृति महन्त वृन्द एक एक क्रम से भेंटी अर्पण करने लगे। वे सभी ये सब अर्चावतार की दिव्य मूर्ति का दर्शन करके मुग्ध हो गये। श्री स्वामी जी महाराज के मन में अभिलाषा थी कि अर्चाविग्रह का प्रथम महाभिषेक किया जाय, एवं उसके पश्चात् उनका भोग लगे, उसी निवेदित प्रसाद का गोष्ठी विनियोग हो! अर्थात् साधु गोष्ठी में वितरण किया जाय। इस साधु सेवा के अनन्तर वे दुग्ध भोग लगाकर अपने भी प्रसाद ग्रहण करें। परन्तु उसी रात्रि में ही वे स्वप्न में आदेश पाये।

"श्री अयोध्या धाम में श्री विजय राघव जी प्रतिष्ठा और महा अभिषेक"

"दिव्य मूर्ति तुम्हारे सामने विराजमान हो रहे हैं। तुम महाअभिषेक का विचार नहीं करो, निःसन्देह भोग लगाकर गोष्ठी विनियोग करो, भागवतगण को प्रसाद वितरण करो, एवं तुम भी दुग्ध भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करो।" स्वप्न में इस प्रकार विस्मयकर दिव्य आज्ञा को पाने से धन्य होकर श्री स्वामी जी महाराज भक्त गोष्ठी की सेवा से धन्य होकर श्री स्वामी जी महाराज भक्त गोष्ठी की सेवा के लिए तदनुगुण व्यवस्था किये। एवं स्वयं भी दूध भोग लगा कर प्रसाद पाये। एतद् अनन्तर एक जन दक्षिण देशीय विद्वान् अर्चक के द्वारा इन सभी अर्चाविग्रहों का महा अभिषेक एवं प्रतिष्ठा कार्य यथा शास्त्र सम्पादित हुआ। जिस प्रकोष्ठ में शालग्राम शिला की अर्चना होती थी उसी क्षुद्र प्रकोष्ठ में यह विग्रह चतुष्टय शास्त्र विधि के अनुसार प्रतिष्ठित हुए। इसी प्रकोष्ठ में नित्य अर्चना भोग रागादि चलने लगा। प्रतिष्ठापक के नामानुगुण शास्त्र विधि के अनुसार से रघुनाथ के अर्चाविग्रह का श्री नाम विजयराघव जी महाराज हुआ। तब से श्री स्वामी जी महाराज के श्री आश्रम का नाम श्री विजयराघव जी आश्रम हुआ एवं श्री मन्दिर का नाम श्री विजयराघव मन्दिर हुआ। अंग्रेजी 1914 खृष्टाब्द में श्री विजयराघव जी महाराज का प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न हुआ। श्री विजयराघव जी एवं श्री अम्बा जी के दक्षिण भारत से श्री अयोध्या धाम आगमन संश्लिष्ट रोमाञ्चकर आश्चर्यजनक दैव घटनावली का संवाद अयोध्या मण्डल में एवं अन्यत्र भी द्रुत व्याप्त हो गया। इस जाग्रत एवं प्रकट विग्रह के दर्शन लालसा से बहुत साधु सन्त बहुत धर्म पिपासु नरनारी झुण्ड के झुण्ड विजय राघव जी के मन्दिर में आने लगे।

श्री भगवान् कर्म के अधीन नहीं है कर्म ही उनके अधीन है किन्तु वे अपने सङ्कल्प के अधीन हैं। अपनी सङ्कल्प सिद्धि के लिए जिस कर्म का प्रयोजन होता है वे किन्तु उसी कर्म के अधीन हैं। जीव सृष्टि जिस तरह उनका एक मुख्य सङ्कल्प है, सृष्ट जीवों का उद्धार करना भी उसी तरह एक मुख्य सङ्कल्प है। भव सागर में हुए जीवों के पार जाने के लिए विष्णु पोत ही आश्रयणीय अद्वितीय नौका है। इसी लिए ही शास्त्रवचन मिलता है –

भवजलधि गतानां द्वन्द्व वाताहतानाम्
सुतदुहितृकलत्र त्राणभारार्दितानाम् ।
विषम विषयतोये मज्जतोऽयंनराणाम्
भवतुशरणमेको - विष्णुपोतोनराणाम् ।। (मुकुन्द माला)

इस जीव के उद्धार करने के लिए ही वे हम लोगों के मध्य अवतीर्ण होते हैं।

''अर्चावतार इस जीव के उद्धारार्थ सहायक रूप से श्री भगवान् साधु समाज को हम लोगों के पास भेज देते हैं। जब ये साधुगण दुष्कृत कारियों के द्वारा विपन्न होते हैं, तब दुष्कृत दमन पूर्वक साधु परित्राण के लिए वे स्वयं अवतार रूप धारण करते हैं वही उनकी श्रीमुख निस्सृत वाणी है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

यह पर दुःख विदारण, साधुगण के माध्यम से ही वे श्री भगवान अधिकांश क्षेत्र में दुर्गत जीवों की दुर्गति का विनाश करते रहते हैं। इस कारण से ही भक्तगण, साधुगण उनके अत्यन्त प्रिय हैं। ''भक्तास्त्वतीव मे प्रियाः''। जीव के दुःख से भक्तगण अत्यन्त दुःखी होते हैं। जीवों के प्रति अनुग्रह करके उनके दुःख दूर करने पर ही भगवान की प्रीति साधन की जासकती है। यही साधुगण के हृदय का पवित्र भाव है। साधुगण के इस भाव के लिए ही उन लोगों के ऊपर अनुग्रह करने में सर्वदा कातर रहते हैं। इसी लिए ही वे ''भक्तानुग्रह कातर नाम' से प्रसिद्ध हैं।

यद्यपि साधु परित्राण एवं साधुओं के अनिष्टकारी दुष्कृतों का विनाश करने के लिए भगवान अवतार रूप धारण करते रहते हैं, तथापि इस अवतरण काल के निर्धारण का मूल कारण साधुओं की आर्त पुकार है। साधुओं की आर्त पुकार को वे किसी तरह भी अवहेलना नहीं कर सकते। साधुओं के आर्त–पुकार से उनका अवतरण अवश्यम्भावी हो जाता है। भगवान का मनोभाव दुर्ज्ञेय है, उनकी अवतार कालीन लीला भी दुर्ज्ञेय है। तथापि उन्हीं की कृपा से इस सजीव लीला का कुछ कुछ अंश उनके कृपापात्र के ज्ञान गोचर हो सकता है। किन्तु अर्चावतार की स्थिति ठीक उस तरह नहीं है। यह उनका एक अद्भुत एवं अपरूप व्यापार है। श्री भगवान् का अर्चावतार सर्वज्ञ होते हुए अज्ञ के सदृश सर्वशक्तिमान होते हुए भी अशक्त प्रतिभात होते हैं। इस कारण से इस अवतार की लीला अधिकतर दुर्ज्ञेय है। रामकृष्ण, वामन, नृसिंह प्रभृति अवतारों के सदृश अर्चावतार भी अशेष कल्याण गुण – गण से परिपूर्ण हैं यह हम लोग किसी तरह से भी हृदयङ्गम करने में समर्थ नहीं हो पाते। कोई अर्चावतार जब किसी भक्त को करुणा पूर्वक अनुभव देकर कृतार्थ करते हैं तब वह महा सौभाग्यवान् भक्त इस अर्चावतार की महिमा उपलब्धि करने में समर्थ होते हैं। वे भक्त फिर इस अर्चावतार की महिमा के प्रचार करने में मुखर हो जाते हैं। जब इस भाव से अर्चावतार की विभिन्न महिमा विभिन्न दिशा में फैल जाती है तब उनको जाग्रत देवता समझकर साधारणजन उनके प्रति भी आकृष्ट होता है, अभिभूत हो जाता है। यही जाग्रत अर्चावतार तब साधारणजनों के द्वारा समाधिक आदृत होते हैं, सम्यक् अर्चित होते हैं। अर्चावतार के इस विशेष जागरण का हेतु स्वयं हैं अथवा उनके विशिष्ट भक्त हैं उसे निर्धारण करना सहज नहीं है।

"श्री विजय राघव जी के अयोध्या धाम आने पर पूर्वा पर घटना का विश्लेषण, अर्चावतार की महिमा''

अर्चावतार श्री विजय राघव जी की महिमा का विषय, श्री जानकी जी की करुणा जड़ित दिव्य अनुष्ठान का विषय, सूक्ष्म भाव से पर्यालोचना का सामर्थ्य व ज्ञान हम लोगों में नहीं है। स्थूल भाव से आलोचना करने से भी अर्चावतार के लीला विषय में हम लोग कुछ कुछ तथ्य लाभ कर सकते हैं। इस विषय में प्रथमतः जान पाये हैं कि अपने आश्रम में श्री रघुनाथ जी एवं श्री अम्बा जी का अर्चाविग्रह प्रतिष्ठापन के सङ्कल्प श्री स्वामी जी के मन में सर्वप्रथम ही उदय हुआ था। क्रमशः यह संकल्प दृढ़ हो गया। श्री भगवान के चरण में इस सङ्कल्प की सिद्धि के लिए श्री स्वामी जी महराज प्रार्थना किये थे। अपने योग्य शिष्य भागवताचारी शास्त्री जी को निर्देश देकर दक्षिण भारत में लिखकर भेजे थे। ठीक उसके पश्चात् ही श्री भागवताचारी जी का ''पच्चे पेरुमाल'' को इसमे दर्शनार्थ गमन, वहाँ उनकी उत्तरीय चादर का शरीर से गिर जाना उस चादर को फिर ओढ़ने के समय श्री जानकी जी के श्री अङ्गुली से उसी चादर का फँस जाना श्री अम्बा जी का अपने को अयोध्या धाम ले जाने के लिए, शास्त्री जी को अम्बा जी कर्तृक उपर्युपरि स्वप्न दान, इस स्वप्न के विषय में निःसन्देह करने के लिए शास्त्री जी साथी वैद्यरामकृष्ण जी को पुनर्वार उपर्युपरि तीन रात्रि उसी प्रकार का स्वप्न दान मन्दिर के कर्मकर्ता परिचालक द्वारा इस प्रस्ताव में प्रतिकूलता करने पर उनको भी अन्त में सर्व विघ्न बाधा अतिक्रमण करके श्री अयोध्या धाम स्वामी जी महराज के निकट में श्री रघुनाथ जी, श्री लक्ष्मण जी, श्री जानकी जी के सहित श्री हनुमान जी का शुभागमय– सुश्रृङ्खलावद्ध इन घटनाओं को एकाग्र चित्त से चिन्ता करने पर एक दुर्ज्ञेय रहस्य का अमूल्य तत्व निःसन्देह भाव से उद्घाटित हो जाता है। सिद्ध भक्त का शुभसङ्कल्प, इस सङ्कल्प के पूरण के लिए भगवान् के चरण में कातर प्रार्थना, अर्चावतार का सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, श्री अम्बा जी का करुणा पूरित अन्तर भक्त के

सङ्कल्प सिद्धि के लिए उनका अपरूपकला कौशल अवलम्बन, और परिशेष में भक्त का हार्दिक मनोरथ पूर्ण सब तत्व और तथ्य उपरोक्त घटनाओं से सुस्पष्ट भाव से स्वयं प्रकट हो जाते हैं। अयोध्या आगमन के बाद श्री नवागत अर्चाविग्रह का मह्य अभिषेक के बिना ही भोग निवेदन करके स्वयं प्रसाद ग्रहण करने के लिए एवं भक्त को यह निवेदित प्रसाद वितरण करने के लिए स्वप्न में श्री स्वामी जी महाराज को निर्देश दान देना एक ओर जिस प्रकार अर्चाविग्रह का सर्वज्ञत्व, सर्व शक्तित्व, पूतत्त्व, और पावनत्व का बोधक है, पक्षान्तर में उसी प्रकार अपने प्रिय भक्त के प्रति अर्चाविग्रह के अनुपम ममत्व बोध का भी परिचायक है। अर्चावतार कितनी मात्रा में भक्तानुग्रह कातर हैं वे कितनी मात्रा में भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं, उसे उक्त घटनाएँ सुस्पष्ट भाव से हृदयङ्गम करा देती हैं। श्री भगवान् का हृदय अतीव गम्भीर और दुर्ज्ञेय है उनके भक्तों का मन भी उसी प्रकार अतीव गम्भीर है किन्तु भक्तों के गम्भीर मन के निकट भगवान का गम्भीर मन हार मान लेता है। वे स्वतन्त्र पुरुष होकर भी स्व परतन्त्र, भक्तों पराधीन होकर रहते हैं। 'अहं भक्त पराधीन' यह उनकी ही श्री मुख नि:सृतवाणी है। भक्त के मन के अनुगामी होकर भक्ताधीन भगवान की लीला का अनुष्ठान सम्पन्न होता है भगवान के अर्चावतार मन्दिरों में अर्चित सभी दिव्य विग्रहों में ये समस्त गुणगण सम्यक् विधमान रहते हैं। इस भाव को प्रकट करने के लिए ही महा–आचार्य श्री यामुन मुनि अपने जगत्प्रसिद्ध आल्वन्दार स्तोत्र के द्वारा सहस्राधिक वर्ष पूर्व ही वर्णन किये हैं– हे भगवन् तुम्हारी सर्वविध लीलायें यहाँ तक कि जगत् की सृष्टि स्थिति, प्रलय एवं मुक्ति आदि भी तुम्हारे भक्तगण की सङ्कल्प सिद्धि के लिए उनके गम्भीर मन का अनुसरण करके ही होती हैं।

त्वदाश्रितानां जगदुद्भव स्थिति–
प्रणाश संसार विमोचनादय: ।
भवन्ति लीला विधयश्च वैदिका:,
त्वदीय गम्भीर मनोऽनुसारिण: ।।

विजय राघव जी महाराज के प्रतिष्ठा के बाद जब स्वामी जी महाराज देखे कि उनकी सेवा–पूजा आदि का समस्त कैङ्कर्य्य, अच्छी तरह से चल रहा है तब यह सेवा पूजा और कैंकर्य जिससे उन्नतिशील और चिरस्थायी हो सके और हमारी अप्रकट अवस्था में भी इस दिव्य कैङ्कर्य का प्रवाह अक्षुण्ण रहे उस अभिप्राय से वे अपार्थिव, धर्मानुयायी, एवं पार्थिव, आइन के अनुसार 1915 खृष्टाब्द में दो नया पक्का व्यवस्था कर दिये।

''मन्दिर परिचालनार्थ ट्रस्टी कमेटी का नियोग''

(1) वे इस मन्दिर एवं आश्रम कार्य परिचालना के लिये पञ्च सदस्य युक्त एक परिचालक मण्डली–ट्रस्टी कमेटी नियुक्त कर दिये।

(2) अपनी वैकुण्ठ यात्रा के बाद इस-विजय राघव जी मन्दिर एवं आश्रम के उपयुक्त अधिकारी नियोग करके आइन–अनुयायी एक दलील रजिस्ट्री कर दिये। अवश्य प्रयोजनीय दो उक्त कार्य सम्पन्न करके श्री स्वामी जो श्री मन्दिर एवं आश्रम की भविष्यत् सेवा के सम्बन्ध में कथञ्चित् निश्चिन्त हुए।

''ट्रस्टी नामा''

लिखा मैं बलरामाचारी शिष्य 1008 स्वामी श्रीरङ्गाचारी जी वैकुण्ठवासी उद्यम पाठ पूजा, रहने का मोहल्ला बेगमपुरा श्री अयोध्या जी जिला फैजाबाद का रहने वाला हूँ। गत 8 वर्ष हुए मैनें अयोध्या जी मौजे

के निकट जिसका नाम कनक मण्डप उत्तर द्वार है, केवल अपने द्रव्य से निर्माण किया। तथा दक्षिण देश के एक प्राचीन ठाकुर श्री विजय राघव जी भगवान की मूर्ति प्रतिष्ठा करा के विराजमान किये हैं। जिनके भोगराग इत्यादि के निमित्त हमने एक पूरा महाल मौजे बाग विजेसी परगने हवेली आवाद जिला फैजाबाद में श्री ठाकुर विजय राघव जी के नाम से खरीद लिया हूँ तथा एक और सम्पत्ति हमारे शिष्य श्री राय नामक साकिन शाहूपुर जिला बलिया में उक्त श्री ठाकुर जी के नाम पुण्य के लिए कर दिया है। इसके उपरान्त कुछ सम्पत्ति आज दिन हमने श्री ठाकुर जी के निमित्त वक्फ करके समर्पण किया है। यह सर्व सम्पत्ति स्थावर कि आज से समस्त व्यय श्री ठाकुर जी को मैं लेखक–सम्पादन कर रहा हूँ परञ्च आज मैं वृद्धावस्था को पहुँचा शरीर क्षणभङ्गी है, नहीं मालूम हम किस समय शरीर को परित्याग कर देवें। प्रत्येक मनुष्य का धर्म है ऐसी धमार्थ सम्पत्ति का अपने जीवन समय ऐसा ही स्थिर प्रबन्ध कर जावे कि भविष्यत् काल में नष्ट और वरवाद न हो सके। अतएव उचित जानकर मैनें सर्व सम्पत्ति स्थावर जङ्गम जिसका व्यौरा सम्मिलित पत्र एक वक्फ ट्रस्टी में उपस्थित है, तथा मेरे सर्वराहकार के वह अधिकार में है। एक कमेटी के सिपुर्द करता हूँ, जो समग्र सम्पत्ति श्री ठाकुर जी की हमारे नियत किये हुए कार्य को परम्परा, तदवस्था रक्षा होगी। आगामी परम्परा की नियम तथा कमेटी को प्रबन्ध अधिकार निम्नलिखित नियमावली के द्वारा प्रकाशित करता हूँ ,इसमें हम, हमारे वारिशान् मेम्बरान् को कुछ उजुर व इनकार नहीं है, न होगा, अतएव यह दस्तावेज ट्रष्टीनामा अपनी मर्जी व अभिप्राय से सावधान चित्त होकर लिख देता हूँ कि उचित समय वर्तमान में लाया जावे।

''परम्परा के नियम''

(1) समस्त सम्पत्ति वक्फ कर जिसका व्यौरा सम्मिलित पत्र से एक में उपस्थित है अथवा लेखन क्रिया में अवशिष्ट हो गया हो तथा भविष्य में उत्पन्न हो। मालिक के स्थान में नाम श्री विजय राघव जी भगवान् का तदवस्था रहे, तथा श्री ठाकुर जी की ओर से कार्य सम्पादन करने के निमित्त मैं लेखक देहान्तपर्यन्त सर्वराहकार वक्फ समस्त काज नियमावली अनुसार कमेटी की आज्ञा से करता रहूँगा। मेरे अनन्तर जो महन्त मेरे गद्दी पर होयेंगे वह सर्वराहकार तथा मेम्बर भी होते रहेंगे।

(2) यदि मैं अपने जीवन समय अधिकार महन्ती का प्रबन्ध नहीं कर जाऊँ मेरे शरीर त्याग के अनन्तर समय के मेम्बरान् कमेटी को अधिकार होगा कि चेला भागवताचारी जी स्थान महन्ती पर नियत कर देवें। यदि यह चेला जीवित न रहे तो कोई दूसरा चेला सुयोग्य नियत किया जावे। शिष्य वर्ग में न प्राप्त होने पर हमारे गुरु भ्राता के चेलों में से, यदि दोनों श्रेणियों में यथार्थता न हो तो गोवर्द्धन गद्दी के चेला में से किये जायेंगे।

(3) कोई महन्त विरक्त वैष्णव धर्म पर तदवस्थान न रहे, स्त्री सम्बन्ध कर लेवे अथवा वह ऐसा निन्दित हो रहा हो जो विरक्त धर्म तथा कुल मर्यादा में वादित है, अथवा कमेटी की आज्ञा में नहीं है तो समय के मेम्बरान् ऐसे अयोग्य पुरुष को अधिकार महन्थी सर्वराहकारी से रहित करके नवीन महन्थ द्वितीय संख्या के नियम के अनुसार नियत कर लेवें।

(4) किसी ट्रष्टी का ठाकुर जी की सम्पत्ति स्थावर जङ्गम निजकाम के लिए रेहन व्यय भेंट इत्यादि करने को अधिकार न होगा। परन्तु वह सम्पत्ति जिनकी बिक्री ही करने से लाभ है वह कमेटी की आज्ञा से बिक्री हो सकेगी।

(5) किसी ट्रष्टी तथा सर्वराहकार को सिवाय पट्टा कास्तकारी देने के और किसी प्रकार के पट्टे अर्थात् इस्तम्बरारी आदि निष्कर इत्यादि देने को अधिकार न होगा।

"कमेटी के नियम तथा अधिकार"

(1) यह वक्फ "बलराम धर्म सेतु" यथा नाम से प्रकाशित रहेगा। कमेटी को उचित होगा कि सम्पत्ति को अहर्निशि तदवस्था राखे तथा उसकी आय नियम अनुसार खरच करे।

(2) वर्तमान समय में कमेटी के मेम्बरान्‌गण की नामावली निम्न भाग में प्रकाश करता हूँ।

नाम मेम्बरान्	गुरु तथा पिता का नाम	पूरा पता
1– श्री बलरामाचारी खुद....	श्रीरङ्गाचारी (गुरु)	महन्त गद्दी खास मन्दिर कनक मण्डप उत्तर द्वार
2– महन्त श्री राममनोहर प्रसाद जी....	श्री महन्त गोपाल प्रसाद जी (गुरु)	बड़ा स्थान श्री अयोध्या जी
3– श्री राम प्रपन्नाचारी जी	श्री स्वामी बलरामाचारी जी (गुरु)	वृन्दावन गोपाल मन्दिर
4– श्री महन्त गोपालाचारी जी	श्री हयग्रीव स्वामी (गुरु)	हनुमान कुण्ड,अयोध्या
5– बाबू भगवान लाल सिंह		फिरोजपुर बलिया

(3) कमेटी साल में दो समय पर उपस्थित हुआ करेगी– पहला अधिवेशन चैत्र मास रामनवमी समय दूसरा वार्षिक अधिवेशन श्रावण मास झूलन समय पर तथा आवश्यक आवश्यकता के लिए अन्य समय पर हो सकेगा।

(4) कमेटी समग्र हिसाब किताब यथा सम्पत्ति का नियमावली अनुसार निर्वाह करेगी तथा कर्मचारियों को अनुचित कर्म से वञ्चित करती रहेगी तथा जिन विषय पर कमेटी हुई हो उनकी पूर्ण व्यवस्था तथा निर्दिष्ट प्रबन्ध आगाय बुक में लेखन क्रिया करके कर्मचारी द्वारा करायेगी।

(5) किसी मेम्बर को देहान्त हो जाये अथवा स्वयं अधिकार को परित्याग कर देवे अथवा स्वाभाविक दो वर्ष तक कमेटी में उपस्थित न रहा हो तो शेष मेम्बरान उसके वारिस अथवा द्वितीय प्रतिष्ठितजन को स्थान मेम्बर पर नियत कर लेवे।

(6) यथेष्ट संख्या तीन मेम्बर पर होगी और तदधिक वह फैसला विशेष भाग की सम्मति पर होगी।

(7) कार्यशाला वो कथा का खास मन्दिर ही में रहेगा। कार्य से खजाना इत्यादि कमेटी की आज्ञा सर्वराहकार के अधीन हो मन्दिर में रखे जायेंगे।

(8) प्रचलित समय में वार्षिक लाभ के अनुकूल समस्त व्यय का हिसाब एक रजिस्टर में लेखन क्रिया कर मन्दिर में राख दिया है तथा एक एक प्रति प्रत्येक मेम्बर के हवाले कर दिया है उसी के अनुकूल कमेटी को खरच करना होगा विशेष लाभ हानि के समय आवश्यकता पर कमेटी खरच में परिवर्तन कर सकेगी।

(9) जो द्रव्य में बचत का एकत्र होगा उससे कमेटी कोई स्थावर सम्पत्ति उत्पन्न करके वक्फ सम्पत्ति में सम्मिलित करती रहेगी।

(10) मैं लेखक मन्दिर गोपाल जी वृन्दावन मण्डलान्तर का भी सर्वराहकार रहा हूँ जिसे आज द्रष्टि

अधिकार में दे चुका हूँ उसका 800/– रू. इस मन्दिर श्री अयोध्या जी के वही तथा खजाना में जमा है जिस समय उससे कोई आय प्राप्त की जावे तो गोपाल जी के खरज के लिए भेजा जाया करेंगे ता0 2 दिसम्बर 1915ई0 खृष्टाब्द ADº

तृतीय प्रवाह
तृतीय अध्याय
बंगाल देश पर कृपा दृष्टि

1915 के खृष्टाब्द से श्री स्वामी जी महाराज की करुणा दृष्टि सुदूर बङ्ग देश पर पड़ी। सुदूर बङ्गे तब अपाङ्गे छूटिल करुणा धारा इस करुणा प्रवा के विशेष माध्यम एक महापुरुष वैकुण्ठवासी उपेन्द्रमोहन सेन गुप्त थे। वे एक जन सुदक्ष डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। किन्तु यह उनका बहिरंङ्ग परिचय है। उनका अतरंङ्ग परिचय उनके तीव्र धर्मानुराग से उके एक निष्ठ धर्मानुष्ठान से था। अदालत के कार्य काल व्यतिरिक्त सब समय ही वे शास्त्र पाठ शास्त्रोपदेश एवं ग्रन्थप्रणयन आदि धर्मानुशीलन में अतिवाहित करते । साधु समाज में डिप्टी साहब नाम से वे प्रसिद्ध थे। रात्रिकाल में अल्प काल ही शयन करते। उनकी अनुप्रेरणा से बहुत शिक्षित व्यक्ति धर्मपथ के पथिक होने लगे। उनमें उनके दो भतीजे अवनी रंजन सेन गुप्त कलकत्ता के स्वनामधन्य डॉ0 नलिनीरंजन सेन गुप्त एकाउन्टेन्ट जनरल श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त, श्री विपिन चन्द्र राय, वकल श्री नृपेन्द्र कुमार गुप्त, कविराज श्री राखाल दास गुप्त, डॉ0 नृपेन्द्रनाथ वसु, प्रो0 हरलालदास गुप्त, श्री आशुतोषधर, इञ्जीनीयर यतीन्द्र नाथ बनर्जी प्रधान शिक्षक श्री सतीश चन्द्र बन्धोपाध्याय डॉ0 ज्योतिष चन्द्र गुप्त प्रभृति का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। कुछ काल के पश्चात–डा0 नलिनी रञ्जंन सेन गुप्त महाशय के सहयोग से इस लेखक का भी उनके सङ्गलाभ का सौभाग्य हुआ था। इस भक्त मण्डली के मध्य वे ''न'' का का' नाम से पूजित होते थे। श्री अवनीरञ्जन नलिनी रञ्जन के ''न'' का का थे अतएव अन्याय सभी के वे ''न'' का का हुए।

डा0 नलिनी रञ्जन सेन गुप्त महाशंय के सहयोग से इस लेखक का भी उनके सङ्गलाभ का सौभाग्य हुआ था। इस भक्त मण्डली के मध्य वे ''न'' काका' नाम से पूजित होते थे। श्री अवनीरञ्जन नलिनी रञ्जन के ''न'' काका थे अतएव अन्यान्य सभी के वे ''न'' का का हुए।

''रामदास भट्टाचार्य''

इस प्रसङ्ग में पर लोकगत धर्म प्राण रामदास भदाचार्य एम.ए. महाशय का नाम विशेष भाव से स्मरणीय है। रामदास बाबू सरकारी स्कूल के एक ख्यात नामा प्रधान शिक्षक थे। वे एक विशिष्ट धर्मानुरागी पुरुष थे। 1910 खृष्टाब्द में श्रीमान् उपेन्द्र मोहन जिस समय पूर्णिया में डिप्टी मजिस्ट्रेट थे, श्रीरामदास बाबू वहाँ पर जिला स्कूल के प्रधान शिक्षक थे। इसी समय दोनों का परस्पर परिचय हुआ। सरकारी कार्य से अवसर पाकर श्री रामदास बाबू 1912 खृष्टाब्द में उत्तर एवं दक्षिण भारत के सर्वत्र तीर्थ पर्यटन एवं साधुदर्शन के लिए बाहर हुए थे। यह पर्यटन समाप्त होने के कुछ दिन बाद ही उपेन्द्र मोहन के सहित उनका साक्षात् हुआ। अपने तीर्थ पर्यटन एवं साधुदर्शन के प्रसङ्ग में परस्पर आलोचना के समय रामदास बाबू ''न'' काका महाशय के निकट मुक्तकण्ठ से कहने लगे – उत्तर भारत में जिन समग्र साधुओं के दर्शन का हमें सौभाग्य हुआ है उनके मध्य

वैराग्य में, ज्ञान में, भक्ति में एवं अनुष्ठान में अयोध्या निवासी श्री बलराम स्वामी जी आदर्श सिद्ध महापुरुष यह हमारे मन में दृढ़ धारण हुई है। इस युग में इस प्रकार ज्ञानानुष्ठान सम्पन्न साधु अतीव विरल हैं। रामदत्त भट्टाचार्य महाशय के पास इस वाक्य को सुनने के पश्चात् ही स्वामी जी महाराज के दर्शन करने के लिए उपेन्द्र मोहन का मन चञ्चल हो गया वे 1912 खृष्टाब्द अक्टूबर महीना में दुर्गा पूजा की छुट्टी के समय 8/10 दिन के लिए अयोध्या वृन्दावन आदि तीर्थ भ्रमण के लिए बाहर हुए। अयोध्या रहने के समय वे स्वामी जी महाराज का दर्शन किये। एवं उनके सङ्ग में यथा सम्भव धर्मालोचना किये? धर्म संक्रान्त अनेक कथोपकथन किये। स्वामी जी महाराज की दिनचर्या दर्शन से उनका तीव्र वैराग्य, गम्भीर ज्ञान, एवं पराभक्ति उपलब्धि करके वे अभिभूत हो गये। श्री बलराम स्वामी को एक जन सिद्ध महापुरुष रूप से वे भी निश्चय किये। इस समय से उपेन्द्र मोहन अपनी अन्तरङ्ग भक्त मण्डली को स्वामी जी महाराज के चरण में समाश्रित करा देने का सङ्कल्प पोषण करने लगे। एवं उपयुक्त समण्य के लिए अपेक्षा करने लगे।

''प्रथमवङ्गवासी शिष्य पञ्चक''

1916 खृष्टाब्द दिसम्बर महीने में कई एकजन अन्तरङ्ग भक्त मण्डली को सङ्ग लेकर पुनर्वार उपेन्द्र मोहन श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में उपस्थित हुए। इस समय अपने चार – पाँच अन्तरङ्ग भक्त को स्वामी जी महाराज के चरण में अर्पण करके उन लोगों को दीक्षा देने के लिए प्रार्थना किये। श्री स्वामी जी महाराज धर्म मूर्ति, श्रीमान् उपेन्द्र मोहन का अनुरोध टाल न ही सके। श्री विपिनचन्द्र राय, श्री नृपेन्द्र कुमार गुप्त, श्री यतीन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय, श्री चारुचन्द्र नन्दी एवं हरिदास सेन इन्हीं पाँच जनको श्री वैष्णव सम्प्रदाय विधि के अनुसार से पञ्च संस्कार के द्वारा संस्कृत करके समाश्रित कर दिये। सुदूर वङ्ग देश में श्री स्वामी जी महाराज जी की कृपा दृष्टि का यही प्रथम फल है। विपिनचन्द्रराय महाशय की डायरी से विपिन बाबू अपनी डायरी में लिखे हैं मैं जब घोर संसारी था, संसार के मोह में आसक्त एवं आच्छन्न था। उस समय उपेन्द्र मोहन सेन गुप्त 1912 खृष्टाब्द के अक्टूबर मास में आठ, दस दिन के लिए अयोध्या वृन्दावन प्रभृति तीर्थ स्थान भ्रमण के लिए जाते थे। वे मुझको भी एक सङ्गी बनाकर ले जाने क़ी इच्छा से इस विषय में हमारा अभिमत जानने की जिज्ञासा किये कि तुम हमारे सहित जाने के लिए प्रस्तुत हो कि नहीं? नितान्त दुर्भाग्य वशतः मैंने कहा-"मैं संसार में अकेला हूँ, हमारे स्त्री, पुत्र को देखने वाला अपर कोई व्यक्ति नहीं है, मैं किस प्रकार जा सकता हूँ" अतएव उस समय उन के साथ जाने का सौभाग्य हमारे भाग्य में नहीं हुआ। हम हीं हमारे अपने परम शत्रु हैं अपना हित कल्याण नहीं चाहते हैं इस कारण श्रीमान् उपेन्द्र मोहन की कल्याण वाणी अच्छी नहीं लगी कुछ दिन पीछे सांसारिक आघात खाने पर चैतन्योदय हुआ। चिरजीवन के लिए मेरे मन की गति शुद्ध मार्ग में चलने लगी। कुछ दिन के पश्चात् इसी 1912 खृष्टाब्द में एक जन अपेशेवर गुणी ज्योतिषी हमारे मध्य भ्राता के साथ हम लोगों के घर पर आये। कुछ व्यक्तियों को गणना के बाद वे हम को भी बुलाये। ज्योतिष गणना बुद्धि भ्रमात्मक है, इस धारणा के कारण हमें ज्योतिष गणना में विश्वास नहीं था। हमें गणना कराने की इच्छा नहीं थी अन्त में अपने भ्राता के अनुरोध से मैं सहमत हो गया। ज्योतिषी महाशय के निकट गया। ज्योतिषी जी हमारी हस्त रेखा को देखकर गणना के द्वारा कहने लगे–आप पूजा आदि सात्विक अनुष्ठान क्यों त्याग दिये हैं। ''आप धर्म पथ के पथिक हैं, इससे आपकी सर्व प्रकार क्षति हो रही है आप पूजा पाठ का अनुष्ठान बन्द नहीं कीजिये।'' ज्योतिषी की इस बात पर हमें विश्वास नहीं हुआ। मैं पहले की तरह ही चलने लगा प्रायः तीन वर्ष

के बाद 1915 खृष्टाब्द में 17 मई को हमारा, स्त्री वियोग हुआ। उस मार को (आघात) खाते ही, श्मशान घाट पर ही हमें ज्ञानोंदय हुआ। बिना मार आघात खाये ज्ञानोदय नहीं होता केवल उपदेश से पापीगण की मति परिवर्तित नहीं होती।

1816 खृष्टाब्द में दिसम्बर महीने में श्रीमान् उपेन्द्र मोहन डा0 नलिनी रञ्जन प्रभृति सातजन भक्तों के साथ फिर अयोध्या वृन्दावन धाम दर्शन करने जायेंगे। जानकर तब मैं स्वतः ही उनका सङ्गी होने के लिए व्यग्र हो गया। आश्चर्य यह है कि इस समय स्त्री के नहीं रहने पर भी संसार कौन देखेगा, वह चिन्ता और फिर हमें नहीं हुई। इस बार उपेन्द्र बाबू के विशेष अनुग्रह से हमारे जीवन में प्रथम अयोध्या धाम उपनीत होने का सौभाग्य हुआ। हमारे जी वन का सार उद्देश्य सफल हुआ– श्री स्वामी जी महाराज के स्निग्ध अभय चरण का दर्शन लाभ करके यह जीवन धन्य हुआ, हमारा जन्म जन्मान्तर सार्थक हुआ। आश्रम में मध्याह्न में पहुँच कर ही शुद्ध होकर प्राङ्गण में जिस स्थान पर श्री स्वामी जी महाराज नित्य शास्त्र की व्याख्या (कालक्षेप) करते थे, उस स्थल में उपेन्द्र बाबू, डॉ0 नलिनी रञ्जन प्रभृति अनुचर मण्डली के सहित जिस वक्त उपस्थित हुआ, उस वक्त आये हुए बहुभक्त वृन्द श्री स्वामी जी महाराज के श्री मुख से श्रीमद्भागवत का चित्र केतु महराज के उपाख्यान का पाठ सुन रहे थे। श्री स्वामी जी महाराज उस समय बोल रहे थे। ''यह शरीर कहता है कि तुम जहन्नुम में जाओ उसमें हमारी क्षति नहीं है, हमें सुखतो दो।''

मैं उस समय अदीक्षित था, तथापि सिद्ध महापुरुष की श्री मुख निःसृत वाणी में जो कैसी अद्भुत शक्ति है उसे सङ्गही सङ्ग उपलब्धि किया। श्री स्वामी जी महाराज की कथाओं को सुना, एवं बाद में चिन्ता करके मैं मुग्ध हो गया। जैसे हमारी एक निद्रा की छन्नता टूट गयी, और हम नया जीवन लाभ कर धन्य हो गये। अनन्तर विचार करने लगा कि मन – प्राण भरकर प्रार्थना करने पर भगवान की कृपा लाभ करके चित्त शुद्धि के द्वारा क्रमशः आत्मोन्नति साधन ही हम लोगों के जीवन का उद्देश्य है । यह ही धर्म है। यह नश्वर शरीर जो एक दिन निश्चय जाने वाला है यह ही इस धर्म इस पथ का विरोधी है। मैं इस शरीर का दास हूँ, इस कारण यह हमारे आत्मा की उन्नति के मार्ग सर्वदा और सर्वथा विघ्न करता है। हमारे कल्याण के लिए कुछ भी चिन्ता नहीं करता। हमारे श्री भगवान ही परम पिता – माता हैं । श्री भगवान ही वही एक मात्र परम यथार्थ आत्मीय और सम्बल हैं। उन्हें छोड़कर हमारा कोई अपना नहीं है। जगत् सब ही अपने अपने स्वार्थ के लिए प्रेम करते हैं इतने दिन तक यह ज्ञान हमारा कहाँ पर था। श्री स्वामी जी महाराज को देखकर, उन की प्रशान्त मूर्ति देखकर हृदय में खूब ही आनन्द हुआ और उनके प्रति प्रबल आकर्षण आने लगा।''

वही वि. पिनचन्द्र राय जी पुनर्वार अपनी डायरी में लिखे हैं –

29–12 1916 खृष्टाब्द में हम लोग पाँचजन श्री स्वामी जी महराज के श्री चरण में समाश्रित हुए। 1– नृपेन्द्र कुमार गुप्त वी. एल वकील (श्री नृसिंह रामानुज दास) 2– श्री यतीन्द्र नाथ वन्द्योपाध्याय (वी.इ.) इञ्जीनियर (श्री यादवेन्द्र रामानुजदास) 3–श्री चारुचन्द्र नन्दी (श्री चतुर्भुजरामानुजदास) 4–हरिदास सेन (श्रीहरिप्रपन्न रामानुजदास) 5– मैं श्री विपिनचन्द्र राय (श्री विष्वक्सेन रामानुजदास) अर्द्ध शताब्दी पहले की डायरी से यह सवसम्बाद हम लोग यथायथ सन्धान पाये हैं। इस दुर्लभ तथ्य कों पाने के कारण श्री विपिनचन्द्र राय के निकट हम लोग बहुत ऋणी हैं। वे इस समय इस संसार मण्डल को त्याग कर श्री स्वामी जी महाराज की नित्य सेवा में प्रवेश किये हैं। इस महा उपकार के लिए उनके चरण में प्रणति ज्ञापन करके अशेषकृतज्ञता

निवेदन करते हैं। 31–12–1916 को शचीन्द्र मोहन दास गुप्ता (सुदर्शन रामानुज दास) Acc Gen) समाश्रित हुए।

"परवर्ती शिष्य समाश्रयण"

1916 खृष्टाब्द से श्री स्वामी जी महाराज के चरण में धर्मप्राण मुमुक्षु वङ्गवासीगण समाश्रित होना प्रारम्भ 1917 ई में श्रीपञ्चमी के दिन श्रीनृसिंह रामानुज दास (श्रीनृपेन्द्र कुमार गुप्त) महाशय की धर्म पत्नी समाश्रित हुई। फिर 1919 खृष्टाब्द दिसम्बर महीने में श्री स्वामी जी महाराज के निकट समाश्रित होने के लिए श्री उपेन्द्र मोहन के साथ न्यूनाधिक 60 जन वङ्गवासी अयोध्या गये। मैं भी उनमें था। ता. 27–12–1919 खृष्टाब्द में 26 मूर्ति एवं ता. 28–12–1919ई0 में 34 मूर्ति सब समेत 60 मूर्ति समाश्रित हुए। इस समाश्रयण में थे, महात्मा उपेन्द्र मोहन के पुत्र श्री गोपालचन्द्र, उनके दो भाई के लड़के श्री अवनीरञ्जन सेन गुप्त (श्री अच्युत रामानुज दास), डॉ0 नलिनी रंजन सेन गुप्त (श्री नृसिंह रामानुज दास) प्रसिद्ध पुस्तक व्यवसायी श्री आशुतोष धर (श्री आदि केशव रामानुजदास) प्रभृति व्यक्तिगण। उस समय इस लेखक श्री यतीन्द्र रामानुजदास का भी समाश्रित होने का महा सौभाग्य हुआ।

आश्रम में इतने दीक्षार्थियों के लिए स्थान पूरा नहीं होगा, अतः आश्रम के सन्निकट दो कमरा भाड़ा किया गया। वहाँ पर रहने के समय हम सब ही एक सात्त्विक भाव में आविष्ट रहते। पूष का महीना, प्रचण्ड शीत, तथापि वही का शेष रात्रि में निद्रा 4 बजे जाग जाना, भगवान का नाम जपते–जपते शय्या को त्यागकर उठ जाना, शौच समापन के अन्त में कुँआ के जल से स्नान करना, उसके पश्चात् शीत का निवारक वस्त्र को परिधान करके श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में जाना (दीक्षा ग्रहण के दूसरे दिन ही से) – वहाँ का यही प्रातः कृत्य था। शेष रात्रि 3–4 बजे से लेकर समस्त अयोध्यापुरी ऊँचे स्वरों से रामनाम आरम्भ करती। झुण्ड के झुण्ड धर्मार्थी नरनारी 'रामराम' सीताराम', 'जय सीता राम प्रभृति' नाम गान करते करते स्नान करने सरयू नदी में जाते। अति प्रत्यूष काल में ही समग्र अयोध्यापुरी रामनाम में मुखर हो कर प्राणवती हो उठती। उस समय हमारी उम्र 25 वर्ष की थी। दिव्य देश में वास की ऐसी हमारी अभिज्ञता प्रथम हुई है। यह नव अभिज्ञता आनन्द में आप्लुप्त करने लगी। श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में उपस्थित होकर उनके वार्तालाप को सुनना, उनके आचार, व्यवहार और अनुष्ठान से केवल भागवती –भावना का अनुभव करना। आश्रमवासी भक्तों के शुद्धाचार, सेवाभाव और कैङ्कर्य दर्शन समस्त ही एक नया दिव्य प्रकाश है। इस दिव्य प्रकाश से प्राण मन भर गया। अनुभव किया इसको ही 'सत्सङ्ग में स्वर्ग वास' कहा जाता है।

"सद्गुरु लाभ का फल"

इस असाधारण घटना के पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज और भी हम लोगो के बीच में 12 वर्ष समय तक प्रकट रूप में थे। इस समय के मध्य हम लोगों ने देखा है कि वे अयोध्या छोड़कर अपना आश्रम हम लोगों के बीच छोड़कर एक दिन के लिए भी अन्यत्र गमन नहीं किये। तथापि इस 12 साल के मध्य कई एक शत वङ्गवासी पाँच सात सौ मील दीर्घ पथ अतिक्रमण करके श्री स्वामी चरणप्रान्त में उपस्थित होकर उनके निकट दीक्षा लाभ करके सौभाग्यवान् हुए थे। सद्गुरु के आश्रम लाभ के बाद से उनकी कृपा कटाक्ष के फल इन लोगों के मध्य में प्रायः सभी के ही जीवन का आदर्श परिवर्तित हो गया था। एवं इन लोगों के जीवन यात्रा की गति भिन्न पथ पकड़ कर चलने लगी। उन लोगों का यह मानसिक परिवर्तन,, आडम्बर शून्य पोषाकपरिच्छद में सरल चाल चलन में, कथा वार्ता में एवं शुद्ध आचार अनुष्ठान में प्रति फलित हो उठा। वे सब कोई आशित

भोजन परित्याग करके निराभिष भोजन, सिद्ध चावल के बदले में अरवा (आतप) चावल भोजन करने लगे। नित्य पूजा पाठ आरम्भ कर दिये। एकादशी तिथि में अन्न परित्याग किये। राम,कृष्ण आदि जयन्ती का व्रत पालन करने लगे। कहने का अभिप्राय यह कि क्रमशः उन लोगों के भीतर वैष्णत्व का समस्त लक्षण प्रस्फुटित हो गया। लोगों के मध्य में अधिकांश की ही यह परिवर्तित भाव धारा सामयिक एक आवेग में नहीं साधित हुई उसे इस सुदीर्घ 52 वर्ष की अभिज्ञता से हम लोग सुस्पष्ट समझ सकते हैं। इन लोगों में से कोई कोई हम लोगों को छोड़कर लोकान्तर में चले गये हैं। जो जीवित हैं वे प्रवीण अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। उन लोगों को समग्र धर्म जीवन हम लोग लक्ष्य करते आ रहे हैं। सुख–दुःख में आपद्–विपद् में उन लोगों की ज्यादा विचलित अवस्था में देखने में नही आया। अपने गुरुदेव के तथा अपने इष्ट देव के कृपा के प्रति एक सुदृढ़ विश्वास ही वे समस्त विपर्यय के सम्मुखीन होकर ताप सहन कर सके हैं सुख दुःख भोग करने के लिए ये ही हम सभी को जन्म ग्रहण करना पड़ता है। धार्मिक अधार्मिक सभी को सुख और दुःख का भोग करना पड़ता है। जो धर्म जीवन के रास्ते पर नहीं चलते वे अल्प विपर्यय में ही विचलित हो पड़ते हैं। किन्तु साधकगण विपद् में अस्थिर नहीं हो जाते। दुःख भोग को मानव जीवन में अपरिहार्य मानकर विपद् होते हुए भी धैर्य धारण पूर्वक सहन करते हैं। विपद् में धैर्य धारण ही साधक की साधना का फल है।

उन लोगों का यह धर्मभाव, यह विश्वास, यह धर्माचरण, उपलब्धि करके, उन लोगों के दृष्टान्त तथा प्रेरणा से अनुप्राणित होकर उन लोगों के परिवार वर्ग, आत्मीय स्वजनगण के मध्य में अनेक की जीवन धारा इस सुदुष्कर युग में भी सात्विक मार्ग अवलम्बन किया है, और आज भी कर रहा है। श्री स्वामी जी महाराज के चरण में समाश्रित होने के पश्चात हम सभी को उनके सङ्गलाभ का सौभाग्य हुआ था। उस समय हम लोगों के प्रति उनका सदुपदेश, उनकी गम्भीर धर्मा लोचना, और उनके मधुर कालक्षेप सुनने से एवं उनके विशुद्धविरल आचार अनुष्ठान दर्शन करने से हम लोगों को दृढ़ उपलब्धि हुई कि श्री स्वामी जी महराज एक सम्प्रदाय प्रवर्तक सत्वनिष्ठ परम सात्विक महापुरुष उस बात को समझने का सामर्थ्य उस समय हम लोगों में नहीं था, एवं समझने का कोई प्रयोजन भी नहीं था। तथापि जो समस्त प्रवीण सात्विक एवं धर्मज्ञ पुरुष, साधुओं की सिद्ध अवस्था का विषय उपलब्धि करने में समर्थ थे वे सभी एक वाक्य से उस समय श्री स्वामी जी महाराज को एकजन सिद्ध महापुरुष कहकर घोषणा करते। सत्यानुरागी ज्ञानवान् प्रवीण रामदास भट्टाचार्य महाशय श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन लाभ के अनन्तर, उनके सहित धर्मालोचना करते और पीछे उनके अपूर्व दिनचर्या एवं आचार अनुष्ठान अनुभव कर के स्वामी जी को सिद्ध महापुरुष रूप से निश्चय कर सके थे, यह बात श्रीमान उपेन्द्र मोहन सेन गुप्त के निकट मुक्त कण्ठ से कहते थे। अन्तर्दृष्टि सम्पन्न महापुरुष श्रीमान् उपेन्द्र मोहन श्री स्वामी जी महाराज के साथ कुछ समय अन्तरङ्ग सङ्ग करके उन्हें अच्छी तरह अनुभव किये थे। इसके बाद उन्हें सिद्ध महापुरुष रूप में दृढ़ निश्चय किये थे। इस प्रकार दृढ़ निश्चय होकर ही वे अपनी समस्त भक्त मण्डली को सुदूरवङ्ग देश से खींच कर श्री स्वामी जी महाराज के चरण में समाश्रित करा दिये थे। उत्तर एवं दक्षिण भारत के अन्यान्य साधुगण भी उनके सम्बन्ध में यही धारणा पोषण करते। हम लोग श्री स्वामी जी महाराज के पवित्र सङ्गलाभ से धन्य होकर, उनकी कृपा से, वे प्रकृत सिद्ध महापुरुष थे कि नहीं, उसे अच्छी तरह उपलब्धि करने में समर्थ हुए थे।

समीचीन बोध से 'सिद्ध दशा' के विषय में यहाँः पर एक संक्षिप्त आलोचना की जा रही है।

''सिद्ध दशा''

जिस किसी विषय में फल पाने के उद्देश्य से कार्य आरम्भ कर उस फल को पाने पर कृत कार्य हो जाने को हम लोग कहते हैं कि कार्य सिद्ध हो गया है, अर्थात् उस कार्य में सिद्धि लाभ हुआ है– यह सिद्धि शब्द का साधारण अर्थ है। रसोई आदि कार्य में अन्नादि भोज्य द्रव्य अग्नि पाक के द्वारा भोजन के उपयोगी अवस्था को प्राप्त हो जाने पर तब हम लोग कहते हैं कि अन्न पाक सिद्ध हुआ है – यह सिद्ध शब्द का रूढ़ि अर्थ है। सांसारिक क्षेत्र में जिस किसी चेष्टा के फलवती होने पर साधारणतः हम लोग कह देते हैं कि कार्य सिद्धि हुई है।

साधन जगत में, 'प्रेत साधना' 'वाक्य साधना' प्रभृति साधना में कृतकार्य होने पर उन लोगों के प्रति 'वाक् सिद्ध' प्रभृति शब्द प्रयोग किया जाता है। योगाभ्यास साधना में 'अणिमा', लधिमा', 'गरिमा' प्रभृति शक्ति के अर्जन लाभ के पीछे साधकगण पर योग 'सिद्ध' नाम से प्रसिद्धि लाभ करते रहते हैं। संसार विमुक्ति के उद्देश्य से, भगवत्प्राप्ति के उद्देश्य से, साधन निष्ठ व्यक्तिगण साधन सोपान के बहुत ऊँचे स्तर पर आरूढ़ होने पर उन लोगों को हम लोग ''सिद्ध महापुरुष'' नाम से अभिहित करते हैं। इस अवस्था में उन लोगों को प्रकृत संसार विभुक्ति रूप फल लाभ हुआ है कि नहीं, अथवा उनको भगवत्प्राप्ति रूप अभीष्ट यथार्थ सिद्धि हुई है कि नहीं, उस विषय में सन्देहातीत रूप से हम लोग नहीं जान सकते। तो भी उन लोगों के साधन दशा की अपक्व अवस्था उत्तीर्ण हो गयी है। वे लोग इस साधन मार्ग में परिपक्व अवस्था लाभ किय हैं, वे मुक्त प्राय अवस्था लाभ करके विचरण कर रहे हैं– उसे विविध कारणों से अनुमान के द्वारा हम लोग समझ सकते हैं। वे समस्त परिपक्व साधकगण ही 'सिद्ध महापुरुष' कहकर प्रख्यात होते हैं। इन सिद्ध महापुरुषों का ज्ञान एवं अनुष्ठान सभी अलौकिक होता है। यह अलौकिक ज्ञान और अनुष्ठान ही उनकी सिद्धि का परिचायक होता है। गीता शास्त्र कहते हैं– **''कर्मणैवहि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः''** (3/20)। जनकादि महाज्ञानी पुरुषगण कर्म के द्वारा ही सम्यक् सिद्धि–लाभ किये थे। इसी हेतु से जनकराज 'राजर्षि' नाम से प्रख्यात थे। सांसारिक विषय में अनासक्त होकर कर्म साधना का अन्तिमस्तर अतिक्रान्त होने पर, यह अनासक्ति उनकी अनायास स्वभाव में परिणत हो गई थी। अनित्य जगत की जितनी परिस्थिति हैं, उसे प्रत्यक्ष रूप में देखकर आसक्ति विभुक्त होकर वे तदुपयोगी सिद्धि लाभ किये थे। यह अनासक्त अनुष्ठान उनका स्वभाव सिद्ध हो गया था। यह राजर्षि जनक की सिद्धावस्था है, यह उनकी 'कर्म सिद्ध दशा' है। फिर गीता में कहते हैं – **''स्वकर्मणातमभ्यर्च्य, सिद्धिं विन्दति मानवाः'** (18/46)

कर्म सिद्ध पुरुष

अपना जितना, कर्म है उसे भगवान् की अभ्यर्चना रूप से, सेवा बुद्धि, से, किये जाने पर मानव सिद्धि लाभ करते हैं। अर्थात् जीवन में करणीय समस्त कार्य ही भगवान् की सेवा रूपी उसी ज्ञान से दृढ़ एवं परिपक्व होकर प्रत्येक कार्य भगवान् की सेवा बुद्धि से किये जाते हैं उन लोगों की चिराभ्यस्त यह सेवा बुद्धि परिणाम में इस कर्मानुष्ठान को एक अनायास, भक्ति स्वभाव में परिणत कर देती है।

''ज्ञान सिद्ध पुरुष''

चेतन वस्तु आत्म तत्व, अचेतन वस्तु जड़ तत्व, एवं परमचेतन परमात्मतत्व – इस चित् अचित् ईश्वर रूप तत्वत्रय को यथायथ सम्यक् रूप से उपलब्धि करके जो पृथिवी पर निर्भय विचरण करते रहते हैं वे ही ज्ञान सिद्ध महापुरुष कहे जाते हैं। वे सम्यक् रूप से जान गये हैं कि यह समग्र विश्व ब्रह्ममाण्ड ही चिदचिदीश्वर, इस तत्वत्रयी से गठित है, चितरूपी आत्म वस्तु अचित रूपी जड़ वस्तु दोनों प्रकार की वस्तुएँ ही परमेश्वर की ही

विभूतियाँ हैं। परमात्मा इस विभूतिद्वय के मध्य में प्रविष्ट हो कर उनका नियमन, एवं शासन करते है। (अन्तः प्रविष्टः शास्ताजनानां सर्वात्मा–श्रुतिः) परमेश्वर अपनी लीला के प्रयोजन से कुछ विधि निषेधात्मक नियम के माध्यम में यह लीला निर्वाह के लिए अनादिकाल से सृष्टि, स्थिति, और लय करते आ रहे हैं। परिदृश्यमान् समग्र विश्वब्रह्माण्ड की इस प्रकार परिस्थिति यथायथ प्रत्यक्ष के समान दर्शन करते हुए सर्वत्र समदर्शी होकर सभी वस्तुओं के प्रति निरपेक्ष होकर ये ज्ञान सिद्ध महात्मागण उदासीन भाव से पृथिवी पर विचरण करते रहते हैं। जड़ भरत आदि ज्ञान सिद्ध महापुरुषगण इसी भाव से विचरण कर गये हैं। भक्ति सिद्धि और फिर भगवान् ही पर वस्तु हैं, सृष्टि, स्थिति, लय, सभी के कर्ता सर्व स्वामी वे ही हैं। हम लोग उनके सृष्ट जीव हैं, हम लोगों स्थिति प्रवृत्ति सभी उनके नियन्त्रण के आधीन् है। हम लोगों के निज, निज कर्मानुगुण वे इस अनादि कर्म चक्र से हम लोगों को आवर्तित करते आ रहे हैं। इस दुःखमय संसार से उद्धार के वे ही उपाय हैं, उनकी प्रसन्नता ही उपाय है। सब जीवों के प्रति अद्वेष, कृपा और मैत्री भाव पोषण करते हुए श्री भगवान् में निविष्ट मन होकर प्रीति पूर्ण भक्ति के सहित उनकी स्तुति, नमस्कार वन्दन, कीर्तन भजन आदि करना, समस्त जीवों के दुःख दूर करने में, उनके भगवत विमुखता को दूर करने में, उन लोगों के प्रकृत कल्याण के लिए प्रयत्न करना आदि, श्री भगवान् की सेवा के द्वारा ही उनकी, प्रसन्नता अर्जन करना– यही समस्त बुद्धि वृत्ति भक्ति नाम से कही हुई है। श्री भगवान् के प्रति परम प्रीति, एवं इस प्रीति के द्वारा भगवान् की सेवा करना ही भक्ति शब्द का प्रकृत तात्पर्य है। उक्त प्रकार से श्री भगवान् की आराधना में निरत हो तद्गत मनो बुद्धिपूर्वक सब क्रियमाण कर्म ही भगवान् की आराधना है, इस सेवा बुद्धि से कर्म के अनुष्ठान में जो चिराभ्यस्त हैं, कहकर परिगणित है, पौराणिक युग में देवर्षि नारद, जिनका यह कैङ्कर्य अनुष्ठान स्वभाव में परिणत हो गया है वे ही ''भक्ति सिद्ध'' प्रह्लाद प्रभृति महापुरुषगण, परवर्ती युग में– आड्वारगण, प्रवर्तक वैष्णवाचार्यगण प्रभृति पुरुष 'भक्ति सिद्ध' थे।

मन्मना भव भद्भक्तो, मद्याजी, मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि कौन्तेय! प्रति जाने प्रियोऽसिमे।।

यही गीता में श्री कृष्णचन्द्र की श्री मुख निःसृत वाणी है। इस श्लोक में स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन से कह रहे हैं – हमारे प्रति निविष्ट चित्त हो जाओ, हमारा भक्त हो जाओ, हमारी आराधना करो, हमारा नमस्कार करो, तुम निश्चय हमें प्राप्त हो जाओगे।

ऊपर कर्मसिद्ध, ज्ञान सिद्ध, एवं भक्ति सिद्ध महापुरुषगण के विषय में यत् किञ्चत् आभास दिया गया है। उनके इस आख्यात्रय का प्रकृत तात्पर्य कर्म ज्ञान–और भक्ति इन तीनों विषय के भीतर एक एक विषय में मुख्य वृत्ति एवं मुख्य अध्यवसाय है। किन्तु ये सभी कर्म, ज्ञान, भक्ति इन तीनों मार्गो में ही निष्ठा वाले हैं।

उच्चस्तर की सिद्ध दशा में यह तीनों मार्ग ही एक हो जाते हैं, साधना के विभिन्न स्तर में वे तीनों यत्न के सहित की गई सिद्धि को पाने का एकान्त दुष्करत्व अनुभव करके इस विषय में भगवद कृपा को ही उत्तारक रुप से समझकर उपलब्धि किये रहते हैं। परिणाम में सिद्धि लाभ के लिये वे इस कृपा की प्रार्थना करके भगवान के चरण में आत्म समर्पण किये रहते हैं। वे शरणागत होते हैं । भगवत्कृपा ही इस सिद्धि लाभ का प्रकृति हेतु है। उसका सम्यक प्रमाण हमलोग पाते हैं। गीता में स्वयं श्री कृष्ण चन्द्र के श्रीमुख निःसृत वाणी में–

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते (7.19)
मत्प्रसादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् (18.56)
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि (18.58)

इसी प्रकार से बोले हैं।

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत। (18/62)
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। (18/66)

उपरोक्त पंक्तियों का तात्पर्य – भगवान् ही जो अभिलषित समस्त विषयों के लाभ के मूल कारण हैं, उस विषय में ज्ञान अर्जन करने में बहुत जन्म बीत जाता है। इस प्रकृत ज्ञान में ज्ञानवान् होकर मुमुक्षु जीव भगवान् के शरणापन्न होते हैं।

''शरणागति सिद्ध पुरुष''

इस शरणागत जीव के प्रति प्रसन्न होकर श्री भगवान् तब उसके सर्व प्रकार बाधा विघ्न को दूर कर देते हैं तथा उसको परमगति प्रदान कर देते हैं। उपनिषद में भी तत्व द्रष्टा महाज्ञानी ऋषिगण इस शरणागति का उपदेश दिये हैं। यथा श्वेताश्वरोपनिषत् –

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्,
यो वै वेदाँश्च प्रहिणोतितस्मै।
तं ह देवात्म बुद्धि प्रकाशम्,
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।। (6/18)

कल्प के आरम्भ में जो ब्रह्मा को समस्त वेदों को प्रदान किये हैं, उस आत्म–बुद्धि प्रकाशक के चरण में हम मुमुक्षु जीव शरण ग्रहण करते हैं । इस शरणागति के मार्ग में जो सिद्धि लाभ किये हैं उन्हें ही शरणागति सिद्ध महापुरुष कहा जाता है।

रामायण, महाभारत– श्रीमद्भागवत् पुरणादि शास्त्र में उक्त प्रकार सिद्ध महापुरुषों का संवाद मिलता है। ऐतिहासिक युग में, प्राचीनकाल में दक्षिण भारत में आड्वारगण, परवर्ती काल में शङ्कर, रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्वादित्य प्रभृति सम्प्रदाय प्रवर्त्तक आचार्यगण हुए। अपेक्षाकृत परवर्ती काल में चैतन्य महाप्रभु, रूप सनातनादि गोस्वामीगण, तुलसी दास जी प्रभृति महात्मागण, आधुनिक में वृन्दावन में श्रीरङ्गदेशिक स्वामी, वङ्गाल में श्री विजय कृष्ण गोस्वामी, श्रीरामकृष्ण परम हंस देव, दक्षिण भारत में महर्षि रमण प्रभृति महात्मागण सिद्ध महापुरुष नाम से प्रसिद्ध हैं।

अपने – अपने गुरुदेव के दिव्य चरित्र, दिव्य महिमा को जन सभाज में प्रकाश करना अवश्य कर्तव्य है– ''गुरुं प्रकाशयेद्धीमान्।'' इसके द्वारा एक तरफ जिस प्रकार शिष्य की आत्म शुद्धि उत्पन्न होती है, पक्षान्तर उसी तरह यह समस्त दिव्य जीवन पाठ एवं अनुभव करके जन समाज में धर्म बुद्धि उद्बुद्ध होती है। इस प्रकार दिव्य जीवन रचना से अपने अपने गुरुदेव को सिद्ध महापुरुष के नाम से प्रतिपन्न करने के प्रलोभन से निष्कृति पाना सहज नहीं है। जिससे यह प्रलोभन दोष दुष्ट न हो इस अभिप्राय से इस ग्रन्थ के मध्य एक मात्र उद्देश्य वस्तु श्री बलराम स्वामी जी महाराज सिद्ध महापुरुष थे कि नहीं उसे सुस्पष्ट रूप में अपने मुख से कहना नहीं चाहता। उनके दुर्ज्ञेय, दिव्य जीवन का दिव्य भाव, दिव्य ज्ञान, दिव्य अनुष्ठान, दिव्य चरित्र आदि का विषय जो कुछ कुछ विदित होना सम्भव हुआ है वही सब विषय ग्रन्थ में लिपिबद्ध किया गया है। अनुसन्धानी पाठक पाठिकागण यह समस्त तत्व व तथ्य अनुधावन एवं अनुभव कर ले, तो बिना परिश्रम ही निर्धारण कर सकेंगे कि श्री बलराम स्वामी सिद्ध महापुरुष थे कि नहीं थे। इस समस्त तत्व और तथ्य के विवरण में बिन्दु मात्र भी अति रञ्जन नहीं है। प्रत्येक विषय वास्तव घटना का अवलम्बन करके आलोचित हुआ है।

प्रत्यक्ष रूप से भगवान का दर्शन पाना, उन के सहित वार्तालाप करना, देववानी को सुनना, दैव वानी का लिखित रूप प्रत्यक्ष स्फुरण होना स्वप्न में अथवा अन्य योगा योग के माध्यम से श्री भगवान का दैव निर्देश सुनना, दिव्य उपदेश सुनना, दिव्य गन्ध का दिव्य स्पर्श का अनुभव होना, इष्ट देव के द्वारा स्वप्न में अथवा सदाचार सिद्ध उत्तम अर्चक के माध्यम में वा अन्य किसी असाधारण उपाय से सिद्धि लाभ का विषय जानना आदि अलौकिक घटनाएँ लोगों के विचार से सिद्धि लाभ का प्रकृष्ट दृष्टान्त है। पक्षान्तर में कोई कोई कहते हैं कि उल्लिखित घटनाओं का यथार्थ परिचय पाना सुदुष्कर है, सुतरां इसके द्वारा सिद्धावस्था का निश्चित निर्णय करना एक अति दुःसाध्य व्यापार है। सिद्ध साधुगण अपने सबकी इस समस्त अवस्था की बात व्यक्त नहीं करना चाहते। अति यत्न के सहित लुकाये रहते हैं। यद्यपि वे भक्तों की एकान्त प्रार्थना से कभी कुछ प्रकाश करते हैं वह भी सुस्पष्ट नहीं। यह बात सत्य होने पर भी ये समस्त सिद्ध महापुरुषों की इच्छा नहीं रहने पर भी उनकी दिव्य जीव लीला का कोई कोई विलक्षण मुहूर्त में किसी किसी विलक्षण घटना की अलौकिकता स्वयं प्रकटित हो जाती है। परोक्ष, अतीत व वर्तमान् घटना को वे लोग देख पाते हैं, भविष्यत घटना का विषय जो वे लोग जान सकते हैं, इस विषय में कभी – कभी उनकी उक्ति व अनुष्ठान से प्रकट हो जाता है। अवश्य अधिकांश क्षेत्र में इन समस्त घटनाओं की रूपरेखा विस्तृत एवं परिस्फुट नहीं होने के कारण सिद्धि लाभ रूप एक महान् अवस्था का निश्चित निर्धारण सुदुष्कर हो जाता है। मर्मज्ञ महापुरुषगण कहते हैं कि सिद्ध अति मानवों का स्वभाव सिद्ध नियत दिव्य ज्ञान, दिव्य उपदेश एवं दिव्य अनुष्ठान ही उन लोगों की दिव्य सिद्ध अवस्था का परिचायक है। धर्म जगत के समस्त गुप्त रहस्य विषयक अमूल्य ज्ञान का भण्डार इन सिद्ध अतिमानवों के हृदय गुफा में निहित रहता है। साथ ही साथ उनके नियत दिव्य अनुष्ठान के माध्यम में इस समस्त अमूल्य ज्ञान का प्रकृत तात्पर्य, अर्थ याथात्म्य, अभिव्यक्त हो पड़ता है। इस विषय में रहस्य ज्ञान के प्रकृत मर्मवेत्ता महापुरुष श्री रामानुज स्वामी के ज्ञान पुत्र पराशर भट्टर स्वामी बोलते हैं ''रहस्य विषयार्थः येन अधिकारिणा ज्ञातो भवति अनुष्ठितश्च भवति, तेन रहस्यार्थः सम्यग्ज्ञातो भवति। अन्यथा अर्थ यथात्म्य सम्बन्धे सन्दिग्धः'' अभिप्राय यह है कि रहस्य के विषय में जिन्हें ज्ञान लाभ हो गया है, वे अगर साथ ही साथ इस रहस्य ज्ञान के अनुगुण अमूल्य अनुष्ठान में भी सिद्धहस्त हो जायें। तभी इस दुर्लभ ज्ञान का समस्त रहस्य अच्छी प्रकार से उनके अधिगत होता है। इस रहस्य ज्ञान का यथार्थ अर्थ, इस ज्ञान का प्रकृत मर्म उनके निकट दिव्य प्रकाश के सदृश उद्भासित हो पड़ता है। अन्यथा, अनुष्ठान रहित ज्ञान के अर्थ याथात्म्य – विषय में सन्देह रह जाता है। इसी कारण से ही मर्मज्ञ महात्मागण बोल रहे हैं – ''ज्ञानेन सत्ता, अनुष्ठानेन समृद्धिः इस मुखन्ध के अवलम्बन से श्री बलराम स्वामी जी महाराज का अलौकिक ज्ञान एवं तदनुगुण अनुष्ठान की आलोचना में अभी प्रवृत्ति हुआ जाता है। इसके प्रथम, ग्रन्थ में उनकी जीवन लीला के क्रमानुसार से परम्परागत जो समस्त विलक्षण घटनाओं का उल्लेख और उनके समस्त तथ्य आलोचित हुए हैं, एवं इसके पश्चात् भी जिन समस्त ज्ञान और अनुष्ठानों की बात आलोचित होगी, उन समस्त विषयों के सूत्र को अवलम्बन करके हम लोग अनुशीलन करने की चेष्टा करेंगे।

''धर्म के विषय में जानने योग्य मूलत्तत्व''

धर्म के विषय में प्रयोजनीय जितने जानने योग्य विषय हैं, उनका अन्त पाना हम लोगों के पक्ष में सम्भव नहीं है। इनकी संख्या का निर्णय करना भी दुष्कर है। तथापि मनीषीगण बहुत विचार पूर्वक जानने योग्य विषयों को चार भाग में विभक्त कर दिए हैं। यथा धर्म, अर्थ काम, मोक्ष। विविध प्रकार फल पाने के लिए जो उपाय व

साधना है उसे धर्म कहा जाता है। यही धर्म शब्द का साधारण अर्थ हैं। ''उपाय साधन भूतो धर्मः''। धर्म, अर्थ, काम यह तीन शब्द सांसारिक विषय लाभ के क्षेत्र में व्यवह्रत होता है। मोक्ष शब्द सांसारातीत पार मार्थिक वस्तु लाभ के उद्देश्य से व्यवह्नित होता है, विविध सांसारिक भोग की लिप्सा ''काम'' है, भोग्य वस्तु के लाभ का माध्यम 'अर्थ' वा 'एश्वर्य' है। उस ऐश्वर्य प्राप्ति के उपाप रुप से यज्ञादि अनुष्ठान 'धर्म' है। मोक्ष शब्द का व्युत्यत्तिगत अर्थ संसार विमुक्ति है। किन्तु इसका तात्पर्यार्थ होता है ''कि संसार विमुक्ति पूर्वक आत्म प्राप्ति व भगवत प्राप्ति''। यह मोक्ष विषयक ज्ञान परमार्थिक व अध्यात्मिक ज्ञान कहा जाता है। धर्म, अर्थ, एवं काम घटित विषयों में आसक्ति और ज्ञान संसार बन्धन का हेतु होता है, पारमार्थिक विषय में ज्ञान और आसक्ति मोक्ष लाभ का हेतु होता है। सांसारिक ज्ञान देह को केन्द्र करके अवस्थान करता है, आध्यात्मिक व पारमार्थिक ज्ञान देह में अवस्थित, किन्तु देह भिन्न जो वस्तु है उस आत्म वस्तु को केन्द्र करके अवस्थान करता है। मुमुक्षु जगत में यह सांसारिक ज्ञान, अज्ञान व विपरीत ज्ञान नाम से कहा जाता है। मोक्ष जनक पारमार्थिक ज्ञान, यथार्थ ज्ञान नाम से अभिहित है। सांसारिक ज्ञान का फल देह का सुख और देह सम्बन्धियों का सुख है अल्प एवं अनित्य सुख है। पारमार्थिक ज्ञान का फल होता है संसार विमुक्ति पूर्वक आत्म प्राप्ति व भगवत् प्राप्ति एवं भगवत प्राप्ति का अपार सुख। सांसारिक ज्ञान का विषय होता है 'क्षिति, अप्, तेज, मरुद्, व्योम ये पञ्चभूत एवं रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध ये पञ्च उपभोग्य वस्तु उक्त दोनों प्रकार की वस्तुएँ अनित्य हैं। इनके प्रति आसक्ति परमार्थ लाभ का विरोधी है, पारमार्थिक विषय में ज्ञान, इष्ट वस्तु व परमार्थ वस्तु प्राप्ति का सहायक होता है। वेद, इतिहास, पुराणादिनिखिल मोक्ष शास्त्र जहाँ पर जिस विषय में ही वर्णन करें न क्यों, जहाँ पर जिस विषय का ही उपदेश करें वे सभी विषय निम्नोक्त पाँच विषय के अन्तर्गत ही हैं।

''समस्त मोक्ष शास्त्र का प्रतिपाद्य पाँच विषय''

1– आत्म स्वरूप, व जीव स्वरूप 2 – परमात्म स्वरूप, ब्रह्म स्वरूप व भगवत स्वरूप 3– जीव कर्तृक ब्रह्म, व भगवत प्राप्ति का जो उपाय है – स्वरूप (उपाय स्वरूप) 4– भगवत प्राप्ति का फल एवं 5– भगवत प्राप्ति का प्रतिबन्धक (विरोधी स्वरूप) यह पञ्च विषयक ज्ञान ''अर्थ पञ्चक'' नाम से अभिहित है। पुरुष का अवश्य जानने योग्य उक्त पञ्च विषय का ज्ञान दो प्रकार का है – साधारण ज्ञान एवं विशेष ज्ञान। साधक के द्वारा प्रथम निरन्तर साधारण भाव से चिन्तन के फल से यत्न के सहित अनुष्ठान के फल से यथा काल में यह तत्व विषयक ज्ञान परिपक्व दशा लाभ करता है। इस परिपक्व दशा में इन समस्त विषयों का विशेष ज्ञान अर्थात् अन्तर्निहित मर्मार्थ सिद्ध साधक के निकट में प्रत्यक्ष उपलब्धि हुआ करती है।

प्रयोजन समझकर उक्त अर्थ पञ्चक के अन्तर्गत पञ्च तत्व विषय का साधारण ज्ञान एवं विशेष ज्ञान के विषय एक संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया है।

''अर्थ पञ्चक की संक्षिप्त आलोचना''

1 – पर स्वरूप कर साधारण ज्ञान – परब्रह्म परमात्मा एवं भगवान् एक ही वस्तु के नामान्तर मात्र हैं। वे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति मान एवं समस्त चेतन और अचेतन वस्तु में अन्तर्यामी रूप से रहकर उन सबके नियामक हैं। वे ज्योतिर्मय, सर्वाङ्ग सुन्दर दिव्य मङ्गल विग्रहवान् और कल्याण गुणमय हैं।

पर स्वरूप का विशेष ज्ञान – इन्द्रिय गोचर रूप में पर वस्तु भगवान के अर्चावतार विग्रह का श्रेष्ठ उपलब्धि करना सर्व शक्तिमान् होकर भी वे भक्त पराधीन हैं, उसका महा दृष्टान्त अर्चावतार विग्रह से प्राप्त

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्रीमत्काश्यपवंशभूषणमणिं शान्तिक्षमाद्यालयं,
श्रीमच्छ्रीभजनार्य सूनुमनघं वेदान्ततर्काम्बुधौ ।
पूर्णेन्दुं बलरामदेशिकपदाम्भोजद्विरेफं सदा,
वन्दे मङ्गलधामदेशिकमहं रामप्रपन्नाह्वयम् ॥

जाता है। 2– जीवात्म स्वरूप का साधारण ज्ञान – यह अणु है परिमाण व्याप्त, अच्छेद्य, अदाह्य, अशोष्य, एवं ज्ञान स्वरूप है।

जीवात्म स्वरूप का विशेष ज्ञान – जीवात्मा भगवान का एकान्त परतन्त्र वस्तु और एकान्त शेष वस्तु है, अर्थात् भगवान् के द्वारा यथेच्छ व्यवहार के उपयुक्त वस्तु है। जिस प्रकार से यह देह जीवात्मा का शरीर है, उसी प्रकार यह जीवात्मा भी परमात्मा का शरीर है,। यह शरीर जिस प्रकार जीवात्मा के एकान्त अधीन है, उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा के एकान्त पराधीन है। यह जीवात्मा जिस प्रकार अपने अधीन इस देह को यथेष्ट व्यवहार कर सकता हैं, उसी प्रकार परमात्मा भी एकान्त पराधीन अपने शरीर रूपी जीवात्मा को यथेष्ट व्यवहार कर सकते हैं। इस प्रकार यथेच्छ व्यवहार के उपयुक्त वस्तु को शास्त्र शेषवस्तु कहते हैं। ''यथेच्छ विनियोगार्हत्वं शेषत्वम्।'' पर वस्तु परमात्मा शेषी वस्तु हैं। शेष वस्तु की स्थिति प्रवृत्ति, शेषी वस्तु के अधीन होती है। ''यस्यवस्तुनः स्थिति प्रवृत्तयः यदाधीनाः तत् शेषी वस्तुतस्यशेषः। इस शेष –शेषी स्वरूप का ज्ञान होता है, जीवात्मा परमात्मा सम्बन्ध का विशेष ज्ञान।

3– भगवत प्राप्ति के उपाय विषय में साधारण ज्ञान :– कर्म, ज्ञान, एवं भक्ति इस मार्ग त्रय का उपायत्व विषय में ज्ञान।

भगवत्प्राप्ति विषय में उपाय विषय में विशेष ज्ञान :– भगवत प्राप्ति के उद्देश्य से कर्म, ज्ञान, एवं भक्ति मार्ग से स्वयत्न कृत साधना जो अत्यन्त दुष्कर है, प्रकृत पक्ष में श्री भगवान ही स्वयं उनकी प्राप्ति के उपाय हैं, वे ही स्वतः सिद्ध उपाय हैं। उनकी कृपा ही उपाय है। उनके कृपा करने पर ही कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग, एवं भक्ति मार्ग सार्थक होता है। शिष्य के प्रति आचार्य का मदीयत्व अभिमान शीघ्र ही इस भगवत्कृपा को कार्य करी करने में समर्थ होता है। इसी हेतु शिष्य के प्रति आचार्य के इस मदीयत्व अभिमान को (आचार्यभिमान) भगवत्प्राप्ति के श्रेष्ठ उपाय रूप से ज्ञान, विशेष ज्ञान है। 4– भगवत प्राप्ति का फल – भगवत प्राप्ति का जो फल है उस फल स्वरूप का साधारण ज्ञान – देहान्त में संसार निवृत्ति रूप मोक्ष लाभ एवं देह विमुक्त परिशुद्ध आत्मा का सदानन्दमय विलक्षण अवस्थिति। इस फल के विषय में विशेष ज्ञान – प्राकृत देह विमुक्त होकर, अप्राकृत देह युक्त मुक्त आत्मा के द्वारा भगवत प्राप्ति, तदनन्तर भगवदनुभव, अनुभव जनित प्रीति एवं प्रीति पूर्वक भगवत्कैङ्कर्य व भगवत्सेवा, एवं नित्य धाम में उनके परिकर नित्य सूरिगण का कैङ्कर्य।। 5– विरोधि स्वरूप का साधारण ज्ञान :– संसार विरोधी देह एवं देह में आत्म बुद्धि अहङ्कार नाम से कहा जाता है। अपने देह सम्बन्धी विषय में आसक्ति ममता नाम से कही जाती है। यही अहंङ्कार ममकार दोनों सांसारिक विषय में आसक्ति के लिए मूल कारण है। ये ही साधन मार्ग के प्रधान विरोधी हैं। इस अहंकार और ममकार से होने वाली सांसारिक विषय में प्रवणता ही संसार में बोधन की मजबूत रस्सी है। यही विषय प्रवणता ही संसार विमुक्ति का प्रधानतम अन्तराय है।

विरोधी स्वरूप का विशेष ज्ञान :– भगवद्भागवताचार्य विषय में अपराध/अहंकार एवं ममकार गर्भ मन अपने सम्मान के लिए इतना व्यस्त रहता है कि वह दूसरो को मान नहीं देना चाहता। इस क्रम से बढ़ा हुआ अहङ्कार भागवद् गोष्ठी को भी सन्मान देने में क्रमशः कुण्ठा बोध करता है। यहाँ तक कि उन भागवतों के प्रति अपमान सूचक व्यवहार भी कर सकता है। यह भागवत् अपराध, अन्त में भगवद्विषय एवं आचार्य विषय को भी स्पर्श कर सकता है। भगवद्, भागवत एवं आचार्य के विषय में इस प्रकार का अपराध, कृपामय भगवान् की कृपा को भी अवरुद्ध करता है। एवं अशेष प्रयत्न रहते हुए भी साधन मार्ग में आगे नहीं बढ़ने देता, अन्त में साधक को नष्ट कर डालता है। सिद्ध महात्माओं के पास उपरोक्त ''अर्थपञ्चक'' के विषय में साधारण ज्ञान,

विशेष ज्ञान, दोनों ही प्रत्यक्ष रूप में प्रतिभात होते हैं। इन्द्रियातीत वस्तुओं को ज्ञान प्रत्यक्ष के समान (जैसे प्रत्यक्ष देखने में होता है वैसा) हो सकते हैं। ऐसे ज्ञान के लिए चाहिए श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन अर्थात् पुनः पुनः अनुचिन्तन और आहार शुद्धि। एवं संयम सत्याचरण एवं सत्यवाक्य के द्वारा मनः शुद्धि । तब विशुद्ध मन से अनुचिन्तन के द्वारा वे लोग एवं तदनुगुण अनुष्ठान के द्वारा इन समस्त ज्ञानों का अन्तर्निहित मर्मार्थ साक्षात् देखा करते हैं । इस कारण श्रुति कहती है 'आत्मा व अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'। कहते हैं– 'मनस्तु मनसातु विशुद्धेन'। इस श्रवण शब्द का तात्पर्य, सिद्ध अनुभव प्रत्यक्ष भाव से ज्ञाता महापुरुष के पास श्रवण करना। मनन और निदिध्यासन शब्द का तात्पर्य शुद्ध परिमित भोजन, परिमित भाषण, आदि तपस्या शुद्ध तप्त विशुद्ध मन के द्वारा मनन एवं निदिध्यासन व (पुनः पुनः अनुचिन्तन) गुरुदत्त मन्त्र में ही उपरोक्त सर्व रहस्य, एवं सर्व तत्व ज्ञान निहित हैं। निरन्तर एकान्त भाव से मन्त्र के अर्थानुसन्धान से अनुसन्धाता के मन में इन समस्त ज्ञानों का रहस्य उद्धघाटित हो जाता है ये समस्त रहस्य ज्ञान अधिगत हो जाते हैं। मन्त्र का दूसरा एक नाम रहस्य है, मोक्ष विधायक समस्त ज्ञान रूपी महा वृक्षों का काण्ड गुरुदत्त महामन्त्र है।

''मन्त्रार्थ और अर्थपञ्चक''

इस ज्ञान वृक्ष की शाखा – प्रशाखा –पल्लव आदि में समग्र अर्थ पञ्चक ज्ञान परिव्याप्त है। इस महा मन्त्र रूपी काण्ड के अवलम्बन से शाखा प्रशाखा में व्याप्त समस्त अर्थ पञ्चक ज्ञान आयत्त करना पड़ता है। अर्थ पञ्चक ज्ञान, इस ज्ञान का यथार्थ स्वरूप, मर्म एवं रहस्य प्रत्यक्ष भाव से उपलब्धि करना चाहने पर गुरुदत्त मन्त्र का एवं तद्गत अर्थ का निरन्तर ऐकान्तिक और आत्यन्तिक अनुसन्धान करना चाहिए। मर्मज्ञ सिद्ध महात्मागण सभी, मन्त्र, मन्त्रप्रद गुरु मंत्र प्रतिपाद्य देवता इन तीनों विषयों का विषयगत समस्त रहस्य ज्ञान का अर्थानुसन्धान इस प्रकार से ऐकान्तिक और आत्यन्तिक अनुसन्धान में निरन्तर निरत रहते हैं इसका फल होता है कि क्रमशः अर्थ पञ्चक विषय में साधारण ज्ञान विशेष ज्ञान, यथार्थ रहस्य ज्ञान की विशदता की प्राप्ति अन्त में परिपक्व दशा एवं सिद्ध अवस्था में इस ज्ञान का प्रत्यक्ष भाव से दर्शलाभ उस समय प्रत्यक्ष दृष्ट इन समस्त तत्वों का प्रकृत मर्म सजीव और मूर्त अवस्था धारण करके उन लोगों के मानस पट पर अति उज़्ज्वल रेखा की तरह अङ्कित होता है एवं ठीक उसी तरह से बाहर में भी इन सब तत्वों की मूर्ति उन लोगों के सामने खिलता है। इस दशा को ''दर्शन स्थिति दशा'' नाम से अभिहित किया गया है। यही साधु–महात्माओं की सिद्ध दशा है।

''श्री स्वामी जी की साधना में अर्थ पञ्चक ज्ञान का प्रकाश''

अब हम लोग यह समझने की चेष्टा करेंगे कि श्री बलराम स्वामी जी महाराज की साधना में ये सब असाधारण नियम कहाँ तक प्रति पालित हुए थे। बाल्यावस्था से ही वे अन्न त्याग करके केवल फल मूल एवं दुग्ध ग्रहण करते थे। भगवत् सन्निधि में भोग लगाकर विशेष रूप से शुद्ध किया हुआ, यह दुग्ध फलमूल भगवान् के प्रसाद रूप में भोजन करते थे। वे अत्यन्त परिमित भाषी थे एवं वह भी हरि कथा भिन्न अन्य प्राकृत वार्तालाप किसी के भी साथ नहीं किया करते थे। यह भी उनके वाक् शुद्धि एवं मनः शुद्धि का स्थिति प्रकाश परम रहस्य ज्ञान वेत्ता अनुष्ठान सिद्ध उनके आचार्य अवतार कल्प सिद्ध अतिमानव वृन्दावनस्थ श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी के निकट ही वे प्रधानतः उपरोक्त तत्वज्ञान के विषय में नियमित भाव से उपदेश श्रवण करते थे। एतद्व्यतीत, अवसर पाने पर ही वे श्रीरङ्गदेशिक स्वामी जी की अन्तरङ्ग भक्त गोष्ठी के अन्यतम प्रकृष्ट रहस्य

वेत्ता श्री शठकोप स्वामी जी एवं कमलनयन शास्त्री जी का सङ्ग करते थे, उन लोगों के निकट रहस्य ज्ञान श्रवण और आहरण करते थे। इस सकल दुर्बोध्य रहस्य ज्ञान का मनन एवं अनुचिन्तन, गुरु दत्त मन्त्र का अर्थानुसन्धान श्री बलराम स्वामी जी महाराज जो किस प्रकार ऐकान्तिक व आत्यन्तिक भाव से दिन पर दिन अभ्यास करते वह हम लोग ठीक ठीक जान नहीं पाये। तो भी केवल इतना जान सके कि वे साधना की प्रथम अवस्था में कई एक वर्ष तक प्रत्यह निर्जन एक छोटी कोठरी में शेष रात्रि 3 बजे से दिन में 10/11 बजे तक दरवाजा बन्द कर इन सब विषयों में एकाग्र चित्त से चिन्ता मग्न रहते। एवं इस प्रकार से कृच्छ साधना के कई एक वर्ष बाद ही धी सम्पन्न साधु समाज में वे रहस्य वेत्ता पुरुष के नाम से सभादृत होने लगे। पहले ही कहा गया है गुरु प्रदत्त मन्त्र के अनुसन्धान से इस समस्त अर्थ पञ्चक का साधारण एवं विशेष ज्ञान और दोनों का मर्मार्थ ज्ञान प्रस्फुटित हो जाता है। श्री स्वामी जी का मन्त्रानुसन्धान कहाँ तक निरन्तर और आत्यन्तिक था उस विषय में भी यथा स्थान पर विस्तृत भाव से कहा जायेगा। यहाँ संक्षेप में उसका उल्लेख किया जा रहा है।

एक समय अयोध्या में चक्षु रोग की पीड़ा से वे अत्यन्त, असह्य क्लेश पा रहे थे। उस समय उन्हें देखने एक जन साधु वैष्णव आकर उनकी इस दशा को देखकर उनसे कहने लगे कि आप मन्त्र का अनुसन्धान कीजिये यन्त्रणा का उपशम होगा। उस समय वे निरुत्तर ही रहे। साधु के चले जाने पर उपस्थित भक्त वृन्द को स्मित वदन से बोलने लगे – ''अरे भैया मन्त्र अनुसन्धान करते करते मन्त्र और मन्त्रार्थ तो हमारे हड्डी–हड्डी में घुस गया।'' इस भाव के, अपने साधन राज्य का अथवा सिद्धावस्था का निगूढ़ संवाद अल्प ही स्वः प्रकाश करते थे। यत्न पूर्वक गोपन करके रखते थे। किसी अतर्कित मुहूर्त में कभी किसी समय यह प्रकाशित हो उठता। उनके श्री मुख निस्सृत ये समस्त विरल उक्तियाँ, स्वाः की साधन दशा व सिद्ध दशा का निगूढ़ अमूल्य संवादतर कभी कभी प्रकाश कर देती। मन्त्र हमारे हड्डी–हड्डी में घुस गया है। उनकी इस अमूल्य वाणी से हम लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं कि वे गुरु प्रदत्त मन्त्र में सिद्ध महापुरुष थे। एवं इस महामन्त्र के अन्तर्गत जितने रहस्य ज्ञान हैं वेसमस्त ज्ञान उन्हें साक्षात्कार हुए थे। स्वाचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी के परम पद के पश्चात् स्वामी जी की इस अवस्था को प्रतिज्ञात होकर उनकी युवा अवस्था 32/33 वर्ष, से ही वृन्दावन में मुमुक्षु व्यक्ति स्वामी जी के पास रहस्य तत्व सुनने के लिए आग्रह शील हो गये थे एवं इन समस्त तत्वों को सुनने में प्रवृत्त हुए थे। यहाँ तक कि इस समय वृन्दावन के विशाल श्री रङ्गजी मन्दिर के प्रतिष्ठाता स्वर्गगत शेठ राधाकृष्ण जी की धर्म पत्नी एवं उनके देवर शेठ गोविन्द दास जी नियम पूर्वक इनके पास इस समस्त विषय में उपदेश एवं कालक्षेप श्रवण करते थे। अपनी वृद्धावस्था तक अयोध्या श्री विजयराघव जी मन्दिर में विराजमान काल में साधु मण्डली उनके पास इस समस्त रहस्य विषय में उपदेश सुनने के लिए आती थी इस समस्त विशेष विशेष रहस्य ज्ञान के सम्बन्ध में विविध सन्देह निरसन के लिये नियम पूर्वक आते थे। एतत्संक्रान्त उनका गम्भीर एवं सुस्पष्ट ज्ञान तथा उपदेश की कुशलता देखकर सभी चमत्कृत और परितुष्ट हो जाते थे।

''अर्थ पञ्चक'' ज्ञान का विस्तृत विवरण रूप वैशिष्टय पूर्ण ग्रन्थ में महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण इस ज्ञान के मर्मार्थ विषय में यथा स्थान पर विस्तृत भाव से विवृत होगा। विविध दुर्बोध्य रहस्य ज्ञान के उपदेश काल में दृष्टान्त स्वरूप स्वामी जी प्राय: ही श्री रामचन्द्र, सीता देवी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान विभीषण प्रभृति के दिव्य चरित्र का विश्लेषण करते हुए समन्वय पूर्वक इस दुर्बोध्य रहस्य ज्ञान को सरल एवं सहज

बोध्य कर देते। यथोपयुक्त अधिकारी पाने पर स्वामी जी आड्वार एवं पूर्वाचार्यगण के विविध ज्ञान अनुष्ठान का विश्लेषण करते हुए उसके सहित उपदिश्य मान् रहस्यों का समन्वय कर देते। तथा इसके इस दुर्वोध्य विषय को भी अति उपादेय और अति ह्रदयग्राही कर देते। धर्म कथा, तत्व कथा, रहस्य सुनने के लिए उनके निकट एक बार जो आ जाते, वे उनके इस वैशिष्ट्य पूर्ण उपदेश प्रणाली सुनके व्यामुग्ध होकर पुनः पुनः उनके चरण प्रान्त में आकर उपस्थित होते। इसके पहिले यथा स्थान पर दृष्टान्त का पुनरुल्लेख द्वारा यह विषय परिस्फुट करने की चेष्टा कर रहा हूँ। श्री स्वामी जी महाराज कालक्षेप के बिना कोई भी दिन व्यतीत नहीं होता था। श्री वृन्दावन से श्री अयोध्या धाम आने के दूसरे दिन ही अस्थायी निवास स्थल खटला मन्दिर एवं श्री रामानुज कोट में वे कालक्षेप करना आरम्भ किये थे। अपरिचित परिवेश में अतिअल्प समय के मध्य ही ज्ञान पिपासु उत्तम साधुगण इनके कालक्षेप में आकृष्ट लगे थे। अयोध्या 'बड़ा स्थान' नामक आश्रम अयोध्या के मध्य में रामानन्दीय सम्प्रदाय का श्रेष्ठ स्थान है। बड़ा स्थान के महन्त राममनोहर प्रसाद जी विशेष सात्त्विक पुरुष थे। वे भी पहले से ही यह कालक्षेप सुनने आते थे के बल तीन सप्ताह श्री स्वामी जी महाराज का कालक्षेप सुनकर वे इनके विलक्षण ज्ञान और अनुभव देखकर इतना मुग्ध हो गये थे। कि वे प्रतिदिन दो बार उनके पास आते थे और उनका तत्त्वावधान करते। श्री स्वामी जी महाराज का अभिप्राय समझ कर शीघ्र ही स्थायी भाव से श्री स्वामी जी के लिए एक स्थान व्यवस्था कर दिये। इसी स्थल पर ही श्री स्वामी जी महाराज का वर्तमान् आश्रम एवं श्री विजयराघव भगवान् का मन्दिर विराजित है। इन समस्त तथ्य विषयों में हम लोग इससे पहिले विस्तार रूप से वर्णन किये हैं। निरन्तर मन्त्रानुसन्धान भी जो स्वामी जी के परवर्ती समय, वृद्धावस्था में एक स्वभाव रूप से परिणत हो गया था। एवं अर्थ पञ्चक रहस्य ज्ञान का साक्षात् दर्शन भी जो उनके अधिगत हो गया था, उसे हम लोग इसके बाद स्थान स्थान पर विवृत उनकी दिव्य लीला के अनुभव से सुस्पष्ट समझ सकेंगे।

''श्री स्वामी जी महाराज के भूत, भविष्यत्, वर्तमान घटनाओं के अनुभव का दृष्टान्त"

परोक्ष, अतीत, और वर्तमान घटना का विषय श्री स्वामी जी प्रत्यक्ष रूप से जान सकते वह भी हम लोग कई एक दिव्य घटना के द्वारा जान सकते हैं जो इस ग्रन्थ में यथा स्थान पर विवृत हुई है उनके अगोचर में भगवान् की सेवा पूजा भोगरागादि को किसी प्रकार त्रुटि विच्युति घटने पर तुरन्त वह उनके प्रत्यक्ष गोचर हो जाती थी। एवं वे व्याकुल होकर उसी क्षण वह त्रुटि, विच्युति संशोधन कर देते थे। भविष्यत् घटना भी उनके प्रत्यक्ष हो जाती थी वह भी हम लोग उनके दिव्य चरित्र की दिव्य घटनाओं से जान सकते हैं। उनके परम पद के प्रायः एक मास पूर्व ही उस समय वे पूर्ण स्वस्थ थे, अपनी आसन्न लीला संवरण की बात शिष्य और भक्तगण से बतला दिये थे अपने परम पद के बाद के विविध कृत्य का विषय उन लोगों को पुंखवानुपुंख रूप से उपदेश दे गये थे।

मासाधिक पूर्ण होते निज शिष्यगणे
आज्ञा दिले देह कृत्य शास्त्र विधि सते।। (आचार्य प्रकाश)

श्री स्वामी जी भगवान् का दर्शन पाये थे कि नहीं उस परम रहस्य की बात का विषय हम लोग साक्षात् भाव से नहीं जानने। इस विषय में इङ्गित से भी उनके निकट कोई भक्त प्रश्न करने का किसी दिन साहस नहीं किया। कारण हम लोग अच्छी तरह जानते थे कि उनके तुल्य गम्भीर महापुरुष ऐसी श्रेष्ठ रहस्य की बात

कभी भी प्रकाश करेंगे नहीं। तथापि अति संक्षेप से एतत् सम्बन्धीय दो एक घटना का उल्लेख किया जाता है।

''श्री स्वामी जी के भगवद्दर्शन व साक्षात् उपलब्धि का दृष्टान्त''

बाद में यथा स्थान पर ये समस्त अलौकिक घटनाएँ विवृत होंगी। (1) एक समय गम्भीर रात्रि में श्री स्वामी जी महाराज के शय्या की मशहरी लगाने के विषय में भगवान् श्री विजयराघव जी के साथ उनका कथोपकथन, (2) हम लोग के एक गुरु भ्राता के विशेष अपराध के लिए उसे शासन के समय में, एवं दूसरे पक्ष में भगवान् के निकट उसके लिए क्षमा प्रार्थना के समय में अर्चावतार श्री विजयराघव जी का साक्षात् दर्शन और उपलब्धि। इस प्रकार की घटना से निःसन्देह रूप में समझा जा सकता है कि श्री स्वामी जी महाराज भगवद् दर्शन के लाभ एवं साक्षात् उपलब्धि के लाभ से कृत कृत्य हुए थे।

अर्चावतार के सहित श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य कथोपकथन का रहस्य विषय भी हम लोगों का महा सौभाग्य हुआ था, दूसरी एक अलौकिक घटना के द्वारा श्री स्वामी जी महाराज की तीव्र नेत्र पीड़ा के समय हम लोगों के एक गुरु भ्राता श्री यदुनन्दन रामानुज दास (योगेशचन्द्र सेन) अयोध्या उनकी सेवा में नियुक्त थे।

''श्री यदुनन्दन जी को अनुशासन''

स्वामी जी महाराज के इस पीड़ा की असह्य यन्त्रणा अनुभव करके, यन्त्रणा उपशम के लिए अत्यन्त कातर भाव से आश्रमस्थ अर्चावतार श्री विजयराघव भगवान् के चरण में साष्टाङ्ग प्रणाम करके यदुनन्दन प्रार्थना किये थे। दूसरे दिन प्रातः काल श्री स्वामी जी महाराज श्री विजयराघव जी भगवान को साष्टाङ्ग करके आने के बाद श्री यदुनन्दन जी को बुलवाये वे श्री स्वामी जी के निकट आ उपस्थित हुए। वे उनके प्रति विरक्ति प्रकाश करते हुए रुष्ट स्वर से बोले– ''यदुन्दन! गतकाल तुम हमारी नेत्र पीड़ा के उपशम के लिए भगवान् श्री विजयराघव जी के पास प्रार्थना क्यों किये थे? आज उन्हें साष्टाङ्ग करने के समय उनके पास मैं अवगत हुआ।'' श्री यनुन्दन जी कुछ न बोले नीचे मस्तक करके खड़े रहे। वे फिर कहने लगे – ''तुम क्या जानते नहीं कि वे भगवान सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान हैं। तुम क्या जानते नहीं हो कि उनका हृदय करुणा से भरा हुआ है। वे हमारे पर्वत परिमाण फल को परमाणु भोग कराकर कर्म फल निवृत्त कर दे रहे हैं। अब और कभी ऐसा कर्म नहीं करना। जीव के प्रति भगवान् के करुणा की बात कभी नहीं भूलना। यह महा अपराध है।''

एक दिन रात्रि में श्री स्वामी जी के शयन के समय अर्चाविग्रह श्री विजयराघव जी के सहित उनके दिव्य कथोप कथन का विषय आकस्मिक रूप से प्रकट हो गया था। परवर्ती समय में ग्लूकोमा रोग से आक्रान्त होकर दोनो नेत्रों में असह्य यन्त्रणा भोग करने के समय वे प्रत्यक्ष भाव से दर्शन और अनुभव किये थे कि स्वयं श्री लक्ष्मी जी उन्हें अपनी गोद में लेकर सारे शरीर पर अपना श्री कर कमल फेर रही हैं, एवं इस अमिय कर स्पर्श से उनकी सारी यन्त्रणा तिरोहित हो गयी।

श्री स्वामी जी महाराज के प्रति अत्यन्त गरम दूध भोग को बात अर्चावतार श्री गोपाल जी भगवान स्वयं जो उन्हें बतला दिये थे यह विषय भी इसके पहले ही उल्लिखित हुआ है । अलौकिक उपाय के द्वारा किसी आधिव्याधि का निवारण के लिए उनके निकट किसी को प्रार्थना करते नहीं देखा गया। इसके द्वारा अनुमान किया जाता है कि इन सब विषयों के वे विरोधी थे। तथापि दो एक दृष्टान्त हम लोग ऐसा जानते हैं कि जिसके द्वारा स्पष्ट समझा जाता है कि उनका कोई भक्त अथवा शिष्य यदि किसी कठिन व्याधि से विपन्न होकर उनका शरणागत होता था, उस समय वे उसके अनुकूल अवस्था के लिए संकल्प करते थे एवं इस आनुकूल्य

अपने इष्ट देव के निकट प्रार्थना करते थे। उनके इस प्रकार के सङ्कल्प के कारण एक जन शिष्य के व्याधि से निरामय हो गये थे यह हम लोग देखे हैं। ऐसा दो तथ्य इस स्थल पर लिखा जा रहा है।

(1) श्री स्वामी जी महाराज के एकजन शिष्य कलकत्ता में रहने के समय एक चिकित्सक, उस की अवस्था प्रायः 40 वर्ष की होगी। एक दिन उनके खाँसी के साथ – साथ रक्त उठने लगा ऐसा! रक्त क्षरण कोई छोटी बात नहीं हैं। वे यह लक्षण देखकर अत्यन्त उद्ग्रीव होकर इस आकस्मिक विपद का विषय पत्र के द्वारा गुरुदेव के निकट निवेदन किये। साथ ही साथ उत्तर आया चिन्ता नहीं करो अयोध्या श्री विजयराघव जी महाराज के चरण प्रान्त में चले आओ। यह उत्तर पाकर डाक्टर होने पर भी, चिकित्सा शास्त्र में इस अवस्था में चलना फिरना अति निषिद्ध रहने पर भी वे उसी क्षण अयोध्या के अभिमुख रवाना हुए। 18/20 घण्टा ट्रेन में काटने के पश्चात् अपने आश्रय स्थल श्री स्वामी जी महाराज के चरण प्रान्त में उपस्थित हुए। श्री स्वामी जी महाराज अभय दिये, और आज्ञा किये – कि श्री विजयराघव जी महाराज के चरण में प्रार्थना करो वे निरामय कर देंगे – 'वैद्यो नारायणो हरिः!' अपने इस गुरु भ्राता के मुख से सुना हूँ कि अयोध्या पहुँचने के बाद से फिर और खाँसी के साथ रक्त क्षरण नहीं हुआ।

(2) प्रायः 35 वर्ष पहले की बात, हमारे और एक गुरु भ्राता की स्त्री कई मास से अल्प – अल्प ज्वर भोग करती थी। चिकित्सा से कुछ फल नहीं हो रहा था। निरुपाय होकर वे स्त्री को साथ में लेकर अयोध्या में गुरुदेव के चरण में उपस्थित हुए। अवसर समझकर स्त्री के इस व्याधि की बात श्री स्वामी जी से निवेदन किये और आरोग्य प्रार्थना किये। श्री स्वामी जी महाराज इस विषय में कोई उत्तर नहीं दिये, अन्य प्रसङ्ग उत्थापन किये। गुरु भ्राता और अधिक कुछ निवेदन करने का साहस नहीं किये। किन्तु देखा गया कि चार पाँच दिन बाद से ही उस ज्वरका विराम हो गया। चार महीना चिकित्सा करने से भी जिस ज्वर का कुछ उपशमन नहीं हुआ।

यहाँ गुरु के सान्निध्य में बिना किसी चिकित्सा के उनके संकल्प से ही वह ज्वर छोड़कर भग गया। सात दिन बाद श्री स्वामी जी महाराज, उस गुरु भ्राता से जिज्ञासा किये कि तुम्हारी धर्म पत्नी कैसी हैं? आनन्द पूर्वक उत्तर दिये, आपकी कृपा से आज दो दिन से उसके ज्वर का विराम है! श्री स्वामी जी महाराज केवल थोड़ा मृदु हास्य किये। उनकी धर्म पत्नी अभी तक स्वस्थ और कर्म–क्षम हैं। श्री स्वामी जी महाराज अलौकिक शक्ति सम्पन्न महापुरुष थे। यह विषय वे यत्न के सहित गोपन रखते, तो भी अवश भाव में कभी कभी यह प्रकट हो जाता। उनकी इस अलौकिक शक्ति का परिचायक एक घटना यहाँ पर लिपिबद्ध किया जाता है। हम लोगों के गुरु भ्राता श्री नृपेन्द्र नाथ गुप्त (श्री नृसिंह रामानुजदास) महासय इस दिव्य घटना के सङ्ग में जड़ित थे। उनके निकट से जिस तरह जान पाये हैं, उसी तरह लिपिबद्ध किया जा रहा है। वे लिखते हैं – एक बार अयोध्या में हम, हमारे पिता, माता, ससुर, सासुड़ी, हमारे एक भाई और एक कन्या श्री विजयराघव जी आश्रम में उपस्थित हुए। हमारे भाई का बुलाने का नाम' था ब्रजेन' और दीक्षित नाम था वैकुण्ठ रामानुज दास।

भ्राता की नियुक्ति में श्री नृसिंह रामानुज दास की कहानी– प्रात:काल उठकर नित्य कृत्य समाप्त करने के बाद कुछ लड्डू प्रसाद पाकर श्री स्वामी जी को बिना साष्टाङ्ग किये ही वह सो रहा था।

मैं इससे अत्यन्त रुष्ट होकर बोला इतनी बेला हो गई गुरुदेव को सवेर से तुम्हें साष्टाङ्ग करने जाने

समय नहीं मिला? इसके उत्तर में वह बोले मैं नहीं जा सकूँगा। मैनें कहा तुम्हें जाना पड़ेगा। इस बात से वह हठात् उठाकर हमें चपेटाघात किया। मैनें भी क्रुद्ध होकर उसे दो एक चपत लगाया। अतः पर मैंने सुना वह कहता है कि मैं कलकत्ता पैदल जाता हूँ, दादा का खरीदा हुआ टिकट मैं नहीं चाहता। वह आश्रम से कब निकला, किस तरफ गया, कोई बतला नहीं सका। कई एक घण्टा तक हम लोग उसको चारों तरफ अनुसन्धान किये भी पता नहीं लगा। जब 4 बज गया तब श्री स्वामी जी महाराज के पास जा कर आनुपूर्विक सब बात बताये। उस दिन श्री स्वामी जी एक नया कार्य किये। सन्ध्या आरति होने के थोड़ा पहले मन्दिर में जाकर श्री विजयराघव जी महाराज के सामने अञ्जलि भाव से खड़े हुए, दोनों जन में क्या वार्तालाप हुआ वे ही जानें। इसके बाद जाकर अपने आसन पर बैठ गये। मैं भी उनके पास जाकर बैठ गया। भगद्विषयक वार्तालाप हुआ। रात्रि में प्रायः पौने नव जब बजा उस समय हमारा रसोइया गोपीनाथ दौड़ता हुआ आकर बोलने लगा–नूतन का (ब्रजेन) लौट आये स्वामीजी महाराज उस समय उसको बुलवाये। हमको अपने पास से चले जाने का निर्देश दिये। एकान्त में उससे सारा वृतान्त सुने। बाद में हमने सुना कि ब्रजेन क्रमशः रेल लाइन के ऊपर –2 पैदल चलकर अयोध्या से प्रायः 15 मील ''दर्शननगर'' चला गया। प्रायः सन्ध्या हो गई है, उसके ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई उसका गर्दन पकड़ कर अयोध्या की तरफ उसको घुमाकर पीछे से एकधक्का दिया। वह फिर कहने लगा कि उसके बाद मैं, मालूम हुआ होता था कि वायु के ऊपर उड़ चल रहा हूँ मैं बहुत जल्दी से चलने लगा। मालूम होता था हमारा पैर गाड़ी में नहीं पड़ रहा है। इसके बाद मैं अयोध्या पहुँच कर बड़ी सड़क पकड़ कर आ रहा था तब ऐसा मालूम हुआ कि कोई हमारा गर्दन पकड़कर विजयराघव जी मन्दिर के रास्ते में प्रवेश दिया। मैं मन्दिर आ पहुँचा। ऐसी अद्भुत घटना। एक मनुष्य जिसे पैदल चलने का अभ्यास नहीं, उसके लिए 30 मील से ज्यादा एक अतिक्रम करना एक असम्भव व्यापार है। इसके बाद दो बार गर्दन पकड़ कर धक्का देना,बायु के भर में आना, यह समस्त ही श्री स्वामी जी महाराज का व्यापार है। श्री स्वामी जी महाराज अपनी इन समस्त दिव्य शक्तियों के विषय में कभी प्रकाश नहीं करते थे। यहाँ तक कि कोई इस विषय में प्रश्न करने पर वे विरक्त होते थे।

इस सुदूर वङ्गदेश में भी उनकी दिव्य स्मृति के अनुसरण में एक बृहत् प्रतिष्ठान स्थापित हुआ है। इन समस्त कार्यो के सम्पादन के समय अनतिक्रम्य बहुत विघ्न बाधाएँ दिखाई पड़ी थीं। प्रत्येक बार ही हम लोगों की कात्तंर प्रार्थना से अथवा बिना प्रार्थना से ही श्री स्वामी जी अलौकिक भाव से, स्वप्न में अथवा दिव्य वाणी के द्वारा किंवा दिव्य लिखित भाषा में उस बाधा विघ्न को अतिक्रम करने का सुदृढ़ आश्वासन दिये हैं, सुनिश्चित पथ्य का निर्देश दिये हैं। ये समस्त दिव्य स्वप्न, दिव्य वाणी, दिव्य लेख, अक्षर प्रत्यक्षर प्रतिफलित हुआ है। ये समस्त लोकातीत दिव्य घटनाएँ, श्री गुरुदेव की असीम करुणा की कथा स्मरण करके हम लोग महा निर्भरता के साथ महा आनन्द सागर में डूब जाते हैं। इस प्रकार विरल महान् सदाचार्य प्राप्ति के घटक श्री भगवान् के महा उपकार की कथा स्मरण करके कृतज्ञता से उनके चरण में हम लोगों का मस्तक चिर लुण्ठित हो जाता है। शास्त्र उपदिष्ट धर्म एवं धर्मानुष्ठान में हम लोगों का विश्वास प्रत्यक्ष रूप से अत्यन्त दृढ़ हो जाता है। ऊपर आलोचित दिव्यतत्त्व एवं समस्त तथ्यावली निविष्ट चित्त से अनुशीलन करने पर अस्मद् आचार्य–वर्य श्री बलराम स्वामी जी महाराज की दिव्य सिद्धावस्था का सविशेष तथ्य निर्धारण में पाठक पाठिकागण स्वयं अनायास ही समर्थ होगे, वह निःसन्देह है। सिद्ध महाजनों की सिद्धावस्था प्रतिपन्न करना, उनकी दिव्य

जीवन लीला के ग्रन्थ रचना का उद्देश्य नहीं है। उनकी दिव्य लीला के प्रसङ्ग को आलोचना करने का प्र उद्देश्य है कि जो उनके हृदय के निभृत गुफा कन्दर में धर्म की जो समस्त तत्वावली जो निहित रहती है तत्वावलियों का यथा सम्भव आहरण करना है। उस के बाद वे समस्त किस तरह से उनके दिव्य चरित्र दिव्य अनुष्ठान में प्रतिफलित होकर प्राणवन्त हो उठी हैं, उसकी अनुभूति और उपलब्धि करना। इस उपल के बाद उन समस्त ज्ञान और अनुष्ठान का यथा सम्भव अनुकरण ही सिद्ध महाजनों की दिव्य लीला अनुशीलन का प्रकृत उद्देश्य है। ये समस्त, सिद्ध महापुरुषों की कृपा एवं आशीर्वाद के अलावा केवल चेष्टा से उपरोक्त उद्देश्य का सफल होना कभी सम्भव नहीं हो सकता।

''आश्रम की सङ्कोच– अवस्था''

हम लोगों के दीक्षा लेने के समय आश्रम में केवल आठ दस कक्ष ही था, वह भी खूब छोटा, लम्बा चौ 10×10 फुट इस अल्पसंख्यक कक्ष में आश्रम का स्थान किसी तरह से भी पूरा नहीं पड़ता था। जिस अर्चाविग्रह श्री विजयराघव जी महाराज अयोध्या में प्रतिष्ठित हुए उस समय आय मासिक केवल 15 रुपये थी। कहना अधिक नहीं, उस समय सस्ती का जमाना होतें हुए भी खर्च पूरा नहीं पड़ता था। स्वामी जी महा जो सब प्रणामी भेट पाते उसके द्वारा ही अभाव पूरा किया जाता श्री स्वामी जी दिन में एक सेर दूध लेते थे, ही उनका सारा दिन का आहार था, प्रयोजन समझकर इस दूध को कमतीकर आधा सेर कर दिये और रात्रि में लेते थे। दिन में घुइयाँ सिद्ध करके उसे ही पाते थे। उस समय दूध एक रूपए में बारह सेर, और घु एक पैसा में एक सेर मिलता। इसी तरह जो सामान्य पैसा बचता उसको वे भगवत कार्य में लगा देते थे। भी घर नहीं बनाने से आश्रम का प्रसार सम्भव नहीं हो सकता, ऐसा समझकर श्रीमान उपेन्द्र मोहन कल लौटने पर श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति लेकर घर बनाने के लिए कुछ अर्थ तथा देख रेख के लिए जन सेवक उनके पास भेज दिये। थोड़े दिन के मध्य ही बड़ा बड़ा तीन कक्ष बन गया एवं आश्रम का उपयुक्त फाटक तैयार हो गया। आश्रम वासियों के रहने की असुविधा अधिकांश में दूर हो गई।

''दीक्षा लेने के बाद लेखक ''श्रीमद्यतीन्द्र रामानुज दास की प्रथम अभिज्ञता''

दीक्षा ग्रहण के बाद हम सभी अयोध्या में और भी 4/5 दिन रहे। उस समय बहुत लोग साथ में रहने वजह श्री स्वामी जी महाराज के साथ एकान्त में मन की कोई बात कहने की अथवा साधन विषय में कोई प्र करने का सुयोग नहीं पाये। श्री स्वामी जी साधारण रूप से जो उपदेश दिये थे केवल वही सुनने का सौ हुआ था साधारण रूप में उस उपदेश से जितना समझ सके थे, कलिकाता लौट कर उसके अनुसार जि हो सका अनुवर्तन करने की चेष्टा करना आरम्भ किये। पहले पहले गुरुदेव श्री बलराम स्वामी जी महारा पत्र लिखने में सङ्कोच लगता था। तीन चार महीने के बाद एक दिन सुबह श्रीमान् आशुतोष धर महाशय (आदि केशव रामानुज दास) कलिकाता में हमारे 40 नं0 गुरु प्रसाद चौधरी लेन में स्थित निवास स्थान (किराये का घर) आकर उपस्थित हुए। वे कहने लगे कि हम पाँच सात दिन के वास्ते अयोध्या श्री स्वामी महाराज का श्री चरण दर्शन के लिए गये थे। श्री स्वामी जी महाराज के एवं आश्रम का कुशल संवाद क वे फिर कहने लगे कि श्री स्वामी जी महाराज तुम्हारे लिए लड्डू प्रसाद भेज दिये हैं, वह प्रसाद हमें, स्वयं तु पास आकर तुम्हारे हाथ में देने का निर्देश दिये है ऐसा कहकर वे हमारे हाथ में श्री विजय राघवजी का प्र दिये। और बोले कि श्री स्वामी जी महाराज तुम्हें अनेक आशीर्वाद किये हैं एवं बीच – बीच में पत्र देने के लि

श्री कहे हैं। प्रसाद को मस्तक पर हमने धारण किया, उनके करुणा की कथा को समझ कर आँसु को नहीं रोक पाया। वार्ता वाही श्री आदि केशव जी को मस्तक के नम्र कर के प्रणाम किया। दीक्षा के बाद इस दीन लेखक के प्रति श्री स्वामी जी महाराज की अफुरन्त करुणा धारा वर्षण का यह प्रथम अनुभव लाभ करके भ्रमर के सदृश मन ही मन उनके चरण में लुण्ठित हो गया। अयोग्य शिष्य के प्रति सद्गुरु की निर्हेतुक कृपा का वास्तव रूप उपलब्धि किया। हमारी उमर उस समय 27 वर्ष (1920 खृष्टाब्द) की थी। उसके पहले ही मैं डाक्टरी विद्या में ''एम.डी.''पास कर चुका हूँ। अच्छी तरह ही लिखना पढ़ना सीखा हूँ, किन्तु सद्गुरु के पास किस तरह पत्र लिखना होता है उस विषय में मैं उस समय एक दम अनभिज्ञ था। इस विषय में बुद्धिमान् गुरु भ्राता दो एक जन से जिज्ञासा कर के भय एवं आनन्द मिश्रित मन से श्री स्वामी जी महाराज को प्रथम पत्र लिखा। यथा समय पर आशीर्वादी उत्तर आया। मन आनन्द से भर गया । सदाचार्य की कृपा रस का आस्वादन करके धन्य हो गया। श्री स्वामी जी महाराज के सहित परवर्ती काल के जीवन व्यापी पत्र व्यवहार की यही प्रथम सूचना हुई।

''श्री आशुतोष धर''

श्री आशुतोष धर महाशय (श्री आदि केशव रामानुज दास) हमारे साथ एक दिन में ही श्री स्वामी जी महाराज के निकट दीक्षा लिये थे। वे ढाककाश हर के शिक्षाविद् श्री वृन्दावन घर महाशय के ज्येष्ठ पुत्र थे। कालिकाता के प्रसिद्ध पुस्तक व्यवसाय प्रतिष्ठान 'वृन्दावन धर एण्ड सन्स प्राइवेट् लिमिटेड् के अन्यतम सत्ताधिकारी थे। आशुतोष लाइब्रेरी उसके नाम का ही अनुसरण है। आशुतोष बाबू वाल्य काल ही से धर्म–प्रवण थे। वयो वृद्धि के साथ ही साथ उनकी यह प्रवणता पुष्ट हो गयी थी। वे जिस दिन श्री स्वामी जी महाराज का प्रथम प्रसाद बहन करके हमारे घर पर आये थे, उसी दिन से स्वतः ही उनके प्रति हमारा एक विशेष आकर्षण आरम्भ हुआ क्रमशः प्रीति घनिष्ट हो गई, एवं परवर्ती धर्म जीवन में हम दोनों पर स्पर अकृत्रिम सुहृद् हो गये। धर्म जीवन गठन के व्यापार में उनके पास मैं चिर कृतज्ञ हूँ। 1962 खृष्टाब्द 8 अक्टूबर बिजया दशमी के दिन वे देह परित्याग कर परम पद प्राप्त हो गये।

''श्री गुरुदेव को पत्र लिखने का फल और रहस्य''

1921 खृष्टाब्द के बीचों बीच से श्री स्वामी जी को मैनें पत्र लिखना आरम्भ किया। नियम करके पत्र लिखता, उसमें प्रश्न शंका, प्रार्थना, एवं निवेदन रहता, श्री स्वामी जी भी यथा समय पर प्रश्न का उत्तर, शङ्का का समाधान एवं उपदेश देकर कृतार्थ करते थे। उत्तर देकर सद् गुरु के आशीर्वादी पत्र का आशु सुफल उपलब्धि करने में अधिक समय नहीं लगा। मैं प्रायः उस समय एक वर्ष हो गया था, चिकित्सा क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ था। उस समय उपार्जन जीवन की प्रथम अवस्था थी अर्थ का प्रयोजन एवं लिप्सा भी अधिक थी। हमारी अवस्था और लालसा की बात अन्तर्यामी आचार्य देव सभी समझ गये थे। वे केवल सुयोग की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पास से हमारे पत्र का उत्तर आने के साथ ही साथ सामयिक भाव में हमारा अर्थागम बढ़ने लगा। यहाँ तक कि अनेक समय में उनके उत्तर आने के पहिले ही, हमारे पत्र पाने के बाद ही, उनके सन्तोष लाभ के साथ ही साथ यह सामयिक अर्थ साच्छल्य उपलब्धि होने लगा। जितने दिन तक अर्थ की लालसा प्रवल थी उतने दिन तक प्रायः ही इस प्रकार संयोग अनुभव करने लगा। यह संयोग जो काक तालीय नहीं है यह अनुभव भी पक्का हुआ। लज्जास्कर होते हुए भी, कह सकता हूँ कि अनेक समय में यह निर्लज्ज अर्थ लालसा भी गुरुदेव

को पत्र लिखने का अन्यतम कारण हो गया था।

विषय प्रवण संसारी जीव को अपनी गोद में खींच कर लेने के लिए श्री गुरु गोविन्द का ऐसा व्यापार प्रधान कौशल है। विषयी, संसारी जीव सहसा संसार विमुक्ति के पथ पर अग्रसर नहीं होना चाहता। लौकिक धर्म एवं प्रतिष्ठा ही चाहता है। मुक्ति के पथ का पथिक होने की इच्छा रहते हुए भी उसके लिए वैराग्य व विषय वैमुख्य का प्रयोजन है, उसके इस अभाव से पथ वह सहसा पकड़ नहीं सकता धर्म के पथ पर अग्रसर होने की इच्छा रहने पर भी विषय लालसा सब प्रयत्न और प्रचेष्टा निरर्थक कर देती है। उसकी अनादि काल की विषय वासना। यह प्रवल अनादि विषय वासना ही हम लोगों को चारों तरफ से परिचालित करती रहती है।

जन्मान्तर सहस्रेण बुद्धिर्या भाविता नृणाम।
तामेव फलते जन्तु रूप देशो निरर्थक : ।।

घोड़ा जब विपरीत दिशा में दौड़ता रहता है तब उसको कुछ दूर उसी तरफ दौड़ा देना पड़ता है, बाद में समय समझ कर लगाम को जोर से खींचकर उसकी गति परिवर्तन करना होता है। मछली वँडसी विद्ध हो जाने पर वह जितना हीं छूटने में चेष्टा करे न क्यों अन्त में उसे विद्ध रहना ही पड़ता है। इस कौशल का अवलम्बन करके ही सदाचार्य विषयासक्त शिष्य के कल्याण साधन में व्रती होते हैं। प्रथम, अर्थ लोभी शिष्य का अर्थानुकूल्य विधान करके उसको विषय प्राप्ति में कुछ सहायता देकर अपनी तरफ उसको आकृष्ट करते हैं अपने सान्निध्य लाभ के लिए उसे प्रलुब्ध करते हैं। लोहा जिस तरह स्पर्श मणि का स्पर्श पाकर सुवर्ण में परिणत हो जाता है, उसी तरह सदाचार्य के सान्निध्य लाभ से विषय प्रवण शिष्य भी अदूर भविष्यत् में विषया सक्ति से शिथिल होकर, भगवदाभिमुख हो जाता है, बाद में भगवत विषय में प्रवण होता है। जिस किसी प्रकार से उसे केवल सदाचार्य की सन्निधि में लगा रहना चाहिए, एवं सदाचार्य के स्मरण पथ में लग जाना चाहिए ''सर्व लाभाय केशवः'' केशव सर्व फल प्रद हैं। वे पहले ऐहिक फल का लोभ दिखाकर उस फल को देकर विषयी जीव को अपनी तरफ खींचते हैं, इसी कारण कहा जाता हैं, सर्वलाभाय केशवः''।

''विषयाभिमुखी जीव को भगवन्मुखी करने का भगवान का कौशल''

क्रमशः जब विषय प्रवण जीव ऐहिक फल की अनित्यता समझता है, तो नित्य वस्तु भगवान् को अच्छी तरह पकड़ना चाहता है, तब ही भगवान की कृपा उसके ऊपर अधिक फलवती होती है, भगवान के प्रति आकर्षण अधिकतर अभिवृद्ध होने लगता है। यह भक्ति भाव स्थायी हो जाने पर जब भगवान् समझ लेते हैं, इस भक्त को हमारा रस अनुभव होने लगा वह हमको छोड़ नहीं जा सकता, तब वे क्रमशः उसकी विषया सक्ति विनष्ट करते जाते और धीरे – धीरे यह अनित्य सांसारिक विषय उससे अपहरण कर लेते हैं। उनका यह विषय अपहरण रूप कार्य निग्रह का नहीं अपितु अनुग्रह का लक्षण है। 'यस्याहमनुगृहणामि तस्य वित्तं हमराम्यहम्' वह भक्त विषय आसक्ति से जिससे निवृत्त होकर अपनी समस्त आसक्ति समस्त मन देकर उनकी तरफ धावित हो, विषय सेवा छोड़ कर सर्व तो भाव से उनकी ही सेवा में लग जाय इसीलिए ही भगवान कर्तृक यह विषय अपहरण, निग्रह नहीं अनुग्रह (रूपी) है। सद्गुरु श्री भगवान् के प्रतीक और उनके प्रतिनिधि हैं। विषयी शिष्य के उद्धार के लिए सद्गुरु भी प्रथम प्रथम उसे विषयदान करके अपनी सन्निधि में खींच लेते हैं। इस सन्निधि के लाभ से जब शिष्य का मन क्रमशः परिशुद्ध हो जाता है, जब उसमें गुरु भक्ति प्रस्फुटित हो उठती है, उस

समय गुरुदेव उस के प्रकृत कल्याण साधन के लिए उसके समस्त अर्थादि विषय कों ग्रहण कर अर्थात अकिञ्चन कर उसे भगवत कैङ्कर्य्य में अर्थात् भागवत सेवा में लगा देते हैं। इस कौशल से आचार्य एक तरफ जिसप्रकार भगवान् का सन्तोष विधान करते हैं, अपर पक्ष में उसी प्रकार शिष्य का कल्याण साधन भी करते हैं। यह ही कुशली और आदर्श आचार्य का यथोचित कृत्य है। गुरु की कृपा से शुद्धचित्त शिष्य भी आचार्य का सन्तोष विधान सम्पादन करके कृत कृत्य हो जाता है।

तृतीय प्रवाह
चतुर्थ अध्याय
''श्री गुरु–सहवास की लेखक की प्रथम अभिज्ञता''

इससे पहले कहा गया है कि प्रथम प्रथम श्री गुरुदेव को पत्र देने के साथ ही हमें अर्थागम भी होने लगा। इस काल से उन्हें पत्र लिखने का लोभ संवरण कर नहीं पाया। अवश्य इन समस्त पत्रों में प्रकाश्य रूप से अर्थ प्राप्ति की प्रार्थना नहीं रहती, धर्म विषयक बात रहती प्रश्न,सन्देह, प्रार्थना प्रभृति रहता। इस भाव से कई एक महीना व्यतीत होने पर श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन के लिए मन में अत्यन्त आग्रह हुआ। अपने इस मनोभिलाष को पत्र के द्वारा उनके निकट निवेदन किया। उनकी अनुमति पाकर मैं अयोध्या धाम श्री गुरु सन्दर्शन के लिए रवाना हुआ। हावड़ा स्टेशन से दिन में 11 बजे पंजाब एक्सप्रेस ट्रेन पर बैठकर दूसरे दिन प्रत्युष अयोध्या पहुँच गया। स्टेशन से प्राय: आधा मील दूर पर आश्रम स्थित है। एक एक्का गाड़ी करके आश्रम में पहुँचा। आश्रम में पहुँचते ही नहीं मालूम किस तरह मन में एक निर्मल नये भाव का उदय हो गया। मन में ऐसा हुआ कि तापत्रय के अतीत एक सुखमय स्थान पर आकर पहुँच गया हूँ। मुख, हाथ, पैर प्रक्षालन कर शुद्ध वस्त्र को पहन कर तिलक लगा श्री गुरुदेव के चरण प्रान्त में उपस्थित हुआ उस समय सुबह अन्दाज 7 बजा होगा। गुरुदेव पूजा पाठ समाप्त करके अपने कक्ष में कम्बल के आसन पर विराजमान दो तीन जन श्री वैष्णव साधु सामने के एक दूसरे कम्बल आसन पर बैठे थें। इसके पहले श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति लेकर ही कलकत्ता से अयोध्या आया हूँ। आज ही जो जाऊँगा वह भी उनको विदित है आने के पहले ही पत्र में निवेदन किया हूँ। आश्रमवासी साधु भी इस बात को जानते हैं। आश्रम में पहुँच कर ही इन साधुओं को साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपना परिचय दे चुका हूँ हमें नवागत समझकर वे हमको साथ में लेकर श्री स्वामी जी महाराज के कक्ष में उपस्थित किए, कक्ष में प्रवेश करते ही श्री स्वामी जी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। दास ''श्री यतीन्द्र रामानुजदास'' पहले इस बात को बोलकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदन्तर कक्ष के मध्य उपस्थित साधुओं को भी हाथ जोड़कर प्रणाम किया। आश्रम के जो दो जन साधु हमारे साथ इस कक्ष में आये थे वे हमारा परिचय श्री स्वामी जी के निकट निवेदन कर दिये। श्री स्वामी जी महाराज पहले ही हमसे जिज्ञासा किये कि तुम श्री विजयराघव जी महाराज को साष्टाङ्ग किये हो कि नहीं? मैं भगवान् को साष्टाङ्ग नहीं करके उनके पास आया हूँ सुन कर वे हम से कहने लगे भगवान का पहले साष्टाङ्ग करके आओ, तब इस स्थान पर बैठो। यही साक्षात् भाव से हमारे प्रति उनका प्रथम निर्देश है एवं यही साक्षात भाव से उनके निकट हमारी प्रथम शिक्षा लाभ जिस जगह आचार्य देव एवं इष्ट देव दोनों ही विराजमान हो वहाँ पहले आचार्य देव को साष्टाङ्ग करके उसके बाद इष्ट देव को साष्टाङ्ग करना चाहिए। दोनों को साष्टाङ्ग करने के पश्चात् आचार्य के सन्निधि में आकर बैठना चाहिए यही शिष्ट परिगृहीत नियम है। प्रथम दर्शन से प्रथम आलाप में इस विशेष अनुष्ठान का श्री स्वामी जी

हमें सर्व प्रथम शिक्षा दिये। उनके निर्देशानुयायी में श्री विजयराघव जी भगवान को, श्री अम्बा जी को (अर्चाविग्रह श्री सीता देवी) साष्टाङ्ग करके श्री पाद तीर्थ (चरणामृत) एवं श्री पाद तुलसी ग्रहण करके आकर श्री स्वामी जी के समीपस्थ कम्बल पर बैठ गया।

बैठते ही मन के आवेग से क्षण भर में अपने संसार उत्तारक श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य मङ्गल विग्रह को आपाद मस्तक उत्तम रूप से दर्शन करने की चेष्टा करने लगा। मैंने देखा अवस्था उनकी अन्दाज न्यूनाधिक अधिक 80 वर्ष की, एक कम्बल बिछाया गया है, वे उसके ऊपर पद्मासन से सीधा होकर बैठे हुए हैं। उनके मस्तक में उज्ज्वल तिलक शोभायमान है, मस्तक पर केश नहीं ही कहा जा सकता है। मस्तक के पीछे की तरफ ग्रन्थिबद्ध दीर्घ शिखा है, उज्ज्वल मुख मण्डल, उज्ज्वल नयन में तीक्ष्ण दृष्टि, उन्नत नासा, विलम्बित कर्ण युगल, सर्वदा स्फुरित अधर में मन्द हास्य भाव, मसृण गात्र त्वक, वे कभी अङ्ग में तेल नहीं लगाये, आजानुलम्बित हस्त द्वय, कर तल अरुणाभ, विलम्बित अङ्गुल निचय, वाम हस्त गोंदी में स्थापित, दाहिना हाथ पाद में विन्यस्त है। उनके सम्मुख कम्बल पर बैठते ही श्री स्वामी जी अपना दक्षिण हस्त प्रसारण करते हुए अभय मुद्रा से हमें आशीर्वाद किये। ट्रेन पर इतनी दूर आने में कोई कष्ट हुआ है कि नहीं जिज्ञासा किये। हमारा कुशल प्रश्न किये। परिवार वर्ग का एवं अन्यान्य गुरुभ्राताओं का कुशल प्रश्न पूछे। वे जानते थे कि कलिकाता से अयोध्या ट्रेन में आने पर प्रायः 18 घण्टा समय लगता है, एवं यात्री को विशेष कष्ट भोग करना पड़ता है। इसलिए ज्यादा बात हमसे न करके वे हम से बोले – 'शीघ्र सरयू में स्नान कर आओ, तिलक और पूजा करके कुछ प्रसाद पाओ, उसके पश्चात् फिर हमारे पास आओ। आश्रमस्थ एक जन साधु को हमारे संङ्ग में जाने के लिए बोले। उनके आदेशानुसार मैं स्नान पूजा समाप्त करके कुछ प्रसाद घी, वेसन और चीनी से बना हुआ लड्डू पाकर फिर स्वामी जी की सन्निधि में आकर उपस्थित हुआ। वे बैठने को बोले, बैठ गया। हमारे आने के पहले से ही वे कई एक साधु के सङ्ग धर्म विषयक वार्तालाप कर रहे थे, उन लोगों के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। मैं बैठकर उसे सुनने लगा। श्री स्वामी जी महाराज के श्री मुख से इस प्रकार धर्मालाप श्रवण करने का सौभाग्य हमें यही प्रथम हुआ। सर्वथा बोध गम्य नहीं होने पर भी हमें यह खूब ही मधुर लग रहा था। अन्दाज बेला 11 बजे साधु लोग चले गये। श्री विजय राघव जी की मध्याह्न आरती का समय हो गया। श्री स्वामी जी महाराज हमें आरती दर्शन के लिए जाने को बोले आरती दर्शन किया, आरती के बाद श्री भगवान का एवं गुरु परम्परा का स्तुति पाठ श्रवण किया। आरती के बाद प्रसाद पाने के पङ्क्ति हुई, प्रसाद पाने के लिए पङ्क्ती में बैठ गया। पंक्ती में प्रत्येक के लिए, एक शाल पत्ते का पत्तल, एक माटी का कुल्लहण दिया गया। प्रसाद दिया गया, अरवा चावल का प्रसाद, अरहड़ की दाल, एवं आलू, भिण्डी की तरकारी एक दी गई। माटी के कुल्हड़ में जलपान किया। प्रसाद पाने के सबके अनुकरण में गिरे हुए जूठा को पत्तल में उठाकर आश्रम के बाहर फेंक दिया, अपने भोजन की जगह को गोवर देकर जल से लीप दिया। विरक्त पुरुष के आश्रम में इस प्रकार कार्य प्रत्येक को स्वतः करना पड़ता है यह समझ गया कपड़ा धोना, पीने का पानी भरना, घर परिष्कार करना आदि अपने निमित्त सब काम अपने ही करना पड़ता है। इसके पहले दीक्षा के समय जब यहाँ आया था उस वक्त हम लोग संख्या में 60/65 जन थे इसलिए आश्रम के निकट अन्य दो गृह भाड़ा लिया गया था, जो इसके पहले कहा गया है। उस वक्त हम लोगों के कपड़ा धोने, बर्तन माजने आदि के वास्ते नौकर रखा गया था। प्रसाद पाने के बाद एक छोटी कोठरी में अपना विस्तरा लगाकर शयन किया। गत रात्रि में ट्रेन पर निद्रा

नहीं हुई थी। वहाँ निद्रा के बाद पथ श्रम की क्लान्ति दूर हो गई, सुस्थ बोध किया। सुनने में आया कि अपराह्न 4 बज गया, स्वामी जी महाराज के नित्य काल क्षेप का समय हो गया। आश्रमवासी दो एक जन साधु के साथ आलाप हुआ। जान पाया कि उस समय आश्रम में 13/14 मूर्ति साधु हैं।

''आश्रम की तदानीन्तन अवस्था''

श्री स्वामी जी महाराज के प्रधान शिष्य एवं आश्रम के भावी उत्तराधिकारी महान्त श्री भागवताचारी स्वामी, उनके सेवक कमलनयन रामानुज दास, आश्रम के नूतन अधिकारी श्री गरुड़ध्वज रामानुज दास, पुजारी श्री रामानुज दास, 2 जन रसोइयाँ, 1 जन कुठारी, श्री स्वामी जी महाराज का एक सेवक, कन्हैया नाम का एक गौ का सेवा करने वाला, एकजन बाहरिया चाकर, एवं कई एक विद्यार्थी बालक। विद्यार्थी सभी वैष्णव थे। अयोध्या के विभिन्न संस्कृत पाठशालाओं में व्याकरण ज्योतिष, वेदान्त इत्यादि पढ़ते थे, अवसर के समय में आश्रम का कुछ निर्दिष्ट कैङ्कर्य करते थे विद्यार्थी वे आश्रम में रहते थे, एवं प्रसाद पाते थे।

'' श्री भागवताचारी स्वामी''

श्री भगवताचारी स्वामी श्री स्वामी जी महाराज के प्राचीन कई एक जन विशिष्ट शिष्यों के मध्य अन्यतम शिष्य थे। ये महा विद्वान वैराग्यवान् ज्ञानी भक्त एवं कैङ्कर्य परायण थे। वे श्री स्वामी जी महाराज के दक्षिण हस्त स्वरूप थे। श्री भागवताचारी स्वामी हम लोगों के दीक्षा के वक्त अयोध्या में नहीं थे अपनी चिकित्सा के लिए अन्यत्र चले गये थे। उस समय वे नव निर्मित बड़े कमरे में वास करते थे। उनके दर्शन के लिए मैं उनके कमरे में गया, उनको साष्टाङ्ग किया, उस समय उनकी अवस्था 60/62 वर्ष की होगी। देखा वे बैठे हुए हैं। पुरानी खाँसी एवं दमा के रोग का लक्षण शरीर में विद्यमान हैं एवं इसके कारण कष्ट पा रहे हैं। दीक्षा के समय ये नहीं थे इसलिए मुझे उनका दर्शन नहीं मिला था। आज हमें प्रथम इनका दर्शन हुआ। उनके पूँछने पर मैं अपना परिचय दिया। हमारे पास श्री स्वामी जी महाराज की महिमा के सम्बन्ध में कुछ कीर्तन किये। सद्गुरु के प्रभाव के विषय में कुछ उपदेश दिये। हमें चिकित्सक जानकर अपनी व्याधि की परिस्थिति के सम्बन्ध में एवं उसके प्रतीकार के सम्बन्ध में कुछ कुछ जिज्ञासा किये। उनके सहित थोड़ी देर के आलाप से ही वे हमें अपना बना लिए। उनमें अगाध पाण्डित्य था, तीक्ष्ण बुद्धि थी, मधुर व्यवहार था यह सब हमें मुग्ध कर दिया। उनका यह क्लेश कर दुरारोग्य व्याधि हम लोगों के पक्ष में दुर्भाग्य का विषय है यह उपलब्धि किया। वे श्री स्वामी जी महाराज के प्रियपात्र थे। श्री जानकी जी उनके ऊपर निर्हेतुक कृपावर्षण करके उनके माध्यम से श्री अयोध्या धाम में आई हैं – यह आख्यायिका हम लोग पहले ही विवृत कर दिये है उनके ही माध्यम से श्री स्वामी जी महाराज के अन्तर की अभिलाषा सिद्ध हुई। वे यदि सुस्थ एवं सक्षम रहते तो वे बहुलांश एवं बहुत प्रकार से श्री स्वामी जी महाराज के इस विराट जन हित कार्य में सहायक हो सकते। इस समय इस दुरारोग्य व्याधि से क्रमशः ही उनका स्वास्थ्य एवं देह क्षीण होते रहने की वजह हम लोग इस आशा में निरुत्साह हो गये। श्री भागवताचारी स्वामी भी अपने को हत भाग्य मानते हैं, यह बात उनके श्रीमुख से निर्गत हुआ जाना गया।

उनके सहित कथोपकथन में कुछ समय व्यतीत हो गया श्री स्वामी जी महाराज के कालक्षेप का समय हो गया है, देखकर शास्त्री जी हमें इस कालक्षेप में भेज दिये।

आश्रम की जमीन का दो खण्ड है। एक सरकारी रास्ता के सामने समतल नीची जमीन 4 कट्ठा परिमाण, उसकी अपेक्षा दूसरी जमीन 5 फुट के अन्दाज ऊँची प्राय सात, आठ कट्ठा परिमाण। ऊँची जमीन

का पूर्वांशर खाली है, पश्चिमांश में तीन तरफ तीन छोटा छोटा कमरा है, दूसरी तरफ एक घिरा बरामदा मध्य में ईटें से बँधाया हुआ प्राङ्गण, बरामदा के सहित प्राङ्गण प्रायः 15 हाथ लम्बा और 15 हाथ चौड़ा है ऊपर में, बानरों के प्रवेश और उपद्रव को रोकने के लिए लोहे का छड़ लगाया हुआ है। इस प्राङ्गण में एवं प्राङ्गण संश्लिष्ट बरामदा में नित्य कालक्षेप की व्यवस्था हुई थी। नारियल के रस्सी का दो टाट कालक्षेप आरम्भ होने के पहले बिछाया जाता था, समवेत साधुगण उसके ऊपर बैठकर कालक्षेप श्रवण करते थे।

''श्री स्वामी जी महाराज का कालक्षेप''

प्राङ्गण के एक तरफ व्यास आसन के लिए छोटी चौकी रख कर उसके ऊपर आसन बिछाया जाता श्री स्वामी जी महाराज उस पर बैठकर कालक्षेप करते थे। हमने देखा कि कालक्षेप सुनने के लिए 50/60 जन साधु धीरे धीरे आकर बैठ गये। सभी साधु थे, उसमें कोई श्री वैष्णव थे, और कोई रामानन्दीय वैष्णव थे सुना कि आश्रम के निकट वर्ती व दूरवर्ती अयोध्या के विभिन्न स्थान से वे साधु लोग प्रत्यह कालक्षेप को सुनने के लिए इस सभा में समवेत होते थे। इस समय श्री वाल्मीकीय रामायण कालक्षेप चल रहा था। कालक्षेप के प्रारम्भ में सभी के कण्ठ से मङ्गला चरण रूप गुरु परम्परा का पाठ ध्वनित हो उठा। श्री स्वामी जी महाराज ने सन्तर्पण से रामायण पोथी की आवरणी रेशमी वस्त्र को को खोल लिए तदनन्तर उस पोथी के अवलम्बन से कालक्षेप प्रारम्भ हुआं पहले मूल श्लोक का पाठ किये, उसके बाद हिन्दी में उसकी व्याख्या कर रहे हैं। उनके कण्ठ से मूल श्लोक का पाठ अपूर्व श्रुति मधुर था। श्री स्वामी जी उनका उदात्तकण्ठ स्वर, धीर गति में सुस्पष्ट संस्कृत शब्दों का छन्द सहित विशुद्ध उच्चारण बड़ा ही मधुर लगा। इस प्रकार विशुद्ध उच्चारण आज मैं कभी नहीं सुना था। सिद्ध महापुरुष के श्री मुख से संस्कृत श्लोकों का विशुद्ध छन्दोबद्ध उच्चारण जो कितना श्रुति मधुर, कितन मनो विमोहन होता है, उसे भाषा के द्वारा प्रकाश नहीं किया जा सकता वह केवल अनुभव किया जाता है। इस श्लोक् की व्याख्या में, विशेष विशेष शब्द की व्याख्या, विशेष वाक्य गत व्याख्या, पूर्वापर संयोग, वाक्यार्थ, भावार्थ, मर्मार्थ, एक एक करके सभी श्री स्वामी जी कालक्षेप के समय विवृत करते थे। व्याख्या के समय यथा योग्य स्थल पर सिद्धान्त एवं रहस्य विषय की अवतारणा करते थे। उपयुक्त स्थान पर विभिन्न विश्लेषण सभी निकाल कर परिवेशन करते थे। इन समस्त सिद्धान्त (तत्व) रहस्य, एवं रस के विश्लेषण के समय, आड्वारों के दिव्य सूक्तियों का उल्लेख कर के दुरुह विषय को सरल और सुबोध्य कर देते थे। इन सब कारणों से कालक्षेप का प्रायः डेढ़ घण्टा समय किस तरह से बीत गया कुछ भी समझ में नहीं आया। इस डेढ़ घण्टा के समय में एक ही श्लोक समाप्त हुआ मैने सुना कि इसी प्रकार प्रत्यह होता है। पारमार्थिक ज्ञान में मैं मूर्ख था, व्याख्या के समय अनेक वस्तु समझ नहीं सका तथा जितना समझ में आया उतने से ही मन – प्राण भर गया। आशा नहीं मिटी। पारमार्थिक विषय में ज्ञानार्जन की स्पृहाका विशेष रूप से मन में जाग उदित हुई । मन में ऐसा हुआ कि आज मैंने एक अमूल्य रत्न राजिका सन्धान पा गया। श्री गुरु की कृपा अनुस्मरण करके निरन्तर अनुसन्धान के द्वारा इस रत्न राजि के आहरण की तीव्र आकङ्क्षा से मैं भर उठा। कालक्षेप के समय साधु गोष्ठी की अवस्था देख कर अनुभव किया वे भी इस पाठ को सुनने से मैं आत्महारा हो गये थे।

भागवती कथा धारा शुनि तारा आत्महारा
कथा स्थलेनाहि तिल स्थान ।। आचार्य प्रकाश।।

कालक्षेप के अन्त में समवेत साधुकण्ठ से समवेत भाव में ''सीताराम सीताराम, सीताराम जय सीताराम'' स्वर ध्वनित होने लगा।

वे सभी साधु श्री स्वामी जी महाराज को साष्टाङ्ग करके श्री विजय राघव जी भगवान को साष्टाङ्ग करके विदा हो गये।

कालक्षेप समाप्ति के बाद श्री स्वामी जी महाराज अपने कक्षस्थ आसन पर जाकर बैठ गए। दो चार जन साधु किसी – किसी शास्त्र के विषय में सन्देह भञ्जन के लिए श्री स्वामी जी महाराज के पास जाकर उस शङ्का का निवेदन किये। श्री स्वामी जी निपुणता के सहित वह समस्त सन्देह भञ्जन कर दिये। और साधुगण सन्तुष्ट चित्त से अपने स्थान में चले गये।

'कथा अन्ते स्वामी पाशे शास्त्र शङ्का लये आसे
प्रवीणेरा पाय निरसन।। (आचार्य प्रकाश)

''कालक्षेप के अन्त में''

कालक्षेप सुनने के लिए आये हुए साधुओं के चले जाने के पीछे श्री स्वामी जी अपने आसन पर स्थिर भाव में बैठे रहे। मैं उनके पास एक तरफ होकरके बैठा हुआ, उनका दर्शन एवं अनुभव करता रहा। उनका अन्तर अनुभव करने का क्या सामर्थ्य? केवल इतना ही समझ सका कि वे चिन्ता मग्न हैं। किस विषय में चिन्ता, किस भाव की चिन्ता वह अतीव दुरधिगम्य है। बीच में दो एक जन साधु आ रहे थे वे प्रणाम करके सन्मुखस्थ कम्बल पर बैठ जाते थे। श्री स्वामी जी महाराज उन लोगों के सहित कथोपकथन करते थे, अथवा कभी किसी धर्म सम्बन्धीय वा आश्रम सम्बन्धीय, व किसी धर्म व्यवहार सम्बन्धीय समस्या का समाधान कर देते थे। उस जगह किसी ग्राम्य कथा का अवकाश नहीं। मैं एकाग्र मन से यह सब समस्त उपभोग्य सत्प्रसङ्ग सुनता जाता था। कलिकाता से उनके चरण प्रान्त में आने के समय से अब तक श्री स्वामी जी से अपने विषय का कोई भी प्रश्न करने में साहस नहीं हुआ एवं वे भी हमसे इस विषय का कोई प्रश्न नहीं किये। सङ्कोच के कारण मैं प्रश्न नहीं कर सका, किन्तु वे क्यों नहीं प्रश्न किये, वह हमारी बुद्धि के अगम्य है, किन्तु इसके मध्य उनका कोई विशेष अभिप्राय था यह सुनिश्चित है।

सन्ध्या के थोड़ी देर बाद ही श्री विजय राघव जी महाराज की सन्ध्या आरती का घण्टा बजा।

श्री स्वामी जी महाराज के निर्देश से मैं आरती दर्शन में गया। यथा विधि पञ्च प्रदीप की आरती हुई।

''श्री विजय राघव जी की सन्ध्या आरती''

आरती के समय, 1 बड़ा घण्टा, 2 विजय घण्ट, 2 घड़ी एवं एक नगाड़ा ताल ताल से बजने लगा। प्रायः 15 मिनट के बाद आरति समाप्त हुई, स्तोत्र पाठ आरम्भ हुआ। स्तोत्र संस्कृत भाषा में श्लोकबद्ध वैदिक स्वर से पूर्वाचार्य परम्परा की प्रणाली से गीत हुआ। सब मिलाकर 40 श्लोकों के गान करने में 40/45 मिनट का समय लगा। हमें श्लोक पाठ श्रुति मधुर लगा। किन्तु उस समय श्लोकगत अर्थ अधिकांश ही बोधगम्य नहीं हुआ। स्तोत्र पाठ के बाद पुजारी जी तीर्थ, प्रसाद वितरण किये एवं मस्तक में श्री शठकोप स्पर्श कराये। सर्व शेष में अर्चावतार श्री विजय राघव जी महाराज को कई एक बार प्रदक्षिणा पूर्वक साष्टाङ्ग करके सभी श्री स्वामी जी महाराज के समीप में आये। मैं उन लोगों का अनुगमन किया अतः पर उपादेय समझ कर श्री विजयराघव जी महाराज के मन्दिर में आरती के अन्त में जो मङ्गल स्तोत्र का पाठ किया जाता है उसे व्याख्या प्रकाश किया जाता है।

''श्री विजय राघव जी का मङ्गला शासनम्''

घोषणा की गई है कि श्री रामचन्द्र श्री राज्याभिषिक्त होंगे। सभी अयोध्या वासी आनन्द में मग्न हैं। माता कौशल्या देवी के आनन्द की सीमा नहीं है, ऐसे अवसर पर मन्थरा दासी की कुमन्त्रणा से रानी कैकेयी प्रतिश्रुत वरदान के बहाने से श्रीरामचन्द्र को वन भेजने के लिए राजा दशरथ को बार – बार पीड़न करने की वजह, दशरथ सत्य रक्षा के कारण प्राणाधिक पुत्र को राज्याभिषेक के बदले वन गमन का आदेश देने में बाध्य हुए। उस निदारुण संवाद को सुनकर माता कौशल्या महारानी मर्मान्तिक दु:ख से मृत प्राय हो पड़ी। उस समय रामचन्द्र के मङ्गलार्थ ब्राह्मण, पुरोहित प्रभृति के द्वारा पूजा होम आदि समाप्त कर उन लोगों को दक्षिणान्त कर दीं। एवं श्री रामचन्द्र को सम्बोधन करके उनकी मङ्गल कामना करके अत्यन्त आर्तभाव से आशीर्वाद करने लगीं।

ततस्तस्मै द्विजेन्द्राय, राम माता यशस्विनी ।
दक्षिणां प्रददौ काम्यां, राघवं चेदमब्रवीत् ।।
यन्मङ्गलं सहस्राक्षे, सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत्, तत्ते भवतुमङ्गलम् ।। 1।।

हे राम! सर्व देव पूजित, सर्व देवाधिपति इन्द्र जिस समय महा तेजस्वी महाउपकारी महर्षि दधीचिको स्तुति के द्वारा सन्तुष्ट करके उनकी स्वेच्छात्मक शरीर की अस्थि से वज्र प्रस्तुत करके उस भीषण वज्र के आघात् से समस्त देवताओं के प्राणान्त उपद्रवकारी वृत्रासुर को वध किये थे, उस समय देवगण ने महा कल्याणकारी देवराज इन्द्र के मङ्गलार्थ जो समस्त आन्तरिक मङ्गल प्रार्थना किये थे वही समस्त मङ्गल तुम्हारो हो।।1।।

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य, बिनताऽकल्पयत्पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानास्य, तत्ते भवतु मङ्गलम् ।। 2।।

अर्थ—वेदमय पक्ष विशिष्ट गरुड़ जी प्रार्थित अमृत स्वर्ग से ले आकर बिनता के बहुत वर्षों का दासीत्व से मुक्त करने पर परम आनन्दिता माता बिनता, मुक्ति दाता सन्तान को जो समस्त मङ्गल जनक आशीर्वाद दिये थीं वह समस्त परम मङ्गल तुम्हारा हो।।2।।

अमृतोत्पादने दैत्यान्, घ्नतोवज्र धरस्ययत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत्ते भवतु मङ्गलम् ।। 3।।

अर्थ :– समुद्र मन्थन से उत्थित व प्राप्त अमृत पान करके अमर होकर वज्र धर इन्द्र प्रभृति देवगण दैत्यों को वध करके स्वर्ग को निरुपद्रव करने पर, इन्द्र की माता अदिति निरुपद्रवकारी इन्द्र प्रभृति देवों को जो आन्तरिक परम मङ्गल जनक आशीर्वाद किये थीं। हे पुत्र! उसी प्रकार परम मङ्गल तुम्हारा हो।।3।।

त्रीन् विक्रमान् प्रक्रम तो, विष्णोरतुलतेजसः ।
यदासीन्मङ्गलंराम! तत्ते भवतु मङ्गलम् ।। 4।।

अर्थ :– वामन देव रूप से अवतीर्ण होकर, तीन चरण के द्वारा समग्र त्रिभुवन व्याप्त करके बलिको बद्ध कर देवताओं के हृतराज्य को पुनः उद्धार कर देने पर इन्द्र प्रमुख जितने देवता हैं वे सब धन और प्राणदाता अतुल विक्रमशाली भगवान् विष्णु का सर्वान्तः करण से जो मङ्गल जनक स्तुति किये थे, हे पुत्र! वही समस्त

श्रीमते रामानुजाय नमः



शुश्रूषा बलरामसूरिपदयोः श्रीरङ्गसूक्तिप्रदा,
विद्वद्भागवतार्यदेशिककृपाज्ञानक्रियापोषिणी ।
यस्य श्रीरघुनाथयोगिकरुणाज्ञानक्रियावर्द्धिनी,
वन्दे श्रीकमलंपरं च नयनं तं सूरिचर्यं गुरुम् ॥

परम मङ्गल तुम्हारा हो।।4।।

ऋषयः सागराः द्वीपाः, वेदालोकाः दिशश्चते ।
मङ्गलानि महावाहो! दिशन्तु शुभ मङ्गलम् ।। 5।।

अर्थ :– सप्तऋषिवृन्द, सप्तसागर के अधिपति, सप्तद्वीप के अधिवासी और सप्त लोक के अभिमानी देवतावृन्द, दश दिशा दश दिग् पाल; एवं चतुर्वेद, सप्तलोक एवं जगत् में मङ्गलमय जो समस्त वस्तुएँ हैं, हे महावाहो! सभी तुम्हारा समस्त शुभ मङ्गल विधान करें।।5।।

मङ्गलं कोसलेन्द्राय, महनीय गुणाब्धये ।
चक्रवर्त्तितनूजाय, सार्वभौमाय मङ्गलम् ।। 6।।
वेद वेदान्त वेद्याय, मेघश्यामल मूर्त्तये ।
पुंसां मोहनरूपाय, पुण्य श्लोकाय मङ्गलम् ।। 7।।
विश्वामित्रान्तरङ्गाय, मिथिलानगरी पतेः ।
भाग्यानां परिपाकाय, भव्य रूपाय मङ्गलम् ।। 8।।
पितृ भक्ताय सततं, भ्रातृभिः सह सीतया ।
नन्दिताखिल लोकाय, राम भद्राय मङ्गलम् ।। 9।।
त्यक्त साकेत वासाय, चित्रकूट निवासिने ।
सेव्याय सर्व यमिनां धीरो दाराय मङ्गलम् ।। 10।।
सौमित्रिणा च जानक्या चापवाणासिधारिणे ।
संसेव्याय सदा भक्त्या, स्वामिने मम मङ्गलम्।। 11।।
दण्ड कारण्य वासाय, खण्डितामरशत्रवे।
गृध्रराजाय भक्ताय, मुक्ति दायास्तु मङ्गलम् ।। 12।।
सादरं शवरी दत्त फल मूलाभिलाषिणे ।
सौलभ्य परिपूर्णाय, सत्त्वोद्रिक्तायमङ्गलम् ।। 13।।
हनुमत्समवेताय, हरीशाभीष्ट दायिने।
वालि प्रमथनायास्तु, महावीरायमङ्गलम्।। 14।।
श्रीमते रघुवीराय, सेतूल्लङ्घित सिन्धवे ।
जित राक्षस–राजाय, रणधीराय मङ्गलम् ।। 15।।
आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया ।
राजाधिराज राजाय, रामभद्राय मङ्गलम् ।। 16।।

श्लोक छ से 16 तक का अर्थ स्पष्ट।।

मङ्गला शासन परैर्मदाचार्य पुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः, सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ।। 17।।

अर्थ :– श्री रामानुज स्वामी से लेकर पूर्व कालीन समस्त आचार्यवृन्द पूर्वाचार्य नाम से कहे जाते हैं। ये सभी भागवतोत्तम हैं। एतद् व्यतीत श्रीमन्नारायण के भूषण एवं चक्रादि आयुधादिकों के अवतार स्वरूप जो

समस्त महापुरुष श्री सम्प्रदाय को अलंकृत किये हैं, वे सभी नारायण परायण कहने पर जो समझा जाता है थे। इन लोगों को द्राविड़ भाषा में आल्बार' 'कहा जाता है। ये श्री वैष्णव धर्म के धारक एवं सतत श्री भगवान् के मङ्गल स्तुतिपरायण थे। अतएव हे प्रभो! इन समस्त नारायण परायण भागवतोंत्तमों के द्वारा सेवित और स्तुत एवं सदा सर्वदा मङ्गला शासन द्वारा सत्कृत तुम्हारा सकल प्रकार मङ्गल हो – इस श्लोक का यही तात्पर्य है।।17।।

वन्दे विदेह तनया पद पुण्डरीकम्,
कैशोर सौरभ समाह्वत योगि चित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंस सेव्यम्,
सन्मान सालि परिपीत परागपुञ्जम्।। 18।।

अर्थ– योगिगण परम मनोहर एवं अशेष गुण विशिष्ट जिस चरण कमल के ध्यान में सर्वदा निमग्न रहते हैं, त्रिताप से निष्कृति पाने के लिए मुनिगण एवं परम हंसगण जिस चरण कमल की सेवा सर्वदा करते रहते हैं जनक नन्दिनी श्री सीता देवी का वही सर्व लोक शरण्य, सर्वाङ्ग सुन्दर एवं सर्वाभीष्ट फलप्रद चरण कमल में मैं वन्दना करता हूँ ।।18।।

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयितदैवाद्रापराधास्त्वया,
रक्षन्त्यापवनात्मजल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ।
काक तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौरक्षतः,
सानः सान्द्र महागसः सुखयतु क्षान्तिस्त्तवाकस्मिकी ।। 19।।

अर्थ :– हे मातः जनक नन्दिनी सीता देवी! रावण वध के अनन्तर जिस समय पवन नन्दन हनुमान ने अशोक कानन में तुम्हारी सन्निधि में उपस्थित होकर तुम्हारे प्रति नित्य नये अपराध करने वाली राक्षसी चेरियों के वध करने की आज्ञा प्रार्थना आप से किये उस समय आप अपनी निर्हेतुक कृपा के द्वारा बहुत युक्ति, दया दिखाकर, हनुमान को निवृत्त कर उन सद्य महा अपराधी चेरियों को हनुमान से रक्षा की हो। तुम्हारा यह निर्हेतुक महा कारुण्य गुण रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र जी के गुण गोष्ठी को भी अत्यन्त लघु कर दिया है क्योंकि ओष्ठ के द्वारा तुम्हारे स्तन में क्षत करने वाला महा पापी इन्द्रपुत्र जयन्त जिस समय श्रीरामचन्द्र जी के कोप से रक्षा पाने के लिए त्रिभुवन में कहीं भी रक्षा की जगह न पाकर अपनी प्राण रक्षा के लिए श्री रघुनाथ जी के चरण कमल में गिरकर शरणागति किया, एवं स्वभावतः धर्मात्मा विभीषण स्त्री पुत्रादि समस्त त्याग कर शरणागति किया उस समय इस शरणागति को उपलक्ष्य करके श्री रघुनाथ जी उन दोनों की रक्षा किये थे और माँ! आप शरणागति की अपेक्षा नहीं करके केवल अपनी निर्हेतुकी क्षमा गुण के द्वारा महा अपराधियों की रक्षा की हो। आपका निर्हेतुक क्षमा गुण अर्थात् कृपा हम लोगों के सदृश महा अपराधी गण को सुखदान करे हे मातः आपके चरण में यही प्रार्थना है।। 19।।

मातः लक्ष्मि! यथैव मैथिल जन स्तेनाध्वनातेवयम्,
त्वद्दास्यैक रसाभिमान सुभगैर्भावैरिहामुत्रच ।
जामाता दयितस्त्वेति भवती सम्बन्ध दृष्टया हरिम्
पश्येम प्रतियाम याम च परीचारान् प्रह्वष्येमच ।। 20।।

अर्थ :– हे मातः! हे लक्ष्मी जी! मिथिलावासीगण जिस प्रकार से आप के अपने जन हैं उसी प्रकार हम लोग भी आपके आपने जन हैं। हम लोग प्रीतिपूर्ण आपका कैङ्कर्य करेंगे, तुम्हारे पिता विष्णुचित्त स्वामी के जामाता एवं तुम्हारे अतिप्रिय दयित, इस सम्बन्ध ज्ञान से श्री हरि का शरण ग्रहण करेंगे, तुम दोनों के दर्शलाभ से धन्य होकर इह लोक और परलोक में दोनों का सर्वदा कैङ्कर्य करते हुए प्रहृष्ट होंगे।।20।।

पितेव त्वत्प्रेयान जननि परिपूर्णागसिजने,
हितस्रोतो वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधीः।
किमेतन्निर्दोषः कइह जगतीति त्वमुचितैः,
उपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसिनः।। 21।।

अर्थ :– हे जननि! महा अपराधी पुत्र के प्रति कुपित हो करके उसके हित के लिए ये पिता उसे शासन करने को उद्यत होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे प्रियवल्लभ महा अपराधी जनों पर जब कुपित होते हैं, तब तुम ''इस जगत में निर्दोष कौन है, दोष तो सभी में रहता है'' इत्यादि उचित वाक्यों के द्वारा उनका कोप प्रशमन कराकर उन लोगों को उनके अपने जन के रूप में परिणंत करा देती हो। इसीलिए तुम हम लोगों की दयामयी माता हो।।21।।

नेतुर्नित्य सहायिनी जननि! नस्त्रातुं त्वमत्रागता,
लोके त्वन्महिमावबोधवधिरे प्राप्ताविमर्दंवहु ।
क्लिष्टं ग्रावसु मालती मृदु पदं विश्लिष्यवासोवने,
जातो धिक्करुणां धिगस्तुयुवयोः स्वातत्र्यमत्यंकुशम्।। 22।।

अर्थ :– हे जननि सीते! तुम अपने प्रिय की नित्य सहायिनी हो, इसी कारण हम लोगों के त्राण करने के लिए तुम अपनी महिमा के ज्ञान से रहित इस जगत में अवतीर्ण होकर तुम कितना हीन कष्ट भोग किये हो। कोमल कुसुम के सदृश्य तुम्हारे मृदु चरण युगल वन वास के समय तृणाङ्कुर एवं क्षुद्र उपल खण्ड के आघात से कितना हीन क्लिष्ट हुआ है। अपने प्रिय की अनपायिनी होकर भी इस वन वास काल में उनकी विरह व्यथा से तुम कितनी मर्मान्तिक महा व्यथा को अनुभव किये हो। हमारे सदृश जीवों को उद्धार करने के लिए तुम्हारी करुणा ही तुम्हारे इस समस्त महाक्लेश के भोग का कारण है अतएव तुम्हारी इस करुणा को धिक्कार है, तुम्हारे इस निरङ्कुश स्वातन्त्र्य में भी धिक्कार है। अर्थात् तुम जिस समय इस दुःखमय जगत् में अवतीर्ण करने की इच्छा करती हो, उस समय तुम लोगों के इस कार्य में बाधा देने को किसी का भी सामर्थ्य नहीं है।।22।।

अधिशयितवानब्धिं नाथो ममन्थ ववन्धतम्,
हर धनुरसौवल्ली भञ्जं वभञ्जच मैथिलि! ।
अपिदशमुखीं लूत्वा रक्षः कवन्धमनर्त्तयत्
किमिवनपतिः कर्त्ता त्वच्चाटु चुञ्चु मनोरथः।। 23।।

अर्थ :– हे मातः! तुम्हारे नाथ (एकान्त अनुगत) तुम्हारे सन्तोष विधान के लिए, जिस क्षीर सागर में शयन किये हुए हैं, उसी क्षीर सागर को तुम्हारी प्राप्ति के लिए मन्थन किये थे, और पुनः तुम्हें पाने के वास्ते उसी समुद्र को सेतु द्वारा बन्धन किये थे। तुम्हारे पाणिग्रहण के उद्देश्य से अनायास हर धनु को लता खण्ड के सदृश भग्न किये थे, एवं तुम्हारे सन्तोष विधान के लिए राक्षस रावण का दश मस्तक छेदन करके उसके

मस्तक विहीन शरीर को नचाये थे। तुम्हारे प्रिय पति तुम्हारे सन्तोष के लिए किस कार्य का ही साधन न किये! अर्थात् सब कार्य करने के वास्ते प्रस्तुत हैं।। 23।।

औदार्य कारुणिकताश्रितवत्सलत्व
पूर्वेषु सर्वमतिशायितमत्र मातः।
श्रीरङ्ग धाम्नि यदुतान्यदुदाहरन्ति,
सीतावतार मुखमेतदमुष्य योग्यम्।। 24।।

अर्थ :– हे मातः। तुम्हारा उदार, करुणाशील, आश्रित वत्सलता प्रमुखगुण राशि जो श्री सीता, श्री रुक्मिणी, श्री राधिका प्रभृति अवतारों में कहा जाता है, वह समस्त ही श्री रङ्गम स्थित तुम्हारे अर्चावतार विग्रह में सम्यक् रूप से विराजित है।।24।।

ऐश्वर्यमक्षर गतिं परमं पदं वा,
कस्मैचिदञ्जलि भरं बहते वितीर्य ।
अस्मै न किञ्चिदुचितं कृतमित्यथाम्व!
त्वं लज्जसे कथय कोऽयमुदारभावः।। 25।।

अर्थ :– हे जननि! जो जीव तुम्हारे प्रति केवल कृताञ्जलि (करपुट) होता है, उसके कुल, शील, मान मर्यादा आदि का कुछ भी विचार न करते हुए तुम उसे ऐहिक और पारमार्थिक समस्त ऐश्वर्य कैवल्य मुक्ति परम पुरुषार्थ रूप अपना कैङ्कर्य, सब दे देती हो, तथापि तुम अपने मन में कहती हो कि आहा! ''बच्चे का हमने कुछ नहीं किया।'' एवं लज्जा पाती हो। अहो! तुम्हारी इस उदारता की योग्यता अन्य किसमें है।।25।।

ज्ञान क्रिया भजन सम्पदकिञ्चनोऽहम्,
इच्छाधिकारशकनानुशयान भिज्ञः।
आगांसिदेवि! युवयोरपि दुःसहानि,
वधनामि मूर्ख चरितस्तव दुर्भरोऽस्मि।। 26।।

अर्थ :– हे देवि! पुरुषार्थ स्पृहा, शास्त्रदत्त अधिकार, कर्मानुष्ठान में सामर्थ्य, विहिता करण एवं अपराध का अनुताप इस समस्त विषय में ही मैं सम्पूर्ण अनभिज्ञ हूँ, अतएव ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्ति योग, प्रपत्ति इन समस्त ऐश्वर्य से मैं एकदम वञ्चित हूँ, अपराध का एकमात्र अपहारक रूप से तुम्हारी सर्व लोक में प्रसिद्धि है। तथापि तुम्हारे लिये भी दुःसह भगवदपचार, भागवतापचार एवं अन्यान्य असह्यापचार रूप नाना विध पापों का सर्वदा सञ्चय कर रहा हूँ – मैं मूर्ख हूँ, तुम्हारी क्षमा के अयोग्य हूँ।।26।।

इत्युक्ति कैतबशतेन विडम्वयामि,
तानम्व! सत्यवचसः पुरुषान् पुराणान् ।
यद्वानमें भुजवलं तव पाद पद्म,
लाभे त्वमेवशरणं विधितः कृतासि ।। 27।।

अर्थ :– हे मातः श्री रङ्गेश्वरि! पूर्वोक्तप्रकार से कपट नैच्यवचन सहस्रों के द्वारा मैं, लोक-प्रसिद्ध पूर्वाचार्यों का अनुकरण किया हूँ, जो किया हूँ वह केवल विडम्बना है। तुम्हारे चरणारविन्द की प्राप्ति के विषय में मेरे कोई साध्य सामर्थ्य नहीं है, अपनी निर्हेतुक कृपा के द्वारा आप ही हमारे उपाय हो।। 27।।

त्वामामनन्तिकवयः करुणामृताब्धे!
ज्ञान क्रिया भजनलभ्यमलभ्य मन्यैः।
एतेषु केन वरदोत्तर को सलस्थाः,
पूर्वं सदूर्वमभजन्तहिजन्तवस्त्वाम्।। 28।।

अर्थ :– हे करुणामय! पराशर मुनि, वेदव्यास प्रभृति ज्ञाता पुरुषगण कहते हैं कि कर्म योग, ज्ञान योग, एवं भक्ति योग के द्वारा ही तुम्हें पाया जाता है, एवं अन्य किसी दूसरे उपाय से नहीं पाया जाता है। हे दयाल! तुम्हारे रामावतार काल में, जितने अयोध्यावासी जीवगण, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतङ्गादि, यहाँ तक कि जितने स्थावर वृक्षलता, गुल्म, तृणादिपर्यन्त थे वे समस्त इन कर्म, ज्ञान, भक्ति के मध्य किस उपाय का अवलम्बन करके तुम्हें पाये थे, वोलो? अर्थात् वे केवल मात्र तुम्हारी निर्हेतुक कृपा के द्वारा ही तुम्हें पाये थे।।28।।

पूर्वां दिशं वज्र धरो, दक्षिणां पातुतेयमः।
वरुणः पश्चिमामाशां, धनेश स्तूत्तरांदिशम्।। 29।।

अर्थ :– श्री रामचन्द्र का राज्याभिषेक होगा वे उत्तम वसन भूषण से विभूषित होकर सीता देवी के सहित परमसुख से विराज करते हैं इसी समय सुमन्त्र सारथी आकरप्रणाम किये और बोले– प्रभो! महाराज दशरथ कैकेयी के घर में अवस्थान कर रहे हैं? आप को स्मरण किये हैं। श्रीरामचन्द्र पितृ सन्दर्शन में जा रहे हैं उस समय श्री सीता देवी उनके साथ द्वार पर्यन्त आकर, श्रेय कार्य में बहुत विघ्न होता जानकर उनके मङ्गल के लिए प्रार्थना करके बोलती हैं, हे प्रभो! पूर्व दिशा में वज्र धर इन्द्र आपकी रक्षा करें, दक्षिण दिशा में यम देव आपकी रक्षा करें, पश्चिम दिशा में वरुण देव आपकी रक्षा करें एवं उत्तर दिशा में धनेश कुवेर रक्षा करें।।29।।

सर्वदेश दिशा कालेष्वव्याहतपराक्रम ।
रामानुजार्य दिव्याज्ञावर्द्धतामभिवर्द्धताम् ।। 30।।

अर्थ :– सर्व देश में सर्व दिशा में सर्वकाल मे श्री रामानुज स्वामी की दिव्य आज्ञा समुच्चय बाधा विघ्न शून्य होकर वृद्धि लाभ करे, चारों तरफ वृद्धि लाभ करें।।30।।

रामानुजार्य दिव्याज्ञा प्रतिवासर मुज्वला ।
दिगन्त व्यापिनी भूयात् साहि लोकहितैषिणी ।। 31।।

अर्थ :– श्री रामानुज स्वामी की दिव्य आज्ञा समुच्चय जो क्रमशः उज्वल से उज्वलतर हो रही है, वही लोक परम हितकारी दिव्य आज्ञा दिग दिगन्त छा जाय।।31।।

श्रीमन् श्रीरङ्ग श्रियमनुपद्रवा मनुदिनं संवर्द्धय ।
श्रीमन् श्रीरङ्ग श्रियमनुपद्रवामनुदिनं संवर्द्धय ।। 32।।

अर्थ :– श्री लक्ष्मी जी के सहित श्री रङ्गनाथ भगवान की श्रीसमृद्धिनिर्विघ्न दिन प्रतिदिन सम्यक् रूप से उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त हो। लक्ष्मी के सहित श्री रङ्गनाथ भगवान् की श्री समृद्धि निर्विघ्नता पूर्वक दिन प्रति दिन उत्तरोत्तर सम्यक् रूप से वृद्धि प्राप्त हो।।32।।

नमः श्री शैलनाथाय कुन्तीनगर जन्मने ।
प्रसाद लब्ध परम प्राप्य कैङ्कर्यशालिने ।। 33।।

अर्थ :– कुन्तीनगर में उत्पन्न अपने गुरु की कृपा से परम प्राप्य श्रीमन्नारायण के कैङ्कर्य में निविष्ट चित्त श्री शैलनाथ स्वामी नाम धेय अपने गुरु को नमस्कार करता हूँ।।33।।

श्री शैलेश दयापात्रं, धीभेक्त्यादि गुणार्णवम् ।
यतीन्द्र प्रवणं वन्दे, रम्यजामातरं मुनिम् ।। 34।।

अर्थ :– श्री शैलनाथ स्वामी के दयापात्र अर्थात् सत् शिष्य भक्ति आदि गुणों के सागर स्वरूप यतीन्द्र (श्री रामानुज स्वामी) प्रिय भक्त रम्य जामातृ मुनि (वरवर मुनि) की वन्दना करता हूँ।।34।।

लक्ष्मीनाथ समारम्भां, नाथयामुन मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां, वन्दे गुरु परम्पराम् ।। 35।।

अर्थ :– श्रियः पति नारायण से आरम्भ होकर श्रीनाथ मुनि, उनके प्रपौत्र श्री यामुन मुनि को मध्य में रखकर हमारे परमाराध्य गुरु देव तक जो गुरु परम्परा प्रवाहित होती आ रही है उस परम्परागत आचार्य वर्ग की मैं वन्दना करता हूँ।।35।।

यो नित्यमच्युत पदाम्वुज युग्म रुक्म,
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद् गुरोर्भगवतोऽस्य दयैक सिन्धोः,
रामानुजस्य चरणौशरणं प्रपद्ये ।। 36।।

अर्थ :– जिसका चित्त सदा सर्वदा ही अच्युत श्री मन्नारायण के चरणारविन्द युगल में व्यामुग्ध रहता है, जो तद्व्यतिरिक्त समस्तवस्तु को तृण के तुल्य तुच्छ मानते हैं उस अपार करुणा सिन्धु हम लोगों के गुरुदेव श्रीरामानुज स्वामी के चरणाविन्द युगल की शरण लेता हूँ।।36।।

श्लोक – माता पिता युवतयस्तनया विभूतिः,
सर्व यदेवनियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्यनः कुलपतेर्वकुलाभिरामं
श्रीमत्तदङ्घि युगलं प्रणमामि मूर्घ्ना ।। 37।।

अर्थ :– हम लोगों की परम्परा सूत्र के आदि कुल गुरु श्री शठकोप स्वामी के परम सुन्दर, वकुल पुष्प शोभित जो चरणारविन्द युगल, जो हम लोगों के पक्ष में, मातृवत् प्रियकारी, पितृवत् हितकारी, परमप्रिया के सदृश अशेष आनन्द दायक और अभीष्टप्रद, एवं पुत्र, कन्या के सदृश स्नेह का प्रस्रवण स्वरूप और दर्शन मात्र आनन्द दायक, जो हम लोगों के सर्वैश्वर्यकल्प, एवं हम लोगों के वंशीय गण सर्वस्व है उस चरण कमल युगल में अत्यन्त भक्ति के सहित प्रणाम करता हूँ।।37।।

श्लोक :–भूतं सरश्च महदाह्वय भट्टनाथ श्री भक्तिसार कुलशेखर योगि वाहान्।
भक्ताङ्घिरेणु परकाल यतीन्द्र मिश्रान् श्रीमत्पराङ्कुशमुनि प्रणतोऽस्मि नित्यम्।। 38।।

अर्थ :– श्री भूत योगी, श्री सरो योगी, श्री महद् योगी, श्री भट्टनाथ स्वामी (श्री विष्णुचित्त स्वामी), श्री भक्तिसार स्वामी, श्री कुलशेखर स्वामी, श्री योगिवाहन स्वामी, श्री भक्तांघ्रिरेणु स्वामी, श्री परकाल स्वामी, श्री यतिराज, रामानुज स्वामी व मिश्र स्वामी (श्री वत्साङ्कवाकूरेश स्वामी एवं श्री पराङ्कुश स्वामी (श्रीशठकोप स्वामी) के चरण में मैं प्रतिनियत प्रणाम करता हूँ।।38।।

श्लोक :–
वाधूलवंश कलाशाम्बुधि पूर्ण चन्द्रम्,
श्री श्री निवास गुरुवर्यपदाब्ज भृङ्गम् ।
श्री वास सूरि तनयं विनयोज्ज्वलन्तम्,
श्री रङ्गदेशिकमहं शरणं प्रपद्ये ।। 39।।

अर्थ :– वाधूलवंश रूप क्षीर समुद्र से उत्थित पूर्णचन्द्र स्वरूप, अर्थात् जिसवाधूल वंश में अनेक विशिष्ट नारायण परायण महाभागवतगण जन्म ग्रहण किये हैं उस महोच्चवंश के भूषण स्वरूप, श्री निवास नामक देशिक श्रेष्ठ पाद पद्म के चञ्चरीक, महाज्ञानी श्री वास के जो पुत्र, महापण्डित होते हुए भी जो सर्वदा विनय गुण की उज्ज्वलता से उद्भासित रहते, परम गुरु श्री रङ्ग देशिक स्वामी की मैं शरण लिया।। 39।।

''संध्या आरती के अन्त में''

सन्ध्या आरती का समस्त कृत्य समाप्त होने के बाद सब आश्रमवासी श्री स्वामी जी महाराज के कक्ष में जाकर एक एक करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणिपात किये, वे भी प्रत्येक को आशीर्वाद देकर कुशल प्रश्न करते। सबके शेष मैं भी भक्तिप्लुत हृदय से साष्टाङ्ग किया, एवं उनका आशीर्वाद लाभ किया। यह प्रथा मुझको बहुत सुन्दर लगी। सुना कि यह प्रथा पूर्वाचारियों की आचरित प्राचीन है। साष्टाङ्ग प्रणाम करने के बाद सभी आश्रमवासी अपने अपने आसन पर चले गये, केवल दो तीन जन आश्रम के विशेष कैङ्कर्य के अधिकारी रह गये। श्री स्वामी जी महाराज किसी को कोई विशेष कैङ्कर्य करने का निर्देश दिये थे वे उस कैङ्कर्य का फलाफल निवेदन करने के लिए अपेक्षा कर रहे थे, श्री स्वामी जी की अनुमति से उसे निवेदन करके चले गये। उस समय भी और दो जन रह गये आश्रम के अधिकारी जी और कुठारी जी। दूसरे दिन मध्याह्न में श्री विजय राघव जी महाराज के विशेष भोग के लिए एकजन भक्त का आग्रह हुआ था एवं इसी उद्देश्य से श्री स्वामी जी महाराज के पास अनुमति लेकर कुछ रुपया भी जमा दिये थे। इस विशेष भोग की व्यवस्था के लिए अधिकारी जी और कुठारी, जी अपेक्षा कर रहे थे। अधिकारी जी श्री स्वामी जी से बोले भक्त की इच्छा है कि पूड़ी एवं मोहन भोग का विशेष भोग लगे। यह सुनकर वे जिज्ञासा किये सब मिलाकर कितने मूर्ति प्रसाद पायेंगे अधिकारी जी बोले–25 मूर्ति। उसी समय श्री स्वामी जी महाराज हिसाब करके बतला दिये कितना आँटा, कितनी सूजी, चीनी, कितना घी तेल एवं मसाला लगेगा। किस प्रकार से रसोई करने पर सुस्वादु होगा वह भी भली भाँति बतला दिये। साथ ही साथ कुठारी जी से बोले कि यह सब अमनियाँ जो जो कुठार में मौजूद नहीं है वह सब कल सुबह ही खरीद कर लाना होगा। मैं देख और सुनकर आश्चर्य हो गया। सोचने लगा कि जो रात्रि दिन भगवच्चिन्ता में मग्न रहते हैं वे महापुरुष भोज्य द्रव्य एवं रन्धन के सम्बन्ध में इतना हिसाब जाने कैसे? साथ ही साथ यह भी उपलब्धि किया कि ठाकुर जी का सर्वाङ्ग सुन्दर कैङ्कर्य करने की इच्छा रहने पर तत्संश्लिष्ट समस्त विषय पुंखानुपुंख रूप से सीख लेना चाहिये।

उस समय रात्रि साढ़े आठ बजा होगा। सब चले गये। श्री स्वामी जी महाराज अपने आसन पर बैठे हुए हैं। मैं सामने कम्बल पर बैठा हुआ हूँ। उस समय वे हमारे साथ बात करना आरम्भ किये। आश्रम में रहने और प्रसाद पाने के विषय में कोई कष्ट हुआ है कि नहीं जिज्ञासा किये। मैं संयम के साथ यथा सम्भव उत्तर दिया। तदनन्तर वे हमें उपदिष्ट मन्त्र के उच्चारण करने का निर्देश दिये। मैं यथा सम्भव आदेश पालन किया

उच्चारण में जो सब भूल त्रुटि थी उसे संशोधन कर दिये। मैं पुनः संशोधन भाव में उच्चारण किया वे सन्तुष्ट हुए। तदनन्तर वे मन्त्र के अर्थ की जिज्ञासा किये। मैं संकोच के सहित यथा शक्ति उनके निकट निवेदन किया। वे समझ गये मन्त्रार्थ हमें ठीक ठीक हृदयङ्गम नहीं हुआ है, तब वे मन्त्र का तात्पर्य अर्थ संक्षेप में समझा दिये। थोड़ी देर के बाद हमसे बोले "गत काल ट्रेन में तुम्हें नींद नहीं हुई है, पथ के कष्ट से क्लान्त हो गये हो प्रसाद पाकर सो जाओ, कल अति प्रातः हमारे पास आना।" मैं बाध्य होकर उनका आदेश पालन किया उनके पास विदा लेकर प्रसाद पाकर सो गया।।

"प्रातः कालीन उपदेश मन्त्रार्थ का शिक्षा लाभ"

श्री स्वामी जी महाराज रात्रि साढ़े दश से ग्यारह बजे के मध्य सो जाते एवं दो बजे शय्या त्याग करते थे वे रात्रि तीन बजे से हमारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। इधर मैं गाढ़ निद्रा से अभिभूत था। चार बज गया तो भी हमारी निद्रा नहीं टूटी यह देखकर वे किसी एक आश्रम के सेवक के द्वारा हमें बुलवाये। उसके मुख से श्री स्वामी जी महाराज की आह्वान वाणी सुनकर त्रस्त होकर जल्दी उठ गया। हाथ मुख धोकर शीघ्र ही उनके सन्निधि में उपस्थित हुआ उन्हें साष्टाङ्ग करके सम्मुखस्थ कम्बल पर बैठ गया। उठने में विलम्ब होने के कारण अपने को मैंने अपराधी समझ कर उनसे मार्ज्जना (सफाई देते हुए क्षमा) प्रार्थना किया । देखा कि स्वामी जी महाराज अपने आसन पर पद्मासन से बैठे हुए हैं, पास में एक क्षीण प्रकाश वाला किरासन तेल का लालटेन जल रहा है। उनके निर्देश से लालटेन की बत्ती तेज कर मैं उसका प्रकाश उज्वल किया। तदनन्तर वे मुझसे बोले– "तुम इतनी दूर इतना परिश्रम स्वीकार कर के अपने आचार्य के निकट आये हो। यहाँ कि तुम्हें इतनी देर तक सोना उचित है? तुम हमारे निकट पारमार्थिक विषय में कुछ शिक्षा लाभ करने आये हो।

इन समस्त शिक्षाओं के लिए ब्राह्म मुहुर्त ही अत्युत्तम काल है। शास्त्र निर्देश देता है कि – "ब्राह्म मुहूर्त में उठकर अपने परमार्थ की चिन्ता करनी चाहिए।

"ब्राह्मं महूर्तमुत्थाय, चिन्तयेदात्मनो हितम्"

मैं लज्जा से अधोवदन एवं निरुत्तर रहा। इस समय श्री स्वामी जी हमें मन्त्र को यथार्थ रूप से उच्चारण करना सिखाये एवं मन्त्रके प्रति पद का विश्लेषण करके हमें मन्त्र का अर्थ समझा दिये। एक कॉपी मँगाये, उसमें मन्त्रार्थ को लिखवाकर तब निश्चिन्त हुए। दो चार बार अभ्यास कराकर उस अर्थ को हमसे अच्छी प्रकार सुनकर तब सन्तुष्ट हुए। शेष में हमसे कहने लगे–"कि तुम इसे अच्छी तरह समझ रखना मन्त्रगत शब्दों का उच्चारण ही मन्त्र का शरीर है, एवं मन्त्रगत अर्थ मन्त्र का प्राण है। अतएव शब्द का प्रकृष्ट रूप से उच्चारण एवं अर्थ का स्फुरण दोनों ही समान भाव में प्रयोजनीय है। देह के सहित प्राण का मिलन जिस प्रकार जीवन की सत्ता के लिए अवश्य प्रयोजन होता है, उसी प्रकार मन्त्र को सजीव राखने में शब्द एवं अर्थ दोनों का मिलन ही एकान्त प्रयोजन है।"

इतनी देर के बाद ऊषा लोक का प्रकाश देखकर वे हमें प्रातः कृत्य समापन करने के वास्ते निर्देश दिये वे भी स्वतः शौच स्नानादि के लिए प्रस्तुत हुए। सदाचार्य के पास यही हमारा मन्त्र विषय के रहस्य विषय का प्रथम उपदेश लाभ हुआ। इसी को शास्त्र – "अज्ञात ज्ञापन" कहते हैं, यह अज्ञात ज्ञापन ही आचार्य का श्रेष्ठ कृत्य है। इस विलक्षण उपदेश के लाभ से मैं अपने को कृतकृत्य समझने लगा। अन्तर ही अन्तर अपने आचार्य के चरण में बार – बार साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

गुरुदत्त मन्त्र जो कितना महान है, इस मन्त्र के जप की क्या विधि है, मन्त्र किस प्रकार जप करना चाहिए इसकी विधि, मन्त्राभ्यास की प्रणाली, मन्त्र के यथार्थ अर्थ के विषय में अच्छी प्रकार का ज्ञान,जो कहाँ तक आवश्यक है, उस सम्बन्ध में पूर्वाचार्य आचरित दो उत्कृष्ट उदाहरण इस स्थल पर विवृत किया जा रहा है। प्रथम उदाहरण होता है,मन्त्र के उच्चारण की प्रणाली एवं मन्त्र का रूप दूसरा उदाहरण मन्त्रार्थ की महिमा विषयक।

''प्रथम – मन्त्र के उच्चारण की प्रणाली एवं मन्त्र का रूप''

श्री कूरेश जी श्री रामानुज स्वामी जी के एक प्रथम एवं प्रधान शिष्य थे। धन, ज्ञान एवं गुण में वे श्रेष्ठ थे, तथा गुरु भक्ति के आदर्श पुरुष थे। प्रौढ़ा वस्था में उन के प्रथम पुत्र हुआ। यह पुत्र श्री रामानुज स्वामी का वर पुत्र था। रामानुज स्वामी इसका नाम ''पराशर'' रखे। विष्णु पुराण प्रणेता श्री पराशर ऋषि के अनुकरण में नाम रखकर अपनी की हुई पूर्व प्रतिज्ञा का पालन किये। यह शिशु जिस प्रकार गुण में भी पराशर ऋषि के तुल्य हो जाये, उस विषय में भी प्रतिज्ञाबद्ध होकर श्री रामानुज स्वामी सचेष्ट हुए। उस समय वे उस शिशु के प्रति कृपा दृष्टि निक्षेप करते थे एवं श्री रङ्गनाथ भगवान् के निकट उसके उत्कर्ष के लिए प्रार्थना करते थे।

एक दिन शिशु पराशर को ले आने के लिए श्री रामानुज स्वामी अपने प्रिय एवं अन्तरङ्ग शिष्य गोविन्द को आदेश दिये।

''गोविन्द एवं पराशर दृष्टान्त''

गुरु भक्ति निष्ठ गोविन्द शिशु पराशर को उनके पितृ गृह से गोदी ले आकर श्री रामानुज स्वामी के सन्निधि में उपस्थित हुए। पहुँचते ही पराशर को देखकर श्री रामानुज स्वामी गोविन्द से जिज्ञासा करने लगे – तुम क्या समस्त पथ मन्त्र का उच्चारण करते करते आये हो? गोविन्द लज्जित होकर उत्तर दिये ''हाँ स्वामी जी''। फिर रामानुज स्वामी आनन्द के सहित उनसे कहने लगे– ''मैं शिशु पराशर के चारों तरफ मन्त्र का रूप देख रहा हूँ। गोविन्द मौन ही रहे। रामानुज स्वामी और फिर कहने लगे–गोविन्द! जब कि तुम्हारे मुख से उच्चारित मन्त्र इस शिशु के कर्ण गोचर हुआ है एवं तुम्हारे साधन के प्रभाव से यह मन्त्र जब कि रूप धारण पूर्वक प्रकट हो कर इस शिशु को चारो तकफ से घेर कर अवस्थित है, तब तुम कूरेश पुत्र शिशु पराशर को मन्त्र प्रदान करो, समाश्रित करो–1 यथा समय पर रामानुज स्वामी का आदेश प्रति पालित हुआ। यही बालक पराशर पीछे में सब गुणों से अलङ्कृत होकर वैष्णव समाज के अधिनायक रूप से वैष्णव धर्म के संरक्षण, प्रचार एवं प्रसार में श्रेष्ठ स्थान अधिकार किये थे।

हम लोग उपरोक्त तत्व से मन्त्र के विषय में दो तथ्यों का अवयव स्पष्ट देख पाते हैं।

1– मन्त्र का रूप

2–मन्त्र उच्चारण की विधि

1– मन्त्र का रूप –

मन्त्र का विशेष विशेष रूप है। जप सिद्ध महापुरुषों के द्वारा उच्चारण किये जाने पर मन्त्र अपना रूप धारण करके प्रकट होता है। मन्त्र सिद्ध पुरुष मन्त्र को इस रूप को देखने में समर्थ होते हैं।

2– मन्त्र उच्चारण की विधि :–

''मन्त्र यत्नेन गोपयेत''– इस विधि के अनुसार इस प्रकार मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए कि जिसमें

दूसरे किसी के कर्ण गोचर नहीं हो सके। और ''सततं स्फुरिताधरः'' यह विधि वाक्य भी देखा जाता है। दोनों विधियों के समन्वय में मन्त्र उच्चारण के समय में ओष्टों का स्फुरण जरूर होना चाहिए। उच्चारण इतना धीरे धीरे एवं निम्न स्वर में हो कि जिसमें समीप में अवस्थित कोई व्यक्ति सुन नहीं सके। शिशु पराशर गोविन्द के गोदी में थे इसी से उच्चारित मन्त्र उनके कर्णरन्ध्रगत हुआ था। उपरोक्त 'सततं' शब्द के द्वारा समझा जाता है कि मन्त्र यथा सम्भव निरन्तर उच्चारण होना चाहिए। गोविन्द के अनुष्ठान में भी यही प्रमाणित होता है।

2–मन्त्रार्थ की महिमा :–

कूरेश स्वामी के दो पुत्र, पराशर भट्टर एवं व्यास भट्टर थे। कूरेश उन दोनों को नियम पूर्वक शास्त्र की शिक्षा देते थे। पिता की शिक्षकता एवं तत्वावधान से दोनों पुत्र भी अल्पावस्था में ही ज्ञान एवं भक्ति धन से समृद्ध हो गये। एक समय अध्यापना के काल में मन्त्र एवं मन्त्रार्थ का प्रसङ्ग उठा। वे दोनों पुत्रों से कहने लगे – तुम लोग मन्त्रप्रद अपने आचार्य गोविन्दाचार्य के निकट जाकर शीघ्र ही उनसे मन्त्र एवं मन्त्रार्थ के विषय में अच्छी तरह ज्ञान लाभ कर लो। मन्त्र को अनुसन्धान अर्थ के सहित करने का विशेष प्रयोजन होता है। तुम लोग अभी उनके पास जाकर इस विषय में यथा विधि प्रार्थना करो।

''कूरेश–पराशर दृष्टान्त''

पिता के इस निर्देश को सुनकर वे दोनों गुरु की सन्निधि में जाने का उपक्रम करके अपने घर से बाहर निकले, फिर उसी समय कूरेश स्वामी उन लोगों को घर के भीतर बुला लाये, और फिर कहने लगे - देखो मन्त्र की महिमा और शक्ति असीम है। यह मन्त्र ही अपने अनुसन्धाता की रक्षा करता है। अर्थ के सहित इस मन्त्र का अनुसन्धान करना चाहिए। यह जीवन अति क्षणभङ्गुर है।, जीवन कब तक रहेगा कोई निश्चित नहीं है, कब इस जीवन का अबसान होगा इसको भी कोई कह नहीं सकता। तुम लोगों को अपने आचार्य के पास पहुँचने से पहले ही जीवन के अवसान हो जा सकता है। अतएव इसी मुहूर्त में हम ही इस मन्त्र और मन्त्रार्थ के विषय में तुम लोगों को अच्छी प्रकार से उपदेश देंगे। इतना कहकर कूरेश स्वामी उसी समय अपने दोनों पुत्रों को मन्त्र एवं मन्त्रार्थ के विषय में विस्तृत रूप से उपदेश देकर निश्चिन्त हुए, इससे दोनों पुत्र भी कृतकृत्य हो गये।

मन्त्रदाता पराशर और वेद व्यास जी गोविन्दाचार्य के मन्त्र शिष्य थे गुरु के पास जो मन्त्र का अर्थ सुनना चाहिए उसे कूरेश स्वामी के उपरोक्त आचरण से हम लोग जान सकते है। कूरेश स्वामी स्वयं परम ज्ञानी और पिता होने पर भी प्रथम स्वतः मन्त्रार्थ के उपदेश को अपने पुत्र द्वय को नही देना चाहे उन लोगों को उनके मन्त्रदाता गुरु के निकट भेजते थे। किसके निकट मन्त्र के अर्थ का श्रवण समुचित हैं इस विचार की अपेक्षा इसके अर्थ की प्राप्ति का मूल्य जो बहुत अधिक है वह भी कूरेश स्वामी के आचरण में परिस्फुट होता है। दीक्षा गुरु के अभाव में उपयुक्त शिक्षा गुरु के निकट भी मन्त्रार्थ श्रवण करना चाहिए । जीवन अतीव क्षण भङ्गुर है यह विचार कर काल का विलम्ब नहीं करके अतिशीघ्र ही मन्त्रार्थ के ज्ञान का अर्जन करना, जो कितना प्रयोजनीय है वह उक्त अनुष्ठान हम लोगों को शिक्षा दे रहा है। शौच – स्नान तिलक पूजा पाठादि समाप्त करके मैं श्री गुरुदेव के निकट आकर साष्टाङ्ग किया, श्री विजय राघव जी को साष्टाङ्ग करके फिर गुरुदेव की सन्निधि में आया श्री स्वामी जी महाराज आदेश किये–''कि अयोध्या का विशेष विशेष स्थान दर्शन कर आओ, अधिकारी जी से बोलो वे एक विद्यार्थी को संग में दे देंगे। वह तुम्हे करा देगा। मै आश्रम के अधिकारी

श्री गरुड़ध्वज स्वामी से इस बात को कहा, वे उसी समय आनन्द के सहित एक चतुर विद्यार्थी को हमारे साथ कर दिए। वह हमको विभिन्न– विभिन्न स्थान दर्शन कर लाया। एक एक्का करके श्री रामचन्द्र का जन्म स्थान, श्री जानकी कनकमण्डप, विभीषण कुण्ड, हनुमान कुण्ड जिस स्थान पर श्री स्वामी जी महाराज श्री वृन्दावन से अयोध्या आने पर ही सर्व प्रथम उठे थे हनुमान कुण्ड का वही मन्दिर, सरयू नदी का लक्ष्मण घाट, ऋणमोचन घाट, दक्षिणी मन्दिर, बड़ा स्थान, श्री राम मनोहर प्रसाद जी महन्त का स्थान आदि दर्शन करके आया। प्रायः तीन घण्टा के बाद आश्रम में लौटकर श्री स्वामी जी महाराज के निकट उपस्थित हुआ। सष्टाङ्ग करके जिस जिस स्थान को दर्शन करके आया हूँ वह सब श्री स्वामी जी से मैनें निवेदन किया। वे सन्तुष्ट हुए। और कहने लगे – ''प्रातः गुप्तार घाट में स्नान करने जाना, गुप्तार घाट यहाँ से प्रायः छं मील है। श्री रघुनाथ जी इसी ''गुप्तार घाट'' में अन्तर्हित होकर मानव लीला संबरण किये थे। इसी कारण यह घाट परम पवित्र स्थान है। तुम आश्रम के एक जन प्रवीण साधु को सङ्ग में लेकर एक एक्का अथवा टाङ्गा करके जाना।'' मैं उनका यह निर्देश अक्षरशः यथायथ पालन किया था। इस स्थल पर विशेषलक्ष्य करने का विषय यह है कि अयोध्या धाम के विभिन्न मन्दिर प्रभृति स्थान दर्शन के लिए हमें एक जन बालक विद्यार्थी को साथ में ले जाने के लिए आज्ञा किये किन्तु ''गुप्तार घाट'' दर्शन के लिए एक जन प्रवीण साधु को सङ्ग में लेने के लिए निर्देश दिये इस प्रकार के निर्देश का निश्चय ही एक विशेष तात्पर्य था।

''श्री गरुड़ध्वज स्वामी''

गृह त्यागी वैराग्यवान, साधु पुरुषगण को विरक्त पुरुष कहा जाता है। विरक्त पुरुषों के आश्रमों की परिचालना के लिए एक परिचालक मण्डली रहती है। इस मण्डली के नियामक होते हैं आश्रम के महन्त महाराज आचार्य। किन्तु आश्रम के दैनन्दिन कार्य की परिचालना प्रायः ही स्वयं नहीं करते। वे इस कार्य भार को एक जन ज्ञानी, गुणी, कर्मठ उपयुक्त वैष्णव के ऊपर अर्पण करते हैं। यह पुरुष अधिकारी नाम से कहे जाते हैं। प्रकृत पक्ष में ये अधिकारी ही आश्रम के समस्त दैनन्दिन कार्य का देख रेख करते हैं। विभिन्न विभागीय कार्य के परिचालकगण, पुजारी, रसोइयाँ, कोठारी, मालाकार प्रभृति सभी अधिकारी जी के अधीन में उन्हीं के निर्देशानुसार अपना अपना कैङ्कर्य भार निर्वाह करते हैं। श्री विजय राघव जी के आश्रम के अधिकारी जी का नाम श्री गरुडध्वज रामानुज दास था। अवस्था अन्दाज 22/23 वर्ष की थी। वे एक जन महा विरक्त वङ्ग देश के रहने वाले श्री वैष्णव थे। उनका जन्म स्थान 24 परगना जिला के अन्तर्गत वारा सात ग्राम में था। वे कायस्थ कुल जात थे। वे बिना विवाह किये ही 17/18 वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर उपयुक्त आचार्य के सन्धान में बाहर निकल पड़े। अनेक स्थानों में प्रायः दो वर्ष उपयुक्त आचार्य अनुसन्धान करते करते 1920 खृष्टाब्द के प्रथम में (हम लोगों के समाश्रित होने के 2/3 मास बाद ही) अयोध्या में आये श्री स्वामी जी का दर्शन लाभ कर उनके प्रति आकृष्ट हो गये। श्री स्वामी के गुणों से मुग्ध होकर उनके निकट समाश्रित होने की प्रार्थना किये। नवागत तरुण युवक के वैराग्य एवं धर्मानुराग उनका चाल चलन, भाव भङ्गी को लक्ष्य कर अल्पदिन के मध्य ही श्री स्वामी जी महाराज उनके प्रति कृपादृष्टि किये। शीघ्र ही उनको दीक्षा दान किये। उनका वैष्णव नाम श्री गरुड़ध्वज रामानुजदास हुआ। कई एक दिन के मध्य ही श्री स्वामी जी महाराज श्री गरुड़ध्वज जी का स्वरूप पहिचान लिए। उनका वैराग्य, धर्म प्रवणता, उनकी आचार निष्ठता एवं आलस्य रहित कर्म दक्षता देखकर गरुड़ध्वज जी के प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। गरुड़ ध्वज जी को आश्रम के अधिकारी के पद पर दो

तीन महीने के भीतर ही नियुक्त कर दिये। श्री गरुड़ध्वज जी भी अत्यन्त निष्ठा के सहित सुदक्ष रुप से अधिकारी पद का कार्य भार निर्वाह करना आरम्भ किये। इस के दो तीन मास के बाद ही मैं यही प्रथम श्री स्वामी जी महाराज के चरण प्रान्त में उपस्थित हुआ। इसके पहले हमारे साथ गरुडध्वज जी का साक्षात्कार हुआ नहीं। किन्तु आश्चर्य का विषय कि उनको देखते ही हमारे मन में ऐसा हुआ कि जैसे वे हमारे कितने परिचित हैं, कितने अपने हैं। उनका स्नेह उनका सद्व्यवहार पहले दिन से ही उनके साथ हमारा सम्बन्ध घनिष्ठ कर दिया। हम लोगों के आपस में प्रीति का भाव सञ्चारित होने लगा। उनका सङ्ग हमारे मन में बड़ा प्रीति कर होने लगा। इसके परवर्ती समय में मैं उनका बहुत ही सङ्ग किया हूँ। धर्म विषयक सम्प्रदायगत बहुत तत्व एवं तथ्य उनसे शिक्षा किया हूँ। वे अपने शारीरिक चिकित्सा आदि के लिए एक से अधिक बार कलिकाता हमारे घर पर अवस्थान किये हैं। हम दोनों भगवत कथा के आलाप में भगवत तत्त्व की आलोचना में घण्टों समय व्यतीत किये हैं।

जो अपरिचित व्यक्ति के आश्रम में आने पर सबसे पहले अधिकारी गरुडध्वज के ऊपर उसका लक्ष्य पड़ता। देखा जाता था कि सदाकर्म व्यस्त, नाति क्षीणकाय, मध्याकृति, गौर वर्ण ये पुरुष क्षिप्रगति आश्रम के नानाविध कैङ्कर्य में लिप्त हुए हैं। कभी अपने हाथ से कोई कार्य कर रहे हैं, अथवा किसी दूसरे को किसी कैङ्कर्य के लिए निर्देश दे रहे हैं। उनके सङ्ग आलाप आलोचना करने पर यह समझने में विलम्बन ही होता था कि वे एक जनतीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न, हृदयवान, वैराग्यवान, सुदक्ष परमार्थी पुरुष थे। वे अभी कई एक मास हुआ आश्रम में आये हैं इस थोड़े समय के भीतर ही स्वाचार्य श्री स्वामी जी महाराज के प्रिय, विश्वास भाजन, एवं निर्भर योग्य हो उठे। अन्यान्य आश्रमवासी गण के भी प्रिय एवं सन्मानार्ह हो गये हैं, एवं उन सबको भी अपना प्रिय बना लिये हैं। मैंने देखा कि अन्यान्य आश्रम में रहने वाले साधु भी किसी विषय में कोई समस्या उपस्थित होने पर उसके समाधान के लिए वे अधिकारी जी के पास परामर्श ग्रहण करने के लिए आते वे भी यथा साध्य उनकी सहायता करते । आश्रम के नाना विध कैङ्कर्य से जिस समय वे अवसर पाते, तभी एकाकी शास्त्राभ्यास करते, अथवा दूसरे के सहित शास्त्र की आलोचना करते। उनको देखते ही स्वत: मन में आनन्द उदय होता। उनके साथ वार्तालाप करने से ही मन में शान्ति आती। इस प्रकार आदर्श अच्छी प्रकार दैनन्दिन अनुष्ठान के द्वारा वे कई एक वर्ष आश्रम के बाद ज्ञान एवं अनुष्ठान में एक जन असाधारण व्युत्पन्न पुरुष हो गये। यहाँ तक कि वेदान्त शास्त्र में 'आचार्य परीक्षा' के विद्यार्थीगण भी उनके पास अध्ययन करने आते यह भी हमने प्रत्यक्ष देखा है। इस स्थल पर यह जानना जरूरी है कि ''शास्त्री'' परीक्षोत्तीर्ण पण्डित गण ही 'अचार्य' परीक्षा देने के अधिकारी होते हैं।

''गरुड़ध्वज तव अनुचर,
कि दिया गड़िले तूमि ।
ज्ञाने अनुष्ठाने से ये निरुपम,
ताहारि तुलना तूमि ।।''
(आचार्यप्रकाश)

इससे पहले श्री कमलनयन रामानुजदास का नाम उल्लेख किया गया है। न्यूनाधिक 6 मास के पहले हम लोगों के दीक्षा के समय आश्रम में उनका दर्शन नहीं मिला था। उस समय जिनका दर्शन नहीं मिला था और इस समय दर्शन पा रहा हूँ, उनमें से तीन जन विशिष्ट आश्रम वासी का नाम इससे पहले उल्लेख किया गया है। श्री भागवताचारी स्वामी, अधिकारी श्री गरुड़ध्वज रामानुजदास, श्री कमलनयन रामानुजदास ।

''श्रीकमलनयन रामानुजदास''

श्री भागवताचारी स्वामी एवं अधिकारी जी का विषय इससे पहले यत्किञ्चित विवृत हुआ है। इस समय श्री कमलनयन जी के कुछ इति वृत्ति का उल्लेख करने का प्रयोजन है। श्री कमलनयन जी के बालपन का नाम हम नहीं जानते। इनकी जन्मभूमि विहार प्रदेश के अन्तर्गत है। ये ब्राह्मण कुलोद्भव हैं। बाल्यावस्था से ही धर्मानुरागी हैं। प्रायः एकवर्षि समय पहले श्री भागवताचार्य स्वामी अपने श्वास रोग (दमा) की चिकित्सा के लिए विहार में गये थे। वहाँ उनके साथ श्री कमलनयन जी का साक्षात् हुआ। श्री भागवताचारी स्वामी के मध्य विद्वत्ता, ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य का अपरुप समन्वय देखकर श्री कमलनयन जी अभिभूत हो गये, और उनसे दीक्षित होने के लिए प्रार्थना किये। वे कहने लगे कि देखो हम तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकते। अपने गुरुदेव श्री स्वामी जी महाराज (श्री बलराम स्वामी जी) से हम प्रार्थना करेंगे जिससे वे तुम्हें समाश्रित करके तुम्हारा जीवन धन्य कर दें। हम जब अयोध्या जायेंगे उस समय तुम वहाँ आना।'' श्री कमलनयन जी उस समय से उनका साथ नहीं छोड़े। उन्हें अस्वस्थ देखकर उनके साथ में रह कर उनकी सेवा में निरत रहे। इन महापुरुष के सङ्गलाभ से एवं उनकी कृपा से श्री कमलनययन जी का वैराग्य तीव्र हो गया। ये अपने परिवार वर्ग और गृह की माया परित्याग कर विरक्त साधु जीवन ग्रहण करने का सङ्कल्प किये। श्री भगवताचारी स्वामी की सेवा में निरत रहकर उनके साथ अयोध्या श्री स्वामी जी महाराज के चरण प्रान्त में आकर उपस्थित हुए। उस समय इनकी अवस्था 16/17 वर्ष की होगी। श्री भगवताचारी स्वामी जी कमलनयन जी के धर्मानुराग एवं वैराग्य का विषय निवेदन करके इस मुमुक्षु बालक को श्री स्वामी जी महाराज से अपने चरण में आश्रय देने के लिए प्रार्थना किये। श्री स्वामी जी महाराज अपने प्रिय शिष्य के अनुरोध से प्रसन्नता पूर्वक श्री कमलनयन जी को पञ्च संकार से संस्कृत कर दीक्षा दिये। कमलनयन अपना गृह परित्याग करके आश्रम में वास करने लगे एवं श्री भगवताचारी स्वामी की सेवा में एकान्त भाव से निरत रहे। इस अवस्था में कमलनयन के सहित इस बार आश्रम में हमारा प्रथम साक्षात् हुआ। ये श्री भगवताचारी स्वामी के अत्यन्त प्रिय पात्र थे। जितने दिन तक श्री भगवताचारी स्वामी जीवित थे, उतने दिन तक उनकी सेवा में एकान्त भाव से ये अपने को विलीन कर दिये थे। कई एक वर्ष के बाद श्री भगवताचार्य स्वामी अपने अन्तिम काल में अपने सेवक इन कमलनयन जी के परम कल्याण की बात चिन्ता करके श्री स्वामी जी के निकट प्रार्थना किये थे, कि जिससे उनके परम पद (देहान्त) के बाद श्री कमलनयन जी को श्री स्वामी जी महाराज अपनी अन्तरङ्ग सेवा में नियुक्त कर लें। उनकी इस प्रार्थना को श्री स्वामी जी महाराज पूर्ण किये थे। बाद में उन्हें अपनी अन्तरङ्ग सेवा में नियुक्त कर लिए थे। श्री स्वामी जी महाराज की अवस्था उस समय 85/86 वर्ष थी। श्री स्वामी जी महाराज के प्रसाद पाने के लिए नित्य नियत दूध गरम करना, फल मूल प्रस्तुत करके, उसको भोग लगाकर उनको अर्पण करते। उनके पीने के लिए पानी आगे रख देते, उनका वस्त्र विधौत कर देते। इस प्रकार से उनकी सर्वप्रकार की अन्तरङ्ग सेवा में नियुक्त रहते। श्री स्वामी जी महाराज के परम पद के बाद श्री कमलनयन जी श्री स्वामी जी के प्रिय शिष्य बद्रीनाथ धाम वासी श्री रघुनाथ शास्त्री की सेवा में उनके परम पद के समय तक निरत थे। इस प्रकार से सिद्ध महापुरुषों की सेवा से धन्य होकर उन लोगों के आन्तरिक आशीर्वाद से अभिषिक्त होकर श्री कमलनयन जी एक जन उच्च स्तर के साधु रूप में परिणत हो गये। इस समय वे हम लोगों के श्री विजयराघव जी आश्रम के महन्त पद पर अधिष्ठित हैं।

''कमलनयन सेवार मूरति
किवासेवारपरिपाटी ।
सेवायडूविल सेवातूषिल
सेवाय लभिल गति ।।'' (आचार्य प्रकाश)

जो उत्तम भागवत–त्रय हम लोगों के आश्रम के साथ आश्रम की मर्यादा एवं प्रचार वृद्धि के सहित अत्यन्त घनिष्ठ भाव से संश्लिष्ट थे, उनका कुछ परिचय प्रासङ्गिक रुप में वर्णित हुआ। अब मौलिक आचार्य प्रकाश फिर से उत्थापित हो रहा है।

''श्री स्वामी जी समीप द्वितीय दिवस''

श्री स्वामी जी महाराज के निर्देश से ''गुप्तार घाट'' दर्शन करके महाराज की सन्निधि में आश्रम लौट आने में 11 बज गया। पहले हाथ पैर धोकर सुवस्त्र में श्री स्वामी जी की सन्निधि में जाकर साष्टाङ्ग कर आया श्री अधिकारी जी के साथ कुछ वार्तालाप किया। फिर इसके बाद मध्याह्न की आरती का दर्शन करने गया उसके बाद पहले दिन की भाँति पंक्ति में बैठकर प्रसाद पाया। तदनन्तर अपने कक्ष में कुछ देर तक विश्राम करने के बाद श्री भागवताचारी स्वामी के कक्ष में जाकर उन्हें साष्टाङ्ग किया। वे हमें मधुर बचन से आप्यायित किये। वे अस्वस्थ थे इस कारण ज्यादा देर तक उनसे आलाप नहीं किया। विनय पूर्वक उनसे अनुमति लेकर अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी के कक्ष में जाकर उन्हें साष्टाङ्ग किया, वे भी हमें यथा योग्य अभिवादन किये हमारा नाम, धाम, कर्म, संस्थान इत्यादि का संवाद जानकर सन्तोष प्रकाश किये। उनके स्नेह युक्त व्यवहार से मैं भी विशेष आनन्द का अनुभव किया। सद्‌गुरु का अनुष्ठान अवलोकन, सद्‌गुरु के आश्रय लाभ के पश्चात् उनके निकट विशेष भाव से उपदेश ग्रहण, गुरुदेव के अवसर की प्रतीक्षा करके उपयुक्त अवसर पर अपने ज्ञानार्जन के लिए, अपने सन्देह को दूर करने के लिए, प्रश्न करना, उनके उपदेश अनुगुण अनुष्ठान करना–सत् शिष्य के द्वारा इन समस्त विशेष,कृत्यों का विषय अधिकारी जी हमें संक्षेप में उपदेश धीरे-धीरे देने लगे। यह समस्त उपदेश हमें अति उपादेय मालूम हुआ। इस समय मैं इन समस्त कथाओं को सुनना एवं जानना चाहता था। इन समस्त कथाओं को बोलने के उपयुक्त अधिकारी पुरुष संग ही अनुसन्धान कर रहा था। श्री गुरुदेव एवं इष्टदेव हमारे मन की अभिलाषा के अनुसार पुरुष मिला दिये हैं ऐसा देखकर उनके प्रति कृतज्ञता से हमारा मन भर गया अपने आश्रम के अधिकारी जी की एक विशेषता को लक्ष्य किया। वे स्वयं वङ्गवासी होते हुए भी सब समय हमारे साथ हिन्दी भाषा में ही वाक्य बोल रहे थे। हमारे वाङ्गला भाषा में प्रश्न करने पर भी वे हिन्दी भाषा में उत्तर देते और हिन्दी में ही प्रश्न करते। उनके हाथ का लेख भी देखा हिन्दी अक्षर में,वाङ्गला अक्षर में नहीं। वे इतने अल्प समय के मध्य में अपनी वेश–भूषा चाल – चलन भावना–भाषा अपने गुरुदेव के आश्रम के साथ मिला दिये हैं, ऐसा देखकर विस्मित हो गया। घण्टाधिक काल तक उनके साथ धर्म विषयक वार्तालाप करने के बाद श्री स्वामी जी महाराज के नित्य कालक्षेप का समय उपस्थित हो गया देखकर वे उठ पड़े, हमें भी कालक्षेप में जाने के लिए बोले मैं जाकर देखा कि गत दिवस की भाँति ही व्यवस्था की हुई है, नारियल के रस्सी की सतरंजी आसन चौकी आदि बिछाई गई है महात्मागण आना आरम्भ कर दिये हैं। श्री स्वामी जी महाराज प्रथम मङ्गलाचरण करके कालक्षेप के आरम्भ में ही गत दिन के उपदिष्ट विषय का सारभूत वस्तु अति संक्षेप में उल्लेख करके उसके बाद उस दिन का कालक्षेप आरम्भ किये। उनके कालक्षेप

की शैली, तत्व वस्तु के ज्ञापन की प्रणाली रहस्य वस्तु के उद्घाटन की भंगिमा, रस वस्तु के परिवेशन का उल्लास हमें जैसे पूर्व दिन की अपेक्षा भी मधुर लगा। मालूम होता है कि प्रथम दिन होने के कारण गत दिन जो सब वस्तु नहीं समझ में आया था, दूसरे दिन गुरु की कृपा से उन समस्त विषयों का तात्पर्य आज अधिकतर ग्रहण करने में सम्भव हुआ । कालक्षेप के बाद श्री स्वामी जी महाराज के कक्ष में उनके समीप जाकर बैठ गया। गतकाल की भाँति साधु सन्तों के साथ उनका धर्मालाप श्रवण किया, सन्ध्या आरती दर्शन किया, स्तोत्र पाठ श्रवण किया, श्री ठाकुर जी का तीर्थ और प्रसाद ग्रहण किया, उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया, परिशेष में अन्यान्य सभी भक्तों के साथ श्री स्वामी जी महाराज के कक्ष में जाकर उनके चरण में साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। सभी चले गये, किन्तु मैं बैठा रहा। मन में ऐसा होने लगा कि जैसे श्री गुरुदेव की कृपा से जीवन का एक दिव्य आलोक लाभ कर लिया। जीवन यात्रा की एक नवीन उद्दीपना लाभ कर धन्य हो गया। रात्रि प्रायः 9 बजा। श्री स्वामी जी महाराज आदेश किये कि आज अधिक रात्रि नहीं करना, प्रसाद पाकर, जल्दी सो जाओ, रात्रि के शेष में तीन बजे हमारे पास आना मैं उसी समय श्री स्वामी जी महाराज का आदेश पालन किया। पास में एक रिस्टवाच है – एलार्म घड़ी नहीं है। हमारे सोने के घर में एक लालटेम है, एक दिया सलाई जो गाड़ करके रखा हूँ इस व्यवस्था से लालटेम जलाकर घड़ी देखना खूब ही कठिन। रात्रि 2|1/2–3 बजे किस तरह उठूँगा इसी चिन्ता से चित्तचञ्चल हो गया। अधिकारी श्री गरुडध्वज जी के पास इस समस्या की बात बोला। वे बोले कोई चिन्ता नहीं करना मैं ढाई बजे तुम्हें जगा दूँगा। यह आश्वास वचन पाकर भी मैं निश्चिन्त नहीं रह सका। उस रात्रि में हमें अच्छी निद्रा नहीं हुई, भय था कि श्री स्वामी जी के आदिष्ट समय पर उठने में कोई देरी न हो जाये। प्रायः सचेतन ही था। शेष रात्रि में श्री स्वामी जी महाराज के कण्ठ स्वर एवं हस्तपाद प्रक्षालन करने का शब्द सुना। विचार करने लगा कि श्री स्वामी जी महराज जब उठ गये हैं तो निश्चय अब दो बजा होगा इस समय अब और नहीं सोऊँगा उठकर आँख मुख में जल देकर लालटेन जला कर देखा तो दो बजकर पन्द्रह मिनट हो गया था। शेष रात्रि में श्री स्वामी जी महाराज के निकट शिक्षा लाभ के लिए धीरे – धीरे उनके कक्ष के बाहर में जाकर उपस्थित हुआ। अन्तरङ्ग सेवक श्री कमलनयन जी श्री स्वामी जी महाराज के कक्ष में ही शयन करते थे, वे हमें देख कर श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति लेकर हमें भीतर में बुला लिये। घर में प्रवेश कर मैं उन्हें साष्टाङ्ग किया, एक कम्बल बिछाकर उनके सामने बैठ गया। देखा कि घर में लालटेन जल रही है, श्री स्वामी जी महाराज अपने आसन पर बैठकर शरणागत पुरुषों के नित्य पठनीय श्लोक का पाठ करना आरम्भ किये हैं। (प्रति दिन इस समय गुरु परम्परा के श्लोकों को एवं भगवान के निकट शरणागति प्रार्थना के श्लोकों को श्री स्वामी जी नत्य पाठ करते थे) हमारे वहाँ पहुँचने पर जिस श्लोक का वे पाठ करते थे, पाठ के अन्त में वह श्लोक और उसका अर्थ हमें समझा देने लगे। अर्थ के सहित श्लोक को हमें लिखा दिये, एवं प्रत्यह उसे पाठ करने का और उसका अर्थ भी अनुभव करने का निर्देश दिये।

निम्नलिखित यह वह श्लोक है –

सत्सङ्गाद्भव निःस्पृहो गुरु मुखाच्छीशं प्रपद्यात्मवान्,
प्रारब्धं परिभुज्यकर्म सकलं प्रक्षीण कर्मान्तरः ।
न्यासादेव निरङ्कुशेश्वर दया निर्लून मायान्वयः,
हार्दानुग्रह मध्य लब्ध धमनी द्वाराद् वहिर्निर्गतः॥

मुक्तोऽर्चिर्दिन पूर्व पक्ष षडुदङ् मासाव्द वातांशुमद्,
ग्लौ विद्युद्वरुणेन्द्र धातृ महितः सीमान्त सिन्ध्वाप्लुतः।
सायुज्यं समवाप्य नन्दति समं तेनैव धन्यःपुमान् ॥

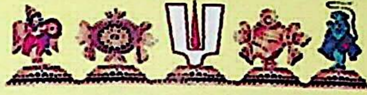
इसका अर्थ लिखा दिये –

''सत्सङ्गाद्भवनिः स्पृहः प्रथम सत्पुरुषों का सङ्ग होता है, उसके पीछे संसार में निस्पृह होता है, 'गुरुवात्'– अपना आचार्य का मुख से उपदेश श्रवण कर, 'श्रीशं प्रपद्य' – श्री भगवान् का चरणारविन्द शरणागति करता है, 'आत्मवान्' पीछे भगवत्कृपा से अपना स्वरूप का और परमेश्वर का स्वरूप का ज्ञान होता है, प्रारब्धंपरिभुज्य कर्मसकलम्' प्रारब्ध सकल कर्म (पुण्य पापों के) फल सुख दुःख भोग करके, 'पूर्वकर्मान्तरः' – प्रारब्ध से अन्य दूसरे पूर्व पूर्व पाप पुण्य तथा और उत्तर (भविष्य में भोगने वाले) पाप पुण्य सबक्षीण हो जाता, भोगने नहीं पड़ता है, 'न्यासाद् एवं'– श्री भगवान् का श्री चरणारविन्द में शरणागति करने (न्यास माने शरणागति), निरङ्कुश ईश्वर दया'' –' अङ्कुश विहीन परम स्वतन्त्र परमेश्वर की दया से ''लिर्लून मायान्वयः छिन्न माया का सम्बन्ध छेद कर, 'हार्दानुग्रह' – अन्तर्यामी भगवान् का अनुग्रह से, 'लब्ध मध्य धमनी' – मध्य धमनी सुषुम्ना नाड़ी को प्राप्त होकर, 'द्वाराद्वहिर्निर्गतः' – उस नाड़ी के द्वारा वाहिर होकर 'मुक्तः– वहिर्मुक्त पुरुष, –'अर्चिदिन पूर्व पक्ष षडुदङ् मासाब्दवाताशुं मद्'– अग्नि लोक में जाता है, पीछे दिनाभिमानी देवता लोक में जाता है, पीछे शुक्ल पक्षाभिमानी देवता लोक में जाता है, पीछे छ महीने उत्तरायणाभिमानी देवता लोक में जाता है, पीछे मासाभिमानी तथा संवत्सराभिमानी देवता लोक में जाता है, पीछे वायु लोक सूर्य लोक, –ग्लौ विद्युद्वरुणेन्द्र धातृ महितः पीछे चन्द्रलोक विद्युत लोक, वरुण लोक, इन्द्र लोक और घाता ब्रह्मा के लोक में जाता है, सीमान्त सिन्ध्वाप्लुतः' अग्नि लोक से लेकर ब्रह्म लोक पर्यन्त सर्वलोक अधिष्टातृ देवता उनमें से पूजित (महितः) होकर विरजानदी में स्नान करते है।'श्री वैकुण्ठम् उपेत्यनित्यं अजडं पीछे स्वयं वैकुण्ठ लोक को प्राप्त होता है, 'तस्मिन परब्रह्मणः सायुज्यं समवाप्य् श्री वैकुण्ठ लोक में परब्रह्म के सामुज्य को प्राप्त होकर नारायण की भाँति चतुर्भुज गदादि किरीट धारण करके 'नन्दति समं' – श्री वैकुण्ठ नाथ के साथ आनन्द उपभोग करता है, 'तेनैव धन्यः पुमान्'– वह मुक्त पुरुष धन्य होता है।'' श्लोक और इसका अर्थ लिखा देने के बाद वे उपदेश दिये, यह श्लोक वैष्णव मुमुक्षु मात्र को ही प्रतिदिन चिन्ता करना चाहिए, जिससे अन्तिम काल में यह मन में आ जाये। अनन्तर श्री स्वामी जी गत दिन मन्त्र का मन्त्रार्थ जो बोले थे उसको हमसे सुन लिये, जो कुछ भूल त्रुटि थी उसे संशोधन कर दिये। प्रत्यह इस मन्त्र का एवं संक्षिप्त मन्त्रार्थ का अनुसन्धान करने के लिए निर्देश दिये। इसके बाद पूजा विधि, आचार-विचार, भगवद् भागवद् आचार्य का कैङ्कर्य प्रभृति कई एक अवश्य प्रयोजनीय विषय में प्राथमिक शिक्षा दान किये। उपदेश का एक सारांश इस स्थल पर उद्धृत किया जाता है–

''आचारी के मन प्रसन्न करना सत् शिष्य का लक्षण है। धन तो वाञ्छित नहीं है, अर्थ सहित शरणागति मन्त्र का अनुष्ठान करें तो आचार्य को बहुत सन्तोष होगा। वैष्णवता शिथिल न होने पावे, सैंव फल लाभ...'' समस्त शिक्षाओं को देने के समय श्री भगवान् का भागवत् का एवं आचार्य के कैङ्कर्य की अवश्य कर्तव्यता... इस कैङ्कर्य का स्वरूप और सुफल के विषय में उपदेश देते थे। इस समय प्रासङ्गिक रूप से हम से बोले–

''स्वोपार्जित अर्थ का दशमांश धर्मार्थ में व्यय करने का उपदेश''

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्रीमद्गर्गान्ववायेऽवतरितमनघं युग्मवेदान्तविज्ञं,
ज्ञानानुष्ठानसिद्धात्कमलनयनसद्देशिकाल्लब्धदीक्षम् ।
शिष्यानुज्जीवयन्तं श्रुति निकरगतैर्भक्तिमार्गोपदेशैः,
वन्दे स्वाचार्यनिष्ठं गुरुवरमनिशं राघवाचार्यवर्यम् ॥

अपनी आय का दशमांश धर्मार्थ में व्यय करना चाहिए। यहीं शास्त्र का विधान है, एवं उत्तम भागवत् गण इस विधान को प्रति पालन कर चलते हैं और अपनी आय का दशमांश धर्मार्थ में व्यय किया करते हैं। तुम्हें भी अपनी आय का दशमांश प्रतिमास धर्मार्थ में व्यय करना चाहिए।

उनका यह निर्देश सुनकर मैं विनय के सहित उनसे निवेदन किया,

''स्वामी जी महाराज आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है। मैं इसे अवश्य पालन करूँगा, हर महीने में अपनी आय का दाशमांश आपके श्री चरण में भेज दिया करूँगा, आप जैसा उचित समझेंगे उसी तरह उसे व्यय करेंगे। इसके बाद मैं अत्यन्त सङ्कोच के सहित उनसे निवेदन किया– स्वामी जी महाराज! इस समय हमारी जो आय है उससे किसी प्रकार संसार व्यय निर्वाह करना पड़ता है, अच्छी तरह नहीं चलता, सङ्कोच से ही चलता है। इस कारण नियमित रूप से प्रतिमास यह दशमांश व्यय करना हमारे पक्ष में दुष्कर हो सकता है।''

हमारे विचार को सुनकर श्री स्वामी जी महाराज थोड़ा मृदुहास्य करके बोलने लगे। –''कष्ट कर होने से भी तुम इस विशिष्ट कैङ्कर्य को करना आरम्भ करो, देखो ना इससे क्या फल होता है, इसके फल से तुम्हें इस लोक और परलोक दोनों लोक में सुफल होगा। शास्त्र विधान, शिष्टाचार, एवं आचार्य निर्देश मानकर प्रसन्न मन से यह कैङ्कर्य आरम्भ करो, इसमें सुफल अवश्यम्भावी है।।'' उस समय मैं निवेदन किया– आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है।' वे प्रसन्न मन से मुझे आशीर्वाद किये, वे कहने लगे–

''कैङ्कर्य मूलक साधन की विशिष्टता''

देखो हम लोगों का भजन पूजन कैङ्कर्य प्रधान है, इस कैङ्कर्य की प्रार्थना एवं कैङ्कर्य का साधन हम लोगों के सम्प्रदाय का असाधारण वैलक्षण्य है। आड्वारगण, पूर्वाचार्यगण, सिद्ध भागवतगण सभी भगवद् भगवताचार्य के कैङ्कर्य में अपना जीवन उत्सर्ग कर गये हैं! यहाँ तक कि नित्य सूरिगण मुक्त पुरुषगण भी श्री वैकुण्ठ में अशेष प्रकार से सर्वदा ही भगवद् भागवत् कैंकर्य में निमग्न रहते हैं। कैंकर्य के इस विलक्षण स्वरूप को जानकर ही महामहा आचार्यगण इस प्रकार की मुक्त अवस्था को ''विलक्षण मोक्ष'' कहते हैं। इस मोक्ष को वे सब ''कैङ्कर्य लक्षण विलक्षण मोक्ष'' के नाम से अभिहित किये हैं। यह कैङ्कर्य कायिक, वाचिक, और मानसिक भेद से तीन प्रकार का होता है तन, मन, धन समस्त समर्पण करके यह कैङ्कर्य साधन करना होता है, यही भगवान् का प्रसन्नता विधायक, भागवतों का प्रसन्नता विधायक है और यही आचार्य का प्रसन्नता विधायक है। इसके लिए तुम्हारा अपने आय का दशमांश नियमित रूप से व्यय करना कर्तव्य है। तुम निशशङ्क चित्त से यह कैङ्कर्य करते चलो, किसी दिन संसार यात्रा में अर्थ की कमी नहीं होंगी, उत्तरोत्तर श्री वृद्धि होगी। ''फलदाता हरिः स्वयम्।''

मैं अपने प्रति, आचार्य के इस अभिमान से (स्नेह से), इस आशीर्वाद से हमारा हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। मै अवनत मस्तक होकर आनन्दोत्फुल्ल चित्त से उनका यह आदेश, उनका यह आशीर्वाद शिरोधार्य कर लिया। जिससे इनके श्रीचरण में उक्त आय का दशमांश नियमित रूप से भेज सकूँ इसके लिए उनकी कृपा प्रार्थना किया। सिद्ध महापुरुष के चरण में आश्रय लाभ के (दीक्षा) पश्चात् धर्मार्थ में आय के दशमांश व्यय का सङ्कल्प करना तथा व्यय करना हमारे जीवन का एक विशिष्ट सोपान हुआ। आज करुणामय श्री गुरुदेव की कृपा से हमारे जीवन यात्रा में इस मङ्गल सोपान का आरोहण आरम्भ हुआ। श्री गुरु देव हमारे धर्म जीवन में एक नूतन आलोक के सन्धान देने की कृपा किये। नवीन शिष्य के प्रति उनका मन्त्र, मन्त्रार्थ

का उपदेश कैङ्कर्य के विषय में उपदेश एवं उपदेश का वास्तव रूपदान – इसका नाम ही तो "अज्ञ ज्ञापन" है। यह अज्ञात – ज्ञापन रूप कार्य ही प्रकृत आधार्य का कृत्य है। श्री स्वामी जी महराज के द्वारा समस्त उपदेश समाप्त करने में प्रायः छ बज गया। आकाश में प्रकाश दिखार्द देने लगा। श्री स्वामी जी स्नानादि के लिए प्रस्तुत हुए। हमको भी प्रातः कृत्य समापन करने के लिए भेज दिये।

आज तीन दिन हुआ अयोध्या धाम में आया हूँ। कलिकाता का काजकर्म 3/4 दिन के लिए स्थगित रखकर आया हूँ। अल्पदिन हुआ चिकित्सा क्षेत्र में उतरा हूँ। इस समय सांसारिक क्षेत्र में उन्नति के लिए चेष्टा एवं प्रचेष्टा ही सबसे ज्यादा है। आगामी दिन कलिकाता लौट जाना होगा इसी कारण आज जितना सम्भव हो सके श्री स्वामी जी महाराज के निकट ही रहने की इच्छा है। पूजा पाठ के अन्त में कुछ बाल भोग प्रसाद पाकर उनके चरण प्रान्त में बैठा हुआ हूँ। कलिकाता लौट जाने के लिए उनकी अनुमति पाने के लिए प्रार्थना करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। उनका आदर यत्न, हमें शिक्षा देने के लिए उनका अत्यन्त आग्रह देखकर जाने की बात बोलने में सङ्कोच बोध कर रहा हूँ। तथापि कर्म क्षेत्र के तगादे से उन्हें जाने की बात हमको बोलना पड़ेगा। आज इस विषय में उनकी अनुमति पाने पर तभी कलिकाता यात्रा करने की व्यवस्था करूँगा।

मैं अधिकारी श्री गरुडध्वज जी को अपना अभिप्राय ज्ञापनकर रखा था। वे बोले कि श्री स्वामी जी महाराज दूर से आये हुए शिष्यों को शीघ्र छोड़ना नहीं चाहते, श्री स्वामी जी कहते हैं कि– शिष्यों को ज्ञान और अनुष्ठान के विषय में यदि कुछ शिक्षा नहीं दे सका, यदि उन लोगों के साधन भजन का उन लोगों के उज्जीवन का सहाय नहीं हो सका, उन लोगों के प्रति आचार्य कृत्य ही नहीं कर सका तो केवल नाम मात्र गुरु होने का क्या फल है''?

तथापि जबकि तुम्हें आगामी काल कलिकाता जाना बहुत जरूरी है, तब इस विषय में मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।'', मैं श्री स्वामी जी महराज की सन्निधि में बैठा हुआ हूँ। श्री अधिकारी जी किसी कार्य के उपलक्ष्य में उनके निकट आये, उनका परामर्श लिये। बाद में अवसर समझकर निवेदन किये– आगामी काल यतीन्द्र जी का कलिकाता जाना बहुत जरूरी है, इस विषय में आपकी अनुमति के लिए प्रार्थना करते हैं। इस बात को सुनकर वे कुछ देर तक चुप रहे। बाद में यह विषय हमसे जिज्ञासा किये। कलिकाता लौटने का हमारे मन में जितना आग्रह था उसे अच्छी तरह प्रकाश करने में सङ्कोच हुआ। तिस पर भी आगामी कलिकाता जाना बहुत जरूरी है उसे घुमा फिराकर निवेदन किया, और उनकी अनमति के लिए प्रार्थना किया/ वे इस प्रसङ्ग में हमारी चिकित्सा विद्या का मान एवं चिकित्सा कार्य की परिस्थिति के विषय में कुछ कुछ प्रश्न किये। हमारे कलिकाता लौटने का प्रयोजन एवं आग्रह उपलब्धि करके अगत्या वे अनुमति दिये। मैं आश्वस्त हुआ। उन्होंने अयोध्या त्याग करने का शुभ मुहूर्त की कथा जिज्ञासा किया।

उस समय इस शुभ मुहूर्त के निर्धारण करने के व्यापार में एक अद्भुत कौशल के द्वारा अज्ञ शिष्य को यथार्थ शिक्षा दान किये –

श्री स्वामी जी प्रश्न किये कि यात्रा के लिए शुभ मुर्हूत को विचार किये हो क्या?

मैनें कहा कि 'स्वामी जी नहीं'। वे निर्देश दिये – मुकुन्द ज्योतिषी के पास जाकर उनसे शुभ मुहूर्त निर्धारण कर लो'।

मैं 10 बजे मुकुन्द ज्योतिषी के घर पर गया। उस समय वे घर नहीं थे। पता लगाने से मालूम किया कि

वे अन्दाज दो बजे तक लौटेंगे। श्री गुरुदेव के निकट जाकर मैं इस बात को निवेदन किया। श्री स्वामी जी बोले कि तीन बजे फिर जाना। मैं फिर से दोपहर के बाद तीन बजे ज्योतिषी जी के घर पर गया, उस समय तक भी वे नहीं लौटे थे। यह सुनकर श्री स्वामी जी महाराज अपनी स्वभाव सुलभ हास्य में हँसकर कहने लगे – 'अरे भैया,गुरु के पास से अपने कर्म स्थान, अपने निवास स्थल पर जाते हो, गुरु का आदेश लेकर जाते हो, इसमें शुभ मुहूर्त देखने की क्या जरूरत है? जब सुविस्ता हो तुम जा सकते हो।' इतना कहकर श्री स्वामी अन्य प्रसङ्ग उत्थापन कर दिये। यात्रा के शुभ मुहूर्त निर्धारण के विषय में श्री गुरु देव की इस विलक्षण लीला का विषय पहले कुछ भी मैं उपलब्धि नहीं कर सका। प्रथम शुभ मुहूर्त को विचारने के लिए दो–दो बार भेजे ही क्यों? और फिर गुरु की सन्निधि में शुभ मुहूर्त देखने का कोई प्रयोजन नहीं ऐसा बोले ही क्यों? समझ नहीं पाया। अथच यह भी अनुभव किया कि विषय कोई प्रयोजन नहीं रहने पर श्री स्वामी कभी ऐसी लीला नहीं करते। इस विषय में जितना ही विचार करने लगा, उनकी कृपा से उतना ही प्रकृत तात्पर्य उद्घाटित होने लगा। अनुभूत तात्पर्य इस प्रकार का है – साधारण शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र निर्देश दे रहे हैं कि शुभ मुहूर्त में यात्रा करनी चाहिए, इससे सुफल होता है। इस अभिप्राय में व्यक्तिगत भाव से यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त को निश्चय करने में बहुत प्रकार का विचार निर्दिष्ट है। श्री गुरुदेव पहले बोले ''शुभ मुहूर्त देख लो'' ले किन शेष में बोले कि शुभ मुहूर्त देखने का कोई भी प्रयोजन नहीं है। उनके इस विरुद्ध निर्देश का निश्चय ही कोई गूढ़ तात्पर्य होगा ऐसी दृढ़ धारणा हुई। क्रमशः मैं उपलब्धि करने लगा कि धर्म दो प्रकार का है, एक साधारण धर्म और दूसरा विशेष धर्म। साधारण स्थल पर साधारण के लिए साधारण धर्म ही विधि है। विशेष स्थल पर विशेष कारण से विशेष धर्म ही समीचीन है। साधारण प्रयोजन में सभी के पक्ष में दूसरी जगह जाने आने के लिए शुभ मुहूर्त में यात्रा करने से मङ्गल होता है यही साधारण विधिहै। श्री गुरु के निकट जाने एवं आने लिए गुरु का निर्देश ही शुभ मुहूर्त है – यही विशेष धर्म अथवा विशेष विधि है। केवल मौखिक उपदेश के द्वारा ही शुभ मुहूर्त निर्धारण के विषय में इस तत्व की शिक्षा श्री स्वामी जी दे सकते थे, किन्तु यह मौखिक उपदेश हम लोगों के हृदय में स्थायी रूप में रेखापात नहीं कर पाता। इसी लिए ही दूसरी तरह से यथार्थ रूप से रूपायित करके इस प्रकार से इस शिक्षा को हम लोगों के हृदय में प्रवेशित करा दिये कि शुभ मुहूर्त निर्धारण में यह महा तत्व हम लोगों के हृदय में चिरकाल के लिए बद्धमूल हो गया। सदाचार्य के शिक्षा देने की यही तो विशिष्ट प्रणाली है। आज जितना सम्भव हो सका श्री स्वामी जी महाराज के चरण समीप में समय व्यतीत किया देखकर विस्मित हो गया कि भगवत चिन्ता, भगवत् चर्चा, भागवत सेवा के भिन्न एक क्षण भी अन्य चिन्ता अथवा अन्य किसी कार्य को श्री स्वामी जी नहीं किये। किसी समय कोई साधु सन्त किसी धर्म शङ्काको निरसन के लिए आये किसी समय आश्रम का कोई सेवक किसी विशेष कैङ्कर्य के विषय में उपदेश के लिए आया, किसी समय व कोई धर्म प्राण गृहस्थ किसी सांसारिक धर्म सङ्कट से परित्राण लाभ के लिए उस विषय को निवेदन कर रहा है श्री स्वामी जी इन समस्त विभिन्न प्रार्थियों की समस्या अद्भुत निपुणता के साथ समाधान कर देते रहे। और जब वे अकेले रहते हैं, एक मन से भगवान् की चिन्ता में लग जाते हैं। उस समय उनका स्फुटित अधर देखकर मालूम होता है कि सर्वदा ही मन्त्र जपकर रहे हैं।

दूसरे दिन सवेरे 11 बजे कलिकाता जाने का ट्रेन है। 10 बजे आश्रम से बाहर होना पड़ेगा। श्री विजय राघव जी महाराज का अन्न भोग लगने में उस समय भी विलम्ब रहता है। इस लिए श्री स्वामी जी महाराज

हमारे वास्ते कुछ दधि, शक्कर और फल भोग लगाकर हमें प्रसाद देने की व्यवस्था कर दिये। मैं प्राय: 9.30 बजे प्रसाद पाकर प्रस्तुत हो गया।

प्रस्थान के पहले श्री स्वामी जी महाराज को साष्टाङ्ग करने के लिए उनकी सन्निधि में जाकर उपस्थित हुआ। हमने श्री स्वामी जी को साष्टाङ्ग किया साथ ही साथ वे प्रसन्नचित्त से कहने लगे :–

मङ्गलं भगवान् विष्णु:, मङ्गलं गरुड़ध्वज:।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्ष: मङ्गलायतनो हरि:।।

इसके बाद स्नेह के सहित उपदेश देने लगे– 'तुम जो संसार सम्बन्धी कार्य करना, चिकित्सा क्षेत्र में जो कुछ कार्य करना: उपार्जन करना, सभी भगवत्कैङ्कर्य बुद्धि, (भगवान् की सेवा) से करते जाना। तुम्हारा मङ्गल होगा। बीच – बीच में हमको पत्र दिया करना।' इस प्रकार से निर्देश देकर हमको सन्तुष्ट चित्त से विदा दिये –

श्री स्वामी जी महाराज के सन्निधि से विदा लेने के समय उनकी श्री मुख नि:सृत दो विशेष वाणी को के सहित ह्रदय में धारण करके कलकत्ता लौटा। प्रथम है श्री स्वामी जी को साष्टाङ्ग करने के समय उनकी भगवान के लिए मङ्गलाशासन की उक्ति, 'मङ्गलं भगवान् विष्णु,.....।' द्वितीय है – संसार सम्बन्धी जितना सब कार्य है, और अर्थोपार्जन कार्य, सब ही भगत्कैङ्कर्य बुद्धि से करते जाना। ये दो गुरुवाक्य के मध्य उस समय किसी भी वाक्य का तात्पर्य मैं उपलब्धि नहीं कर सका था। सिद्ध महापुरुषों का ह्रदय बहुत गम्भीर होता है उसी प्रकार उनका आचरण एवं उनकी उक्ति, दोनों ही अतीव गम्भीर होती है। वे लोग अगर कृपा कर के न समझा दें तो समझने में नहीं आती। लगातार कई दिन तक यह दो विषय जानने के लिए हमारे ह्रदय में आलोड़न चलता रहा। कई एक जन गुरुभ्राता से जिज्ञासा किया, किसी किसी प्रवीण धर्मशील पुरुष से भी जिज्ञासा किया, किन्तु यथार्थ सदुत्तर नहीं पाया, जो उत्तर पाया भी उससे मन नहीं भरा। कई एक दिन के मध्य ही अयोध्या अधिकारी श्री गुरुड़ध्वज जी के निकट इन दो उक्तियों का मर्मार्थ जानने के लिए पत्र लिखकर भेजा। शीघ्र ही उनका उत्तर आ गया। उनका नाति दीर्घ उत्तर कुछ आलोक पात किया, तथापि उक्तिद्वय का यथार्थ मर्म मैं अच्छी तरह से उपलब्धि नहीं कर सका। तिस पर भी अधिकारी जी के उत्तर सूत्र को पकड़ कर चिन्ता करते करते एवं परवर्ती जीवन में श्री स्वामी जी महराज के विविध अनुष्ठान का अनुधावन करते करते क्रमश: इस दो विषय का मर्म जितना उद्घाटित हो सका है वह निम्नलिखित हो रहा है।

(1) साष्टाँङ्ग प्रणाम के समय श्री स्वामी जी के द्वारा भगवान का मङ्गला शासन –

श्री गुरुदेव को साष्टाङ्ग प्रणाम करने के समय, विशेष करके विदा के समय में वे अपने शिष्य को नाना प्रकार से आशीर्वाद करते हैं यह हम लोग साधारण भाव से समझते और देखते हैं। किन्तु श्री स्वामी जी महाराज वह सब कुछ नहीं करके केवल श्री भगवान् का मङ्गला शासन किये, बोले– ''भगवान् विष्णु का मङ्गल हो, पुण्डरी काक्ष का मङ्गल हो, गरुड़ध्वज भगवान् का मंगल हो, मङ्गलायतन हरि का मङ्गल हो।''उनका यह आचरण और उक्ति दुर्ज्ञेय होने पर भी इस में जो एक अति गम्भीर रहस्य है वह निश्चित है। श्री स्वामी जी महाराज से इस विषय में प्रश्न करने का किसी दिन साहस नहीं किया। श्री स्वामी जी महाराज के अन्यान्य अनुष्ठान के परिपेक्ष्य में? अयोध्या आश्रम के ज्ञानी प्रवीण साधुओं के उपदेश सुनने से एवं विशेष शास्त्र की आलोचना के द्वारा अधिकांशत: यह दुर्ज्ञेय तत्त्व किसी तरह बोधगम्य हो सका है ऐसा मन में होता है।

''जीव के द्वारा भगवान् का मङ्गला शासन''

विशेष शास्त्र कहता है –''भगवत्सम्बन्धोः ज्ञानोत्पत्ते: पूर्वलाभालाभौ स्वमात्रेभवत: अनन्तरं तद्विषये मङ्गला शासनं किलभवति।'' भगवान् के सङ्ग अपना सम्बन्ध ज्ञान साधक को जितने दिन तक नहीं होता उतने दिन तक उसको अपने लाभ और अलाभ की बात ही उसके मन में जागरूक रहती है। किन्तु जब यह सम्बन्ध ज्ञान उत्पन्न होकर ह्रदय में सम्यक् प्रतिष्ठित हो जाता है उस समय यह साधक परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में वह अपना सुख, दु:ख, लाभ, अलाभ विस्मरण होकर उसके प्रियतम वस्तु जो भगवान हैं उन्हीं के सुख दु:ख को अपना प्रकृत सुख दु:ख मान कर उपलब्धि करता है। उन्हीं के सुख दु:ख, उन्हीं के लाभालाभ के विषय में ही मग्न रहता है। जिससे उन्हें दु:ख न मिले जिससे उनका अमङ्गल न हो, जिससे उनका मङ्गल हो, इसी चिन्ता में ही इस स्तर के साधक का ह्रदय सदा भरपूर रहता है। भगवान् जो सर्वेश्वर, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं इस तत्व ज्ञान की बात भूल जाती है, तथा भगवान् के सुकोमल विग्रह एवं उनकी भक्तपराधीन अवस्था की बात ही प्रेमी भक्त के मन को विशेष भाव से अधिकार किये बैठी रहती है। यही प्रेमी भक्त की दशा होती है। भक्त जिस प्रकार भगवान् के प्राण स्वरूप होते हैं, उसी प्रकार भक्त की प्रेमदशा में भगवान भी भक्त के प्राण: स्वरूप हो जाते हैं। '' मम प्राणाहि पाण्डवा:'' – यही श्री भगवान् के श्री मुख की उक्ति है, और ''**कृष्ण प्राणाहि पाण्डवा:**'' भक्त गोष्ठी की उक्ति है।

'साधवो ह्रदयं मह्यं, साधूनां ह्रदयं त्वहम्।
मदन्यत् तेन जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि।।'

इस प्रेम दशा में प्रेमी भक्त की भावना विपरीत भाव में अब अवस्थान करती है, ''ज्ञान दशायां रक्ष्य रक्षक भाव:, स्वस्थाने तिष्ठति, प्रेम दशायां वैपरीत्येन तिष्ठति।। इस विपरीत भाव का यह अर्थ है कि भगवान् जो सर्वशक्तिमान्, सर्वरक्षक है, इस तत्व ज्ञान को अभिभूत करके उनके सुकोमल, लावण्य मय विग्रह के माधुर्य का प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा विद्ध प्रेमी भक्त उस समय इस विग्रह की रक्षा के निमित्त मङ्गल के लिए अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। 'तुम्हारा मङ्गल हो, सुकोमल विग्रह की रक्षा हो' ऐसा बारम्बार कहते हुए प्रेमी भक्त व्याकुल हो जाते हैं। इसका ही नाम 'मङ्गला शासन है, प्रेमी सिद्ध भक्तों की यही विलक्षण भावधारा है। उत्तर भारत में श्रीचैतन्य महाप्रभु प्रभृति,दक्षिण भारत में सभी आड्‌वार गण इस मंगला शासन में मुखर थे। आड्वार श्री विष्णु चित्त स्वामी इस मङ्गला शासन की प्रार्थना में सर्वाग्रणी थे। श्री भगवान के अपरूप सुकोमल लावण्यमय विग्रह का साक्षात् दर्शन पाकर वे कृत कृत्य हुए थे। इस अलभ्य लाभ के साथ ही साथ वे बोलते गये थे –''पल्लाण्डुं पल्लाण्डुं पल्लायिरत्ताण्डु, पल्लमोडि नूरायिरम्।'' अर्थात हे प्रभो! तुम्हारा मङ्गल हो, मङ्गल हो, तुम्हारा सहस्र मङ्गल हो, बहुत शत कोटि मङ्गल तुम्हारा हो। ऐसा कहकर वे श्री भगवान् के प्रति अङ्ग का मङ्गला शासन किये हैं। भक्त अभक्त सभी को इस मङ्गला शासन में अपने साथ योगदान देने के लिए कातरता पूर्वक आह्वान किये हैं। अपने इस वैशिष्ट्य पूर्ण मङ्गला शासन के कारण ही ''विष्णुचित्त आड्वार'' श्रेष्ठ आडवार तामिल नाम (पेरियलवार) के नाम से प्रख्यात हुए। इन सिद्ध प्रेमी भक्तों का निज सुख दु:ख, निज मङ्गल अमङ्गल कुछ भी नहीं, भगवान् के कुशल से ही उनका कुशल। इसी बात की हम लोग वंगीय कीर्तन की पदावली में श्री राधा

रानी के वाक्य में देख पाते हैं – ''हमारी दु:ख किछुना गनि। तोमारि कुशले कुशल मानि।।''

श्री स्वामी जी महाराज के पास विदा लेने के समय हम लोगों के साष्टाँङ्ग करने पर उनके मुख से ''मङ्गलं भगवान् विष्णुः'' प्रभृति मंगला शासन गर्भ वाणी का तात्पर्य भी उपरोक्त मङ्गला शासन रहस्य के अनुरूप है। इसके अलावा उनकी इस मङ्गला शासन वाणी में और भी एक तात्पर्य निहित था। उनका आन्तरिक यह अभिप्राय था कि मेरे शिष्य स्वाचार्य के अभिमत इस मङ्गला शासन वाणी को श्रवण कर कण्ठस्थ कर रखें। इस वाणी को अपने कण्ठ से उच्चारण करें, एवं इसका विषय मन ही मन चिन्ता करें। इसका उच्चारण इसकी चिन्ता उनके उज्जीवन का एक विशेष अवलम्ब होगा। शिष्य के मन में यह चिन्ता धारा प्रबल रहने पर गुरु प्रसन्न होंगे। गुरु की प्रसन्नता ही शिष्य के परम मंगल का उत्तम अवलम्बन है। गुरुदेव के श्री मुख नि:सृत उनकी अतीव प्रिय इन समस्त आशीर्वाणी का शिष्य कर्तृक इस प्रकार का ध्यान एका धार में श्री गुरुदेव के सन्तोष विधायक का एवं शिष्य के उज्जीवन का कारण है।

हमारे विदा कालीन श्री स्वामी जी महाराज का द्वितीय उपदेश होता हैं –

''सांसारिक कार्य में कैङ्कर्य्य बुद्धि –

सांसारिक जितने कार्य हैं, यथा अर्थोपार्जनादि यह सभी भगवत कैङ्कर्य्य बुद्धि से करते जाना। 'कैङ्कर्य' शब्द का आशय सांसारिक व्यक्तियों के निकट यथार्थ रूप से परिचित नहीं है। किङ्कर कहने पर हम लोग भृत्य समझते हैं। किङ्कर के कार्य को कैङ्कर्य कहा जाता है। भृत्य की वृत्ति होती है सेवा करना, अतएव कैङ्कर्य शब्द का अर्थ होता है सेवावृत्ति। साधारण सांसारिक मनुष्य की सेवा कैङ्कर्य शब्द का प्रकृत परिचायक नहीं होता। भगवान, भागवत्, एवं आचार्य्यगणों की सेवा ही कैङ्कर्य्य शब्द का यथार्थ तात्पर्य हैं। स्वभावतः ही सभी के मन में शङ्का उत्पन्न हो सकती है कि यदि भगवद् भागवत् आचार्य विषय में सेवा का नाम कैङ्कर्य्य होता है तो फिर सांसारिक जितने कार्य किये जाते हैं, उन्हें कैङ्कर्य के हिसाब से किस प्रकार किया जा सकता है? हमारे मन में भी यह प्रश्न उठा था। श्री गुरुदेव का निर्देश पालन करना ही होगा। उन्हीं की कृपा से क्रमशः इस शङ्का का समाधान होने लगा। सांसारिक कार्य भी भगवान के कैङ्कर्य बुद्धि से करते जाना गुरुदेव का यह निर्देश जो सम्भव हो सकता है उनकी कृपा से यह क्रमशः उपलब्धि होने लगी।

संसार में हम लोग उत्पन्न प्रीति के सहित पिता – माता स्वामी, स्त्री, पुत्र, कन्या, भ्राता, भगिनी आत्मीय स्वजन–वर्ग की अनेक प्रकार से सेवा करते रहते हैं। इस आकृत्रिम सेवा का मूल कारण होता है, उन लोगों के सहित हम लोगों की प्रीति का सम्बन्ध ज्ञान। सांसारिक क्षेत्र में उक्त समस्त सम्बन्ध होता है दैहिक सम्बन्ध। यद्यपि हम लोग कहते रहते हैं किये हमारे आत्मीय हैं, तथापि प्रकृत पक्ष में उनके सहित यह सम्बन्ध । आत्म सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध है, देह सम्बन्ध। हम संसारी जीव सभी प्रायशः देहात्माभिमानी है अर्थात् देह ही आत्मा है यह समझते हैं।

''सम्बन्ध ज्ञान– परमात्म सम्बन्ध व देहात्म सम्बन्ध''

इसीलिए दैहिक सम्बन्ध को आत्मीय सम्बन्ध ज्ञान से प्रीति करते हैं, प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करते हैं। यद्यपि हम लोग यह समझते हैं कि संसार अनित्य है, सांसारिक सम्बन्ध भी अनित्य है। तथापि मोहवश उन लोगों के भरण–पोषण के लिए, उनके सुख संविधान के लिए कायमनो वाक्य से यथा साध्य चेष्टा करते हैं

परिश्रम करते हैं। उन लोगों के दु:ख दारिद्रय व्याधि को अपना ही दु:ख दारिद्रय व्याधि मानते हैं। इस सांसारिक सेवा कार्य में इतनी चेष्टा इतना परिश्रम का मूल कारण है हम लोगों का यह सम्बन्ध ज्ञान दैहिक सम्बन्ध ज्ञान। यह सम्बन्ध ज्ञान, आत्मीयता ज्ञान किन्तु भ्रमात्मक है। हम सभी का देह आत्मा नहीं है, तथा अनित्य है और आत्म वस्तु देह से पृथक आत्मा नित्य है। इस देह और आत्मा का यह पृथक् तथा विविक्त ज्ञान होता है आध्यात्मिक जगत का मौलिक ज्ञान। इसीलिए गीता में अन्यान्य उपदेश के आगे प्रथम में ही भगवान श्री कृष्णचन्द्र द्वितीय अध्याय में देह और आत्मा के पार्थक्य विषय में ज्ञान का उपदेश दिये हैं। इस देह एवं आत्म विषयक बुद्धि क्रमशः जितनी ही स्थिर होती रहेगी उतना ही निज आत्मा के सहित भगवान् का सम्बन्ध। ज्ञान, अन्यान्य आत्मा के सहित निज आत्मा भगवान् का सम्बन्ध ज्ञान, परिस्फुटित होता रहेगा। उतना ही और यह भी उपलब्धि होगी कि समस्त आत्मा ही भगवद्वस्तु है। अपने अपने विभिन्न कर्मो के अनुसार विभिन्न भोग देह पाकर मनुष्य, पशु, पक्षी प्रभृति विभिन्न जीव रूप से विभिन्न स्थान काल पात्र में एवं उसका विभिन्न परिवेश में विभिन्न आत्मा को जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इसीलिए शास्त्र कहते हैं –

विद्या विनय सम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनिचैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः।। (गीता 05/18)

परमात्मा भगवान् ही समस्त, जीव के सृष्टि, स्थिति, लयके कर्ता हैं। वे ही सबके नियामक, सबके पिता, माता और धाता हैं। वे ही सबके आधार सबके बीज भूत हैं।

''पिता महस्यजगतो माता धाता पितामहः।।'' (गीता0)
''प्रभवः, प्रलयः स्थानं, निधानं बीजमव्ययम्।।'' (गीता0)

उपर्यालोक चित जीवात्म तत्त्व एवं परमात्म तत्त्व की बात अनुधावन करने से स्पष्ट ही समझ में आ सकता है कि समस्त जीवात्म समूह ऐक्य सम्बन्ध से सम्बद्ध हैं, एवं परमात्मा ही उन समस्त का आधार सभी का मूल बीज सभी के पिता माता एवं सर्व विध बन्धु हैं।

''नारायणत्व शब्द का तात्पर्य''

जीवात्मा और परमात्मा के उक्त सम्बन्ध के बोध कराने वाले शब्दों में 'नारायण' शब्द सर्वोत्तम है। सभी 'नारवस्तु के आश्रय स्थल नारायण हैं (नार + अयन) ! नारवस्तु समस्त जीवात्म वस्तु हैं। सुतरां नारायण होते हैं समस्त जीवात्माओं के आधार, पिता माता और रक्षक।''माता पिता धाता गतिर्नारायणः।'' यह सम्बन्ध। ज्ञान दृढ़ हो जाने पर, समस्त जीव ही नारायण के सृष्ट वस्तु हैं, यह धारणा सुदृढ़ हो जाती है तब 'वासुदेवः सर्वम्' यह ज्ञान उप जात होता है। उसी समय 'वसुधैव कुटुम्बकम् ज्ञान उत्पन्न होता है। नारायणत्व प्रयुक्त यह सम्बन्ध ज्ञान ही सब क्षेत्र में सांसारिक क्षेत्र में सब कार्य में कैङ्कर्य बुद्धि अर्थात् भगवान् की सेवा बुद्धि का कारण है। समस्त जीव ही भगवान् के द्वारा सृष्ट जीव हैं। भगवान् समस्त जीव के पितृमातृ स्थानीय सुतरां प्रत्येक जीव के दु:ख दारिद्रय व्याधि अभाव अभियोग श्री भगवान् का क्लेश कर है, यहाँ तक कि दु:ख क्लिष्ट जीव की अपेक्षा भी भगवान् इस दुख से जो अधिक अभिभूत हो जाते हैं उसे हम लोग शास्त्र वाक्य से समझ पाते हैं।

''व्यसनेबु मनुष्याणां, भृशं भवति दु:खितः।''

जीव और ईश्वर के उक्त सम्बन्ध विषय में ज्ञानवान् होकर एवं उक्त भावना से भावित होकर अपने अपने

अधिकार के अनुसार कोई पुरुष जीव के इस दुःख को दूर करने के लिए जब चेष्टा करते हैं, तो चेष्टा से भगवान् उस पुरुष के प्रति सन्तुष्ट होते हैं। इसीलिए ये समस्त चेष्टायें होने पर भी सांसारिक कार्य भगवत्कैङ्कर्य रूप में गिने जाते हैं। जिस प्रकार मैं नारायण का सृष्ट जीव हूँ, नारायण जिस प्रकार हमारे पिता माता धाता हैं, उसी तरह अन्यान्य समस्त जीव प्राणी भी नारायण के सृष्ट है, श्री नारायण समस्त जीव के पिता माता धाता हैं। अभ्यास के द्वारा यह नारायणत्व का सम्बन्ध जितना ही दृढ़ होता है, उतना ही सर्वजीव को अपना आत्मीय कहकर धारणा भी दृढ़ होती है। आत्मीयता सम्बन्ध ज्ञान से युक्त ज्ञानी पुरुष जब संसार में सब जीवों के उपकार करने के लिए प्रवृत्त होते हैं तभी उनका समस्त कार्य भगवान् के कैङ्कर्य बुद्धि से अनुष्ठित हुआ करता है। साधारण भाव से सब जीवों के सहित उक्त आत्मीयता सम्बन्ध के अतिरिक्त अपने अपने पिता माता स्वामी स्त्री पुत्र कन्या भ्राता भगिनी प्रभृति दैहिक सम्बन्धीगण के सहित हम लोग विशेष रुप से संश्लिष्ट हैं। श्री भगवान् के सङ्कल्प से ही हम लोगों का विशेष विशेष कर्म फल भोगने के लिए यह समस्त विशेष दैहिक सम्पर्क संघटित हुआ है।

भगवान् के इस परोक्ष गोपन कौशल का प्रत्यक्ष प्रमाण रूपी एक सत्य घटना का उल्लेख प्रसङ्गवश इस स्थल पर किया जाता है –

किसी संयोग से एकजन उच्च पदस्थ बन्धु के साथ मैं काशी धाम गया था। प्रायः 40 वर्ष आगे की बात है। उस समय वहाँ भगवान् दास नामक एक प्रवीण व्यक्ति के पास भृगु ऋषिः प्रणीत एक फलित ज्योतिष ग्रन्थ था। किसी कोष्ठी (कुण्डली) का चक्र पाने पर उस चक्र को मिलाकर वे अपना ग्रन्थ देख कर उसका फला फल बता सकते थे।

अतीत एवं वर्तमान काल का फला फल अद्भुत रुप से मिल भी जाता, भविष्यत् काल का फला फल बाद में यथा समय पर मिल जाता, ऐसा देखा गया है। हमारे उक्त बन्धु के एक जामाता उस समय बहुमूत्र एवं यक्ष्मारोग भोग रहे थे। वे अपने जामाता एवं कन्या तथा अपना यह तीन कुण्डली का चक्र भगवान दास जी को दिये। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरी बात उनसे नहीं कही गई। मैं भी अपने बन्धु के साथ उस समय वहाँ उपस्थित था। भगवान् दास "भृगुरचित" ग्रन्थ को देखकर एक एक करके तीनों चक्र का फला फल बता दिये। विश्लेषण करके देखा गया – कि जामाता की कुण्डली कह रही है कि पूर्व जन्म में एक विशिष्ट अपराध किये थे जिसके कारण (जो अपराध की बात उस भृगु संहिता में विचार लिखा था, इस स्थल पर उसका उल्लेख नहीं किया गया) उनको इस जन्म में बहुमूत्र एवं यक्ष्मा व्याधि हुई है। इसी व्याधि से उनकी मृत्यु होगी। पुनः उनके कन्या की कुण्डली के विचार में पाया गया कि पूर्व जन्म के एक विशिष्ट अपराध के कारण इस जन्म में अल्प वयस में यह विधवा होगी। फिर पीछें हमारे बन्धु की कुण्डली के विचार करने से मिला कि पूर्व जन्म के एक अपराध के कारण इस जन्म में उन्हें जामाता का अकाल वियोग रूप दुःख भोग करना पड़ेगा। अवश्य साथ ही साथ फला फल का विचार भी कुण्डली में लिखा था। भगवान दास जी जो चक्र दिया गया था वह किसका है अथवा जिसका है वे पुरुष किंवा स्त्री का है यह सब बात भगवान् दास जी से घुणाक्षर में भी नहीं बताई गई। उपरोक्त घटना से स्पष्ट ही प्रमाण हो जाता है कि संसार में हम लोग पति पत्नी, पुत्र – कन्या, पिता माता प्रभृति जो विभिन्न दैहिक सम्बन्ध से सम्बद्ध होते हैं, उन समस्त का कारण होता है, परस्पर एक ही प्रकार के कर्म को भोग करने के लिए। यह समस्त देह का सम्बनध भगवान् के सङ्कल्प से ही घटित होता है। किन्तु

जीव है उन सबको अपना – अपना यह कर्मफल भोग कराने के लिए ही भगवान् का यह अपरूप कौशल है। एक ही प्रकार के कर्म फल को भोग कराने के लिए वे विभिन्न व्यक्तियों को एक ही परिवेश में जन्मदान करते हैं।

''आत्मीय स्वजन सम्बन्ध में भगवत्कैङ्कर्य्यकावहिरङ्ग – स्वरूप''

भगवान के सङ्कल्प से हम लोगों को अपने अपने पूर्व कर्म के अनुसार कर्मफल भोग करने के लिए यह सब देह–सम्बन्धी मिले हैं। हम लोग पिता –माता, पति–पत्नी, पुत्र–कन्या, प्रभृति सम्बन्धी अपनी इच्छा से नहीं पाये हैं। श्री भगवान् की इच्छा से ही, उनके सङ्कल्प से ही किसी विशेष उद्देश्य को साधन के लिए एक ही परिवेश के मध्य इन समस्त सम्बन्धियों के सङ्ग हम लोग विशेष रूप से सम्बद्ध हुए हैं। साधारण जीव के साथ साधारण सम्पर्क के अतिरिक्त भगवत्सङ्कल्प से इस विशेष दैहिक सम्बन्ध हम लोगों को मिला अतः उन हर एक के प्रति हम लोगों के ऊपर जो विशेष दायित्व अर्पित हुआ है वह समस्त ही श्री भगवान की इच्छा से तथा उन्हीं के संकल्प से। पिता माता की सेवा सुश्रूषा, पति पत्नी का सुख स्वाच्छन्द्य विधान, पुत्र कन्या का भरण पोषण शिक्षा दान प्रभृति विशेष दायित्व भार श्री भगवान् हम लोगों के ऊपर अर्पित किये हुए हैं। इस भावना को हृदय में दृढ़ भाव से निवद्ध रखकर माया के मोह से अपनी भोग विलास के प्रति आकृष्ट न होकर श्री भगवान् के अभिप्राय को उपलब्धि करके इन समस्त आत्मीय स्वजनों के प्रति विशेष विशेष कर्तव्य पालन करते जाना उचित है। ऐसी बुद्धि से युक्त कर्म का अनुष्ठान करने से 'मैं कर रहा हूँ, अपने स्त्री पुत्र के लिए कर रहा हूँ''– इस प्रकार की भावना का कोई स्थान नहीं है। यह विशिष्ट दायित्व पालन करने में व्यय भार वहन के लिए अर्थोपार्जन करते जाना उचित हैं। जितने सांसारिक कार्य हैं उन सभी में इसी प्रकार की विलक्षण बुद्धि लेकर कर्तव्य का पालन करना ही होता है ईश्वर की कैङ्कर्य बुद्धि से समस्त सांसारिक कर्म का अनुष्ठान साधारणतः मन में हो सकता है कि सर्वकर्म में इस प्रकार बुद्धि लेकर कार्य करना असम्भव है। इस के उत्तर में कहा जा सकता है– कि यह अत्यन्त कठिन हो सकता है अवश्य, किन्तु अभ्यास के द्वारा धीरे–धीरे इस विषय में उत्तरोत्तर साफल्य मिलना निश्चय ही सम्भव होता है। अच्छी तरह समझना होगा संसार सागर से उत्तीर्ण होने के लिए कर्म फल को अतिक्रमण करना होगा यही कर्मफल अतिक्रमण करने के लिए सांसारिक समस्त कार्य को भगवत्कैङ्कर्य बुद्धि से करते जाना पड़ेगा। आयास साध्य होने पर भी अभ्यास के द्वारा क्रमशः इस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। आर्त्तभाव से प्रार्थना करने पर भगवत्कृपा आचार्य की कृपा एवं साधु–महात्माओं की कृपा से यह अवस्था लाभ करना अनायास साध्य हो जाता है। इस प्रकार से ही गीता में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र उपदेश दिये हैं :–

'स्वकर्मणातमभ्यर्च्य, सिद्धिं विन्दति मानवः ।'
'अभ्यासेनतु कौन्तेय! वैराग्येण चगृह्यते ।'
'अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि, मत्कर्म परमोभव ।

उक्त प्रकार भगवत्कैङ्कर्य बुद्धि से आत्मीय स्वजन के प्रति विशेष कर्त्तव्य का पालन एवं जन साधारण के सुख सुविधा के लिए क्रियमाण समस्त कर्मो का अनुष्ठान, यह सब साधारण कैङ्कर्य है। इसके ऊपर भगत्कैङ्कर्य का उत्तरोत्तर और भी दो विशेष स्तर हैं।

''वहिरङ्ग कैङ्कर्य''

ऊपर में अपने परिवार वर्ग एवं जन साधारण की उन्नति के लिए भगवत्कैङ्कर्य बुद्धि से जिन समस्त कर्त्तव्य

पालन की बातें आलोचित हुई है वे समस्त कृत्य एक श्रेणी का ''वहिरङ्गकैङ्कर्य है। इस से भी उच्चतर श्रेणी का कै... भी एक प्रकार का वहिरङ्गकैङ्कर्य है जिसके द्वारा ईश्वर का अधिकतर सन्तोष विधान किया जाता है। यह कैङ्क... होता है जिससे भगवद्विमुख जन भगवदभिमुख हों उस विषय में आनुकूल्य करना/कैङ्कर्यबुद्धि सम्पन्न व्यक्तियों के कर्तव्य है कि अभावग्रस्त और दुःस्थ सांसारिकजनों को अपेक्षित वस्तुदान के साथ साथ इन दान-पात्रों को विविध प्रकार उपदेश देना, दृष्टान्त प्रदर्शन प्रभृति के द्वारा उन लोगों की भगवद् विमुखता एवं असत् पथ छुड़ाकर वे जिससे भगवद् अभिमुख हों वैसी चेष्टा करना, धर्म पथ पर ले आने की चेष्टा करना। आत्मीय स्वजनों के विषय में भी वैसा ही करना। अपने पुत्र कन्याओं को भाई वहनों को भरन पोषण करके, विद्या शिक्षा देकर, उपयुक्त उपार्जन के लिए सक्षम कर देने से ही उन लोगों के प्रति यथेष्ट कर्तव्य नहीं हो जाता। उनका विवाहादि सम्पन्न कर देकर उन्हें संसार यात्रा में प्रावर्तित कर देने पर ही यथार्थ कर्तव्य पालन सम्पन्न नहीं होा जाता। उन लोगों का भगवदाभिमुख्य उत्पादन में सहायता करना ही कर्तव्य पालन होता है, यही प्रकृत भगवत्कैङ्कर्य है। जन्म ग्रहण, भरण पोषण, शिक्षा लाभ, अर्थोपार्जन, विवाह बन्धन, पुत्र कन्या लाभ एवं अन्त में मृत्यु– फिर से नव जन्म, एवं उसी प्रकार से अन्त में मृत्यु वरण ''पुनरपि जननम्, पुनरपि मरणम्' यही मनुष्य जन्म का उद्देश्य नहीं है। मनुष्य जन्म का प्रकृत उद्देश्य होता है बारम्बार इस जन्म मरण से उद्धार पाना। जो इस दुर्लभ मानव जन्म को पाकर पुनः पुनः जन्म मरण रूप इस संसार विमुक्त करने के लिए यत्नवान् नहीं होता वह आत्मघाती है –

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभम्,
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्ण धारम् ।
भयानुकूलेन नभस्वतेरितम्,
पुमान् भवाब्धिंनतरेत् सआत्महा ।। (भा० 11/12/17)

जो पिता माता पति स्वजनादि अपने अपने पुत्र कन्या स्त्री बन्धु बांधव को इस पुनः पुनः जन्म मृत्यु से उद्धार करने के लिए यत्नशील नहीं होते वह पिता ही नहीं है वह माता माता हीनहीं है, वह पति अथवा स्वजन पति ही नहीं है स्वजन ही नहीं है।

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्,
पिता न सस्यात् जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत्स्यान् न पतिश्च स स्यात्,
न मोचयेत् यः समुपेत मृत्युम् ।। (भा० 5/5/18)

अपना आत्मीय स्वजन एवं जन साधारण जिससे भगवदभिमुख होकर धर्म पथ का अवलम्बन करे एवं इस धर्म पथ पर अग्रसर होने के लिए यत्नशील हो, उस विषय में सहायता करने की बुद्धि ही होती है। प्रकृत कैङ्कर्य बुद्धि। इस कैङ्कर्य बुद्धि को लेकर कर्तव्य का पालन करना ही भगवान् के विशेष मुखोल्लास (प्रसन्नता) का हेतु है। इस उद्देश्य के साधन में अर्थोपार्जन, इस उद्देश्य को सफल, करने में अर्थ का व्यय ही होता है कैङ्कर्य बुद्धि से अर्थोपार्जन एवं कैङ्कर्य बुद्धि से अर्थ व्यय।

''अन्तरङ्ग कैङ्कर्य''

उक्त दोनों श्रेणियों के कैङ्कर्य की अपेक्षा प्रकृष्टकैङ्कर्य होता है भगवान् का, गुरुदेव का एवं साधुओं का साक्षात् भाव से सेवा वा कैङ्कर्य भगवद्भागवत् आचार्य का कैङ्कर्य। इसको ही अन्तरङ्ग कैङ्कर्य कहते हैं। अर्थात्

विग्रह स्थापन, सुदृढ़ मन्दिर निर्माण, श्री विग्रह की नित्य सेवा, पूजा भोग रागादि की व्यवस्था, धर्मग्रन्थ का अध्ययन, अध्यापन, कीर्तन स्तुति नमस्कृति आदि होता है भगवत्कैङ्कर्य/आचार्य एवं भागवतों का प्रियकार्य करना, उनके साधन भजन में आनुकृत्य उनके देह रक्षा का प्रयत्न करना, उन लोगों का निर्देश पालन, करना आदि होता है आचार्य कैङ्कर्य, भगवत कैङ्कर्य इस भगवत् भागवत आचार्य कैङ्कर्य को अन्तरङ्ग कैंकर्य कहते हैं। तन मन और धन को देकर यह कैङ्कर्य करना चाहिये। यह अन्तरङ्ग कैङ्कर्य ही भगवान् की विशेष प्रसन्न्ता का विधायक होता है।

''अर्थोपार्जन का दशमांश धर्मार्थ में व्यय''

श्री स्वामी जी हमको उपार्जित अर्थ का दशमांश धर्मार्थ में व्यय करने का जो निर्देश दिये हैं वह भी इस अन्तरङ्ग कैङ्कर्य का एक प्रकृष्ट अङ्गविशेष है। इस प्रकार से अर्थ का व्यय परम मङ्गलप्रद होता है। सांसारिक व्यक्ति एकान्त भाव से भगवद् भागवत आचार्य का कैङ्कर्य करने के उपयुक्त नहीं। इच्छा रहने पर भी उन लोगों का इस प्रकार से कैङ्कर्य करने का सुयोग सुविधा नहीं मिलता। एवं परिवेश नहीं मिलता। वे अपने अपने मात्र सामर्थ्य के अनुसार अर्थ का उपार्जन करते रहते हैं। भगवद् भागवत, आचार्य की सेवा के आनुकूल्य में कुछ कुछ अर्थव्यय उनके पक्ष में सुलभ है। इस प्रकार से अर्थ व्यय करने पर हरि गुरु एवं साधु की प्रसन्नता लाभ होती है। इससे उन लोगों की कृपा से परम मंगल लाभ होता है। इस भाव से अर्थ व्यय संसारासक्त अर्थ लोलुप हम लोगों का अर्थ के प्रति मोह धीरे –धीरे क्षीण कर देता है। परमार्थ में इस अर्थ की व्यय लिप्सा धीरे – धीरे अभिवृद्ध कर देती है। इसका परिणाम परम मङ्गलजनक होता है, तन, मन धन सर्वस्व देकर स्वतः स्फूर्त भाव से भगवद्–भागवत् आचार्य का विविध कैङ्कर्य साधन में साफल्य लाभ इसका परिणाम है। अयोध्या से कलिकाता लौटने के समय परमाराध्य श्री स्वामी जी महाराज हमें केवल दो उपदेश दिये थे। प्रथम– समस्त सांसारिक कार्य भगवत्कैङ्कर्य बुद्धि से करते जाना, द्वितीय– अपने उपार्जन का दशमांश धर्मार्थ में व्यय करना। इस विषय में उपरोक्त विस्तृत आलोचना मनन करने से स्पष्ट ही समझने में आता है कि इस दो अल्पाक्षरी निर्देश के पीछे क्या विराट तत्त्व निहित है। वह केवल सुनने और मनन करने के लिए ही नहीं है, यह अनुष्ठानात्मक उपदेश है। धर्म जीवन की प्रथमावस्था से ही इन दो अनुष्ठानों में अवतीर्ण होने पर किस प्रकार से धर्म पथ आलोकित होता है, किस तरह से चित्त वृत्ति निर्मल हो जाती है, वह उक्त आलोचना से मालूम हो जाता है। धर्म पथ पर अग्रगति के लिए, धर्मानुष्ठान में आग्रह की वृद्धि के लिए यह निर्देश मौलिक निर्देश है। यह आत्मोज्जीवन का वीज स्वरूप है। सदाचार्य इस बीज को अपनी शक्ति से पुष्ट करके शिष्य के हृदय में वपन कर देते हैं, एवं अपनी करुणावारि से सिञ्चन करके धीरे–धीरे इस बीज को फल फूल से शोभित एक वृक्ष के रूप में परिणत कर देते हैं। अन्त में यह वृक्ष शिष्य को क्रमशः विशेष धर्म– विषयक ज्ञान एवं विशेष अनुष्ठान में परिपूर्ण कर देता है। अन्त में निज अभीष्ट वस्तु इष्ट देव की प्राप्ति के द्वारा कृतकत्य कर देता हैं। हमारे धर्म जीवन की प्रथमावस्था में ही श्री स्वामी जी महाराज का यह दो उपदेश जो कितना महामूल्यवान् हुआ था, उसे प्रायः 40 वर्ष के पश्चात् इस समय अनेक प्रकार से उपलब्धि आता। उनके कहे हुए दो निर्देश रूपी मौलिक बीज जो किस प्रकार से अङ्कुरित हो करके किस रूप से युगल – पल्लव धारण किया। क्रमशः पूर्णाङ्ग वृक्ष रूप में परिणत होना सम्भव हो सका, इस विषय में इस सुदीर्घ वत्सर काल की अभिज्ञता से एक सुस्पष्ट दिग्दर्शन हमारे निकट प्रतिभात हुआ। हम सभी जानते हैं, एवं कहते हैं कि सदाचार्य की कृपा ही शिष्य के

उज्जीवन का कारण होती है। किन्तु उनकी कृपा वारि एक विशिष्ट प्रणाली के द्वारा प्रवाहित होती है। इस विशिष्ट प्रणाली का परिचय सत् शिष्य उपलब्धि कर सकते हैं – प्रथमावधि गुरु के निर्देश को पालन करने में एवं उसके द्वारा अपना मन धीरे – धीरे परिवर्तन होने से इस समस्त निर्देश को पालन करने के पथ में बहुत विघ्न बाधाएँ उत्पन्न जरूर हो सकती हैं, किन्तु गुरुदेव की कृपा से वे किस तरह दूर हो जाती है, किस तरह शिष्य के हृदय में वैराग्य उदय हो जाता है, किस प्रकार से भगवद् भागवत् एवं आचार्य के विषय में विशिष्ट ज्ञान का उद्भव हो जाता है, एवं इस ज्ञानानुगुण अनुष्ठान में प्रवृत्ति हो जाती है, किस तरह से सदाचार्य चरणाश्रित शिष्य के मध्य में यह ज्ञान वैराग्य एवं अनुष्ठान क्रमशः समृद्धि लाभ करता है उसे लेखनी के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। सदाचार्य की कृपा प्रवाह से उज्जीवनशील शिष्य के हृदय में यह समस्त सात्त्विक व्यापार अनुभवगम्य और उपलब्धि सिद्ध हो जाता है।

'सद्गुरु की कृपा का फल'

अयोध्या से कलिकाता लौट आया। फिर से मन लगा कर चिकित्सा व्यवसाय करने लगा। किन्तु सिद्ध महा पुरुष के सान्निध्य का गुण एवं उनके आशीर्वाद का फल अनुभव करने लगा। जीवन यात्रा का मार्ग जीवन की चिन्ता धारा कुछ भिन्न गति का अनुसरण करने लगी है यह समझने में आया। विदा के समय श्री स्वामी जी महाराज जो दो निर्देश किये हैं, जिससे उसे भूल नहीं जाऊँ उसको प्रतिपालन करने की जिससे दृढ़ बुद्धि आये, एवं शक्ति लाभ करूँ उसके लिए श्री गुरु गोविन्द के चरण में प्रार्थना करने लगा। सांसारिक क्षेत्र में उपयुक्त अर्थ के संकोच से असुविधा रहने पर भी नियम पूर्वक दशमांश अयोध्या भेजने लगा। कई एक महीने के मध्य में यह असुविधा घटने लगी। श्री गुरुदेव के निर्देश पालन की सार्थकता एवं उनके आशीर्वाद का फल प्रत्यक्ष अनुभव करना आरम्भ किया। चिकित्सा व्यवसाय की अवस्था धीरे– धीरे उन्नति लाभ करने लगी। क्रमशः गुरुदेव के सहित पत्र व्यवहार नियमित होने लगा। पत्र में विविध धर्म समस्या के विषय लिखने में साहस अर्जन किया, पत्र के माध्यम से इन समस्त समस्याओं का समाधान पाने का सौभाग्य लाभ करने पर धन्य होने लगा। सदाचार्य की कृपा जो क्या वस्तु है उसे आस्वादन में आनन्द अनुभव करने लगा।

माया का बन्धन अत्यन्त दृढ़ होता है। अगर गुरु अथवा गोविन्द इसे यदि छेदन नहीं कर दें तो इसको अपनी चेष्टा से छेदन करना अतीव दुष्कर है। श्री गुरुदेव कह दिये हैं कि सांसारिक जितने कर्म हैं एवं अर्थोपार्जन इस समस्त को भगवत्कैङ्कर्य के हिसाब से करते जाओ। उनका निर्देश सुना हूँ उनका उपदेश श्रवण किया हूँ एवं उनके निर्देश को पालन करने के लिए मन में दृढ़ कर लिया हूँ। किन्तु चिर काल के अभ्यास वश समस्त कार्यो में 'अहम्' को ही सर्वमय स्थान दिया हूँ, हमारा नाम यश और प्रति पत्ति, हमारे माता पिता स्त्री पुत्रादि इस 'अहम और मम्' मोह से ही कर्मनुष्ठान में वाध्य हो जाता हूँ। हमारे आत्मीय स्वजन सभी तो भगवान् के सृष्ट जीव हैं और उन्हीं की सङ्कल्प से हमारे आत्मीय स्वजन रूप हमारे पास प्रेरित हुए हैं, एवं उन्हीं मनोभाव को लेकर ही भगवान् के अभिप्रेत कैङ्कर्य बुद्धि से कर्तव्य पालन करना उनका सन्तोष–विधायक है अतएव हमारा कल्याण विधायक है। यह तत्त्व साधारण – भाव से अन्तर में उदय होने पर भी, तदनुगुण चेष्टा रहने पर भी इस भावना को अनुष्ठान में परिणत करना एकान्त दुष्कर हो रहा है, बार बार चेष्टा करने पर भी सम्भव नहीं हो रहा है। ऐसा देखकर मैं पत्र के द्वारा श्री स्वामी जी महाराज के चरण में आर्त्त होकर निवेदन

किया। इस सुकठिन समस्या के समाधान के लिए उनकी कृपा के लिए अपनी आर्त प्रार्थना किया। उनकी अनुग्रह लिपिपाया– 'चिन्ता नहीं करना', भगवान् की कृपा से साफल्य लाभ करोंगे।' इस विषय में हम अधिक क्या कहे उनका यह कृपा आशीर्वाद कभी निष्फल होने को नहीं है। सद्गुरु की कृपा एवं उनके आशीर्वाद की अमोघ शक्ति अनेक प्रकार से उपलब्धि करके मैं धन्य हुआ हूँ।

तृतीय प्रवाह
पञ्चम अध्याय
।। गुरोरिच्छा वलीयसी ।।

श्री स्वामी जी महराज के गुणों का सौरभ क्रमशः वङ्गदेश में चारों तरफ फैल गया। वे प्रथम जिस प्रकार वृन्दावन परित्याग कर कभी दूसरी जगह नहीं गये थे, उसी तरह बाद में भी श्री अयोध्या छोड़ कर कहीं दूसरी जगह नहीं गये। यहाँ तक कि स्नान के लिए श्री सरयू नदी, एवं कदाचित् कभी किसी विशेष प्रयोजन से किसी विशिष्ट साधु महात्मा के आश्रम के अलावा अयोध्या धाम में भी कही अन्यत्र नहीं जाते थे। रात्रि – दिन अपने आश्रम में बैठकर ही इष्ट चिन्तन में एवं नाना विधकैङ्कर्य में निमग्न रहते। श्री स्वा0 प्रकृत तीर्थ सन्यासी थे, प्रकृत सर्व सन्यासी थे। उनकी इस असाधारण निष्ठा को देख कर सभी चमत्कृत हो जाते थे। उनकी यह स्वतः स्फूर्त यशोधारा चारों तरफ फैल गई। सुदूर वङ्गदेश में भी पहुँचने में विलम्ब नहीं लगा। धर्मान्वेषी वङ्ग देशीय बहुत नरनारी उनके चरण में आकर समाश्रित होने लगे। श्री वैष्णव सम्प्रदाय होता है 'आचारी सम्प्रदाय'। श्री वैष्णवों के लिए आमिष – आहार अवश्य वर्जनीय है। जहाँ तहाँ भोजन करना निषिद्ध है। सब एकादशी में अन्न भोजन निषिद्ध है, केलन फलमूल, दूध, आलू, शकरकन्द प्रभृति प्रसाद रूप से सेवन करने का विधान है। राम जयन्ती, कृष्ण जयन्ती, नृसिंह जयन्ती, वामन जयन्ती इन दिनों में उपवास करना चाहिए। इस समस्त आचार को पालन करना सहज नहीं है। तथापि मत्स्यादिप्रिय वङ्गवासी लोग अपनी चिरप्रथा परित्याग करके निरामिष आहार एवं अन्यान्य कृच्छ्रनियम स्वीकार करते हुए जिस भाव से सुदूर अयोध्या धाम गमन करके श्री स्वामी जी महाराज के चरण में समाश्रित होने लगे, उनके पास पञ्च संस्कार से संस्कृत होकर दीक्षा ग्रहण करने लगे। इस विषय को चिन्ता करने पर विस्मित हो जाना पड़ता है। इन नवीन दीक्षित शिष्यों के मध्य यदि कदाचित् कोई चेष्टा करने पर भी इन समस्त आचार नियमों को पालन करने में समर्थ नहीं हो सकता था, तो शीघ्र ही किसी न किसी अलौकिक संघठन से इस विधान रहित अभ्यास को परित्याग करने के लिए बाध्य हो जाता था। इस विषय में एक शिक्षा प्रद दृष्टान्त का उल्लेख किया जा रहा है।

''सद्गुरु के आशीर्वाद की शक्ति''

दो सहोदर भाई कलिकाता में एका ही घर में वास करते थे। इन दोनों के मध्य ज्येष्ठ भ्राता श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य थे। वे निरामिष आहार का अवलम्बन किये थे उनका छोटा भाई चेष्टा करने पर भी आमिष आहार वर्जन नहीं कर सका। छोटे भाई के इस असमर्थता की बात एवं इसके कारण महा असुविधा की बात को ज्येष्ठ भ्राता अयोध्या आकर श्री स्वामी जी महाराज के चरण में निवेदन किये श्री स्वामी तत् सम्बन्धी समस्त व्यापार को जिज्ञासा किये। उनसे समस्त व्यापार को सुन लिए। भ्राता से कहने लगे– 'तुम चिन्ता नहीं करना श्री विजयराघव जी महाराज इस समस्या का शीघ्र ही समाधान कर देंगे। ज्येष्ठ भ्राता कलिकाता लौटने पर देखते हैं

कि उनका छोटा भाई मत्स्यादि आमिष भोजन करने के बाद ही वमन कर देता है जितना समस्त आमिष आहार किया रहता वह वमन से बाहर हो जाता है। इस भाव से कई एक दिन बीतने के बाद छोटा भाई आमिष आहार परित्याग करने के लिए बाध्य हो गया। इस प्रकार की अलौकिक घटना को देखकर सभी अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गये। जो इस बात को सुने वे भी विस्मित हो गये। सभी श्री स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद की अमोघ शक्ति का अनुभव करके अभिभूत हो गये। सिद्ध महापुरुषों का सङ्कल्प उनका आशीर्वाद जो कितना अघटन को संघटन करने में समर्थ होता है यह बात सभी को उपलब्धि हुई। मन में रखना चाहिए कि इस आमिष आहार की बात जिस समय श्री स्वामी जी महाराज के पास ज्येष्ठ भ्राता निवेदन किए उस समय श्री स्वामी जी महाराज यह नहीं कहे कि इस विषय में एक सुवबन्दोबस्त कर दूँगा, वे केवल इतना ही कहे थे कि– 'चिन्ता नहीं करो, श्री विजय राघव जी महाराज इस समस्या का समाधान कर देंगे। उनकी उस आश्वासन वाणी में हम लोग एक उत्कृष्ट धर्म तत्व की शिक्षा लाभ कर सकते हैं– भगवत शरणागत सिद्ध प्रपन्न पुरुष श्री भगवान को ही समस्त शुभ फलदाता एवं समस्त विपदों से परित्राता रूप से दृढ़ निश्चय करके रहते हैं। वे स्वतः समर्थ होते हुए भी कभी यह नहीं कहते कि मैं ही तुम्हें सब विपत्तियों से उद्धार कर दूँगा। सांसारिक विपद उद्धार से आरम्भ कर संसार विमुक्ति पूर्वक परमपद लाभ तक समस्त फल के निर्वाहक जो भगवान ही हैं विषय में वे लोग दृढ़ निश्चय रहते हैं। वे केवल जीव के कल्याण के लिए उनको विविध विपद से उद्धार के लिए श्री भगवान् के चरण में प्रार्थना करते हैं। वे सर्वदा इसी भाव में भावित रहते हैं। उनके उपदेश और अनुष्ठान में सर्वदा यही भाव व्यक्त रहता है। भक्त पराधीन भगवान् इन समस्त सिद्ध भक्तों की यह प्रार्थना बिना पूरण किये हुए नहीं रह सकते। भगवान की जितनी लीलाएँ हैं, समस्त ही इसी प्रकार भक्तों के गम्भीर मान के अनुसार ही अनुष्ठित होती रहती हैं।

प्रायः एक वर्ष के पश्चात् (1922खृ0 दिसम्बर) पुनः गुरुदेव के समीप जाने के लिए हमारा मन व्याकुल हो उठा। काशी होते हुए अयोध्या जाने के लिए मन में स्थिर किया हूँ। पिता जी उस समय काशी में। हमारी दो बहनें और हमारी धर्मपत्नी भी काशी में थीं। हमारी धर्म पत्नी दीक्षा लेने के लिए आग्रह प्रकाश किया, उन्हें साथ में लेकर अयोध्या गमन किया। ज्येष्ठ भगिनी भी साथ में गई। श्री स्वामी जी महाराज के चरण समीप में इन दोनों का परिचय दिया।

''भगिनी और धर्म पत्नी की दीक्षा''

अवसर समझ कर मैने भगिनी एवं स्त्री की दीक्षा की बात को श्री स्वामी से निवेदन किया। दया करके वे इस निवेदन को स्वीकार कर लिए। दूसरे दिन यथा विधि दोनों को सभाश्रित कर लिए। उस समय मंत्र पुरश्चरण विधि और कुछ कुछ प्राथमिक उपदेश लिखा दिये, मन्त्र को यथा विधि उच्चारण करना सिखा दिये, एवं मन्त्र को पुनः पुनः अभ्यास कराकर इस मन्त्र का उच्चारण इन लोगों से करा लिए। 4/5 दिन हम लोग श्री स्वामी जी के चरण समीप में निवास किये।

''अर्थ सहित अष्टश्लोकी का उपदेश''

इस बार श्री स्वामी जी महाराज प्रतिदिन शेष रात्रि में कृपा पूर्वक अयाचित भाव से 'अष्टश्लोकी' नामक मन्त्रार्थ का एक संक्षिप्त ग्रन्थ की मूल, अन्वयार्थ, एवं सरलार्थ के सहित हम लोगों को आद्यन्त शिक्षा दिये। श्लोकों को कण्ठस्थ करने के लिए कहे, एवं नियमित भाव से अभ्यास करके इसका अर्थ हृदयङ्गम करने का निर्देश दिए। यह अष्ट श्लोकी ग्रन्थ एक अमूल्य निधि है। श्री रामानुज स्वामी के ज्ञान पुत्र पराशर भट्टर रचित यह अष्ट श्लोकी ग्रन्थ श्री सम्प्रदाय का वहु आदृत है। इस ग्रन्थ की अध्यापना के अतिरिक्त अन्यान्य

उपदेश दिये उसका सारांश होता है – भगवद् भागवत एवं आचार्य के कैङ्कर्य का विषय। 4/5 दिन के पश्चात् कलिकाता लौटने की अनुमति के लिए मैने प्रार्थना किया। हमारे आग्रह को देखकर श्री स्वामी जी अनुमति दे दिये। इस समय वे प्रश्न किये कि ट्रेन पर किस श्रेणी के कमरा में तुम लोग जाओगे? मैंने कहा कि ड्योढ़े दर्जे में (इण्टर क्लाश) जाऊँगा यह सुनकर वे बोले कि अगर विशेष असुविधा नहीं हो तो तृतीय श्रेणी में जाना, एवं इस से जो अर्थ सञ्चय होगा उसे कैङ्कर्यार्थ में व्यय करना। कलिकाता लौटने के लिए विदा ग्रहण के समय श्री स्वामी जी आशीर्वाद किये कि '' कैङ्कर्यपरो भव''। इस बार उनके उपदेश, निर्देश एवं आशीर्वाद में अनुभव किया कि सर्वत्र ही कैङ्कर्य की महिमा है।

''आत्मीयों का दीक्षा लाभ''

कुछ दिन पश्चात् फिर गुरुदेव के चरण दर्शन के लिए मैं अयोध्या गया। इस बार सपरिवार गया। साथ में दो भगिनी एवं भगिनी के पति बामापद सरकार थे। वे श्री स्वामी जी महाराज से दीक्षा लेकर कृतार्थ हुए। दीक्षा लेने के दूसरे दिन प्रत्यूष काल में श्री स्वामी हम लोगों से बोले – 'तुम लोग सभी सरयू जी गोप्तार घाट में स्नान कर आओ, गोप्तार घाट यहाँ से प्रायः 6/7 मील दूर होगा। इस घाट में श्रीरामचन्द्र, भरत शत्रुघ्न एवं परिजन सहित इस धराधाम से अन्तर्हित होकर परम धाम प्रयाणे किये थे। इस घाट में तुम लोगों को अवश्य स्नान करना चाहिए।' उनके आदेशानुसार हम लोग उस दिन गोप्तार घाट में स्नान कर आये एवं लौट कर उनके पास इस गुप्तार घाट की वर्तमान अवस्था की बात निवेदन किया। लौटने में प्रायः बेला द्विप्रहर हो गया।

''प्राचीन परम्परा प्रवाद प्रकृष्ट प्रमाण''

उस समय श्री स्वामी जी के समीप एकजन अयोध्यावासी साधु बैठे हुए थे। वे गुप्तार घाट की बात सुनकर उनसे पूँछे कि महाराज! उसी घाट से ही श्री रामचन्द्र जी अन्तर्हित हुए थे इसका प्रमाण कुछ है क्या? श्री स्वामी जी महाराज कुछ हँसकर उत्तर दिये–

'परम्परा ही इसका प्रमाण है। वर्तमान में लोग सुने हैं अपने पिता से, पितामह से, वे लोग भी सुने हैं अपने पितृ पितामह से, इसी तरह काल से कालान्तर यही परम्परा चली आ रही है, ऐसी परम्परा अतीत घटना का एक विशिष्ट प्रमाण होता है। इस उपदेश को सुनने के बाद साधु प्रसन्न हो गये, हम लोग भी इस परम्परा के विषय में यह उपदेश सुनकर एक नूतन आलोक लाभ किये और कृतकृत्य हो गये। इस बार हम लोग 4/5 दिन वहाँ पर रहे। श्री स्वामी जी परिवार वर्ग को मन्त्र और पूजा के विषय में एक स्थूल उपदेश प्रदान किये। बाद में उनकी अनुमति लेकर हम सभी कलिकाता लौट आये।

तदनन्तर 2/1 वर्ष के मध्य हमारे मध्यम भ्राता कृष्ण भूषण वसु एवं कनिष्ठ भ्राता हरि भूषण वसु भी श्री स्वामी जी महाराज के निकट दीक्षा लाभ किये।

''आश्रम में नूतन मन्दिर निर्माण, उसमें श्री विजराघव जी महाराज की प्रतिष्ठा''

श्री अयोध्या से कोलकाता लौटने पर प्रायः श्री स्वामी जी को मैं पत्र लिखता और उसका उपदेश पूर्ण उत्तर पाता। प्रायः 8/10 महीने के बाद श्री स्वामी जी महाराज का एक कृपा पत्र पाया, उसमें लिखे थे कि मैं श्री विजय राघव जी आश्रम में एक नया मन्दिर निर्माण करने का संकल्प किया हूँ। हम लोगों को शिक्षा देने के लिए श्री स्वामी जी उस पत्र में निम्नलिखित शास्त्र बचन का उल्लेख कर दिए थे।

मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढ़म्।
पुष्पोद्यानानिरम्याणि पूजा यात्रोत्सवानि च।। (श्रीमद्भा० 11/27/50 कृष्णवचन)

इस प्रकार शास्त्र के निर्देशानुयायी श्री भगवान के मन्दिर की प्रतिष्ठा का सङ्कल्प किये हैं एवं श्री भगवान के निर्देश को पालन करना है। उनके दासों का और भक्तों का प्रधान कर्तव्य है, इस प्रकार का निर्दिष्ट कैङ्कर्य ही जो उनके मुखोल्लास का विशेष हेतु है इस विषय में भी प्राञ्जल उपदेश श्री स्वामी जी इस पत्र में दिये हैं। उनके इस कृपा पत्र को पढ़कर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ। इस अनुष्ठान गर्भ उपदेश को पाकर अपने को धन्य माना। इस मन्दिर निर्माण रूपी कैङ्कर्य के लिए विलम्ब न कर उनके चरण में यथा शक्ति कुछ अर्थ भेज दिया। इसके उत्तर में यथा समय उनका आशीर्वादी पत्र पाया और कृतकृत्य हो गया। इस प्रसङ्ग में श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य चरित्र का दो विलक्षण अङ्ग उल्लेख कर रहा हूँ। श्री मन्दिर निर्माण के प्राय शेष भाग में मैं पुनःबार अयोध्या गया था। उस समय श्री गरुड़ध्वज जी अधिकारी, मन्दिर के निर्माण में कौन-कौन शिष्य व भक्त किस भाव से कैङ्कर्य किये हैं, कितना अर्थ कैङ्कर्य में दिये हैं उसकी एक फिहरिस्त (सूची) वे हमें दिखाये।

''अर्थ दाता की मर्यादा का क्रम पर्याय निरूपण प्रणाली''

अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार सम्पूर्ण अपनी इच्छा से कोई पाँच हजार 5000 दिया है कोई एक हजार 1000 दिया है अथवा कोई बीस पचीस रूपया भेजा है। यह समस्त नामावली साधारणतः अर्थ भेजने के समय के क्रमानुसार होता है, अथवा अर्थ के परिमाण के अनुसार हुआ करता है। किन्तु इस लेख पर देखा कि इन दोनों नियमों में कोई भी नियम पालित नहीं हुआ। सबसे पहिले जिस नाम को लिखा हुआ देखा वह श्री स्वामी जी महाराज के एक शिष्या का नाम था, उसकी अवस्था स्वच्छल नहीं थी। तथापि वे अपने संसार के खर्च में से नियम पूर्वक अति क्रष्ट से कुछ कुछ अलग करके रखी थीं इस मन्दिर निर्माण के लिए अल्प अर्थ ही भेज सकी थीं। उनके आग्रह की अधिकता के कारण ही उनके भक्ति की प्रवलता के कारण ही इस सामान्य अर्थ को श्री गुरुदेव महिमा मण्डित कर दिये हैं। इस विषय में इस शिष्या के स्वामी श्री नृपेन्द्र कुमार गुप्त महाशय के लेख को उद्धृत किया जाता है।

अयोध्या में श्री विजयराघव जी महाराज का नया मन्दिर बनने का कार्य आरम्भ 1923 खृष्टाब्द के शेष में हुआ। इस मन्दिर बनने की व्यवस्था प्रायः एक वर्ष पहले से ही हुई थी। मन्दिर बनाने के खर्च के लिए उनके भक्त और शिष्य वर्ग अपने सामर्थ्य के अनुसार कुछ कुछ अर्थ श्री स्वामी जी महाराज के निकट भेजते थे। श्री स्वामी जी महराज भी यह चाहते थे कि अपने अपने हित के लिए इस मन्दिर के बनाने में हमारे शिष्य वर्ग सभी शामिल हों। इस सम्बन्ध में हमारे गुरु भ्राता श्री नृसिंहरामानुज दास (नृपेन्द्र कुमार गुप्त) श्री स्वामी जी महाराज की उदारता का विषय हमारे पास लिखकर जो पठाये थे वह यहाँ उद्धृत हुआ। श्री स्वामी जी महाराज का अभिप्राय समझ पाकर मैं उनसे निवेदन किया कि महाराज मैं दरिद्र हूँ, इस मन्दिर निर्माण के व्यापार में कुछ अर्थ निवेदन करके धन्य होना चाहता हूँ आप दया करके स्वीकार कीजिये।'' वे तो यही चाहते थे, हमारे इस प्रार्थना से वे प्रसन्न हुए मैं यह समझ पाया। मैं कलिकाता लौट कर अपनी सहधर्मिणी से कहा, वे उसी समय उठकर हमारे हाथ में 101 एक सौ एक रूपया प्रदान की। मैं उस रूपया को मनि आर्डर करके श्री स्वामी जी महाराज के पास भेज दिया। बाद में जब पुनः अयोध्या में उपस्थित हुआ, उनके पास बैठा हूँ वे अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी को बुलाकर उनसे मन्दिर निर्माण के लिए अर्थदाताओं की नामावली लेकर अपने पास आने को कहे। मैं देखा कि तालिका में सर्वोपरि हमारी सहधर्मिणी का नाम लिखा है 'श्री मधुसूदन रामानुजदासी

श्रीमते रामानुजाय नमः



रघुकुलतिलक श्रीजानकीनाथभक्तम्,
कमलनयनसूरेः पादपद्माब्जभृंगम् ।
बुधवरबहुमान्ये राघवाचार्यवर्ये,
विनिहितमनसं तं श्रीधरार्यम् भजामि ॥

101)। उसके बाद में लिखा है अन्यान्य शिष्यों का नाम, कोई 5,000 पाँच हजार रूपया, कोई 3,500 साढ़े तीन हजार रूपया इत्यादि। बाद में मालूम हुआ श्री मन्दिर प्रतिष्ठा के कार्य में भित्ति– स्थापन उत्सव के व्यय में वही 101 रूपये समस्त खर्च हुआ है। हम दोनों कृतकृत्य हो गये। आनन्द में डूब गये। श्री स्वामी जी महाराज की उदारता देखकर हम लोग विस्मित और अभिभूत हो गये।।'' मर्मज्ञ, शास्त्रज्ञ, रहस्यज्ञ श्री स्वामी जी महाराज शिष्य के हृदय का भाव उपलब्धि करके उसके इस भक्ति पूत अर्थ का प्राधान्य दिये हैं। उनके इस अलौकिक अनुष्ठान से श्री कृष्ण के श्री मुख निःसृत गीता वाक्य का तात्पर्य प्रस्फुटित हो उठा।

''पत्रं पुष्पं फलं तोयं, यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः ।।'' (गीता 9/26)

श्री स्वामी जी महाराज का समस्त दिव्य अनुष्ठान ही इसी प्रकार का था। उनके इस समस्त दिव्य अनुष्ठान के माध्यम में शास्त्र गत रहस्य का प्रकृत मर्म उद्घाटित होकर धर्म–जगत में प्रकाश पाता रहता। यह मन्दिर बनाने के समय श्री स्वामी जी महाराज द्वारा और एक शिक्षाप्रद विलक्षण अनुष्ठान का विषय उल्लिखित हो रहा है।

''आदर्श शरणागत पुरुष की, निर्भरता रहते हुए भी अधीरता''

अर्चावतार श्री विजयराघव भगवान के लिए नये मन्दिर का निर्माण कार्य चल रहा है। इस मन्दिर निर्माण कार्य को आश्रम के अधिकारी सुदक्ष श्री गरुड़ध्वज जी देख रेख कर रहे हैं। वृद्धावस्था होते हुए भी श्री स्वामी जी महाराज का मन नहीं मानता था, वे दिन में बहुत बार निर्माण कार्य परिदर्शन करते थे, निर्माण कार्य प्रायः समाप्त था।

छत एवं गुम्वज की गाँथनी चल रही थी। गुम्वज निर्माण की समाप्ति के दिन सन्ध्या के कुछ पहले राज मिस्त्री लोग चले गये। सन्ध्या होने के थोड़ी देर बाद ही वर्षा आरम्भ हुई। उस समय वर्षा का मौसम नहीं था। अतएव गुम्वज ढाँकने का अच्छी तरह बन्दोबस्त करने की आवश्यकता नहीं हो सकी। ऐसी अवस्था में सद्योनिर्मित गुम्वज की हर तरह से क्षति होने की आशङ्का रही।

श्री स्वामी जी महराज बारम्बार मन्दिर के अन्तर जाते हैं, एवं गुम्वज भेद कर जल पड़ रहा है कि नहीं यह परीक्षा करते हैं। मन अत्यन्त ही उद्विग्न, एवं चित्त अत्यन्त अस्थिर। मन्दिर और बाहर के साधुगण पास–पास में हैं।

श्री स्वामी जी महराज के इस भाव की उद्विग्नता देख कर वे सभी विस्मित हैं। कारण श्री स्वामी जी सदा ही धीर एवं शान्त चित्त थे। उनके इस भाव की अधीरता भक्तगण इसके पहलेकभी नहीं देखे थे। उनकी यह अस्वाभाविक अवस्था देखकर अयोध्या के एकजन प्रवीण – साधु उनसे ससम्भ्रम जिज्ञासा किये – कि आपकी ऐसी अधैर्य अवस्था हम लोग तो कभी नहीं देखे।

आप आदर्श शरणागत पुरुष हैं, शरणागत पुरुष का ऐसा लक्षण है कि विपत्काल में रक्षा का भार समस्त सर्व रक्षक भगवान के ऊपर देकर महाविश्वासम्पूर्वक अवस्थान करे 'रक्षिष्य तीति विश्वासो, गोप्तृत्वेवरणं तथा।' आपकी उसके विपरीत अवस्था को देखकर हम लोगों को विस्मय हो जाता है।'' श्री स्वामी जी महाराज इसका क्या उत्तर देते हैं उसे सुनने के लिए ये सभी उत्सुक हो रहे। सभी जानते थे कि श्री स्वामी जी ज्ञान और

अनुष्ठान इन दोनों के ही तुल्य रूप से आधार हैं, उनका अनुष्ठान कभी शास्त्र वाक्य के विरुद्ध नहीं हो सकता। ये आदर्श शरणागत पुरुष हैं – तथापि क्यों उनमें यह उद्वेग और अधीरता दिखाई पड़ता है।

''प्राप्येत्वरा''

इस प्रश्न के समाधान में वे क्या उत्तर देते हैं, इस विषय में उनका क्या सिद्धान्त है, उसे सुनने के लिए सभी व्यग्र हो रहे। श्री स्वामी जी महाराज किन्तु निरुत्तर रहे, उनकी उत्कंठा का कोई भी प्रशमन नहीं हुआ। पहले के सदृश पुनः पुनः गुम्वज के नीचे जाकर जल पड़ रहा है कि नहीं उसे उद्विग्न चित्त से परीक्षा करने लगे। मध्य रात्रि में वर्षा बन्द हुई। आश्रम में प्रदीप का प्रकाश है, वह भी उतना उज्ज्वल प्रकाश नहीं, उसमें जहाँ तक समझा गया गुम्वज भेद करके जल नहीं पड़ा। वृष्टि से इसकी कोई क्षति नहीं हुई वर्षा बन्द हो जाने पर श्री स्वामी जी कथञ्चित् निश्चिन्त मन से विश्राम करने गये। दूसरे दिन सवेर जब प्रकाश हुआ तब वे अपने भक्तों के सहित मन्दिर के भीतर प्रवेश करके ऊपर से छत भेद करके जल पड़ा है कि नहीं अच्छी तरह परीक्षा करके देखे। जब यह समझे कि छत अथवा गुम्वज की कोई क्षति नहीं हुई तब वे निश्चिन्त मन हुए। और तब श्री स्वामी जी के मुखँ हँसी फूटी। उनका सहास्य बदन देख कर अनुचर वर्ग का ह्रदय भी प्रफुल्लित हुआ। प्रातःकाल स्नान पूजा समाप्ति के बाद आश्रम के साधु वर्ग श्री स्वामी जी महाराज के समीप जब आकर बैठे उस समय वे सबकों सम्बोधन करके कहने लगे – ''गत रात्रि वृष्टि के समय श्री मन्दिर के सद्यो निर्मित छत एवं गुम्बज क्षतिग्रस्त होने के भय से मैं जब उद्विग्न हो पड़ा था, उस समय विस्मय प्रकाश करके प्रवीण महन्त इसके सामीचीन विषय में हम से जो प्रश्न किये थे, उस समय उनके उत्तर का समय अनुपयोगी विवेचन करके मैनें इस सम्बन्ध में कोई भी उत्तर नहीं दिया, अब उपयुक्त अवसर समझकर उत्तर दे रहा हूँ, मनोनिवेश पूर्वक श्रवण करो।

आदर्श शरणागत का यह लक्षण है कि ईश्वर को ही सर्वरक्षक मानकर दृढ़ता पूर्वक विश्वास करना एवं इस दृढ़ विश्वास में दृढ़ता अवलम्बन करके उन्हें सर्व विषय में अपने रक्षक रूप से स्वीकार करके निश्चिन्तता पूर्वक अवस्थान करना। यही शरणागत के लिए प्रकृष्ट विधि है। यही विधि मार्ग है। इस भाव से भगवान का शरणागत होकर अविचलित रहकर अवस्थान कर सकने पर उन्हें जो प्राप्त हो सकता है यह निःसन्देह है। इस भाव को गुह्मतम परम वाक्य में श्री कृष्णचन्द्र भगवान् स्वयं द्विधाहीन भाषा से आश्वासन दे गये हैं (गीता 18/66)। किन्तु भक्त जिस समय भगवान को प्राप्ति के लिए अति व्याकुल होता है एवं भगवान् तथा भागवत की सेवा प्राप्ति के लिए, उस सेवा को सर्वाङ्ग सुन्दर करने के लिए अत्यन्त व्यग्र हो उठता है, उस समय और उनको कोई काल विलम्ब सहन नहीं होता। शरणागत की इस आकुल अवस्था का नाम ''प्राप्ये त्वरा'' है, अर्थात् प्राप्य वस्तु 'भगवान् को एवं उनकी सेवा को प्राप्ति के लिए अच्छी तरह इस सेवा की पूर्ति के लिए अत्यन्त व्याकुलता आ जाती है। यह अनुराग की अवस्था, 'अनुराग मार्ग' 'प्रेमदशा' है। यह प्रेमदशा शरणागत पुरुष को भगवत्प्राप्ति के लिए ही एकमात्र उपाय रूप से पकड़ कर बैठने नहीं देती, वह उस समय विधि मार्ग को भूलकर भगवत प्राप्ति के लिए अनेक तरह से छट फट करती रहती है। यह प्रेम दशा अतीव उपादेय दशा है। भक्त की यह त्वरा यह उद्वेग दशा भगवान को भी अतीव उपभोग्य होती है। शरणागति की विधि अथवा वैध अनुष्ठान विस्मृत होकर भगवत्प्राप्ति के लिए अथवा भगवत्सेवा के लिए अत्यन्त व्याकुल होकर अनेक प्रकार से प्रयत्न करना अनुराग मार्ग है। शरणागत व्यक्ति के इस अनुराग की अवस्था उत्कृष्ट अवस्था है। शरणागति का ...

रहस्य श्रवण करके उपस्थित भक्त वृन्द विस्मय और आनन्द से अभिभूत हो गये। सिद्ध प्रेमी भक्तों का इस प्रकार अनुष्ठान पद पद पर स्वाद युक्त, पद पद पर अमूल्य,सुवर्णार्थ होता है।

श्री विजयराघव जी महाराज के नये मन्दिर बनने के समय केवल दो तीन दिन श्री अयोध्या श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में रहने का हमको सौभाग्य हुआ था। इस से पहले आश्रम में रहने के समय उनकी जिस तरह की दिनचर्या को अनुभव किया था, उस समय भी देखा श्री स्वामी जी महाराज की दिनचर्या उसी प्रकार पूर्ण भाव से चलती रही है।

''मन्दिर बनने के समय आश्रम की व्यवस्था''

आश्रमवासी की संख्या कुछ बढ़ गई थी, उनके मध्य कई एकजन विरक्त पुरुष को रहते देखा। शेष सभी विद्यार्थी थे। आश्रम में भक्त समागम कुछ बढ़ गया था, इसी लिए आश्रम के कैङ्कर्य का परिमाण भी कुछ वृद्धि हो गया था। नवागत विरक्त साधुगण इस अतिरिक्त कैङ्कर्य का भार लिए। विद्यार्थीगण अधिकांश व्याकरण प्रथमा मध्यमा एवं शास्त्री पर्याय में शिक्षा ग्रहण करने तथा ज्योतिष विद्या का भी अध्ययन कर रहे थे। वे विद्यालय में जाते, विद्याभ्यास करते, अवसर काल में अधिकारी जी के निर्देश से विविध कैङ्कर्य करते थे। श्री मन्दिर का निर्माण कार्य जिससे सुन्दर और दृढ़ हो, उस विषय में श्री स्वामी जी प्रत्येह महाराज की निरन्तर चिन्ता धारा अनुभव करके एवं अधिकारी जीका अविश्रान्त कैङ्कर्य दृढ़ तत्परता दर्शन करके मैं चमत्कृत हो गया।

उस समय श्री स्वामी जी महाराज की अवस्था लगभग 82/83 वर्ष की रही होगी। उनका आहार समस्त दिन रात्रि में आध सेर अथवा तीन पाव दूध था, उनका शरीर कृश था, इस असाध्य अवस्था में भी उनकी दिनचर्या यथायथ अव्याहत ही चलती थी। श्री मन्दिर निर्माण के लिए या अतिरिक्त मानसिक एवं शारीरिक कैङ्कर्य का भार वहन करते ही जाते थे। यह किस प्रकार सम्भव हो रहा था वह बुद्धि के अगम्य (मन में) हुआ। श्री भगवान यदि शक्ति नहीं प्रदान करें, तो इस प्रकार का अतिरिक्त चिन्ता भार इस प्रकार से दैहिक कर्म भार वहन करना एकान्त असम्भव है। श्री स्वामी जी दो ढ़ाई बजे शय्या त्याग करके अधिकारी जी को बुलाते, पहले उनसे निर्माण कार्य का समस्त हिसाब सुनते, उसके बाद वर्तमान दिन के निर्माण कार्य की क्या क्या व्यवस्था होगी, विस्तृत भाव से उस विषय में उपदेश देते।

निर्माण कार्य जिससे सुचारू रूप में सिद्ध हो इस उद्देश्य से प्रतिदिन अनेकों बार कार्य स्थल में जाकर परिदर्शन करते।

''अधिकारी जी की कर्म निष्ठा''

श्री अधिकारी जी भी सद्‌गुरु के प्रकृत–शिष्य थे। वे निज गुरु देव के मनोगत भाव को अच्छी तरह उपलब्धि करके यह महत्सङ्कल्प जिस तरह सम्पूर्ण रूप से कार्य में परिणत हो उसके लिए आप्राण चेष्टा करते थे। वे शास्त्र के प्रकृत रहस्य वेत्ता एवं एक आदर्श गुरुभक्त, एकजन आचार्य के अनुवर्तनशील महात्मा थे। आश्रम के विविध कैङ्कर्य में उनकी निरन्तर सक्रियता थी। आश्रमवासियों के लिए एक उज्ज्वल आदर्श थे। समस्त आश्रमवासी ही उनको श्रद्धा तथा भक्ति करने एवं आनन्द सहित उनका निर्देश पालन करते थे अधिकारी जी वयो ज्येष्ठ पुरुषों को उपयुक्त मान्य देते, कनिष्ठों का उपयुक्त स्नेह करते, सभी के सुविधा की तरफ दृष्टि रखते थे। अपनी असुविधा करके भी दूसरे की असुविधा दूर करने के लिए सदा सचेष्ट रहते। श्री मन्दिर

में भगवद् भागवत् एवं आचार्य का समस्त कैङ्कर्य सुष्टुरूप से परिचालना करते हुए भी जब जब सुयोग मिलता तभी शास्त्र का अध्ययन और अध्यापना करने का अभ्यास किया करते। उनकी यह नियत कैङ्कर्य धारा स्वभाव में परिणत हो गई थी। वे इस कर्म व्यस्तता के मध्य में भी श्री मन्दिर के निर्माण कार्य काल में प्रयोजन अनुसार समय निकाल लेते। वे इञ्जीनियर का कार्य करते, नक्शा बनाने का कार्य करते एवं प्रयोजन पड़ने पर कुली मजदूरं का भी कार्य करते। वे राजमिस्त्री का कार्य परिदर्शन करते, नक्शा बना देते, और चूनसुरखी भी मिला देते, माथा पर ईटा भी वहन करते, कार्य मनोवाक्य से उनको कैङ्कर्य का इस प्रकार निर्वाह देख कर सभी विस्मित हो जाते। श्री स्वामी जी महाराज की गम्भीर चिन्ता शास्त्र सम्मत सङ्कल्प और निर्देश पालन पूर्वक अविश्रान्त कर्म तत्परता का एक अपूर्व मणिकाञ्जन का संयोग था। इस आदर्श सहयोगिता से आश्रम के समस्त कार्य सुष्टु रूप से सम्पन्न हो जाता। प्राय: एक वर्ष के मध्य ही श्री मन्दिर सुदृढ़ एवं सुचारू रूप से बन गया। श्री स्वामी जी महाराज के हार्दिक सङ्कल्प का पूर्व भाग सफल हुआ। अब श्री स्वामी जी इस नव निर्मित मन्दिर में श्री विजयराघव के श्री विग्रह की प्रतिष्ठा कार्य को सम्पादन करने के लिए व्यग्र हो उठे।

''नूतन मन्दिर में श्री विजय राघव जी की प्रतिष्ठा का उत्सव''

खृष्टाब्द 1924 साल में इस नव निर्मित श्री मन्दिर में अर्चाविग्रह का पाँच दिन व्यापी प्रतिष्ठा का उत्सव अनुष्ठित हुआ। उत्तर एवं दक्षिण भारत के विभिन्न स्थान से गुणी ज्ञानी भक्तिमान् साधुगण एवं अयोध्या के महान्त साधुगण श्री स्वामी जी महाराज के बहुत शिष्य सेवक आमन्त्रित होकर इस प्रतिष्ठा उत्सव में योगदान किये थे। आश्रम में महा समारोह पड़ गया। शास्त्र विधि के अनुसार इन समस्त उपयुक्त ज्ञानी भक्तिमान् वैष्णव के द्वारा यथा रीति पूजा पाठ यज्ञादि अनुष्ठित हुआ। वेद, वेदान्त, श्रीभाष्य, आडवार गण का दिव्य-दिव्यप्रबन्ध, वाल्मीकीय रामायण, महा भारत, श्रीमद्भागवत, गीता प्रभृति ग्रन्थों का पाठ सम्पन्न हुआ। पाँच दिन श्री विजय राघव जी, श्री अम्बा जी (सीता देवी), श्री लक्ष्मण जी एवं हनुमान जी इस विग्रह चतुष्टय में प्राण प्रतिष्ठा सम्पादित होकर यह प्रतिष्ठा कार्य सुसम्पन्न हुआ। श्री स्वामी जी महाराज का चित्त शान्त हुआ।

प्रथम दिन	–	मण्डप प्रतिष्ठा, अग्नि स्थापन, अङ्कुरा रोपण।
द्वितीय दिन	–	नान्दी श्राद्ध, प्रासाद (वास्तु) प्रतिष्ठा, जलाधिवास।
तृतीय दिन	–	अभिषेक, धान्याधिवास, चतुष्ठकुण्ड होम।
चतुर्थ दिन	–	अङ्ग होम, षोडशन्यास, मूर्ति स्थिरीकरण, महाभिषेक, पूर्णाहुति
पंचम दिन	–	प्राण–प्रतिष्ठा
षष्टम् दिन		तदीयाराधन

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' श्रेय कार्य में बहुत विघ्न बाधायें हो सकती हैं, ऐसी भावना करके प्रतिष्ठा कार्य पाँच दिन जब तक चलता था उतनी देर तक श्री स्वामी का चित्त विशेष उद्ग्रीव (उद्विग्न) था इस कार्य की निर्विघ्न सुनिष्पत्ति प्राण प्रतिष्ठा के लिए वे श्री भगवत् चरण में प्रार्थना करते रहते। यह प्रतिष्ठा कार्य सुसम्पन्न हो जाने पर उनका उद्ग्रीवमन निश्चिंत हुआ। उनका वदन कमल, उनका दिव्य मंगल विग्रह एक प्रसन्नता का रूप धारण किया। वे अपने को कृतकृत्य मानने लगे। इस नवनिर्मित मन्दिर में भगवत्प्रतिष्ठोत्सव के समय एक अलौकिक घटना का संघटन हुआ। वह दिव्य घटना इस प्रकार की है–

प्रतिष्ठा उत्सव के समय श्री मन्दिर के जग मोहन में प्रतिष्ठा विधि के अनुसार कई एक दिन लगातार साधु महात्मागण बैठकर पाठ करते थे। ऐसे समय एक दिन प्रातः काल एक अत्यन्त सुन्दर ब्राह्मण बालक स्वतः प्रवृत्त रूप से आकर एक तरफ बैठकर इस पाठ में योगदान किया। उसका रूप देखकर एवं उसकी पाठ शैली देखकर सभी चमत्कृत हो गये। पाठ समाप्ति के साथ ही साथ वह अपरूप बालक और कहीं भी देखा नहीं गया। बाद में अयोध्या के समस्त मठ और मन्दिर में अनुसन्धान किया गया। लेकिन इस बालक का किसी तरह सन्धान अथवा किसी प्रकार का परिचय नहीं मिल सका। इस अपरिचित दिव्य बालक का आकस्मिक आविर्भाव, दिव्य पाठ भङ्गी एवं पाठ की समाप्ति के साथ ही साथ अन्तर्धान देखकर वहाँ रहने वाले प्रवीण साधुगण उस बालक को बाल स्वामी (लक्ष्मण जी) रूप से अनुमान किये थे। एवं सिद्ध भक्त के कातर आह्वान से ही उसका (बालक) आगमन हुआ था यह भी मुक्त कण्ठ के द्वारा प्रचार किये थे।

धर्मार्थ में दशमांश व्यय करने में सुफल की प्रथम उपलब्धि 1922 खृष्टाब्द में श्री स्वामी जी महाराज के निकट से कलिकाता लौटने के बाद ही उनके निर्देशानुयायी स्वोपार्जन का दशमांश धर्मार्थ कैङ्कर्य के लिए मैं नियम पूर्वक भेजा करता था। इस व्यय से सांसारिक अर्थ सङ्कोच अनुभव नहीं किया। अथवा अर्थागमन की उन्नति का भी अनुभव मालूम नही हुआ तथापि श्री स्वामी जी महाराज की आशीर्वाणी एक दिन के लिए भी विस्मृत नहीं हुआ। वे पहले ही आशीर्वाद किये थे 'तुम धर्मार्थ में यह व्यय करते जाओ, इसके द्वारा तुम्हारा ऐहिक और पारलौकिक उभयविध कल्याण होगा'। कुछ समय के बाद ही उनकी इस आशीर्वाणी की शक्ति और साफल्य अनुभव किया। वत्सराधिक के बाद एक विशिष्ट धनवान रोगी की चिकित्सा के लिए हमें बम्बई जाना पड़ा। वहाँ चिकित्सा में सुनाम अर्जन करके लौटने के समय दस हजार रूपया दर्शनी के वावद पाया। उसी समय श्री स्वामी जी महाराज का आशीर्वचन स्मरण किया। सद्गुरु का आशीर्वाद अमोघ होता है यह भी प्रत्यक्ष उपलब्धि किया। मन ही मन पूर्ण भक्ति के सहित श्री गुरुदेव के चरण में मस्तक लुंठि दिया। कोलकाता लौटने के रास्ते में इलाहाबाद होते हुए प्रथम अयोध्या गया। प्रातः काल अयोध्या पहुँचा। गुरुदेव को साष्टाङ्ग करके उनके चरण में उपार्जित का दशमांश 1000 एक हजार रूपया निवेदन कर दिया। बम्बई के रोगी का विषय एवं चिकित्सा का विषय उनके चरण में निवेदन किया। हमारी समस्त कथा को सुनकर वे केवल मृदुहास्य किये, अन्य कोई भी आलोचना नहीं किये। मालूम हुआ कि शायद गुरुदेव यह समझे कि हमारी कथा में (गुरु वाक्य में) विश्वास दृढ़ होने का समय आरम्भ हो गया है। वे हमारे कुशल के अनन्तर हमें विश्राम और पूजा स्नानादि के बाद प्रसाद ग्रहण करने को बोले। उनके निर्देश के अनुसार प्रसाद पाकर अधिकारी जी एवं अन्यान्य आश्रमवासियों के सहित साक्षात करके फिर श्री स्वामी जी की सन्निधि में आकर मैं बैठ गया। उस समय श्री भागवताचारी आश्रम में नहीं थे। उनका स्वास्थ्य क्रमशः अवनति के तरफ जा रहा था। वे चिकित्सा के लिए आन्ध्र प्रदेश में विख्यात वैद्य के निकट जाकर वहाँ पर अवस्थान करते थे।

''साधु की चिकित्सा का विशेषत्त्व''

जिस समय हम लोग वङ्गदेश से जाकर अयोध्या आश्रम में निवास करते, उस समय समस्त आश्रमवासी विशेष आनन्दित होते। अन्यान्य आश्रम से भी साधुगण हम लोगों के सहित भेंट मुलाकात करने आते। सांसारिक एवं साधन भजन के विषय में कुशल प्रश्न करते, और भगवद् भागवत् विषय वस्तु को केन्द्र करके आलाप आलोचना करते रहते। इस प्रकार की आलोचना चल रही थी कि ऐसे समय में निकटवर्ती एक आश्रम

से एकजन विशिष्ट साधु आकर उसी आलोचना में योग दिये। उनका नाम रामाचारी स्वामी था। उनकी [illegible] चालीस वर्ष से कम थी। आचार्य देव के प्रिय थे अतएव हम लोगों के भी विशेष प्रिय भाजन और विशेष [illegible] के वस्तु थे। कुछ समय के बाद आलोचना शेष होने पर रामाचारी जी हमारे समीप बैठकर अपनी [illegible] शारीरिक असुस्थता की बात विवृत करके एक सुचिकित्सा का वन्दोवस्त कर देने का अनुरोध किये। [illegible] आनन्द के सहित अपनी सम्मति दिया। इसके बाद वे हमसे बोले, कि इस विषय में एक बार मैं श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति ले लूँ इसके बाद चिकित्सा की व्यवस्था होना उचित होगा। उस समय मैं कुछ देर [illegible] चुप रहा, और मन ही मन सोचने लगा कि वे साधु हैं, असुस्थ हैं, मैं चिकित्सक हूँ चिकित्सा करूँगा, इससे [illegible] स्वामी जी महाराज तो प्रसन्न ही होंगे, इस विषय में जिज्ञासा करने का क्या प्रयोजन? साधु हमें मौन देखकर शायद हमारे अन्तर का भाव समझ गये। वे हमसे बोले, ''देखिए मठ में हम सभी मठाधीश के परतन्त्र हैं [illegible] नया कार्य करने के पहले उनकी अनुमति लेना बहुत जरूरी है। यही शिष्टाचार है। उनके इस ज्ञान गर्भ उपदेश को सुनकर, उनकी कथा का तात्पर्य उपलब्धि करके मैं सप्रतिभ हो गया, शिक्षा भी हुई। अल्पक्षण के बाद [illegible] श्री गुरुदेव के समीप उपस्थित हुआ तो उस साधु की चिकित्सा करने के लिए श्री स्वामी जी स्वयं हमें [illegible] दिये। वे बोले – ''भैया! इस साधु को कोई पुरातन व्याधि है, तुम इसकी अच्छी तरह परीक्षा करके एक [illegible] औषध की व्यवस्था कर दो।'' मैं समझ गया फिर यह भी शिष्टाचार है। वे साधु हमसे अपनी चिकित्सा [illegible] विषय में श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति की बात कह सकते थे, किन्तु ऐसा वे नहीं किये। इसी [illegible] आचार्य– परतन्त्र्य कहते हैं।

मैं साधु को अपनी कोठरी में ले गया। एवं उत्तम रूप से परीक्षा करके उस साधु की चिकित्सा का [illegible] उपयुक्त व्यवस्था पत्र लिख दिया। चिकित्सक की रीति के अनुसार पहले ही एक रेचक (जुलाव) [illegible] दिया। अन्तर्मल परिष्कार हो जाने पर तब अन्यान्य औषधि शीघ्र कार्यकारत्री होती है। साधु भी उसी दिन [illegible] औषध आरम्भ करेंगे कहकर श्री स्वामी जी की अनुमति लेकर अपने स्थान में चले गये। दूसरे दिन प्रातः [illegible] रामाचारी स्वामी यथा रीति हम लोगों के आश्रम में आये नहीं, देखकर श्री स्वामी जी महाराज एक [illegible] आश्रमवासी को उनका संवाद लेने के लिए भेजे। वे लौटकर निवेदन किये कि जुलाव लेने की वजह प्रातः [illegible] से उन्हें कई एक बार दस्त हुआ है इससे वे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं एवं स्नान पूजा अभी कुछ भी नहीं [illegible] हुआ है, इसलिए वे यहाँ नहीं आ सके । श्री स्वामी जी महाराज यह सुनकर कुछ अस्वस्ति बोध किए और [illegible] बुलवाए, हमको उपदेश देने लगे, देखो भइया साधु की चिकित्सा करना कठिन होता है । साधारण व्यक्ति को चिकित्सा सरल है । उन लोगों की चिकित्सा में केवल शरीर की तरफ ध्यान रखना पड़ता है, परन्तु साधु की चिकित्सा में वैसा नहीं होता होता। उन लोगों की चिकित्सा में शरीर तथा आत्मा के ऊपर [illegible] रखना पड़ता है । उन लोगों के पूजा–पाठ में जिससे बाधा न पड़े ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए शरीर के साथ [illegible] का सम्बन्ध घनिष्ठ होता है। मन शान्त रहने से शरीर भी शान्त रहता है और ऐसे शरीर में औषधि भी अनुकूल क्रिया करती है । भगवत्सेवा भगवदा– राधना ही साधुओं की वृत्ति है । नित्य आराधना नित्य पूजा पाठ में [illegible] होने से उन लोगों का मन उद्विग्न हो जाता है चित्त अशान्त हो जाता है । तुम्हारे रेचक औषधि से इस महात्मा का दस्त जब तक निवृत्त नहीं हुआ तब तक उनका स्नान तथा पूजा बन्द रहा । उनको महान कष्ट हुआ [illegible] प्रसाद भी नहीं पा सके । साधु की चिकित्सा में रेचक औषधि के प्रयोग से यथा सम्भव निवृत्त होना चाहिए

साधु सन्त की चिकित्सा में इस विशेष नियम के ऊपर विशेष ध्यान देकर चिकित्सा करनी चाहिए।''

उनका समस्त निर्देश मनोनिवेश पूर्वक मैं श्रवण किया। उनके इस निर्देश का तात्पर्य अच्छी तरह हृदयङ्गम नहीं हुआ। उस समय हमारा मन अहङ्कार से भरा था मेरे मन में ऐसा हुआ कि मैं चिकित्सा विद्या में एकजन विशिष्ट पारदर्शी पुरुष हूँ। एक जन उदीयमान् साफल्य मण्डित ''सुचिकित्सक हूँ'', इस अहङ्कार से हमारा मन भरपूर था। अधिकांश व्याधि की चिकित्सा में प्रथमतः रेचक औषधि की व्यवस्था का नियम है तथा सर्वत्र अविलम्बित होता है। 'OPEN WITH A CLEAN- STATE' यही चिकित्सा क्षेत्र में विशिष्ट विधि है। इस क्षेत्र में भी रेचक औषध का प्रयोग विशेष प्रयोजन समझ कर ही मैं वैसी व्यवस्था किया हूँ। लेकिन श्री स्वामी जी महाराज यह व्यवस्था अनुमोदन नहीं कर रहे हैं। उनका यह निर्देश उस समय अच्छी प्रकार उपलब्धि नहीं कर पाया तो भी उनके निर्देश के अनुसार रेचक औषध बन्द कर दिया। साधारण नियम और विशेष नियम में पार्थक्य क्या है उसको उस समय समझने में समर्थ नहीं हो सका। प्रायः दो वर्ष के बाद मैं जब फिर अयोध्या श्री विजयराघव जी आश्रम में जाकर वहाँ अवस्थान किया था। उस समय एक दिन श्री स्वामी जी महाराज के उदर में पीड़ा होने लगी। प्रातःकाल दो तीन बार दस्त हुई वे प्रथम दो एक बार स्नान करके शरीर शुद्ध किए किन्तु उस समय भी उनका दस्त बन्द नहीं हुआ था, और दस्त की शङ्का लगी रही, श्री स्वामी जी महाराज उस समय से सारा दिन अशुचि भाव में ही गोशाला के एक तरफ पड़े रहे। थोड़ा प्रसाद ग्रहण करना तो दूर रहा, स्नान पूजा पाठ कुछ भी नहीं हुआ। उनके कष्ट की और अवधि नहीं रही। संध्या होने के बाद उदर पीड़ा शान्त होने पर वे स्नान किये,और आराधना किये। परन्तु उस दिन कुछ प्रसाद नहीं पाये। दूसरे दिन प्रातः स्नान पूजा पाठ समाप्त करने के बाद कुछ प्रसाद ग्रहण किये। उसी दिन मैं प्रत्यक्ष उपलब्धि किया कि वे क्यों साधु की चिकित्सा में रेचक औषध निषेध किये थे। उस समय मैं श्री स्वामी जी महाराज की अवस्था देखकर प्रायः दो वर्ष पूर्व दिये हुए साधु के रेचक प्रयोग विधि निषेध विषय, उनका विलक्षण निर्देश बहुत से हृदङ्गम किया। मन में विचार किया–कि सांसारिक पुरुष दैनन्दिन अर्थकारी कार्य में बाधा पड़ेगी ऐसा समझ छुट्टी के दिन के अलावा जुलाव नहीं लेते, यही उन लोगों का नियम है। घर में किसी विवाहादि सांसारिक उत्सव के दिन कोई रेचक व्यवहार नहीं करते, कारण उससे सांसारिक उत्सव का कार्य करने में बाधा पड़ेगी। यह सब विधि चिकित्सक समझते हैं, यह सब नियम वे मान कर चलते हैं। किन्तु साधु समाज में जिस जगह नित्य आराधनादि पारमार्थिक कार्य साधु के लिए एक उत्सव विशेष है, वहाँ इस उत्सव में विघ्न दायक किसी औषधि के प्रयोग के विषय में यथा सम्भव मानकर क्यों नहीं चलेगे। इस प्रकार की भावना नाना भाव से मन में उस समय उदय होने लगी। बाद में बहुत साधुओं की अनेक प्रकार की चिकित्सा करने का सौभाग्य हुआ है, प्रत्येक बार ही श्री स्वामी जी महाराज का यह अमूल्य उपदेश स्मरण रखकर चिकित्सा किया हूँ। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण चिकित्सा में सुफल व्याहत हुआ है ऐसा मन में कभी नहीं हुआ।

''कैङ्कर्यकारी की मर्यादा''

अब की बार आश्रम में रहने के समय श्री स्वामी जी महाराज का एक और विलक्षण आचरण अनुभव करके मैं विस्मित हो गया। पहले कहा गया है कि खृष्टाब्द 1920 साल में हम लोगों के आश्रम में रास्ता के पास एक वृहदायतन घर निर्मित हुआ था, डिप्टी साहब श्री उपेन्द्र मोहन सेन गुप्त के अर्थानुकूल्य से। इस घर में साधुओं का जिनिष (सामान) पत्र रखने के लिए कई एक ताख तैयार किया गया था। दीवाल में प्रायःचार फुट

ऊँचाई में दोनों तरफ दो लोहे का डण्डा लगाकर उसके ऊपर तख्ता देकर वह सब ताख बनाया गया था। कुछ दिन के बाद समझा गया कि वह सब ताख विशेष असुविधा की सृष्टि कर रहा है। साधुगण इस घर में बैठकर प्रायः ही सत्संग करते थे। अतर्कित रूप से उठकर खड़े होने के समय लोहा का डण्डा खूब जोर से माथा में लग जाता था यहाँ तक कि अनेक समय माथा फटकर रक्त पात हो जाता था वे सब साधु अत्यन्त कष्ट पाते वे और सर्वदा ही इस आघात के लिए सशङ्कित हुए रहते। सभी आश्रमवासी ही मन में सोचते कि यह सब ताखें को घर से हटा देना ही उचित है। किन्तु श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति अथवा आदेश व्यतीत (बिना) यह कार्य करना सम्भव नहीं होगा। यह विचार कर वे सभी मिलकर आपस में परामर्श किये, एवं सभी के अनुरोध से अधिकारी जी श्री स्वामी जी महाराज के पास जाकर इस विषय में निवेदन किये। उपयुक्त अवसर में वे श्री स्वामी जी महाराज से बोले–'' बड़े घर में जो सब ताख हैं उसमें लोहे का डण्डा लगा हुआ है, उस डण्डे से प्रायः प्रत्येक साधु ही बहुत बार कठिन आघात पाते रहते हैं एवं इस आघात के भय से वे प्रायः सभी सर्वदा सशङ्कित रहते हैं। आपकी अनुमति पाने पर उन सब ताखों को हम लोग हटा सकते हैं। श्री स्वामी जी महाराज धीरचित्त से यह समस्त समाचार श्रवण किये। तदन्तर वे मन्तव्य किये –

'' तुम लोगों का कथन समीचीन तो है किन्तु जिन्होंने अभिमान पूर्वक अपने अर्थ के व्यय से इस गृह निर्माण के कैङ्कर्य को किया है, उनकी अनुमति व्यतीत इस घर का किसी प्रकार परिवर्तन साधन करना हमारे लिए सम्भव नहीं होगा। उनकी अनुमति बिना इस कक्ष का किसी प्रकार के परिवर्तन करने पर कैङ्कर्यकारी के मर्यादा की हानि होगी। मैं यह समझ रहा हूँ यह सब ताख नहीं तोड़ने से साधुओं को विशेष असुविधा हो रही है किन्तु मैं निरुपाय हूँ। तुम लोग श्रीमान् डिप्टी साहब को यह सब विवरण लिखकर पत्र भेज दो। उनसे इन समस्त ताखों को तोड़ देने की अनुमति माँगो, उनकी अनुमति पाने के बाद आवश्यक समझ कर परिवर्तन किया जायेगा।''

श्री स्वामी जी महाराज के इस प्रकार दृढ़ सिद्धान्त की बात को सुनने के बाद कोई इस प्रसङ्ग को पुनः उत्थापन करने का साहस नहीं किया। विभिन्न धर्म समस्या में श्री स्वामी जी का इस प्रकार सूक्ष्म विचार हम लोगों की बुद्धि के अगम्य है। वे साधु सेवा के लिए आश्रम बनाये हैं। इन साधुओं को जिससे किसी प्रकार की असुविधा न हो, उस तरफ वे सर्वदा नजर रखते कक्ष में गृह वासी साधुओं के कक्ष में सुविधा की सृष्टि हो नहीं है, वे इसके कारण प्रायः ही देह में आघात पा रहे हैं। श्री स्वामी जी सुने तथापि कैङ्कर्यकारी के मर्यादा रखने के लिए इस विषय में कोई प्रतिकार करने की अनुमति नहीं दिये। श्री स्वामी जी आश्रमवासी के दुःख प्रतिकार के ऊपर ही इस गृह निर्माण में कैङ्कर्यकारी की मर्यादा रखे। यह कैसा सूक्ष्म विचार है क्या विशुद्ध सिद्धान्त है केवल अनुभव योग्य है। इस विषय में विस्तृत आलोचना निष्प्रयोजन है। केवल इतना ही कह सकते हैं कि साधारण बुद्धि सम्पन्न हम लोग सभी इस प्रकार व्यापार के प्रतिकार करने के लिए किसी प्रकार विधान करके कहते कि सब ताखों को तोड़ देना कर्तव्य है। और वह सब तोड़ देते, दूसरे किसी से भी जिज्ञासा बाद करने का प्रयोजन ही मन में करते नहीं। माया की ऐसी खेला कि मूर्तिमान् धर्म का सान्निध्य लाभ करके भी कलिकाता लौटने का आकर्षण अवरोध नहीं कर सका। कार्यभार के कारण कलिकाता लौटने को बाध्य हो गया। चार पाँच दिन तक श्री स्वामी जी महाराज के चरण समीप में रहकर, उनकी अनुमति लेकर कलिकाता लौट आया। आश्रम की श्री वृद्धि 1924 खृष्टाब्द, नव निर्मित मन्दिर में श्री विजयराघव जी महाराज का प्रतिष्ठा

कार्य सम्पन्न हुआ। श्री स्वामी जी महाराज की आन्तरिक अभिलाषा पूर्ण हुई। वे कृतकृत्य होकर शान्त हुए। प्रिय – भक्त की मनोवाञ्छा भगवान कभी अपूर्ण नहीं रखते। कितने करुणा से पूर्ण होकर अपने भक्त को चरितार्थ करने के लिए अति अलौकिक भाव से श्री विजयराघव जी श्री अम्बा जी श्री लक्ष्मण जी एवं श्री हनुमान जी यह श्री विग्रह चतुष्टय, अपनी इच्छा से दक्षिण भारत से श्री अयोध्या आगमन करके श्री मन्दिर में विराजित हुए हैं यह वृत्तान्त इससे पूर्व ही वर्णित हुआ है। भक्त भगवान को पाने के लिए जितना लालायित होते हैं, भगवान भी भक्त को पाने के लिए, उनकी सेवा ग्रहण करने के लिए उसी तरह लालायित होते हैं, वरं भक्त की अपेक्षा भगवान अधिक लालायित रहते हैं, इसीलिए रामायण में महर्षि वाल्मीकि कीर्तन किये हैं– 'व्यसनेषुमनुष्याणां, भृशं भवति दुःखितः। इसके पूर्व इस कथा का भी उल्लेख किया हुआ है।

श्री स्वामी जी महाराज तन मन भर के श्री विजय राघव जी भगवान के प्रमुख श्री विग्रह चतुष्टय का कैङ्कर्य करने लगे। सम्यग् विधि के अनुसार पूजा चलने लगी। अयोध्यास्थ बाग विजेसी मुहल्ला में जो बगीचा क्रय किया हुआ था श्री स्वामी जी महाराज के निर्देश से वहाँ बहुत तुलसी बहुत तरह के पुष्प का चारा रोपित हुआ। पर्याप्त पुष्प और तुलसी वहाँ से श्री मन्दिर में ले आना शुरू हुआ श्री स्वामी जी प्राण भरकर श्री विजय राघव जी भगवान की अर्चना करके परितृप्त होने लगे। विशेष विशेष समय पर विशेष विशेष तिथि, नक्षत्र में -श्री रामचन्द्र, श्री कृष्णचन्द्र, श्री नृसिंह देव, श्री वामन देव प्रभृति की जयन्ती में, श्री झूलन, श्री रास, श्री होली प्रभृति विशेष लीला की तिथि नक्षत्र में, द्वादश आड़वारगण नाथ, यामुन, यतिवर श्री रामानुज स्वामी प्रभृति पूर्वाचार्यगण,एवं निज आचार्य श्री। रङ्देशिक स्वामी प्रभृति की आविर्भाव तिथि में विशेष विशेष रूप में उत्सव का अनुष्ठान चलने लगा।

भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी उद्धव जी से कहते हैं – 'सुदृढ़ रूप से हमारा मन्दिर निर्माण करके उस मन्दिर में हमारा अर्चाविग्रह स्थापन करना। इसके बाद उस अर्चाविग्रह की नित्य पूजा विशेष विशेष तिथि नक्षत्र में उत्सवानुष्ठान एवं उत्सव विग्रह की यात्रा। (समारोह पूर्वक वीथि भ्रमण) आदि विलक्षण अनुष्ठानों का प्रवर्तन करना चाहिए श्री विजयराघव जी महाराज का श्री विग्रह प्रतिष्ठित होने के बाद से ही उद्धव के प्रति श्री कृष्णचन्द्र भगवान का यह उपदेश श्रीमद्भागवत 11/17/50 श्री स्वामी जी महाराज के द्वारा सम्यक् अनुष्ठित होने लगा। वे हम लोगों को उपदेश देते –

'सीता लक्ष्मण वायुसूनु, सहितं श्रीरामचन्द्रं भजे'

सिद्ध महापुरुष के श्री मुख से निकला हुआ यह उपदेश भी श्री भगवान् की कृपा से यथायथ कार्य में परिणत हुआ। इस विग्रह चतुष्टय की एकत्र पूजा करना ही विधेय है। ऐसा नहीं होने से श्री रामचन्द्र की पूर्णाङ्ग पूजा नहीं हो सकती, यही श्री स्वामी जी का सुदृढ़ सिद्धान्त था। उनका यह सिद्धान्त जो कितना पक्का था, इस विषय में दो एक घटना का उल्लेख किया जा रहा है।

श्री अयोध्या में नूतन मन्दिर नूतन श्री विग्रह की प्रतिष्ठा के समय सभी अध्यक्षगण श्री स्वामी जी महाराज को उस स्थल पर उपस्थित रहने के लिए उनसे सनिर्वन्ध प्रार्थना करते थे। किसी किसी मन्दिर में वे जाते और कहीं नहीं भी जाते थे। जाने का अथवा नहीं जाने का क्या कारण है उसे जानने का उपाय नहीं था। वे अत्यन्त गम्भीर प्रकृति के थे, उनका आशय जान लेना बड़ा कठिन था। जिस जगह योगदान करने में एक बार अस्वीकृत होते उस स्थल पर अनुरोध, उपरोध अथवा प्रार्थना में सुफल होने की सम्भावना कम थीं।

कुछ ज्यादा 50 वर्ष पहले की बात है। श्री स्वामी जी महाराज की अवस्था उस समय न्यूनाधिक 70 वर्ष थी। अयोध्या किसी मन्दिर में श्री रामचन्द्र एवं सीता देवी के विग्रह की प्रतिष्ठा होगी, वहाँ के महान्त जी श्री स्वामी जी महाराज के समीप आये। उनसे प्रतिष्ठा उत्सव में उपस्थित रहने के लिए प्रार्थना किये। श्री स्वामी जी महाराज प्रश्न किये कि कौन – कौन विग्रह प्रतिष्ठित होंगे। महान्त जी निवेदन किये 'श्रीराम–सीता' यह सुनकर वे अनेक प्रकार का साधारण कार्य्य व्यस्तता दिखाकर उस प्रतिष्ठा उत्सव में उपस्थित होने स्वीकार नहीं किये। बहुत अनुनय विनय करने के बाद श्री स्वामी जी महाराज समुपस्थित महन्त एवं वैष्णव वृन्द से कहने लगे – 'केवल श्रीराम जी एवं अम्बा जी (सीता देवी) की विग्रह स्थापना पर्याप्त नहीं है शास्त्रानुमोदित भी नहीं है। साथ साथ एकत्र श्री लक्ष्मण, जी एवं श्री हनुमान जी के श्री विग्रह द्वय की प्रतिष्ठा करना भी अपरिहार्य हैं। उस जगह पर यह चार मूर्ति एकत्र प्रतिष्ठित नहीं होगी, इस कारण से वहाँ मैं प्रतिष्ठा – उत्सव में योग नहीं दे सकता।

इतना कहने के बाद श्री स्वामी जी महाराज फिर कहने लगे –

'' देखिये श्री सीता जीने कहा है ' अनन्या राघवेणा हम्' इसलिए केवल अकेले श्रीरामचन्द्र जी की प्रतिष्ठा न होकर साथ में श्री अम्बा जी की भी प्रतिष्ठा करने का प्रयोजन है। लक्ष्मण के विषय में भी यही सिद्धान्त है 'जलान्मत्स्या विवोद्धृतौ' जल में से मत्स्य को निकाल पृथक कर देने पर मत्स्य की जो दशा होती है, लक्ष्मण को रामचन्द्र जी से विश्लिष्ट कर देनेपर उनकी भी वही अवस्था होगी। और हनुमान जी भी कहे हैं 'भावो नान्यत्र गच्छति' हमारी भावना रामजी से भिन्न अन्यत्र कहीं भी स्थान नहीं पाती। अतएव स्थिर विचार से यह सिद्धान्त अनिवार्य है कि श्री राम जी के सहित अम्बा जी लक्ष्मण जी एवं हनुमान जी से युक्त प्रतिष्ठा करना ही आदर्श है। एतद्व्यतीत हम लोगों के पथ प्रदर्शक पूर्वाचार्यगण का अनुष्ठान स्मरण करने पर भी सर्वत्र यही सिद्धान्त प्रतिपन्न होता है। देखिये, हमारे मन्दिर में स्थित अर्चाविग्रह श्रीराम जी, सीता जी, लक्ष्मण जी, एवं हनुमान जी, ये चार विग्रह एकत्र प्रतिष्ठित हैं। ये चतुर्विग्रह कृपापूर्वक अपनी इच्छा से दक्षिण भारत के एक प्राचीन मन्दिर से इस स्थल पर आगमन किये हैं। वहाँ के रहने वाले साधुओं के मुख से सुना हूँ कि ये सभी श्रीरामानुज स्वामी के भागिनेय श्री दाशरथि स्वामी के द्वारा एक समय सेवित होते थे। अतएव देखा जाता है कि इस प्रतिष्ठा के विषय में हमारे परमध्येय पूर्वाचार्यगण का भी इसी प्रकार का सिद्धान्त एवं अनुष्ठान था। इसी कारण से मर्मज्ञ महात्मागण लिख गये हैं –

''सीता लक्ष्मण वायुसूनुसहितं श्री रामचन्द्रं भजे''

श्री स्वामी जी महाराज के श्री मुख से इस सुदृढ़ सिद्धान्त की कथा सुनकर नव मन्दिर के अध्यक्ष और भक्तगण उसका उत्कर्ष सम्यक् उपलब्धि किये। वे पूर्व निर्दिष्ट दिन में प्रतिष्ठा उत्सव वन्द रखे। बाद में श्री लक्ष्मण जी एवं श्री हनुमान जी की श्री मूर्ति निर्माण कराकर एक साथ चार विग्रह की प्रतिष्ठा कराने का उद्योग किये। प्रतिष्ठा के दिन श्री स्वामी जी महाराज उपस्थित हुए। प्रतिष्ठा कार्य सुष्ठु भाव से सम्पन्न हुआ।

श्रीरङ्ग जी मन्दिर के प्रतिष्ठाता श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के शिष्य सेठ लक्ष्मण दास जी के परमपद के बाद उनकी धर्म पत्नी उपदेश सुनने के लिए हमारे आचार्य देव श्री बलराम स्वामी जी के कालक्षेप की गोष्ठी में नियमित भाव से योग देती थी। एवं अत्यन्त श्रद्धा के साथ पाठ एवं उपदेश सुनती थीं। श्री स्वामी जी महाराज उनको भौजी कहकर सम्बोधन करते थे। एवं तदुपयोगी मान्य दान करते थे।

एक दिन कालक्षेप का निर्दिष्ट समय अतिवाहित हो गया। भागवत गोष्ठी समस्त समवेत हो गई है, और

उस समय भी आकर उपस्थित हुई नहीं थीं इसलिए श्री स्वामी जी महाराज अपेक्षा कर रहे थे। कुछ काल के पश्चात् ही भौजी आ गई। अपने इस विलम्ब के लिए वे लज्जित हो रहीं। श्री स्वामी जी महाराज उनसे इस विलम्ब का कारण पूछे वे निवेदन की, कि ''कई एक भक्त के साथ मैं श्री हनुमान जी के मन्दिर में दर्शन के लिए गई थी, इसी कारण कुछ देरी हो गई। इस देरी के लिए भागवत गोष्ठी के निकट मैं अपने को अपराधिनी मानती हूँ।

भौजी के मुख से यह बात सुनकर श्री स्वामी जी महाराज सन्तुष्ट नहीं हुए। वे शासनोपयोगी कंठ से भौजी जी से बोले हनुमान जी के मन्दिर में दर्शन के लिए जाना आपके लिए समीचीन नहीं हुआ। इतना दिन आपने जो कालक्षेप श्रवण किया है उसका मर्म आप अपने हृदय में उपलब्धि नहीं कर सकीं, आप का यह अनुष्ठान अनन्य भजन प्रत्यवाय स्वरूप है''।

समवेत भागवत मण्डली श्री स्वामी जी महाराज के इस अनुशासन का तात्पर्य अनुधावन नहीं कर सकी। कोई कोई उनकी इस उक्ति से विस्मित हो गये। भक्तमण्डली के हृदय का भाव अनुभव करके श्री स्वामी जी महाराज उन लोगों को सम्बोधन करके पुनर्वार कहने लगे –

''हमारे इस मन्तव्य का यथार्थ मर्म, बोध होता है तुम लोगों के हृदयङ्गम हुआ नहीं, हो सकता है कि तुम लोग यह भावना कर रहे हो कि हनुमान जी आदर्श राम भक्त हैं, उनके मन्दिर में दर्शन के लिए जाने से क्या प्रत्यवाय हो सकता है। यही भावना करके शायद हमारी उक्तिओं को श्रवण करके तुम लोग विस्मित हो रहे हो। तुम लोगों का यह मनोभाव, निराकरण के लिए, तुम लोगों के निकट अनन्य भजन का यथार्थतत्व, विश्लेषण कर दे रहे हैं, सावधान चित्त से श्रवण करो।''

श्री स्वामी जी महाराज कहने लगे–''अनन्य भजन शब्द का अर्थ है, एक इष्ट देव को छोड़कर अन्य किसी का भजन नहीं करना। वैष्णवों के लिए विष्णु, विष्णु का अवतार, अर्चावतार एवं उनकी भक्त गोष्ठी का भजन करना, यही विधि के अन्तर्भुक्त है। इस हिसाब से श्रीरामचन्द्र, श्री सीता देवी, श्री लक्ष्मण जी एवं श्री हनुमान जी का एकत्र भजन करने की विधि समस्त वैष्णवों को अवश्य पालन करनी चाहिए। श्रीरामचन्द्र जी परम पुरुष के हिसाब से भजनीय हैं, श्री सीता देवी, श्री लक्ष्मण जी एवं श्री हनुमान् श्री इस परम पुरुष के परम आश्रित भक्त हैं एवं उनके एकान्त परतन्त्र रामपरिकर हैं अतएव श्रीरामचन्द्र जी के सहित एकत्र भजनीय हैं।

जिस समय कोई भक्त अनुराग के वश कोई मन्दिर निर्माण करके उसमें श्री रामचन्द्र जी आदि की स्थापना नहीं करके केवल श्री हनुमान जी की ही स्थापना करते हैं, उस समय श्री हनुमान जी के, एकान्त पारतन्त्र्य रूप – स्वरूप की हानि हो जाती है। अतः हनुमान जी उस स्थल पर अपने स्वरूप से अवस्थान नहीं करते, परन्तु स्वातन्त्र्य विशिष्ट आरोपित स्वरूप से उनको अवस्थापित किया जाता है। श्रीरामचन्द्र जी की अर्चना के बिना ही उस स्थल पर स्वतन्त्र भाव से अर्चित हुआ करते हैं,यह स्वरूप विरुद्ध अर्चना स्वयं श्री हनुमान जी के भी अभिप्रेत नहीं हो सकती। यह, यथार्थ स्वरूप को नहीं जानने वाले भक्तों का अनुराग प्रसूत अनुष्ठान है। स्वरूपज्ञ भक्त गोष्ठी के पक्ष में यह पालनीय नहीं है। जिस समय श्री सीताराम जी के सहित उन लोगों के अनुगत भाव से एवं परतन्त्र रूप से श्री हनुमान् जी प्रतिष्ठित होते हैं, उस समय उन तीन विग्रहों के साथ हनुमान जी की भी अर्चना विधेय है।, इस प्रकार की विधि ही स्वरूपज्ञ शिष्टों से परिगृहीत है।'' श्री स्वामी जी महाराज के भगवत् स्वरूप, एवं भागवत,स्वरूप का ऐसा ज्ञान गर्भ विश्लेषण एवं तत्व निरुपण सुनकर

समवेत भक्त गोष्ठी विस्मित एवं परितृप्त हो गई। श्री भौजी भी श्री स्वामी जी महाराज के अन्तर्निहित भाव को हृदयङ्गम करके कृतज्ञ चित्त से हाथ जोड़कर उनको साष्टाङ्ग कीं।

प्रथमोक्तदृष्टान्त में देखा जाता है कि श्री सीता, लक्ष्मण एवं हनुमान जी के सहित एकत्र श्रीरामचन्द्र जी का भजन एवं पूजन ही समीचीन है। द्वितीय दृष्टान्त में देखा जाता है कि श्रीरामचन्द्र जी की सन्निधि के बिना ही स्वतन्त्र भाव से श्री हनुमान् जी की प्रतिष्ठा और अर्चना करना उनके स्वरूपानुरूप नहीं है, इसी कारण से यह विधि शिष्ट परिगृहीत नहीं है। स्वरूप का विश्लेषण सूक्ष्म एवं जटिल है। इस हेतु से प्रकृत स्वरूपज्ञ पुरुष अपेक्षाकृत विरल हैं। स्वरूप का यथार्थ ज्ञाता पुरुष ही श्रेष्ठ पुरुष है। उन लोगों का आचरण, दूसरों के लिए अनुकरणीय होता है।

''यद्यदाचरति श्रेष्ठ:, तत्तदेवेतरोजन:।'' (गीता 3/21)

''आश्रम की आभ्यन्तरीण क्रमोन्नति''

खृष्टाब्द 1905 साल में श्री स्वामी जी महाराज का अयोध्या धाम आगमन एवं वहाँ उनकी प्रतिष्ठा का अभिवर्द्धन जिस तरह विस्मयकर है, आश्रमस्थ मन्दिर में परिवार के सहित श्री विजयराघव जी महाराज के अर्चाविग्रह का शुभागमन भी उसी प्रकार से एक अलौकिक घटना है। उनके इस अलौकिक घटना की बात बहुत शीघ्र ही चारों तरफ फैल गई। श्री विजयराघव जी की महिमा प्रकट होने लगी। श्री स्वामी जी महाराज अयोध्या धाम छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं गये, तथापि उनका सौरभ मृगके नाभिस्थ कस्तूरी के सदृश चारो तरफ स्वत: ही विस्तार लाभ करने लगा आश्रम में परम भागवतगण, साधु सन्यासीगणों का आगमन उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगा।

रहिले गोपने स्थान मर्यादा
तवूओ भारत भरा ।
मृगनाभि वास तेभति स्वत: इ
छूटिल भरिल धरा ।।
अभिवृद्ध से करिया तूलिल
रामानुज – आज्ञा ।
प्रतिवत्सर उज्ज्वल तव
दिव्ययति अनुज्ञा ।। (आचार्य प्रकाश)

श्री विजयराघव जी का आश्रम भी ज्ञानीगुणी वैराग्य वान् भक्त मण्डली से मण्डित होकर अपरूप शोभा धारण करने लगा। प्राय: सभी श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य श्री स्वामी जी आश्रम के मूलउत्स होने पर भी निज शौच स्नान क्रिया, श्री विग्रह दर्शन और परिक्रमा के व्यतिरिक्त प्राय: सब समय ही एकान्त में अपनी कोठरी में विराज करते थे। बाहर से उसका सन्धान पाना दुष्कर है। अन्यान्य आश्रमवासी सभी आश्रम के किसी न किसी कैङ्कर्य में लिप्त रहते। आश्रम के अधिकारी श्री गरुडध्वज स्वामी जो आश्रम के समस्त कैङ्कर्य के परिचालक थे, वे सर्वक्षण आश्रम की सेवा में नाना विध आश्रम के कैङ्कर्य में तत्पर रहते। मालूम होता है कि जैसे मानो एक चलन्त एक ज्योति सतत तत्परता के सहित इधर इधर घूम फिर रही है। साधु सन्त अतिथि अभ्यागत सबको ही वे आदर के सहित अभ्यर्थना करते थे। आश्रम के सेवकगण अपनी – अपनी सेवा के विषय

में जिस वक्त जो परामर्श चाहते उस विषय में सुपरामर्श दान से उन सबको उत्साहित करते हैं एक जन अन्तरङ्ग सेवक नियत श्री स्वामी जी महराज की सेवा में एकान्त भाव से निरत थे। प्रायशः ही उनके पाश ही पास रहते थे। रात्रि में भी उनकी कोठरी में ही शयन करते थे, शेषरात्रि में वे श्री स्वामी जी के जग जाने पर उनका मुख प्रक्षालन आदि करा देते थे, प्रात:काल स्नान के समय उनके स्नान आदि का वन्दोवस्त कर देते थे, उनके लिए दूध–फल प्रस्तुत करके उसे भोग लगाकर। (कमलनयन जी नामक) सेवा के लिए उनके पास उपस्थित कर देते थे। इस भाव से उनके आदर्श अन्तरङ्ग परिचारक रूप में अवस्थान करते थे। श्री दामोदर रामानुज दास, श्रीरामकृष्ण रामानुजदास प्रभृति कई एक जन में धावी विद्यार्थी भी उस समय आश्रम में रहकर शास्त्री परीक्षा देने के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। यही दामोदर जी इस समय श्री विजयराघव जी के आश्रम में वास करते हैं। इस समय ये ज्योतिष शास्त्र के एकजन उपाधिधारी आचार्य हैं, अयोध्या के एक प्रख्यात विद्यालय में ज्योतिष शास्त्र के अध्यापक भी हैं। श्रीरामकृष्ण जी इस समय श्रीरामकृष्ण शास्त्री, प्रयाग में एक संस्कृत विद्यालय के अध्यापक हैं। एवं कैङ्कर्य हिसाब से शास्त्र की अध्यापना भी करते हैं, उपरोक्त विशिष्ट साधुवृन्द के व्यतिरिक्त 14/15 जन विद्यार्थी इस आश्रम में रहकर अयोध्या के विभिन्न विद्यालय में व्याकरण, न्याय, वेदान्त, ज्योतिष प्रभृति विभिन्न विषय में विद्या शिक्षा ग्रहण करते थे। ये समस्त ही गृही श्री वैष्णव, तथा अधिकांश ही श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य थे। अयोध्या केराजसभा नामक मठाधीश श्री भागवताचारी स्वामी के प्रिय शिष्य परम भागवत स्वरूपज्ञ और विरक्त वैष्णव श्री रामाचारी स्वामी अधिकांश समय में श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में ही कालातिपात करते। इनका विषय इसके पूर्व उल्लेख किया हुआ है। कई एकजन विरक्त वैष्णव भी उस समय आश्रम में रहकर कुठार घर की देख रेख (कुठारी), भोग रन्धन (रसोइयाँ), गोशाला का तत्वाव– धायक, प्रभृति आश्रम के विविध सेवा विभाग का कार्य निर्वाह करते। श्री भागवताचारी शास्त्री जी नियत रूप में नहीं रहने पर भी अधिकांश समय में आश्रम में वास करते। बीच – बीच में श्वास काश रोग के बढ़ जाने पर चिकित्सा के लिए अथवा वायु परिवर्तन के लिए उत्तर अथवा दक्षिण भारत के उपयोगी स्थान में कुछ काल के लिए चले जाते थे। ये एकजन रहस्य शास्त्रज्ञ, स्नेहशील मधुर भाषी महापुरुष थे। सद्व्यवहार से एवं सदुपदेश दान से सभी आश्रमवासी को वशीभूत कर रखे थे। श्रीराम प्रपन्न शास्त्री जी वृन्दावनस्थ श्री स्वामी जी महाराज के श्री गोपालजी मन्दिर के परिचालक थे। वे प्रायः ही वृन्दावन से अयोध्या श्री विजय राघवजी आश्रम में आकर कुछ काल अपने आचार्य की सन्निधि में निवास करते।

सुदूर चट्ट ग्राम से श्री पराङ्कुश शास्त्री भी बीच बीच में अपने गुरुदेव की सन्निधि में आकर आश्रम में वास करते थे। ये सभी ज्ञानी भक्त जिस समय एकत्र मिलित होते थे उस समय आश्रम एक अपरूप शोभा धारण करता था। काशी से काशी विश्व विद्यालय के वेदान्त के आचार्य परीक्षार्थी श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य श्री रघुनाथ शास्त्री महाराज के चरणाश्रित श्रीरङ्गरामानुजदास जी बीच – बीच में श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन के लिए आते रहते थे। वे बहुत दिन तक काशी श्री वैष्णव महा विद्यालय के एकजन प्रधानाध्यापक थे। मैने देखा इसी समय में बहुत धर्म पिपासु, ज्ञान पिपासुगण अपनी अपनी पिपासु मिटाने के लिए नित्य आश्रम में आकर उपस्थित होते थे। उनमें अनेक ही श्री स्वामी जी महाराज के सन्मुख अग्रसर होने का साहस नहीं पाते थे। इसीलिए वे श्री भागवताचारी, श्री रामप्रपन्नाचारी, श्री पराङ्कुशाचारी प्रभृति ज्ञानवृद्धों के निकट अवस्थान करके धर्मालोचना के द्वारा परितृप्त होते थे।

श्रीरामनवमी, झूलन उत्सव प्रभृति विभिन्न उत्सव के समय बहुत धर्म प्राण नर नारियों से आश्रम परिपूर्ण हो जाता था। उन लोगों की सुख सुविधा के लिए समस्त आश्रमवासी ही व्यस्त हो पड़ते। श्री विजयराघव जी भगवान की प्रतिष्ठा के बाद से क्रमशः आश्रम के इस परिस्थिति की श्रीवृद्धि होने लगी। शिष्य सेवकगण एकत्र मिलित रूप से स्वतः प्रवृत्त होकर यह व्ययभार वहन करने लगे। श्री गरुडध्वज स्वामी अधिकारी जी अकेले ही आश्रम के सभी विषयों के परिचालक सर्वाङ्गीण व्यय के हिसाब रक्षक थे। आश्रम का सेवाभार इस प्रकार वृद्धि पाने लगा कि अधिकारी जी के पक्ष में अकेले उसकी परिचालना करना एक दुःसाध्य व्यापार हो उठा। उस समय अन्य एक जन सहकारी की आवश्यकता हुई। श्री स्वामी जी अपने एक विरक्त शिष्य श्री राघवदास जी को 'छोटे अधिकारी' के पद पर नियुक्त कर दिये। अधिकारी श्री गरुड़ध्वज स्वामी के सहकारी अधिकारी रूप से सेवाकार्य की परिचालना करने लगे। चावल, दाल, तेल, घी, मसाला, रामरस, जलाने का काठ आदि भोग एवं रन्धन के द्रव्य को क्रय करने का भार, श्री भगवान के बगीचा का एवं खेत में फसल उपजाने की परिचालना का भार उनके ऊपरन्यस्त हुआ। आश्रम के भीतर का समस्त कार्यभार अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी स्वयं परिदर्शन करने लगे। अवश्य यह समस्त प्रसार और परिवर्तन श्री स्वामी जी महाराज के निर्देश से ही प्रवर्तित होने लगा।

'' श्री स्वामी जी महाराज का वैराग्य''

'आश्रम की इस क्रमोत्कर्ष धारा के मूल उत्स आश्रम के निर्वाहक श्री स्वामी जी महाराज स्वयं थे। उनका आदर्श गम्भीर ज्ञान, ऐकान्तिक भक्ति एवं वैराग्य ही समस्त आश्रमवासियों के सामने एक जीवन्त और ज्वलन्त आदर्श था। उनके इस ज्ञान, भक्ति की कथा इसके पूर्व अनेक तरह से कथित हुई है। इस स्थल पर उनके अनुपम वैराग्य के सम्बन्ध में दो एक शिक्षाप्रद विशिष्ट अनुष्ठान का विषय विवृत हो रहा है।

1 – श्री स्वामी जी महाराज की तपस्या

एक समय उनके एक शिष्य पद्मनाम रामानुज दास जी महाराज के दर्शन के लिए कलिकाता से अयोध्या गये थे। साथ में बिछाने का एक नरम तोषक ले गये थे। उनकी एकान्त यह इच्छा थी कि गुरुदेव इसको व्यवहार करें। वे उस तोषक को गुरुदेव के चरण प्रान्त में रखकर अपनी आन्तरिक अभिलाषा को उनसे निवेदन किये। वे मधुर हास्य पूर्वक तोषक ले लिए, शिष्य भी कृतकृत्य हो गये।

''शिष्य के दिए हुए नये तोषक के व्यवहार से मनोभाव''

रात्रि में शयन करने के समय श्री स्वामी जी महाराज उस तोषक को व्यवहार किये। दूसरे दिन प्रातःकाल शिष्य उनको प्रणाम करने गया एवं नये तोषक से उनकी निद्रा में अनुकूलता हुई थी या नहीं, आग्रह के सहित जिज्ञासा किया। श्री स्वामी जी महाराज उनसे कहने लगे–''भैया! हमने तुम्हारा दिया हुआ विछौना व्यवहार किया है। सुख शय्या होने की वजह निद्रा भी कुछ वेशी हुई थी किन्तु हम फिर और यह शय्या व्यवहार करेंगे नहीं। यह शरीर के लिए अनुकूल तो अवश्य है – किन्तु आलस्य उत्पादन करना है, फलतः भगवदनुभव के लिए यह प्रतिकूल है। तुम्हारे सन्तोषार्थ ही गत रात्रि में हम इसे व्यवहार किये हैं। और फिर इसे व्यवहार नहीं करेंगे, इसके लिए मन में दुःख नहीं करना।

श्री स्वामी जी महाराज एक जन परम वैराग्यवान महा पुरुष थे। उनके परिधान में कटिसूत्र, कैपीन, जानु पर्यन्त चार हाथ का एक कटिवस्त्र, एवं चार हाथ का एक उत्तरीयवसन (चादर) था। उनका आसन एक

कम्बल, शय्या भी कम्बल की थी कभी – कभी वह चादरसे ढकी रहती। उनका भोजन भगवत्प्रसादित कुछ दूध और कन्द मूल था। उनकी एक मात्र वृत्ति, भगवद् अनुभव एवं भगवत् भागवत सेवा थी। उपरोक्त प्रकार का दैहिक कृच्छ साधन ही उनकी इस वृत्ति के अनुकूल था। यही उनकी तपस्या थी। वे शिष्य के एकान्त आग्रह से उनकी मनोवासना चरितार्थ करने के लिए केवल एक रात्रि के लिए उससे निवेदित सुख–शय्या व्यवहार किये थे किन्तु इसे भगवदनुभव विरोधी जानकर दूसरे दिन ही उसे वर्जन कर दिये। यही शरणागत पुरुष की तपस्या है। अपनी प्रतिकूलता रहने पर भी भक्त की अनुकूलता विधान करना इन समस्त महापुरुषों के दिव्य चरित्र का जो दूसरी एक अनुष्ठानभङ्गी होती है, वह भी उनके एतत्संश्लिष्ट आचरण से सुस्पष्ट प्रकाशित हुआ है। प्रकृत साधु महापुरुष का महत्चरित्र अतीव गम्भीर होता है, वे अगर स्वतः नहीं समझा दें तो इसको यथार्थ रूप से समझना सम्भव नहीं है।

शिष्य का प्रधान कृत्य है, गुरु के देह की रक्षा करना, गुरु का प्रियकार्य करना। गुरु का प्रधान कृत्य है, शिष्य के आत्मा की रक्षा करना, उज्जीवित करना, शिष्य का हित साधन करना। गुरु शिष्य के कृत्य विषय में यही प्रकृत मर्मार्थ है। यह तत्व इस प्रसङ्ग में प्रस्फुटित हो गयी है।

2– ''श्री स्वामी जी के वैराग्य की सीमा भूमि''

उस समय श्री स्वामी जी की अवस्था किञ्चित् अधिक 50 से 60 वर्ष के भीतर रही होगी। केवल ग्यारह वर्ष की अवस्था में जननी, आत्मीय स्वजन, गृह परिजन आदि परित्याग करके अपने अभीष्ट देवता के प्रति सन्धान में बाहर हो गये थे। कई एक वर्ष तक पैदल नाना तीर्थ भ्रमण करने के बाद श्री वृन्दावन में आचार्य के चरण प्रान्त में आश्रय लाभ किए थे। इसके बाद उन्हीं के आश्रम में कठोर साधना में निरत हुए थे। परिधान वस्त्र, जानुपर्यन्त कटि वस्त्र चार हाथ लम्बा; एवं एक उत्तरीय चादर चार हाथ लम्बा था। केवल दूध और फल मूल सेवन करते थे। अल्पभाषी थे, ग्राम्य वार्ता नहीं करते थे, केवल एकनिष्ठ भगवद्विषयक कथोपकथन करते थे। प्रायः अर्धशाताब्दी तक वृन्दावन रहने के समय मात्र एक बार दक्षिण भारत तीर्थ दर्शन के लिए गये थे। इसके अतिरिक्त एक दिन के लिए भी ब्रजमण्डल परित्याग करके अन्यत्र कहीं नहीं गये। इस अवस्था में अपने गुरुदेव के परम पद चले जाने के बाद वे अयोध्या धाम आकर श्री रघुनाथ जी के श्री पादमूल में निवास करने लगे।

आदर्श पुत्र को देखने के लिए एक बार उनकी माता के हृदय में तीव्र आकांक्षा हुई, मृत्यु के आगे एक बार उनको अपने नेत्र से देखेंगी यही उनके प्राण की एकान्त वासना थी, इसके लिए पुत्र को पत्र लिखी हैं पुत्र के पास बहुत बार आदमी भी भेजी हैं किन्तु पुत्र की सम्मति नहीं पाई। परिशेष में पुत्र का मुख देखने के लिए व्याकुल पिपासा माता को घर में नहीं रहने दिया। वे पुत्र को बिना सूचना दिये ही अयोध्याभि मुख रवाना हो गईं। माता के अयोध्या धाम पहुँचने पर श्री स्वामी जी लोक मुख से जान पाये कि हमें देखने के लिए हमारी माता अयोध्या धाम आ पहुँची हैं, और आश्रम में आ रही है। इस बात को सुनते ही वे पीछे के दरवाजे से आश्रम के बाहर हो गये। जाने के पूर्व माता की सेवा के लिए स्नान भोजन आदि एवं पूजा और सेवा आदि का सुबन्दोवस्त कर देने का निर्देश दे गये। माता आकर दो चार दिन अवस्थान कीं। जितना दिन वे रहीं श्री स्वामी जी महाराज आश्रम में लौट कर नहीं आये, तथापि माता को जिससे किसी प्रकार की असुविधा नहीं हो शिष्यों के प्रति उनका विशेष रूप से यह आदेश था। श्री स्वामी जी के निर्देश से आश्रम के सेवकगण सर्व तो भाव से

माता की सेवा करने लगे। उनके भगवद् आराधना का सर्व प्रकार आनुकूल्य करने लगे। सेवक उपयुक्त अवसर पर उन्हें समझायें कि किस कारण से उनका पुत्र उनके सहित साक्षात् नहीं कर सका एवं आदर्श वैराग्यवान पुरुष के इस प्रकार दिव्य अनुष्ठान के अन्तर्निहित हेतु क्या है इन समस्त तत्व वाक्यों को सुनकर माता का हृदय शान्त हुआ था कि नहीं, यह मालूम नहीं, तथापि जब वे यह समझ गई कि पुत्र के इस प्रकार धर्मानुष्ठान की दृढ़ता भङ्ग करना उचित नहीं, तब भगवान के निकट पुत्र की मङ्गल प्रार्थना करते करते अपने देश लौट गईं। माता के चले जाने के बाद श्री स्वामी जी महाराज अपने आश्रम में लौट गये।

उपरोक्त असाधारण घटना के विचार की दो दिशायें हैं, (1) सामान्य दृष्टि भङ्गी, (2) विशेष दृष्टि भङ्गी। सामान्य दृष्टि भङ्गी से मन में होता है, कि जननी गर्भ धारणी, परम पूजनीया हैं, सबसे पहले उनका सन्तोष विधान करना कर्तव्य है। मातृ स्नेह सर्व स्नेह का शिरोमणि है, मातृ – भक्ति सर्व भक्ति के श्रेष्ठ स्थानीय है। बहु वत्सर के अदर्शन जनित आकुल आवेग से माता, पुत्र को देखने के लिए आयी हैं, उनसे साक्षात् करना ही पुत्र को सर्व तो भाव से उचित था, मुलाकात साक्षात् नहीं करना कैसे समीचीन कार्य नाम से गण्य हो सकता है? सांसारिक बुद्धि विवेचना से ऐसा विचार ही सब के मन में आता है। किन्तु विशेष दृष्टि–भङ्गी से सिद्धान्त अन्य रूप होता है। जो महापुरुष केवल एकादश वर्ष की अवस्था में भगवत प्राप्ति के लिए जननी, गृह, परिजन आदि की माया छेदन करके घर से बाहर निकल पड़े हैं, जो न्यूनाधिक अर्ध शताब्दी तक निरन्तर कठोर साधन में निरत रहे, जिनके परिधान में मात्र एक खण्ड कटि वस्त्र और चादर था, अन्न परित्याग करके केवल एक बार ही फल और दुग्ध से वन जिनका आहार था, जो शास्त्र वाक्य किसी प्रकार भी उल्लंघन नही किए, जिन्हे सजीव शास्त्र रूप से अभिहित किया जाता है, भगवद् वार्ता व्यतीत अन्य वार्तालाप एवं केवल भगवद् चिन्ता व्यतिरिक्त अन्य चिन्ता जिनके मन में स्थान नहीं पाई–एक शब्द में जो परमैकान्तिक भगवन्निष्ठ महापुरुष थे, उनके लिए सांसारिक सम्बन्ध सर्वतो भाव से वर्जन करना ही तो विधेयतः स्वाभाविक महापुरुष मात्र का ही, प्रकृत सन्यासी मात्र का ही यही विधान यही कर्तव्य है। माता के आकुल अनुरोध वश कोई - कोई आदर्श महापुरुष सन्यास ग्रहण करने के बाद मात्र एक बार माता को साक्षात् दान किये हैं। पारमार्थिक बुद्धि विचार से यही सर्व सम्मत सिद्धान्त है।

श्री स्वामी जी महाराज अपनी माता को दर्शन नहीं दिये, किन्तु उनकी असुविधा दूर करने के लिए, उनकी पूजा सेवा के लिए, पारमार्थिक कल्याण के लिए सुव्यवस्था करने में कोई त्रुटि नहीं किये। वे 'परमैकान्ती' थे। परमैकान्ती महात्मा सांसारिक नाम धाम सम्बन्ध सभी का परित्याग करें यही शास्त्र का विधान है। "एकान्ती व्यय द्देष्टव्यः नैव ग्राम कुलादिभि विष्णुना व्यय देष्टव्यः तस्य सर्व सएवहि।।" जो परमात्मा में परम अनुरक्त हैं वेतद्व्यतिरिक्त समस्त विषय से विरक्त रहते हैं। 'परमात्मनि योरक्तः विरक्तोऽपरमात्मनि'। श्री रामानुज स्वामी इस विषय में एक श्रेष्ठ निदर्शन हैं। रामानुज स्वामी के गुणपना का परिचय श्लोक में कहा गया है कि वे अच्युत केरातुल चरण युगल में इतने व्यामुग्ध थे कि तदितर अन्यान्य सभी वस्तु को समस्त सम्बन्ध के ही तृण के सदृश्य तुच्छ मानते थे।

"यो नित्यभच्युत पदाम्वुज युग्मरुक्म,
व्याभोहतस्तदितराणि तृणाय मेने।"

श्री स्वामी जी अपने देह और देह सम्बन्धी विषय में कितना ज्यादा वैराग्यवान थे उसका दो सर्वश्रे

श्रीमते रामानुजाय नमः



विन्दुगाद्याचार्य स्वामी श्रीराममनोहरप्रसादाचार्य जी महाराज

बड़ा स्थान, श्री अयोध्या जी

उदाहरण ऊपर दिया गया। इस वैराग्य के मूल में भगवदनुभव, एवं भगवत कैङ्कर्य के लिए तीव्र लालसा, तथा इस उद्देश्य के साधानार्थ प्रतिकूल अवस्था का प्रतिरोध करते हुए अनुकूल अवस्था का अर्जन निहित है। अपने भोग के प्रयोजन में साधु को अर्थ से महा विरक्ति रहती है, किन्तु सुष्टुभाव से भगवत्कैङ्कर्य निर्वाह के लिए उनकी अर्थ में आसक्ति रहती है मोह रहता है। भगवत्कैङ्कर्य समृद्धि के लिए वे भगवान् के ही चरण में प्रार्थना करते रहते हैं। श्री स्वामी जी के अर्थ मोह का अन्तर्निहित तात्पर्य संसार में आसक्त, संसार को ही सर्वस्व मानने वाले मनुष्यों का सांसारिक विषय–भोग उपभोग के लिए उनके भीतर जिस तरह अर्थ लिप्सा विद्यमान रहती है उसी तरह भगवद् भागवत् का कैङ्कर्य ही भगवन्निष्ठ महापुरुषगण का परम उपभोग्य होता है। उन लोगों का अर्थ मोह मूल्यवान् होता है। सांसारिक भोग से वे लोग सम्पूर्ण वैराग्यवान् रहते हैं, किन्तु परम भोग्य भगवत् भागवत सेवा में वे अतीव आसक्त रहते हैं। उन लोगों की यह अर्थ प्रवणता ही भगवद् भागवत् सेवा में अनुराग का परिचायक है। कैङ्कर्यार्थ श्री स्वामी जी महाराज अर्थ में मोह के विषय का एक उज्ज्वल दृष्टान्त इस स्थल पर दिया जाता है। करीब चालीस वर्ष पूर्व की बात है, श्री स्वामी जी महाराज अपने कक्ष में बैठे हुए थे। वे उस समय सम्पूर्ण दृष्टिहीन अति वृद्धावस्था समय अपराह्न था, उनकी सन्निधि में दो तीन जन शिष्य, शिष्या उपविष्ट थे इतने में दर्शन के लिए एकजन साधु उनके कमरे में प्रवेश किये। वे श्री स्वामी जी महाराज को साष्टाङ्ग प्रणाम किये एवं एक दुअन्नी प्रणामी दिये। उस समय दुअन्नी, प्रचलित एक छोटी रौप्य मुद्रा थी।

साधु थोड़ी देर वार्तालाप करके चले गये। उनके चले जाने के पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज उस प्रणामी मुद्रा का जमीन पर श्री हस्त से अन्वेषण करने लगे। मालूम पड़ता है कि वह दुअन्नी देने के वक्त सामान्य शब्द हुआ था उसको सुनकर ही इस विषय में अनुसन्धान कर रहे थे। वे अपना हाथ फेरकर मुद्रा का अनुसन्धान चारों तरफ कर रहे थे। दृष्टि शक्ति तो थी ही नहीं, इसीलिए इस प्रकार से अनुसन्धान करते थे। थोड़ी देर तक अनुसन्धान करने बाद जब वे नहीं पाये, तब श्री चक्रपाणि रामानुजदासी उनकी एक प्रवीणा शिष्या परम भागवती जो वहाँ उपस्थित थीं, वे उस दुअन्नी को उठाकर श्री स्वामी जी महाराज के हाथ में अर्पण कर दीं। इस दुअन्नी मुद्रा को पाकर उनके मुख पर हँसी दिखाई दी यह हँसी उनके अन्दर में आनन्द का ही परिचायक था। तुरन्त ही वे अर्चावतार श्री विजयराघव जी के पुजारी श्री रामानुजदास जी को बुलवाये। पुजारी जी आये, श्री स्वामी जी महाराज उनके हाथ में दुअन्नी देकर बोले– ''इसे लो, इससे तुम्हारा सलाई का काम मिट जायेगा बहुत दिन तक चलेगा''। (पूजा के समय प्रदीप एवं आरती की बत्ती धूप प्रभृति जलाने के लिए बहुत दिन तक दिया सलाई का खर्च चल जायेगा)। उस समय एक दिया सलाई का मूल्य एक पैसा था। पुजारी जी आनन्द में बोल उठे स्वामी जी महाराज! दो आना में तो दश दिया सलाई मिल जायेगी। यह सुनकर श्री स्वामी जी महाराज की हँसी और रुकती नहीं थी। भगवत्सेवा में अनुकूलता किया है अतएव इनकी इस दुअन्नी को वे दो हजार रुपया मन में मानने लगें।

श्री स्वामी जी महाराज का अर्थ में मोह के विषय में और कई एक आचरण हम लोग प्रत्यक्ष भाव से उपलब्धि किये हैं। चिन्ता करके देखने पर स्पष्ट ही समझने में आ सकता है कि उनके इसी तरह प्रत्येक आचरण के मध्य में इसी प्रकार से कैङ्कर्य्य का विचार विद्यमानरहा है।

प्रकृत साधु जिन्हें भगवत् साक्षात्कार हो गया है, वे श्री भगवान् की सेवा को ही उनके कैङ्कर्य को ही परम प्रयोजन मानकर मुख्यतम परमार्थ रूप से निश्चय कर लिए हैं। वे मुक्ति लाभ के लिए लालायित नहीं रहते। वे

नित्य नियत भगवत् कैङ्कर्य के लिए ही लालायित रहते हैं। यही उन लोगों की विशेष विलक्षणता है। इस विषय में श्री हनुमान जी एक अत्युज्ज्वल दृष्टान्त हैं। श्रीरामचन्द्र अपने महा प्रस्थान के समय तृण तक समस्त प्राणी को मुक्ति देकर अपने साथ श्री वैकुण्ठ धाम ले गये थे, किन्तु श्री हनुमान जी मुक्ति को नहीं चाहे। वे उस काल श्री रामचन्द्र जी के चरण में निवेदन किये थे – ''कि जितने दिन तक पवित्र पावनी श्रीरामकथा धराधाम पर प्रचलित रहेगी, उतने दिन तक मैं आपकी आज्ञा पालन करते हुए इस स्थल पर अवस्थान करूँगा।

''यावत्तव कथालोके, विचरिष्यति पावनी ।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां, तवाज्ञामनुपालयन् ।।''

(बा०रा० उत्तरकाण्ड 108-36)

पूर्वा पर इसी समय से उत्तर एवं दक्षिण भारत के विभिन्न स्थान से बहूत्तम भागवत बहु साधु सन्यासी श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ आया करते थे। एक दिन एक जन बैलक्षण्य पूर्ण प्रख्यात दक्षिण भारतीय जीयर् स्वामी श्री विजयराघव जी के आश्रम में दर्शनार्थ आगमन किये। इस समय श्री जीयर् स्वामी एवं श्री स्वामी जी महाराज इन उभय दिग्गज श्रेष्ठ द्वय के प्रथम दर्शनकाल में एक अलौकिक घटना उद्भूत हुई।

इस अलौकिक घटना से एक अपरूप गूढ़ तत्व उद्घाटित हो उठा। अतीव मूल्य वान् समझ कर इस दिव्य घटना का यत्किञ्चित् विवरण उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

''सन्यासी की मर्यादा रंगरामानुज जीयर स्वामी''

जीयर् स्वामी 'जीयर' एक तामिल शब्द है। इसका अर्थ सन्यासी हैं। हम जिन सन्यासी की आलोचना कर रहे हैं वे एक जन विख्यात दक्षिणी श्री वैष्णव सन्यासी हैं। इनका नाम श्रीरङ्ग रामानुज जीयर् स्वामी। 1928 खृष्टाब्द कई एकजन शिष्य भक्त के साथ वे तीर्थ दर्शन करने के लिए बाहर हुए हैं। पर्यटन करते करते अयोध्या धाम में उपनीत हुए हैं। अयोध्या सरयू नदी के तीर पर एक प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय मन्दिर एवं आश्रम है उस का नाम दक्षिणी मन्दिर है। जीयर स्वामी दक्षिणी मन्दिर में उठे हैं। उसी दिन प्रातः कृत्य समापन करके दर्शनार्थ श्री विजयराघव मन्दिर में आगमन किये हैं।

उनकी अभ्यर्थना के लिए श्री विजयराघव जी आश्रम के द्वार पर अपने शिष्य सेवकों के साथ महाराज जी अपेक्षा कर रहे थे। आश्रम में पहुँचते ही श्री स्वामी जी महाराज जीयर् स्वामी को साष्टाङ्ग प्रणाम किये। साथ ही साथ समकाल में ही जीयर् स्वामी भी उन्हें साष्टाङ्ग प्रणिपात किये। धर्मज्ञ श्री स्वामी जी महाराज इस विलक्षण व्यापार से बहुत सङ्कोच बोध करने लगे। वे हाथ जोड़कर जीयर् स्वामी जी से निवेदन किये ''स्वामी जी आप सर्व पूज्य सन्यास आश्रम में विराज कर रहे हैं। आप सर्व प्रणम्य हैं, दूसरी सब मूर्तियाँ आप को साष्टाङ्ग करेंगी आप स्वयं यदि दास को साष्टाङ्ग करेंगे तो दास का स्वरूप नष्ट हो जायेगा, दास महा अपराधी बन जायेगा आप कृपया ऐसा नहीं कीजिये।'' इस प्रकार निवेदन करके श्री स्वामी जी महाराज थोड़ा पीछे हट गये। तब श्री जीयर स्वामी उनसे बोले– ''आप के सदृश ज्ञान एवं अनुष्ठान पूर्ण परम वैष्णव दक्षिण एवं उत्तर भारत में विरल हैं, मैं सन्यासी होते हुए भी आपके दर्शन पाने के साथ ही यदि आपको साष्टाङ्ग नहीं करूँ, तो फिर हमारे वैष्णत्व स्वरूप की विशेष हानि होगी।'' यह कहकर श्री स्वामी जी महाराज के बहुत अनुनय विनय करने पर भी वे साष्टाङ्ग करने से प्रतिनिवृत्त नहीं हुए। तत्रस्थ भक्त मण्डली (प्रायः 40/50 मूर्ति) इन दो जन परम वैष्णवाचार्य के असाधारण दिव्य अनुष्ठान को देखकर चमत्कृत हो गई। इस प्रकार अलौकिक सदाचार का

संघटन अतीव विरल है, एवं इस ज्ञान गर्भ दिव्य अनुष्ठान के दर्शन का सौभाग्य भी अतिअल्प पुरुष के भाग्य में संघटित होता है।

ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वाण प्रस्थ, एवं सन्यास – साधारणशास्त्र में इस चार आश्रम का उल्लेख पाया है। उसमें सन्यास आश्रम ही श्रेष्ठ एवं सर्वपूज्य आश्रम कहकर विख्यात है, एतदतिरिक्त और भी एक आश्रम है पञ्चम आश्रम विशेष आश्रम नाम से शास्त्र में कीर्तित्त हुआ है। जो श्री विष्णु भगवान का विशेष भाव से आश्रय लिये हैं, वे ही यह पञ्चमाश्रमी हैं। यह पञ्चमाश्रम ''परमहंस आश्रम'' नाम से शास्त्र में कीर्त्तित हुआ है।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च, वाणप्रस्थस्तथा यतिः ।
चत्वारो विहिता शास्त्रे, पञ्चमो मद्व्यपाश्रयः ।। (पच्चरात्र)
हंसाश्रमः सतामुक्तो, विष्णु शिरः समुद्भवः।
पूजनीयश्च सर्वेषां, पञ्चमाश्रम उच्यते ।। (स्मृति)

ये परम हंसाश्रमी गण ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य के समुद्र विशेष एवं सर्वदा हरिपरायण परम ऐकान्ती परम भागवत पुरुष हैं। श्रीमद्भागवत में देखा जाता है –

'उपशम शीलानां उपरतकर्मणां महामुनिनां – भक्ति, ज्ञान वैराग्य लक्षणम् पारमहंस्यधर्मम्। (भा. 5/5/28) श्री जीयर स्वामी साधारण शास्त्र एवं विशेष शास्त्र –उभय शास्त्र में ही पारदर्शी थे। वे जिस तरह यह जानते थे कि सन्यासाश्रम सब मनुष्यों के लिए ही श्रेष्ठ एवं प्रणम्य आश्रम है, उसी प्रकार यह भी जानते थे कि जो ज्ञान भक्ति एवं वैरागय के सजीव मूर्ति रूप में उसी परम हंसाश्रम में रहने वाले परम दुर्लभ महापुरुष भी सर्व प्रणम्य हैं यही विशेष शास्त्र है। श्री जीयर स्वामी भलीभाँति जानते थे कि साधारण शास्त्र की अपेक्षा विशेष शास्त्र बलवान होता है। इसी कारण से उनके असाधारण आचरण के द्वारा यह विशेष शास्त्र की मर्यादा फूट समुज्ज्वल हो गयी। श्री स्वामी जी महाराज अच्छी तरह जानते थे कि 'अमानी एवं 'मानद' यह दो गुण आदर्श वैष्णव का स्वरूप है। इस हेतु से जीयर् स्वामी जब उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगे तो उसके प्रतिरोध का प्रयास किये थे। और वे यह भी जानते थे कि आदर्श वैष्णव का, वैष्णव पारतन्त्र्य होता है– वैष्णव का स्वरूप इसीलिए शेष तक वे श्री जीयर स्वामी की आन्तरिक इच्छा एवं अनुष्ठान के सम्मुख आत्म–संवरण किये थे।

उल्लिखित तथ्य में वैष्णवाचार्य द्वय के आदर्श अनुष्ठान का दो चित्र मुमुक्षुनरनारी मात्र के लिए ही परम ध्येय और परम कल्याण कर है।

इसी समसामयिक काल में श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य चरित्र की और एक घटना घटी है। जिसे अपने नेत्र से दर्शन करने का महा सौभाग्य मुझे मिला था, यह दिव्य घटना यथा सम्भव वर्णन करने की चेष्टा कर रहे हैं। 1925/26 खृष्टाब्द की बात है। श्री स्वामी जी महाराज की अवस्था उस समय 85 वर्ष की रही होगी। इसी समय उनके गुरुदेव श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के पौत्र श्री स्वामी जी श्रीरङ्ग जी मन्दिर के गद्दी नशीन महान्त थे। उस समय उनकी अवस्था प्रायः 60 वर्ष की होगी। वे अयोध्या धाम में आये हुए थे। किस मठ में रुके थे ठीक ठीक याद नहीं हैं, बोध होता है – राज सभामठ में रुके थे। कुछ समय विश्राम करने के पश्चात् श्री पौत्र स्वामी जी स्वयं श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ श्री विजयराघव जी मन्दिर में आगमन किये। आश्रम में पहुँच कर ही वे सीधे श्री स्वामी जी महाराज के निकट जाकर उपस्थित हो गये, और बोले– ''बलराम स्वामी

हम आप के पास आ गये।'' साधारणत: देखने में आता है कि शिष्य यदि यथारीति प्रार्थना नहीं करे तो गुरु पुत्र अथवा गुरु पौत्र शिष्य के निकट गमन नहीं करता। वे शिष्य गोष्ठी को 'स्वामी' कहकर सम्बोधन नहीं करते। यह साधारण रीति है किन्तु श्री स्वामी जी महाराज के ज्ञान एवं अनुष्ठान की पराकाष्ठा के अनुभव से अभिभूत होकर श्री पौत्र स्वामी जी चिराचरित प्रथा का वर्जन करते हुए स्वत: प्रणोदित होकर स्वयं उनके निकट आगमन किये एवं उन्हें स्वामी कह कर सम्बोधन किये। सहसा अपने गुरु पौत्र को सन्मुख देखकर श्री स्वामी जी महाराज आनन्द से अधीर हो गये एवं हाथ जोड़कर खड़े हो गये, तथा उसी क्षण उनके लिए एक ऊँचा आसन मँगाकर उसके ऊपर उन्हें विराजमान होने के लिए प्रार्थना किये। जब वे आसन पर विराजित हुए तब श्री स्वामी जी महाराज उनके पदतल में विधि पूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किये। जब तक गुरु पौत्र स्वामी उन्हें बैठने के लिए कहे नहीं तब तक वे साष्टाङ्ग से भूलुण्ठित अवस्था में शयान होकर ही रहे। इस भाव में प्राय: दो तीन मिनट तक पड़े रहने के पश्चात् गुरु पौत्र स्वामी जी उठने के लिए बोले तब श्री स्वामी जी महाराज उठकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। श्री गुरु पौत्र स्वामी जी बैठने का निर्देश दिये तब वे बैठे।

श्री स्वामी जी महाराज के 'साष्टाङ्ग प्रणति' का व्यापार एक अनुभव योग्य विषय है। वे प्रथम खड़े होकर हाथ जोड़े हुए अपना मस्तक स्पर्श किये। दोनों अधर हिल रहा है, क्या बोले हैं कुछ सुनने में नहीं आया। प्राय: आधा मिनट इस भाव में रहने के बाद वे दण्डवत भूमिस्थ हो गए, आपाद मस्तक पृथ्वी पर लुण्ठित कर दिये, उनका ललाट निमीलित नेत्रद्वय, नासिका, वक्ष: स्थल, उदर, उससे लेकर चरण तक सारा शरीर ऐसे घनिष्ठ भाव से भूमि संलग्न हो गया कि जैसे पृथ्वी में मिल गया है। दो वाहु आगे की तरफ बढ़ा हुआ है एवं करतल अच्छी तरह फैला हुआ तथा परस्पर घन सम्बन्ध और स्थिर है। देखने से मालूम हो रहा है मानो दोनों हाथ अपना आकिञ्चन्य' प्रकाश कर रहे हैं। उरु से चरण तक दोनों अङ्ग अनुरूप भाव से घन सम्बद्ध हैं, दोनों चरणों का पृष्ठ भाग अच्छी तरह फैला हुआ और भूमि संलग्न है। मालूम हो रहा है कि जैसे वे अपना अनन्य-गतित्त्व निवेदन कर रहे हैं। इस प्रकार साष्टाङ्ग प्रणति की प्रणाली से अच्छी प्रकार उपलब्धि की जाती है कि यह साष्टाङ्ग कितना अधिक दीनता का प्रतीक है।

दक्षिण भारत में उच्च कोटि के गुरु शिष्य के मध्य ऐसी प्रथा प्रचलित है। उत्तर भारत में शिष्य के द्वारा गुरु के प्रति ऐसा भक्ति सूचक एवं पारतन्त्र्य सूचक अनुष्ठान अतीव विरल है। विशेष शास्त्र कहता है 'आचार्य सन्निधौ स्वस्य पारतन्त्र्यं अनुसन्दधीत।'

श्री स्वामी जी महाराज निवेदन किये –''आप क्यों इतना क्लेश उठाकर यहाँ पर शुभागमन किये? दास को ही आपके पास चला जाना कर्त्तव्य था।'' श्री गुरु पौत्र स्वामी बोले–''हम प्रेम से आपके पास आ गये।'' श्री स्वामी जी महाराज अपने गुरु पौत्र को यथोपयुक्त प्रणामी अर्पण करके माला, चन्दन से भूषित किये। कुछ फल मूल अर्ध्य देकर श्री गुरु पौत्र स्वामी का 'बहुमान' किये। श्री गुरु पौत्र स्वामी भी शिष्य पर्यायस्थ श्री स्वामी श्री महाराज को वाक्य से एवं व्यवहार के द्वारा सम्मान प्रदान किये। प्राय: आधा घण्टा समय तक वार्तालाप करने के बाद विदा ग्रहण किये। विदा के समय भी गुरु पौत्र के प्रति साष्टाङ्ग की रीति देख कर हम लोग चमत्कृत हो गये। तथा विस्मित हो गये। यात्रा के समय श्री स्वामी जी महाराज बहुत दूर तक श्री गुरु पौत्र स्वामी का अनुगमन किये, बाद में उनके विशेष अनुरोध करने पर ही प्रत्यावर्तन किये।

दूसरे दिन प्रात:काल श्री गुरु पौत्र स्वामी कुछ इमली लेने के लिए अपने एक सेवक को श्री स्वामी जी

महाराज के निकट भेजे थे। सेवक के मुख से श्री स्वामी जी महाराज इस बात को सुनकर उसी क्षण कोठार से उपयुक्त परिमाण इमली लेकर स्वयं उस सेवक के साथ गुरु पौत्र के स्थान पर उपस्थित हुए। उन्हें यथारीति गुरु बुद्धि से साष्टाङ्ग प्रणाम किये। और उनके हाथ में इमली को स्वयं समर्पण करके तृप्त हुए। श्री स्वामी जी महाराज की इस नैच्यानुसन्धान-वृत्ति से श्री गुरु पौत्र स्वामी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। एवं बहुप्रकार से उनकी प्रशंसा करने लगे। गुरुपौत्र का यह सन्तोष ही श्री स्वामी जी महाराज का परम काम्य वस्तु था। कुछ देर तक सदालाप करने के बाद वे श्री गुरु पौत्र स्वामी से अनुमति लेकर पुनः यथारीति उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपने आश्रम लौट आये। अपने गुरुपौत्र के प्रति स्वयं गुरुदेव के सदृश भक्तिपूर्ण मनोभाव पोषण एवं तदनुगुण अनुष्ठान देखकर उपस्थित सभी अतीव विस्मित हुए। जिस विषय को किसी ग्रन्थ में पढ़ा नहीं, कभी सुना नहीं और कभी देखा नहीं आज अपने नेत्रों से उसे देखकर अपने को मैं अतीव सौभाग्यवान् मानने लगा।

''आचार्य सन्निधौ स्वस्य पारतन्त्र्यमनुसन्दधीत''

इस आदर्श वाक्य का सजीव दृष्टान्त देखकर कृतकृत्य हो गया। अपने आचार्य के निकट अथवा तदनुरूप अन्य उच्च कोटि के आचार्य के निकट इस प्रकार से सम्यक् पार तन्त्र्य, का अनुष्ठान दक्षिण – भारत में भी इस समय विरल होता जा रहा है। पूर्व काल में उत्तम उत्तम गुरु शिष्य के मध्य इस? प्रकार की प्रथा बहुत स्थलों में ही प्रचलित थी इस प्रसङ्ग में आचार्य गोष्ठी पूर्ण स्वामी एवं शिष्य स्थानीय रामानुज स्वामी का अनुष्ठान विशेष उल्लेख योग्य है।

''श्री गोष्ठी पूर्ण स्वामी के प्रति रामानुज स्वामी के पारतन्त्र्य का ''एक दृष्टान्त''

एक समय श्री रामानुज स्वामी अपने एकान्त भक्त शिष्य आन्ध्र पूर्ण स्वामी के सहित गोष्ठी पूर्ण स्वामी के पास जा रहे थे। सहसा वे रास्ता के मध्य में विपरीत दिशा से आते हुए गोष्ठी पूर्ण स्वामी को देख पाये। उन्हें देखते ही रामानुज स्वामी रास्ता के ऊपर साष्टाङ्ग प्रणाम किये। गोष्ठी पूर्ण स्वामी जब तक उन्हें उठने के लिए नहीं कहे वे उत्तप्त रास्ते पर भूलुण्ठित अवस्था में ही पड़े रहे रामानुज स्वामी सन्यासी थे, शरीर में कोई आवरण नहीं है खुला हुआ हैं, उत्तप्त धूलिकण से धूंसरित होकर तप्त धरणी पर साष्टाङ्ग पतित होकर पड़े रहे। इस भाव में रामानुज स्वामी को कुछ देर तक उष्ण भूमि पर पड़े हुए देखकर, उनका कष्ट अनुभव करके उनके अनुचर शिष्य आन्ध्रपूर्ण सहन नहीं कर सके। अधैर्य हो कर वे कहने लगे– ''गोष्ठी पूर्ण स्वामी जी निर्दय हैं, मैं वृथा ही रामानुज स्वामी को उत्तप्त वालुका में कष्ट दे रहे हैं, अब भी रामानुज स्वामी को वे उठने के लिए बोलते नहीं क्यों?'' हाय! यह कहकर उसी समय आन्ध्रपूर्ण स्वामी को स्वतः उष्ण बालू के ऊपर सो गए एवं रामानुज स्वामी को खींचकर अपनी पीठ पर उठा लिए। आन्ध्रपूर्ण की ऐसी गुरु भक्ति को देखकर गोष्ठीपूर्ण स्वामी अतीव सन्तुष्ट हुए एवं उसी समय रामानुज स्वामी एवं आन्ध्रपूर्ण स्वामी को उठने का आदेश दिये। पूर्वकाल का यही शिष्टाचार था, यही उस समय के गुरुशिष्य एवं प्रशिष्य का पारस्परिक व्यवहार था, यही गुरु के निकट शिष्य का नैच्य अनुसन्धान, पारतन्त्र्य अनुसन्धान था।

ऊपर में जीयर् स्वामी एवं गुरु पौत्र के प्रति वैलक्षण्य पूर्ण यह दो वृत्तान्त वर्णित हुआ उस तरह की दिव्य घटना विजयराघव जी के आश्रम में विरल नहीं थी। श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ आश्रम में विशिष्ट साधुवृन्द का समागम एवं प्रत्येक के सहित श्री स्वामी जी महाराज का वैशिष्टय पूर्ण सदाचार एवं सदालाप एक अविस्मरणीय शिक्षाप्रद परम उपादेय अनुभव योग्य विषय था।

इस प्रकार से श्री स्वामी जी महाराज के सिद्ध अवस्था की दिव्य प्रभाव उत्तर एवं दक्षिण भारत में शीघ्र ही विस्तार लाभ करने लगा। उनके आश्रम की श्री वृद्धि उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होने लगी। हठात् इतने में वज्र सम्पात के सदृश हम लोगों के महा दुर्भाग्यवश उनके दिव्य नेत्र में लगातार दो बार दुरूह पीड़ा देखने में आई। जिसके कारण शेष में दोनों नेत्र ही दृष्टिहीन हो गये। इन दोनों पीड़ाओं में ही उनका दो भगवद् भावना विषयक विशिष्ट अन्तर्निहित दिव्य भाव वास्तव रूप धारण करके जन समाज में प्रकट हो गया।

तृतीय प्रवाह
षष्ठय अध्याय
"चक्षु पीड़ा में श्री स्वामी जी के महत्व का परिचय"

श्री स्वामी जी का नेत्र छानि ग्रस्त –

खृष्टाब्द 1926 साल का शेष भाग । श्री स्वामी जी महाराज की अवस्था किञ्चित न्यूनाधिक 86 वर्ष की उस समय रही होगी । वे अतीव गम्भीर स्वभाव वाले थे । आश्रम के किसी अभाव की बात किसी शिष्य सेवक से कभी मुख खोल कर नहीं बोलते थे। अपनी असुविधा अथवा असुस्थता का विषय जो प्रकाश नहीं करेंगे, यह कहना ही बाहुल्य है । जो सब साधु उनकी अन्तरङ्ग सेवा करते थे वे धीरे धीरे यह समझ पाये कि श्री स्वामी जी महाराज की दृष्टि शक्ति झीण होती जा रही है । उस समय जाना गया कि उनके नेत्रों में छानि (मोतियाबिन्द) हो रहा है ।

श्री स्वामी जी के दोनों नेत्रों में ग्राम्य डॉक्टर द्वारा अस्त्रोपचार की खबर पाकर हम लोग अयोध्या आश्रम में चले गये। श्री स्वामी जी का नेत्र परीक्षण करके जाना गया कि छानी अस्त्रोपचार के योग्य हो गई है। तब हम लोग सभी परामर्श करके निर्णय किया कि श्री स्वामी जी को उनकी प्रकृत अवस्था विदित करना तथा अस्त्रोपचार जो बहुत आवश्यक प्रयोजन है । यह निवेदन करना समीचीन है। वे अवस्था को सुने, विचलित नहीं हुए। अस्त्रोपचार की बात सुनकर उनका प्रथम प्रश्न हुआ कि अस्त्रोपचार किये जाने पर हमारे स्नान पूजा आदि में विघ्न होगा नहीं तो? हम लोग संकोच के सहित उत्तर दिये मात्र दो तीन दिन तक आपको सोकर रहना होगा, स्नान आदि भी उतने दिन तक वन्द रखना पड़ेगा। शयन अवस्था में ही पूजा पाठ सम्पन्न करना पड़ेगा। श्री स्वामी इस बात को श्रवण कर कोई उत्तर नहीं दिये। कुछ देर तक चुप रहकर अन्य प्रसङ्ग उत्थापन किये। दो तीन दिन बीत गया लेकिन वे इस विषय में नीरव ही रहे अगत्या हम लोग फिर उनसे उनके नेत्र आपरेशन की बात उठाये। उस समय भी वे कोई उत्तर नहीं दिये, केवल मृदु भाव से थोड़ा हँस दिये। उसके दूसरे दिन हम लोगों से कहे– "इस समय तुम लोग कलिकाता लौट जाओ बाद में जो होगा तुम लोगों को खबर दूँगा।" उनके गम्भीर भाव को समझना बहुत कठिन था। आपरेशन की बात को अनिश्चित रखकर कलिकाता लौटने की हम लोगों की एक दम इच्छा नहीं थी। तथापि उनके निर्देश से हम लोग चिन्तित चित्त होकर कलिकाता लौट आये। एक मास के मध्य ही 'अधिकारी' श्री गरुड़ध्वज स्वामी पत्र में हम लोगों को लिखे– "डाक्टरी मत से अस्त्रोपचार के बाद कम से कम दो तीन दिन सोकर रहना पड़ेगा, स्नान बन्द रहेगा, पूजा पाठ आदि शयन अवस्था में ही करना होगा, यह श्री स्वामी जी महाराज के एकान्त अनभिप्रेत है, इसी कारण वे स्थानीय ग्रामीण चक्षु चिकित्सक से आँख में अस्त्रोपचार कराये हैं एवं उसकी अनुमति से उसके भरोसा पर वे यथा रीति स्नान पूजा आदि किये हैं। इस समय उनकी दृष्टि शक्ति पूर्वापेक्षा अच्छी है। तुम लोग

इस अवस्था के उपयोगी चश्मा भेज दो। इस पत्र में देहाती, ''आँख के डाक्टर 'द्वारा चक्षु आपरेशन हुआ है' ऐसा जानकर हम लोग अत्यन्त चिन्तित और शङ्कित हो पड़े और चश्मा नहीं भेजकर हम लोग स्वतः ही चश्मा लेकर अयोध्या में जाकर उपस्थित हुए।

''दृष्टि शक्ति को पुनः लाभ के पीछे प्रथम दर्शन योग्य वस्तु''

हम लोग चश्मा श्री स्वामी जी के हाथ में दे दिये। अनन्तर वे चश्मा पहनने के पूर्व ही अपने गुरुदेव का चित्रपट हाथ में लिए बाद में गृह स्थित अपना प्रिय एक पुरातन चित्र यह दिखाकर उसको ले आने के लिए कहे (इस चित्र पट में श्री कृष्ण जी त्रिभङ्ग भङ्गिमा से खड़े हुए हैं। पास में एक गौ स्नेह के सहित उनके चरण को लेहन कर रही है) श्री गुरु देव अपने गुरुदेव के चित्रपट को प्रथम हाथ में लिए, तदनन्तर चश्मा पहना देने को कहे हम लोग चश्मा लगा दिये। चश्मा पहनकर ही प्रथम एकाग्रचित्त से अपने गुरुदेव के चित्र पट का दर्शन किए तत्पश्चात् द्वितीय चित्रपट का दर्शन करने लगे। वे आनन्द भरकर हम लोगों से बोले, कि यह चित्रपट वृन्दावन में हमारे गुरुदेव हमें दिये थे, अतएव यह हमारा विशेष प्रिय है। यह कर पटस्थ श्री कृष्ण की मूर्ति के प्रति अङ्गका विशेष माधुर्य, कृष्ण चरण तल स्पृष्ट गौ की प्रेमोज्ज्वल–भङ्गिमा एवं दोनों नेत्र का भाव विश्लेषण करने लगे। बहुत दिन के पश्चात् इन दो चित्र पटों का दर्शन करने से एवं उसके वैलक्षण्य को विश्लेषण करने के समय श्री स्वामी जी के प्रत्येक अङ्ग से होकर जो आनन्द प्रवाह वह रहा था वह केवल अनुभव के योग्य है, लिखने अथवा कहने से ठीक ठीक प्रकाश नहीं किया जा सकता। इस समय उनके श्री मुख से स्वतः स्फूर्त वाणी निःसृत हुई – जिस स्थल पर निज गुरु देव एवं निज इष्ट देव का श्री विग्रह विराजित हो वही वैकुण्ठ धाम है, प्रत्येक भागवत को इस रूप से अनुसन्धान करना चाहिए। उसके बाद उस गृह में उपस्थित प्रत्येक का मुख देखे, सबको जो स्पष्ट देख पा रहे हैं आनन्द के सहित वह भी कहे। चश्मा ले आकर देने के कारण हम सभी को प्राण भर कर आशीर्वाद करने लगे। दो चार दिन रहने के अनन्तर उनके निर्देश से हम लोग भी निश्चिन्त होकर प्रफुल्ल चित्त से कलिकाता लौट आये।

इस घटना की बात सुनकर शिक्षित सम्प्रदाय हम लोग निश्चित ही विस्मित होकर विचार करने लगेगें कि श्री स्वामी जी महाराज के सदृश पण्डित और विज्ञ पुरुष देहाती, आँख के डाक्टर द्वारा आँख का आपरेशन कराकर एक महा अनिष्ट जनक दुःसाहसिक मार्ग का अवलम्बन किये। इतना सुयोग सुविधा और सहाय रहते हुए भी वे अपना चक्षुरत्न नष्ट होने की सम्भावना होते हुए भी इस विषय पर कुछ ध्यान नहीं दियें, ग्राम्य माल से अस्त्रोपचार कराये इसका क्या हेतु है। दो चार दिन स्नान नहीं करने से अथवा शयन अवस्था में ही पूजा करने पर ऐसा क्या दोष हो जिसका कोई भी प्रायश्चित सम्भव नहीं होता। वास्तव जगत में इस तरह की चिन्ता धारा खूब ही स्वाभाविक और समीचीन है। किन्तु इस असाधारण घटना के पीछे एक ऐसी भाव धारा निश्चय ही विद्यमान है-जो श्री स्वामी जी महाराज को ऐसा विपद् जनक कार्य करने को अनुप्राणित किया था।

यह भाव धारा ऐकान्तिक पारमार्थिक भावधारा है। जो तन, मन, धन समस्त श्री भगवान के चरण में निवेदन कर दिये हैं, दैहिक आदि सुख को अनित्य समझकर भगवद् भजन, भगवत् प्रसन्नता को ही परमश्रेय नित्य धन समझकर मन प्राण से उपलब्धि किये हैं? उन्हीं समस्त महा पुरुषों के उन समस्त अति मानवों के द्वारा ही इस प्रकार का अनुष्ठान सम्भव है। ये सब महापुरुष अति विरल होते हुए भी फल्गुधारा के तुल्य आज भी वे जीवों के प्रकृत कल्याण साधन के लिए स्थान स्थान पर विराज कर रहे हैं।

वे अपने प्रेय साधन की अपेक्षा श्रेय साधन को अनेक उच्च स्थान दिये हैं। अपने प्रेय साधन को विसर्जन देकर श्रेय को ही दृढ़ भाव से पकड़े रहते हैं। वे भगवान के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किये रहते हैं। इस प्रकार के अपने अलौकिक आचरण द्वारा वे लोक शिक्षा का क्षेत्र उज्ज्वल करके रखे हुए हैं। सांसारिक मनुष्य इन लोगों के कार्य क्षेत्र में ऐसा अनुष्ठान यद्यपि सम्भव नहीं है तथापि ऐसा अनुष्ठान देखने से अथवा यह विषय सुनने से हम लोग साक्षात् रूप से समझ सकते हैं कि परिपक्क भगवद्भजन का मूल्य कितना अनर्घ है, इसका आस्वादन कितना अमृतमय है।

श्री स्वामी जी के इस असाधारण अनुष्ठान में समपर्याय का और भी एक अङ्ग सुस्पष्ट दिखाई पड़ता है। छानी कटवाने के बाद चश्मा पहनकर वे प्रथम दृष्टि अपने गुरु के दिये हुए चित्रपट पर दिये। जिससे उनकी यह लोलुपता तृप्त हो जाय, इसीलिए वे चित्रपट को हाथ में लेकर तब वे चश्मा परिधान किये। इन समस्त अति मानुष के दृष्टान्त में हम लोग शास्त्र का प्रकृत तथ्य पाते हैं।

शास्त्र कहते हैं –

''दृष्टः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्।'' (श्रीमद्भागवत)
'कृष्टं लोकय लोचन द्वय।' (मुकुन्दमालास्तोत्र–कुल शेखर आड्वार)

श्री स्वामी जी की चक्षुपीड़ाग्लूकोमा –

ग्राम्य चक्षु चिकित्सक द्वारा अस्त्रोपचार कराने के बाद श्री स्वामी जी महाराज, यथा सम्भव दृष्टि शक्ति लाभ किये, वे चलना फिरना, शौचस्नानादि कार्य, श्री विग्रह दर्शन प्रभृति एक प्रकार से करने में समर्थ हुए। इस समय से वे पुनः अपने स्वभाव सिद्ध कैङ्कर्य में निरत रहकर भक्त एवं शिष्य वर्ग को विविध हितकर उपदेश दान करने लगे, मन्त्र मन्त्रार्थ प्रभृति साम्प्रदायिक रहस्य शास्त्र के विषय में शिक्षा दान करने लगे। साधु समाज में श्रीमद्भागवत, वाल्मीकीय रामायण, प्रभृति मोक्ष ग्रन्थों का कालक्षेप करके सबको कृतार्थ करने लगे। किन्तु अति दुःख का विषय यह है कि उनका यह स्वस्थ भाव ज्यादा दिन तक नहीं रहने पाया। इस भाव से प्रायः एक वत्सर काल व्यतीत होने के पश्चात् श्री स्वामी जी दोनों नेत्र में पीड़ा अनुभव करने लगे। वह चक्षुपीड़ा क्रमशः बढ़ते बढ़ते भीषण आकार धारण किया। ये नेत्र पीड़ा का संवाद पाकर हम लोग अयोध्या उनकी सन्निधि में उपस्थित हुए। पहुँच कर देखे कि वे रात्रि दिन बैठे हैं, शयन नहीं कर सकते। असह्य चक्षुः पीडा एवं शिरः पीड़ा है। आहार निद्रा परित्याग कर दिये हैं, चुपचाप यन्त्रणा भोग कर रहे हैं। उनका दोनों अधर सर्वदा स्फुरित हो रहा है, इससे समझा कि वे अहर्निश भगवत्ः चरण स्मरण कर रहे हैं एवं मन्त्र जप कर रहे हैं।

फैजाबाद सरकारी अस्पताल से एक विशेषज्ञ डाक्टर को उनके नेत्र की परीक्षा के लिए बुलाया गया। वे परीक्षा करके रोग निर्णय किये कि दोनों नेत्र के भीतर जलीय वस्तु चाप बढ़ गया है (GLUCOMA) हो गया है। वे और भी यह बोले कि जरासाभी विलम्ब नहीं करके अस्त्रोपचार करना एकान्त कर्तव्य है, नहीं दृष्टि रक्षा पाने की कोई भी सम्भावना नहीं है। वज्राघात के सदृश इस संवाद से हम लोग भीषण प्रमाद गने। श्री स्वामी जी इस अस्त्रोपचार में अपनी सम्मति नहीं देंगे उसे हम सभी को मालूम था एवं इसे जानते थे इसी कारण इस महा विपद् के डर से विह्वल हो पडे। तथापि अन्य कोई दूसरी गति नहीं देखकर श्री विजयराघव जी का चरण स्मरण करके सशङ्कित चित्त से उनसे प्रकृत अवस्था निवेदन किये।

''नेत्र में अस्त्रोपचार की असम्मति''

परिशेष में हम लोग यह निवेदन किये कि अस्त्रोपचार के अलावा अन्य किसी दूसरे उपाय से इस दारुण व्याधि का उपशम नहीं हो सकता एवं इसके परिणाम स्वरूप दृष्टि शक्ति का सम्यक् विनाश हो जायेगा। वे हम लोगों का यह आकुल-आवेदन समस्त ही सुने, एवं हम लोगों का वक्तव्य शेष हो जाने के बाद हम लोगों से बोले- 'परिणति जैसी ही क्यों न हो, मैं पूजा पाठादि किसी तरह भी बन्द नहीं कर सकूँगा। अतएव अस्त्रोपचार में किसी तरह भी सम्मति नहीं दे सकूँगा? उनका ऐसा उत्तर सुनकर हम लोग स्तब्ध और नीरब हो रहे। हम लोगों की मानसिक वेदना एवं उत्कण्ठा समझकर श्री स्वामी जी महाराज कहने लगे– ''तुम लोग चिन्ता नहीं करो, रघुनाथ जी जो करेंगे, उससे मङ्गल ही होगा, वे नित्य ही मङ्गल मय हैं।'' उनकी ऐसी गम्भीर उक्ति को सुनकर हम सभी यह समझ गये कि उनकी यह निष्ठा अत्यन्त दृढ़ है एवं उनका सिद्धान्त अटल तथा अचल है, हम लोगों के किसी भी प्रकार के अनुरोध एवं उपरोध से कोई फल नहीं होगा।

अस्त्रोपचार नहीं हुआ। उनकी नित्य क्रिया समभाव से ही चलने लगी। इसकी चरम परिणति यह हुई कि दोनों नेत्र की सम्यक् दृष्टिहीन अवस्था हो गई।

''एतत्कालीन अवस्था''

इस अवस्था में उनके शौच स्नानादि समस्त दैनन्दिन कार्य में एकजन निर्दिष्ट वाहरिया सेवक उनका हाथ पकड़कर व्यवस्था कर देता था। पूजा के समय तिलक धारण में एवं पूजा कार्य में एक जन निर्दिष्ट भीतरिया (अन्तरंग) सेवक उनकी विशेष भाव से सहायता करता था। श्री स्वामी जी इस समय सम्पूर्ण असहाय, एवं परमुखापेक्षी रहे थे, किन्तु इस दु:सह अवस्था में भी उनके मन में कोई भी विकार नहीं था सर्वदा ही उनमें सन्तोष भाव था। यह तो होने की ही बात है क्यों कि उनकी यह अवस्था स्वेच्छाकृत है, वे अपनी इच्छा से- 'सूरदास' हुए हैं। वे श्रेय के लिए प्रेय का विसर्जन दिये हैं। उनकी यह अचिन्तनीय अवस्था देखकर हम लोग विस्मित हो जाते थे। एवं पुलकित भी होते थे। हम लोग देखते कि निरन्तर वे चक्षु मुद्रित करके भगवान् के ध्यान में दर्शन में एवं अनुगव में निमग्न हैं हम लोग देखते सर्वदा उनका अधर स्फुरित हो रहा है, वे मन्त्र जप में निरन्तर निरत हैं। उनकी बाह्यदृष्टि के अवसान से उनकी अन्तर्दृष्टि उज्ज्वल से जो उज्ज्वलतर हो गई है उसे हम लोग सुस्पष्ट उपलब्धि कर पाते थे। बहु शताब्दी के पूर्व्र विल्व मङ्गल के साधना की बात अथवा कृष्ण कर्णामृत में उनके अनुभव की कथा हम लोग पढ़े हैं। प्रसिद्ध नाटयकार गिरीशचन्द्र घोष के विल्वमंगल नाटक का अभिनय देख अश्रु संवरण नहीं कर सकते थे। श्री स्वामी जी महाराज का यह अघटन घटन और यह असामान्य अवस्था प्रत्यक्ष दर्शन कर हम लोग अतीव विस्मित हो गये हैं, अभिभूत हो गये हैं, धन्यातिधन्य हो गये हैं इन्द्रियातीत दिव्य जगत का यही वास्तव अनुभव ही प्राकृत सांसारिक मोह को लघु कर देने में समर्थ होता है।

नेत्र की छानी को देहाती डाक्टर द्वारा आपरेशन के समय श्री स्वामी जी महाराज अपने श्रेय के लिए आचार विचार पूजा प्रभृति अक्षुण्ण रखने के लिए प्रेय त्याग का अर्थात मनुष्य के सर्वप्रिय दृष्टि शक्ति रूप प्रिय वस्तु को त्याग करने का सङ्कल्प किये थे, उन्हें नित्य पूजा पाठ प्रभृति श्रेय साधन वर्ज्जन नहीं करना पड़ा था, परन्तु दूसरी बार उक्त श्रेय के लिए उनके (ग्लूकोमा) रोगाक्रान्त नेत्र में अस्त्रोपचार कराने के लिए वे सम्मत नहीं हुए एवं इसी कारण अपना परम प्रेय वस्तु नेत्र द्वय को विसर्जन देने में भी द्विधाबोध नहीं किये।

अन्तर के चक्षु द्वारा इन्द्रियातीत अधोक्षज दिव्य जगत का प्रत्यक्ष समान वास्तव में दिव्य अनुभव ही प्राकृत सांसारिक मोह को तुच्छ कर देने में समर्थ होता है। श्री स्वामी जी महाराज इस दु:सह आत्यन्तिक चक्षु पीड़ा से दृष्टिहीन अवस्था में जो कितने दिव्य अनुभव में निमग्न रहते उसे हम लोग उपलब्धि कर पाये हैं एतत्कालीन उनके स्वत: व्यक्त श्री मुख नि:सृत दो एक अलौकिक उक्ति से एवं स्वत: प्रकट दो एक घटना के द्वारा।

असह्य चक्षु पीड़ा के समय श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य आचरण में कई एक गूढ़ तत्त्व और तथ्य स्पष्ट व्यक्त भाव से प्रकट हो पड़ा था। अत्यन्त उपादेय और शिक्षाप्रद समझ कर उसके मध्य से दो एक विलक्षण घटना का विषय इस स्थल में आलोचना किया जा रहा है।

ग्लूकोमा व्याधिग्रस्त अवस्था में श्री स्वामी जी महाराज अत्यन्त कातर होकर असहय यन्त्रणा भोगकर रहे हैं, तथापि वे यथा नियम सारा दिन बैठे हुए हैं। कभी सीधा होकर बैठते हैं, कभी व सामने झुक जाते हैं कभी पीछे की तरफ ठेस देते हैं, कभी व माथा पर हाथ रखते हैं। प्रायश: चक्षु द्वय मुद्रित रहता है। दोनों नेत्र रक्तवर्ण है, अश्रु झर रहा है। उनकी इस असुस्थावस्था का समाचार पाकर कलिकाता से हम लोग कई एक जन आकर उनके पद प्रान्त में उपस्थित हुए। यथा साध्य उनकी सेवा करने की चेष्टा कर रहे हैं। बहुत साधु महात्मा आते हैं, उनकी असुस्थता का समाचार पाकर बहुत दूर से भी अनेक व्यक्ति आ रहे हैं।

काशी से श्री रङ्गरामानुजदास, जो इस समय श्रीरङ्गचार्य नाम से विख्यात है, उस समय उनकी अवस्था प्राय: 20 वर्ष की थी। वे काशी विश्व विद्यालय में वेदान्त शास्त्र की आचार्य परीक्षा देने के लिए उद्योग कर रहे थे। इस समय ये एक विशिष्ट विद्वान पुरुष और भक्त – अग्रणी हैं। काशी श्री वैष्णव महाविद्यालय के प्रधान अध्यापकों के मध्य अन्यतम। ये श्री स्वामी जी महाराज के एक प्रधान शिष्य बद्रीनाथ धाम वासी श्री रघुनाथ शास्त्री जी महाराज के शिष्य हैं। ये श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन एवं सेवा के लिए काशी से अयोध्या आश्रम में आये हुए हैं। श्री स्वामी जी महाराज के प्रकोष्ठ में प्रवेश कर उन्हें साष्टाङ्ग करके उपवेशन किये। उनकी असह्य शिर पीड़ा अनुभव करके श्रीरङ्ग रामानुज दास जी अति मृदु स्वर में श्री स्वामी जी महाराज के पास बैठते हुए साधु से कहने लगे –''इस प्रकार उच्च कोटि के सिद्ध पुरुष को भगवान इतना कष्ट दे रहे हैं, उन्हें दयालु किस तरह कहें ''! यद्यपि इस बात को बहुत धीरे से वे कहे थे, तथापि श्री स्वामी जी महाराज के श्रवण गोचर हो गया हम लोगों ने देखा, साथ ही साथ उनका मुख मण्डल क्लिष्ट भाव को परित्याग कर एक भिन्न आकार धारण किया।

''श्रीरङ्गरामानुज दास के प्रति शासन वाक्य'' श्री स्वामी जी का दोनों नेत्र आरक्त हो गया, वे रुष्ट भाव में वक्र वाहिनी से रङ्गरामानुज दास से बोले–''तुम बालक और मूर्ख हो, तुम्हारी विद्याबुद्धि सववृथा ही है। तुम्हारी इतनी बड़ी स्पर्धा जो तुम प्रभु जी को निर्दय बोलने का साहस किये। फिर तुम्हारे मुख से दोबारा ऐसी कथा सुनने पर तुम्हें इस आश्रम में रहने नहीं दूँगा। तुम क्या जानते नहीं कि वे कृपा सिन्धु हैं, निर्हेतुक कृपा सिन्धु हैं। तुमने क्या शास्त्र में पढ़ा नही है। तुमने क्या साधु मुख से सुना नहीं कि आधि व्याधिरूप त्रिताप, जीव अपने कर्मफल से भोग करता है। तुम क्या जानते नहीं हो जिसे ताल परिमाण दुर्भोग प्राप्य है उसे करुणामय भगवान तिल परिमाण भोग कराकर अव्याहति दान करते हैं आज से इस विषय को तुम अच्छी तरह समझ लेना, यही हमारा निर्देश है।'' श्री स्वामी जी के श्री मुख से नि:सृत भर्त्सना को सुनकर श्रीरङ्ग रामानुज दास

श्री स्वामी साष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर क्षमा प्रार्थना किये, श्री स्वामी जी महाराज कोई उत्तर नहीं दिये। उनका वदन-मण्डल शान्त आकार धारण किया। साधारणतः जिस समय लोग दुःख भोग करने लगते हैं, उस समय उनके मुख से सुना जाता है '' कि मैनें तो ज्ञान से ऐसा कोई पाप नहीं किया जिसके लिए इतना कष्ट भोग कर रहा हूँ। अर्थात् वे प्रत्यक्ष भाव से ही हो अथवा परोक्ष भाव से ही हो भगवान को निर्दय साव्यस्त करते रहते हैं। साधु समाज साधारणतः महाकष्ट के समय में भी नीरव रहकर महाकष्ट सहन किये जाते हैं। असह्य कष्ट भोग के समय में भी अति उच्चस्तर के साधु का मनोभाव हम लोग श्री स्वामी जी महाराज के ऊपर की उक्ति से उपलब्धि कर सकते हैं। हम अगर साधन भजन करते रहेंगे तो दुःख और कष्ट भोग के हाथ से अव्यहति मिलेगी, यह भावना भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। साधन भजन का उद्देश्य होता है, अवश्यम्भावी दुःख कष्ट भोग करने का मनोभाव एवं कष्ट सहन करने की क्षमता अर्जन करना। प्रभु वे दयामय हैं, हमारे कर्मफल जनित ताल परिमाण दुःखकष्ट को वे तिल परिमाण भोग कराकर अव्याहति दान करते हैं, यही भावना पोषण करनी चाहिए।

इस निदारुण कष्ट दायक चक्षु पीड़ा के समय में श्री स्वामी जी महाराज दिन पर दिन सर्वक्षण असह्य यन्त्रणा भोग करते हैं। एक दिन हम लोग कई एकजन उनके सन्मुख बैठे हुए हैं, श्री स्वामी जी महाराज यन्त्रणा की वजह से स्थिर नहीं रह पा रहे हैं, यथा नियम बैठे हुए हैं, किन्तु छट फट कर रहे हैं। सहसा देखा गया उनका दिव्य – देह स्थिर भाव धारण किया है। वे प्रसन्न वदन से स्थिर भाव में उपवेशन कर रहे हैं। बीच–बीच में मन्द हास्य करते हैं वायें हाथ के ऊपर दाहिने हाथ से ताली दे रहे हैं। (किसी विलक्षण दिव्य अनुभव के समय यही उनकी स्वाभाविक विलक्षण मुद्रा थी)। इस प्रकार से प्रायः दस मिनट काल अतिवाहित किये। तदनन्तर हम लोगों ने सुना श्री स्वामी अस्फुट स्वर से कह रहे हैं– ''आपकी अपार करुणा है। मैं आपका प्राचीन दास हूँ।'' यह कहकर वे नीरव एवं सुस्थ भाव से अवस्थान करने लगे। हम लोग स्पष्ट समझे कि श्री स्वामी जी महाराज एक नवीन दिव्य अनुभव में विभोर होकर दिव्य उपलब्धि से महाआनन्द में निमग्न हैं। स्वर्गीय यह परम रहस्य जानने की आकाङ्क्षा प्रवल होते हुए भी उन्हें इस विषय में जिज्ञासा करने का साहस किसी को भी नहीं हुआ।

''श्री स्वामी जी विषयक दिव्य–अनुभव''

उस वक्त वहाँ पर हम लोगों के मध्य में एक जन प्रवीण साधु विद्यमान थे। इस विषय में श्री स्वामी जी महाराज को निवेदन करने के लिए उन्हें सङ्केत के द्वारा विनय पूर्वक अनुरोध किया गया। वे थोड़ा इतस्ततः करके समुचित सम्भ्रम के साथ श्री स्वामी जी महाराज से उनके श्री मुख से निकली हुई इसी वाणी के आशय का विषय प्रश्न किये। श्री स्वामी जी महाराज कुछ देर तक नीरव रहे। पश्चात् बोले ''मेरी असह्य यन्त्रणा अनुभव करके श्री अम्बा जी मुझको अपनी गोद में लेकर अत्यन्त प्रेम से मेरे मस्तक तथा सारे अङ्ग पर अपना श्रीकर कमल स्पर्श करती रहती थीं। उनके सुशीतल कर स्पर्श से क्षण भर में ही मेरी सारी यन्त्रणा निवृत्त हो गई, जैसे कि अग्नि में पानी डाला गया हो। इसी दिव्य अनुभव में हम विभोर हो गये थे, मेरे मुख से सहसा ऐसी बात निकल गई।'' यह कहकर पुनः अनुभव धन्य शान्त भाव में उपवेश करके रहे। इस प्रकार का प्रगट अति दिव्य अनुभव अलौकिक महा उपलब्धि श्री स्वामी जी महाराज के सदृश सिद्ध महा पुरुषों को ही सम्भव है। हम लोग साक्षात् भाव से इस दिव्य उपलब्धि का विषय सुनकर धन्यातिधन्य हो सके थे। सिद्ध सदाचार्य का चरण समाश्रयण करने का यही फल है।

श्री स्वामी जी महाराज चक्षु पीड़ा से दिन पर दिन अत्यन्त कष्ट भोग करते हैं। उनके इस दुर्विसह यन्त्रणा की बात सुनकर बहुत साधु महात्मा उनका दर्शन करने आते हैं। अधिकारी श्री गरुडध्वज जी उपयुक्त अवसर समझकर किसी किसी को श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में उपस्थित करते हैं। एक दिन एकजन प्रवीण श्री.वैष्णव परम भागवत इसी भाव से श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में आकर उपस्थित हुए। बहुत देर तक वे नीरव रहकर श्री स्वामी जी महाराज की अवस्था निरीक्षण करने लगे। उनकी असह्य तीव्र यन्त्रणा को अनुभव करके वे प्रवीण श्री वैष्णव स्थिर नहीं रह सके। वे निवेदन किये ''श्री स्वामी जी महाराज आप कृपया मन्त्र का अनुसन्धान कीजिये, यन्त्रणा, का उपशम हो जावेगा। मन्त्र का ऐसा ही प्रभाव है।'' तदनन्तर और भी कई एक सान्त्वना वाक्य कह कर कुछ देर के पश्चात् श्री स्वामी जी को साष्टाङ्ग करके उनकी अनुमति लेकर विदा ग्रहण किये। वे जब तक थे उनकी बात उनका उपदेश श्री स्वामी जी महाराज चुपचाप सुनते ही रहे, कोई भी उत्तर नहीं दिये। साधु के चले जाने पर श्री स्वामी जी समुपस्थित भक्त वृन्द को उपदेश के छल से बोलने लगे–''मन्त्र का प्रभाव जो महात्मा जी कहे हैं वह ठीक है। इस प्रभाव का मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। मन्त्र और गुरु परम्परा सदा ही जप्तव्य है। स्फुटित अधर में अर्थ सहित सदा मन्त्र जप करना चाहिये। यह मन्त्र जप करते करते मेरी हड्डी–हड्डी में घुस गया है।''

किस भाव से मन्त्र जप करना चाहिए, मन्त्र जप का क्या फल है, मन्त्र जप के फल से वह मन्त्र अस्थि मज्जा के भीतर ही किस प्रकार प्रविष्ट रहता है, अस्थि मज्जा देह मन किस तरह मन्त्रमय हो जाते हैं, उसका उपदेश आज हम लोग पा रहे हैं उपलब्धिमय अनुष्ठान सिद्ध सदाचार्य के मुखार विन्द से इससे भी अधिक शक्तिशाली जीवन्त महाउपदेश और क्या हो सकता है? **'मन्तारं त्रायते इति मन्त्रः'** मनन कर्ता को मन जो परित्राण करता है, यही शास्त्र कहते हैं। यह परित्राण कार्य किस भाव से साधित होता है यह शास्त्र नहीं बोले हैं। उसी रहस्य को ही आज मन्त्र सिद्ध सद गुरु उद्‌घाटित करते हैं। वे कहते हैं– 'मन्त्र को अर्थ के सहित उच्चारण करना चाहिए, सदा सर्वदा उच्चारण करना चाहिए। इस भाव से निरन्तर अभ्यास के द्वारा समग्र तन, मन, अस्थि, मज्जा, मन्त्रमय होकर पूत पवित्र हो जाता हैं। मन्त्र के अनुसन्धान करने वाले को उद्धार कर देता है।' इसी कारण शास्त्र कहते हैं। – 'धर्मस्य तत्वम् निहितं गुहायाम्'। रहस्य वेत्ता सिद्ध साधुगण के हृदय गुहा में ही धर्म का प्रकृततत्व निहित रहता है। आज हम सब यह धर्म रहस्य प्रत्यक्ष दर्शन करके धन्यातिधन्य हो गये। यही सद्‌गुरु के सहवास का फल है। यह अज्ञात ज्ञापन ही सदाचार्य का प्रधान कृत्य है।

चक्षु की दुरारोग्य व्याधि इस 'ग्लूकोमा' से श्री स्वामी जी का दोनों नेत्र ही आक्रान्त है। निरन्तर तीव्र यातना हो रही, कुछ भी उपशम नहीं हो रहा है। अहर्निशि प्रायः बैठे हुए ही व्यतीत कर रहे हैं। यह दृश्य नहीं देखा जा रहा है। किन्तु इतना कष्ट होते हुए भी उनके पूजा पाठ आचार निष्ठा में कोई त्रुटि नहीं हो पा रही है। शायद पीछे कोई त्रुटि हो जाय इसी कारण श्री स्वामी जी वे चक्षु में अस्त्रोपचार कराने के लिए किसी तरह भी सम्मत नहीं हुए। फैजाबाद के सरकारी अस्पताल से बड़े डाकटर आकर देखे हैं, वे भी अस्त्रोपचार की बात ही बोले हैं। हम लोग कलिकाता से चक्षु के विशेषज्ञ डाक्टर को ले आने के लिए अनुमति माँगे। किन्तु श्री स्वामी जी महाराज का उसमें एकान्त अनभिमत हुआ। वह प्रवीण वैद्य की चिकित्सा हुई है, किन्तु उसमें कोई भी सुफल नहीं हुआ। डाक्टर एवं वैद्य दोनों ही ललाट के पास में जोंक लगाने का उपदेश दिये। अयोध्या में उपयुक्त जोंक का सन्धान किया गया लेकिन मिला नहीं, मैं (लेखक) कलिकाता जाकर तीन दिन के मध्य ही

उपयुक्त जोंक लेकर आया। ललाट के दोनों बगल में चार – चार करके आठ जोंक दो दिन लगाया गया। स्थानीय कुछ रुधिर बाहर कर दिया गया। यन्त्रणा की तीव्रता थोड़ी कम हुई किन्तु सामयिक भाव में। श्री स्वामी जी महाराज अत्यन्त शीघ्र और शक्तिहीन हो गये। दृष्टि शक्ति क्षीण से क्षीणतर होने लगी। प्रायः एक मास के बाद यन्त्रणा का थोड़ा उपशम होने लगा, किन्तु दृष्टि शक्ति क्रमशः अत्यन्त क्षीण हो गई।

यन्त्रणा उपशम होने के साथ ही साथ श्री स्वामी जी महाराज हम लोगों को कलिकाता लौट जाने के लिए आदेश किए और बोले– ''इस समय मैं अनेक स्वस्थ हूँ, तुम लोग कलिकाता लौट जाओ, वहाँ जाकर श्री ठाकुर जी का कैङ्कर्य करते रहो।''

''श्री स्वामी जी क्रमशः दृष्टिहीन''

अगत्या इच्छा नहीं रहते हुए भी मासाधिक काल के बाद कलिकाता लौट आया। श्री स्वामी जी महाराज के लिए सदा ही उद्विग्न हूँ अधिकारी जी प्रायः ही श्री स्वामी जी की अवस्था का विषय पत्र द्वारा हम लोगों को विदित करते थे। क्रमशः उनकी चक्षु यन्त्रणा जरूर कम हो गई, लेकिन दोनों नेत्र सम्पूर्ण दृष्टिहीन हो गये।

इसी प्रसङ्ग में अपने गुरुदेव की देह रक्षा के लिए एवं इस रक्षा के द्वारा भागवत गोष्ठी तथा समग्र वैष्णव सम्प्रदाय की रक्षा के उद्देश्य से श्री रामानुज स्वामी के परम प्रिय शिष्य श्री कूरेश का अपनी इच्छा से आत्मोत्सर्ग, अपनी इच्छा से अब लीला क्रम में अपने दोनों नेत्र के विसर्जन की एक अत्यद्भुत अभावनीय रोमाञ्चकर प्रकृत घटना का उल्लेख किया जाता है।

''श्री रामानुज स्वामी के जीवन रक्षार्थ कूरेश स्वामी का स्वः चक्षुदान''

खृष्टीय एकादश शताब्दी में दक्षिण भारत में चोल राज्य विद्यमान था। श्रीरङ्गम महानगरी इसी चोल राज्य के अन्तर्भुक्त थी। श्री रामानुज स्वामी की प्रकट अवस्था में इस चोल राज्य के राजा प्रवल पराक्रान्त एवं स्वैराचारी थे। वे शैव मतावलम्बी एवं वैष्णव विद्वेषी थे। समस्त चोल राज्य शैव मतावलम्बी करने के प्रयासी थे। इसी उद्देश्य से वे अपने राज्य में स्थित वैष्णव समाज के पक्ष में नाना प्रकार से असुविधा की सृष्टि करने लगे, ऐसा कि कहीं – कहीं पर अत्याचार करना भी आरम्भ कर दिये। भीति प्रदर्शन पूर्वक वैष्णवगणों की इच्छा के विरुद्ध उन्हें शैव मत में परिवर्तित करने लगे। मन्त्री एवं अमात्यगण राजा को ज्ञापन किये कि श्री रङ्गम प्रदेश वैष्णवगणों का मुख्य केन्द्र है एवं रामानुज इन वैष्णवगणों के प्राण स्वरूप है अगर किसी प्रकार रामानुज को शैवमत में लाया जा सके तो आपका उद्देश्य सिद्ध करना सुलभ हो जायेगा। तब इस अपयुक्ति के द्वारा वे अभिभूत हो गये। ऐसा सुनकर वे श्रीरङ्गम और तत्रस्थ मन्दिर एवं श्री रामानुज स्वामी को छल बल कौशल से आयत्ताधीन करने में बद्ध परिकर हुए। श्रीरङ्गम मन्दिर आयत्त में रखने के लिए वे राज सैन्य और प्रहरी गण को भेज दिये, एवं जैसे भी हो रामानुज को राजधानी में ले आने के लिए यथोपयुक्त विचक्षण कर्मचारी भेज दिये।

इधर चर के मुख से यह समस्त वैष्णव विरोधी राजकीय कार्यकलाप का विषय वैष्णवगण धीरे–धीरे अवहित होने लगे। चोल राजधानी जिस किसी प्रकार रामानुज को ले जाने के आदेश का सम्वाद रामानुज एवं उनकी अन्तरङ्ग गोष्ठी भी यथा समय पर जान पाई। सभी एक कण्ठ से स्वीकार किये कि रामानुज का गमन चोल राज्य में विपज्जनक होगा। राज भटवर्ग जिससे रामानुज को ले नहीं जा सकें उसके लिए जो कोई भी उपाय हो उसकी व्यवस्था करनी पड़ेगी। रामानुज स्वामी के प्रथम और प्रधान शिष्य महाप्राज्ञ कूरेश उनके चरण में पतित होकर अपना उक्त सिद्धान्त निवेदन करते हुए रामानुज के बदले वे स्वतः ही चोल राजा के

निकट रामानुज बनकर जाने के लिए आर्त्तभाव से अनुमति की प्रार्थना किये। इसके साथ समस्त अन्तरंग गोष्ठी समवेत भाव से एवं आकुल भाव से कूरेश की यह प्रार्थना पूरण करने के लिए रामानुज के चरण में प्रार्थना करने लगी। चारों तरफ अच्छी तरह विचार करके अगत्या रामानुज इस प्रस्ताव में सम्मत हुए। श्री रामानुज स्वामी उस समय गैरिव सन (गेरु वस्त्र) परिहित सन्यासी थे। राज भट की प्रतीति के लिए कूरेश स्वामी इस सन्यास वेश को धारण करके श्री रामानुज स्वामी के मठ में वास करने लगे। राज कर्मचारी लोग श्रीरङ्गम में आकर, रामानुज के मठ में गये एवं चोल राजा का आदेश ज्ञापन करते हुए जनाये कि हम लोग रामानुज को राजधानी में साथ लेकर जाने के लिए आये हैं। मठ वासीगण उनके गैरिक वसन को पहले हुए कूरेश के निकट उपस्थित करके उन्हें रामानुज कहकर परिचय करा दिये। कर्मचारीगण उनसे राजा का आदेश ज्ञापन करने पर रामानुज वेशधारी कूरेश आनन्द के सहित उन लोगों के साथ राजा के समीप में गमन किये। चोल राज रामानुज समझकर कूरेश को आदर अभ्यर्थना पूर्वक बैठाये। थोड़ी कथावार्ता करने के बाद उनसे वैष्णव धर्म परित्याग करके शैव धर्म अवलम्बन करने को बोले। कूरेश किसी भी तरह उससे स्वीकृत नहीं हुए राजा तब कूरेश को नाना प्रकार का भय दिखाने लगे, तथापि कूरेश अपने मत पर अटल ही रहे। अत्यन्त रुष्ट होकर दुष्ट राजा कूरेश को आदेश किये कि तुम यहाँ पर लिख दो कि – ''शिवात्परं नास्ति'' नहीं तो तुम्हारा दो चक्षु अभी ही निकाल लिया जायेगा। राजा का यह आदेश सुनकर कूरेश लिख दिये- शिवात्परतरंनास्ति, द्रोणमस्ति अतः परम्।'' (शिव एवं द्रोण दोनों ही परिमाण वाचक शब्द हैं, शिव से द्रोण का परिमाण अधिक होता है)। कूरेश के इस व्यङ्ग भाव का लेख देखकर निष्ठुर राजा तब उनके दोनों नेत्र को निकाल लेने का आदेश दिये। बोला बहुत शीघ्र ही राजा का आदेश पालित हो गया। नेत्र को निकालने के बाद मरणापन्न अवस्था में राजा के आदेश से कूरेश को राजधानी से वहिष्कृत कर दिया गया। निकटस्थ ग्रामीण वैष्णवगण की ऐकान्तिक शुश्रूषा से कूरेश सम्पूर्ण दृष्टिहीन अवस्था में जीवन रक्षा हुई, एवं यथा समय पर श्रीरङ्गम् पहुँच गए।

कूरेश स्वामी के इस दिव्य अनुष्ठान की तुलना कहाँ? उनकी गुरु – भक्ति और इष्ट निष्ठा अनुपम है। लोक हितकर रामानुज स्वामी के जीवन की रक्षा के लिए वे निश्चित मरण के मुख में कूद पड़े। उनके ऐसे अनुष्ठान से रामानुज स्वामी को अव्याहति मिली समस्त वैष्णव समाज की रक्षा हुई। किन्तु इस फल के मिलने के लिए कूरेश स्वामी को मूल्य देना पड़ा अपने दोनों नेत्र को । अवश्य वे अपना प्राण देने को प्रस्तुत होकर ही वैष्णव विद्वेषी चोल राजा के पास आये थे। धन्य ऐसी गुरु भक्ति, और धन्य कूरेश का यह आदर्श।

इस स्थल पर इष्ट – निष्ठा के विषय में कुछ मन्तव्य करने का प्रयोजन है। अनन्य भजन का अर्थ है कि एक ही इष्ट देव में निष्ठा रखकर भजन करना। इस अनन्य भजन को पातिव्रत्य–धर्म के साथ तुलना किया गया है। सती स्त्री का अपने पति के भिन्न जिस प्रकार अन्य कोई दूसरे पुरुष की भावना अपने इष्ट वस्तु के लिए नहीं रह सकती, प्रकृत अनन्य भजनशील साधकों का भी ठीक तद्रूप ही है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अपने इष्ट देव को छोड़कर दूसरे देवता के प्रति उनमें कोई श्रद्धा नहीं रहे जेठानी पतिव्रता स्त्री जिस प्रकार पिता, काका जेष्ठ भ्राता, श्वसुर, प्रभृति गुरुजनों का आदर करती रहती है, अनन्य भजन निष्ठों के लिए उसी तरह अन्यान्य देवता भजनीय नहीं होने पर भी आदरणीय हैं। उत्तम अनन्य भजन–निष्ठ परम वैष्णव कूरेश प्राण के विनिमय में भी "शिवात्परतंर नास्ति'' यह बोलना नहीं चाहे। इस अपराध में अपनी इच्छा से

उन्हें अपना दोनों नेत्र त्याग करना पड़ा था। 'परमैकान्तिक' भक्त का यही प्रकृष्ट लक्षण है। इस प्रसङ्ग में पातिव्रत्य धर्म का आदर्श 'सती' का दृष्टान्त नहीं भूलना चाहिए। अन्य देवताओं के उपस्थित रहने पर भी शिवहीन देखकर दक्ष – यज्ञ में सती अपना प्राण त्याग कर दीं थीं।

''कूरेश स्वामी और बलराम स्वामी के अनुष्ठान का सादृश्य''

कूरेश स्वामी अपने गुरुदेव की रक्षा के लिए नेत्र विसर्जन दिये थे, तथा भागवत समाज की रक्षा के हेतु, एवं वैष्णव – समाज की रक्षा के हेतु से विसर्जन दिये थे। बलराम स्वामी अपनी इष्ट अर्चना का विघ्न प्रतिरोध करने के लिए एवं भागवत गोष्ठी में अनुष्ठान का आदर्श स्थापन करने के लिए अपना चक्षु विसर्जन दिये थे। अपने सिद्धान्त में दृढ़ होकर दोनों ही अपना प्राण तुच्छ करके भी इस दिव्य अनुष्ठान में सुदृढ़ थे। एक जन जान, सुनकर निमेष के मध्य ही चक्षुहीन हुए, और एकजन तिल तिल करके चक्षुहीन हुए। दोनों ही अपने सिद्धान्त के एवं तदनुगुण अनुष्ठान के उज्ज्वल आदर्श थे।

'' श्री स्वामी जी महाराज की दृष्टि शक्ति सम्पूर्ण विनष्ट''

श्री स्वामी जी महाराज सम्पूर्ण दृष्टि शक्ति विहीन हो गये हैं। उनकी अवस्था इस समय 86 वर्ष की थी। (खृष्टाब्द 1928), किन्तु वे निर्विकार, मन में कोई भी दुःख नहीं, सर्वदा ही प्रसन्न। उनका मन सर्वदा ही अन्तर्मुखी होकर है। ज्ञान वैराग्य एवं भक्ति के सागर आदर्श शरणागत सिद्ध महापुरुष नवति वर्ष पर श्री स्वामी जी महाराज आज बाहर में अपरूप शोभा सम्पन्न होकर एवं अन्तर में अभिनव भाव सम्पन्न होकर विराज रहे हैं। समस्त में केवल आधा सेर दुग्ध सेवन से परितृप्त दिव्य देह, समस्त अङ्ग व्याप्त होकर एक दिव्य ज्योति उद्भासित तैललव सम्बन्ध विहीन त्वक्, मसृण, लोल और शिथिल है। कर तल, पद तल निर्मल और रक्तिम आभा से मण्डित, परिधान में जानु पर्यन्त कटिवस्त्र तीन हाथ लम्बा, चार हाथ लम्बा एक उत्तरीय चादर है। क्या शीत क्या गर्म सब ऋतु में ही अपने कम्बल के आसन पर अर्ध निमीलित नेत्र से प्रायः केवल तीन चार घण्टा निद्रा के समय को छोड़कर उपविष्ट अहर्निश अपने भाव से भगवान के अनुभव में सदा विभोर–वदन कमल सदा प्रसन्न, भाव से कभी गम्भीर और कभी मन्दस्मित, अधर मन्त्र के जप से सदा स्फुरित अथवा, कभी अति मृदु स्वर से कुछ शब्दों का उच्चारण बाहर से किसी को स्पष्ट समझ नहीं आता, ऐसा मालूम पड़ता था जैसे किसी के उद्देश्य से कुछ बोल रहे हैं। एक हस्त तालु के ऊपर दूसरा हस्त तालू स्थापित।

''उनकी परमहंस अवस्था''

सहसा ऐसी अवस्था में कभी दिखाई पड़ता कि ईषत् हास्य करके दो तीन बार ताली वादन अन्तर सदा ही भगवद् भाव में विभोर, सर्वदा ही ध्यान मग्न अवस्था। अभ्यागत साधु महात्मा अथवा आश्रमस्थ साधु महात्मागण कभी कुछ प्रश्न करते तब प्रकृतिस्थ होकर उन लोगों को यथा विहित उत्तर देते, उन लोगों की शंका का समाधान कर देते, उन लोगों को उपदेश देकर सन्तुष्ट कर देते। सर्वदा ही उनकी ऐसी परमहंस अवस्था रहती।

अपने बनाये हुए 'हंसाश्रम निर्णय' प्रबन्ध में वे शास्त्र समुद्र मन्थन करके इस हंसाश्रमीय धर्मका जो समस्त सारतत्व प्रकाश कर गये हैं इस समय वह सब अपने अनुष्ठान में प्रस्फुटित कर दिये हैं। श्री स्वामी जी महाराज के बनाये हुए दिव्य प्रबन्ध का अवलम्बन करके इस परम हंस अवस्था का एक संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

परमहंस अवस्था

श्री मद्भागवत, नारद पञ्चरात्र, आदि सात्त्विक पुराण और शास्त्र परमहंस आश्रम एवं परमहंसों के हित में बहुमुखी होकर कीर्त्तन किये हैं–

यत्रानुरक्ता सहसैव धीरा,
व्यापोह्य सङ्गादिषु सङ्गमूढ़म् ।
व्रजन्ति यत्पारमहंस्यमन्त्यं,
यस्मिन्नहिंसोपशमः सधर्मः ।। (भाः 1/18/22)

इसका अर्थ :– भगवान् के श्री चरण में अनुरक्त पुरुषगण देहादि में आसक्ति शून्य होकर जिस आश्रम का अवलम्बन करके रहते हैं वही भागवत् 'पारमहंस्य' आश्रम कहा जाता है।

''परमहंस अवस्था का परिचय''

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वाणप्रस्थस्तथा यतिः ।
चत्वारोविहिता:शास्त्रे, पंचमो मदव्यपाश्रयः।।
चत्वारः प्राकृताः ह्येते, तादृशोऽन्योनविद्यते ।
वैष्णवस्तद् गुणातीतो, ह्यतः प्रोक्तोऽस्ति पञ्चमः।। (पां: रा:)

अर्थात् ब्रह्मचारी गृहस्थगण वाणप्रस्थ एवं सन्यास शास्त्र में यही चार आश्रम विहित हैं हमको (नारद को) विशेष रूप से जो आश्रय किये हैं वे पञ्चमाश्रयी कहलाते हैं। यह चार आश्रम प्राकृत हैं। एतादृश प्राकृत अन्य आश्रम नहीं है। इन प्राकृत आश्रमों के अलावा एक पञ्चमाश्रम है जिसे वैष्णवाश्रम कहा जाता है।

इन भागवत परमहंसो का स्वरूप एवं गुण का परिचय शास्त्र देते हैं :

किं वा भागवता धर्माः न प्रायेण निरूपिताः।
प्रियाः परम हंसानां, त एव ह्यच्युत प्रियाः।। (भाः 1/5/31)

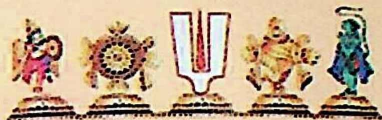
हंस जिस प्रकार पद्म मकरन्द के प्रति आसक्त रहता है, उसी तरह हंसाश्रमी परमहंस वैष्णवगण भी भगवत्पादार विन्द के मकरन्दादि में श्री हरि के रूप गुण लीलादि के श्रवण कीर्त्तन आदि में निरत रहते हैं। भगवान् के यश के द्वारा अङ्कित यश प्रकाशक नामावली अनन्त है। इनका श्रवण एवं कीर्त्तन साधुगण निरन्तर करते रहते हैं। पक्षान्तर में जिस स्थल पर श्री हरि के यश की कथा एवं नानाविध जगत्पावन रूप गुणादि की कथा नहीं है वह स्थान काकतीर्थ स्वरूप है अर्थात् वह अमेध्य उच्छिष्टमय गर्त्त के समान है। उसमें परमहंस कभी रमण नहीं करते।

नयद्वचश्चित्र पदं हरेर्यशो,
जगत् पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थ मुशन्ति साधवो,
न यत्र हंसा निरमन्त्यु शिक्क्षयाः।। (भाः 1/5/10)

जहाँ हरि कथा नहीं है वह काकतीर्थ है, वह परमहंस सेवित नहीं है। जहाँ पर अच्युत कथा है उसी जगह पवित्र साधुगण विराज करते हैं।

तद् ध्वाङ्क्ष तीर्थनतु हंस सेवितम् ।
यत्राच्युत स्तत्र हि साधवोऽमलाः।। 12/12/50।।

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्री गरुड़ध्वज अधिकारी जी

महानुभव परम सुहृद् ऋषभ भगवान् समेत सङ्ग कामना से निवृत्त महामुनिगण को भक्ति ज्ञान वैराग्य लक्षण सम्पन्न इस पारमहंस्य धर्म की शिक्षा दिये थे।

उपशम शीलानां उपरत कर्म्मणां महामुनीनां 5/5/28

भक्ति ज्ञान वैराग्यलक्षणं पारमहंस्य धर्मयं उपशिक्षभाण:। (भा: 5/उद्धव श्रीकृष्ण से कहते हैं– 'हे कमल लोचन! सबको आनन्द देने वाला आपका जो चरण कमल है परमहंसगण उसी का आश्रय ग्रहण करके रहते हैं।

अथात् आनन्ददुधं पदाम्वुजम्,
हंसा: श्रयेरन्नरविन्द लोचन ।। भा: 11/29/3।।

इस रूप से परमै कान्तिकगण एक मात्र श्री हरि को ही अपने स्वामी रूप में प्रभु रूप में दृढ़ मति से स्वीकार किये रहते हैं। विष्णु सम्बन्धित नामादि के द्वारा ही वे सर्वत्र परिचित हैं। विष्णु ही उनके सर्वस्व होते हैं।

परमैकान्ती हरौ स्वामीति बुद्धिमान् ।
विष्णुना व्यपदेष्टव्यस्तस्य सर्वसएवहि ।।

इन समस्त परमहंसों का, देह में आत्मबुद्धिरूप सुदृढ़ हृदय ग्रन्थि छिन्न हो गई है, वे निर्वैर, हैं। सर्व भूतों के सुहृद, साक्षात् चक्रधारी भगवान स्वयं उनकी यत्न के सहित रक्षा करते हैं। सर्वदा भगवान् के चरण में समाश्रित तादृश भगवद् भक्त परमहंसगण निज शिरश्द्देदन के समय में भी (मृत्युकाल उपस्थित समय में भी) जो विचलित नहीं होते उसमें आश्चर्य और क्या है?

'महदद्भुतं यदसम्भ्रम: स्वशिरश्द्देदन आपतितेऽपि विभुक्त देहाद्यात्म–भाव सुदृढ़ हृदय ग्रन्थीनां सर्वसत्त्व सुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवताऽनिमिषारिवरायुधेनाप्रभत्तेन तैस्तैर्भावै: परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलम–कुतश्चिद् भयमुपसृतानां भागवत परम हंसानाम'। (भा: 5/9/20।)

यह सब परमहंसगण मोक्ष लाभ के लिए भी अभिलाषी नहीं होते।

न परिलषन्ति केचिद्, अपवर्गमयीश्वर ते ।
चरणसरोजहंसकुल सङ्ग विसृष्ट गृहा:।। (भा: 10/80/21)

हे ईश्वर जो आपके चरणकमल के मकरन्द पायी हैं, जो वैराग्यवान् होकर गृहादि परित्याग किये हैं, परमहंस रूपी उन महा भागवतों के मध्य अनेक मोक्ष लाभ के लिए भी अभिलाषी नहीं रहते। ऊपर में जो कहा गया वह गुणावली, महा भागवत परमहंसों के स्वरूप का एवं गुणावली का एक संक्षिप्त परिचय मात्र है। वेदादि समस्त शास्त्र ही श्री हरि की गुण–गाथा कीर्तन किये हैं।

वेदे रामायणे चैव, पुराणे भारते तथा ।
आदौ मध्ये तथैवान्ते, हरि: सर्वत्रगीयते ।।

श्रीमद् भागवत पद पद में ही हरिचरित्र के आस्वादन में परिपूर्ण है।

इहतु पुनर्भगवान शेषमूर्ति:।
परिपठितोऽनुपदं कथा प्रसङ्गै: ।। (भा: 12/12/65)

इस श्रीमद्भागवत में विशेष करके भागवत परमहंसों की आस्वास्थ्य विषयावली कीर्त्तित हुई है, इसी कारण श्रीमद्भागवत् को 'पारमहंस्य संहिता' नाम से अभिहित किया हुआ है। यह श्रीमद्भागवत परमहंस वैष्णवों का परम धन है।

श्रीमद्–भागवतं पुराणममलम्,
यद् वैष्णवानां प्रियम् ।
यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलम्
ज्ञानं परं गीयते ।। (भा: 12/13/18)

परमहंसों की उक्त प्रकृष्ट गुणावली श्री स्वामी जी महाराज के मध्य में परिपूर्ण भाव से विराजित देखकर हम लोग विस्मित और अभिभूत हो जाते। कलियुग के प्रभाव से धर्म सर्वत्र लीन हो रहा है। किन्तु श्री स्वामी जी महाराज के मध्य में उक्त गुणों का किसी प्रकार का मालिन्य स्पर्श नहीं कर सका। परमहंसों का स्वरुप उनके मध्य में सम्यक् रक्षित था। परमहंसों के समस्त गुण उनके मध्य में परिपूर्ण रुप से प्रस्फुटित था। श्री स्वामी जी की चक्षु पीणा (GLAUCOMA) के समय से उनके प्रधानतम शिष्य श्री भागवताचारी उनका सन्निधि छोड़कर और अन्यत्र गमन नहीं किये, नाना प्रकार की अनसुस्थता रहने पर भी श्री विजय राघवजी महाराज के आश्रम में ही अवस्थान करने लगे।

''दृष्टिहीन श्री स्वामी जी का आचार अनुष्ठान''

वृन्दावनस्थ श्रीगोपालजी मन्दिर के भार प्राप्त शिष्य–श्रीरामप्रपन्नाचार्य स्वामी जी वृन्दावन से घन-घन अयोध्या यातायात करने लगे। अधिकारी श्री गरुड़ध्वज स्वामी आश्रम के परिचालन कार्य में समधिक व्यस्त रहने लगे। शौचादि कराने के लिए उनका श्रीहस्त पकड़ कर ले जाना आरम्भ हुआ। कभी विशेष भाव से निर्मित एक काठ की चौकी पर बैठा कर उन्हें वहन करके ले जाया जाने लगा।

इस तरह से वहिरङ्ग कार्य में वे जिस प्रकार पर निर्भरशील हो पड़े, उसी प्रकार भगवत् चिन्ता में भगवदनुभव में वे सम्पूर्ण अवगाहन करते हुए कालातिपात करने लगे। जिस समय दृष्टि शक्ति विद्यमान थी वे स्वयं जाकर श्री विजय राघव जी भगवान का दर्शन करते, प्रदक्षिणा करते। वे स्वयं ग्रन्थ का पाठ करते। ग्रन्थ को देखकर कालक्षेप करते। भगवान् को समस्त अन्नादि विविध भोग अपनी आँख से दर्शन करते।

वे स्वतः निवेदित दुग्ध अथवा कभी कुछ निवेदित फल प्रसाद ही पाते, किन्तु नित्य निवेदित समस्त अन्नादि भोग अपने चक्षु से दर्शन करते। यदि रन्धन में कोई त्रुटि रहती तब रसोइयाँ को बुलाकर शासन करते जिससे फिर दूसरी बार ऐसी त्रुटि नहीं हो पाये। इसीलिए रसोइया भी सर्वदा सतर्क और सशङ्कित रहते।

कोई परिचित साधु यदि आ जाता तो उसे देखकर पहिचान लेते और तदनुगुण व्यवहार करते। स्वावलम्बी होकर शौच आदि में गमन करते। इस समय दृष्टिहीन होने के कारण उन समस्त कार्यों में विघ्न अवश्य होने लगा, किन्तु उससे उनका यह समस्त कर्म बन्द नहीं हो गया। वे किसी अन्तरङ्ग सेवक का हाथ पकड़कर श्री मन्दिर में जाकर नित्य श्री विजय राघव भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करते, प्रदक्षिणा करते। किसी विद्वान् शिष्य अथवा भक्त के द्वारा ग्रन्थ पाठ कराकर श्रवण करते। भगवत् निवेदित यावत् अन्नादि भोग लगाने के बाद अपने हाथ से स्पर्श करते, स्पर्श के द्वारा ही वे विभिन्न भोग का दोष गुण विचार कर लेते। त्रुटि होने पर पहले की तरह शासन करते। नवागत परिचित साधु के आगमन करने पर उस के कण्ठ स्वर से उन्हें पहिचान लेते।

ग्रन्थ के अवलम्बन से उनका नित्य कालक्षेप अवश्य बन्द हो गया, किन्तु उसके बदले साधु समागम से, उनका धर्म विषयक विविध संशय के समाधान से, विविध प्रश्न के उत्तर से उनका बहुत समय अतिवाहित होने

...ना, पिपासुओं की पिपासा भी मिटने लगी। दृष्टिहीन अवस्था होने के प्रथम, तीन चार घण्टा निद्रा एवं 2/1 घण्टा ग्रन्थ पाठ व्यतीत प्रायः सब समय ही अपने निर्दिष्ट आसन पर बैठ कर भगवद्विषय की आलोचना एवं भगवद्विषय के चिन्तन में समय अतिवाहित करते। उनका इस वर्हिदृष्टिहीन अवस्था में भी ग्रन्थावलोकन–भिन्न अन्यान्य समस्त व्यापार ही वे पूर्ववत निर्वाह करते रहते। इस वहिर्दृष्टिहीन अवस्था में स्वभावतः ही उनकी अन्तर्दृष्टि गंभीरतर होने लगी, उनका अन्तर्दृष्टि कार्य सुदूर प्रसारित होने लगा। इस अवस्था में उनकी मेधा शक्ति एवं स्मरण शक्ति का परिचय प्रायः ही हम लोगों को मिलता। दृष्टान्त स्वरूप नीचे दो एक उल्लेख किया जाता है।

एक दिन श्री विजयराघव जी भगवान् को विशेष भोग लगेगा। श्री स्वामी जी महाराज की इच्छा कि 'क्षीरान्न' एवं रायता यही विशेष भोग लगे। इस क्षीरान्न के रन्धन में कितने विशेष चावल का प्रयोजन, एक सेर चावल में कितना क्षीरान्न होता है, कितना दूध कितनी चीनी और अन्यान्य मसाला क्या क्या, तथा किसना कितना लगता है, चावल के कितनी देर तक सिद्ध होने के पश्चात् कब क्या क्या विभिन्न उपकरण देना होता है वह पुंखवानुपुंख रूप से बोल दिये। रायता बनाने के विषय में भी उसी प्रकार का विस्तृत उपदेश दिये। तत्पश्चात् तत्रत्य भक्त मण्डली, के सम्यक् अवगति के लिए वे एक जन सेवक को आश्रम के ग्रन्थागार से 'सच्चरित्र परित्राण' नामक हस्त लिखित पोथी को ले आने के लिए बोले। पोथी ले आई गई, तब वे बोले कि अमुक पृष्ठ के ऊपर की तरफ उक्त प्रसङ्ग विशेष भाव से वर्णित है देखो। देखा गया ठीक उसी स्थल पर वह विषय उनके उपदेश के अनुगुण ही वर्णित है। उनकी एतादृश अभिज्ञता एवं स्मृति शक्ति का अनुभव करके हम सभी विस्मित हो गये। गो–पालन से आरम्भ करके अध्यापना अर्चना प्रभृति प्रत्येक कार्य में ही वे परिनिष्ठ थे। जिस प्रकार से भगवद् द्रव्य का किसी भी तरह का अपचय वे सहन नहीं कर पाते, उसी प्रकार कोई प्रार्थी अथवा आतुर को अभुक्त अवस्था में आश्रम के द्वारसे निराश होकर लौटने नहीं देते। तुलसी कानन एवं फूल बगीचा के परिचर्या की तरफ सतर्क दृष्टि रखते। सद्यभोज्य अन्नादि प्रसाद एवं कालान्तर भोज्य घृतपक्व प्रसाद दोनों के प्रति ही उनकी समान दृष्टि थी। घृतपक्व लड्डू प्रभृति संरक्षणीय मिष्ठान्न किस ऋतु में प्रस्तुत करना प्रशस्त होगा भगवन्निवेदित करके किस तरह वह प्रसाद सुरक्षित रखना पड़ता है उस विषय में उनकी स्वभाव सिद्ध अपूर्व–दक्षता को हम लोग लक्ष्य किये हैं। किस महीने में वर्ष भर के लिए रन्धन का काष्ठ खरीद करना होगा, चावल, दाल प्रभृति भोज्य सामग्री खरीद करना होगा, प्रत्येक कितने परिमाण में संग्रह करना होगा, उस विषय में वे अधिकारी जी को तथा कुठारी जी को सम्यक् निर्देश देते।

वे कितना अधिक, हिसाब रखने वाले थे कि उसे देखकर हम लोग विस्मित और अभिभूत हो जाते। भगवान के कैङ्कर्य्य में उनकी ऐसी सर्वतो मुखी पारदर्शिता से विस्मित होकर हमारे एकजन गुरु भ्राता पद्मनाभ रामानुजदास महाशय (परितोष राय चौधरी) अतिशय उपयुक्त भाव से एक समय उनसे इस विषय में निवेदन किये थे। उसके उत्तर में वे हँसकर उत्तर दिये थे ''भैया! भगवान् के संसार में सुनिपुण गृहिणी नहीं होने से उनका कैङ्कर्य सुसम्पन्न नहीं किया जा सकता, उनका संसार सुष्ठु भाव से निर्वाह नहीं किया जा सकता। इस सर्वतो मुखी कैङ्कर्य के द्वारा ही जीव का प्रकृत स्वरूप रक्षित होकर रहता है।'' श्री भगवान् के लिए भोग रन्धन जिससे सर्वाङ्ग सुन्दर हो उस विषय में सर्वदा उनकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। इसी कारण से रसोइया लोग सर्वदा भयभीत होकर रन्धन कार्य में सतर्क रहते। यद्यपि वे चिर जीवन फल मूलाहारी थे, कोई भी अन्न प्रसाद

नहीं लेते, तथापि वे प्रत्यह भोग लगने के बाद निवेदित समस्त अन्न व्यञ्जन प्रभृति अपने आँख से करते। दृष्टि शक्ति विलुप्त होने के बाद भी यह समस्त अन्न व्यञ्जन आदि प्रसाद निज कर स्पर्श से अनुभव करते। इस सुदक्ष कर स्पर्श से ही दर्शन का कार्य सुसम्पन्न कर लेते।

कतशत आवृत्ति एवं कितनी पर्यालोचना के फल से विविध कैङ्कर्य के विषय में इस प्रकार अद्भुत होती है, वह हम सभी अच्छी तरह समझ सकते हैं। श्री स्वामी जी महाराज की चक्षुष्मान अवस्था में उनकी अद्भुत व्युत्पत्ति का साक्षात् परिचय इस प्रकार सम्यक् भाव से पाने का सौभाग्य हम लोगों को नहीं उनकी दृष्टिहीन इस अवस्था में इस समय हम लोग यह समझ पा रहे हैं कि यह समस्त ज्ञान एवं अनु कितना अधिक आत्यन्तिक भाव से अनुशीलन किये हैं।

दृष्टि शक्ति हारा होकर श्री स्वामी जी महाराज न्यूनाधिक चार वर्ष प्रकट थे। यह कई वर्ष ही वे परमहंस रूप से विराज किये हैं। वे सम्यक् देहात्माभिमान शून्य वैराग्य पूर्ण एवं भक्ति के अतल समुद्र प्रकृत शरणागति के परम आदर्श स्थल थे। भगवच्चिन्ताव्यतीत उनकी अन्य कोई दूसरी चिन्ता नहीं थी, ही प्रसन्न, सदा ही कैङ्कर्य परायण थे। इसी लिए उनकी स्तुति एवं उन्हें बिना प्रणाम किये नहीं रहा जा

नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्ट, ज्ञान वैराग्य राशये ।
नाथाय वलरामाय, भगवद्भक्ति – सिन्धवे ।।

अन्दाज खृष्टाब्द 1929 साल के शेष में अयोध्या से टेलिग्राफ आया कि श्री स्वामी जी चरण में पाकर असुस्थ हो पड़े हैं। उस समय उनकी अवस्था 87/88 वर्ष की होगी। उनकी असुस्थता का संवाद अपने एक गुरु भ्राता के साथ मैं भी उनके चरण प्रान्त में उपस्थित हुआ।

अत्यन्त वृद्धावस्था, तप क्लिष्ट शरीर, असुस्थ अवस्था देखकर हम लोग विशेष चिन्तित सुख्यात वैद्य के तत्त्वावधान में चिकित्सा आरम्भ हो गई है। पैर की गाँठ फूली है एवं व्यथा के लिए वैद्य हल्दी मिलाकर प्रलेप लगाने की व्यवस्था किये हैं। प्रलेप लगाने का भार हमारे ऊपर पड़ा वैद्य के निर्देश यथा शक्ति लेप तैयार करके लगा देता हूँ। चूना एवं हल्दी भगवान के कुठार से मठ के अधिकारी प्रलेप प्रयोग के दूसरे दिन गुरु देव श्री स्वामी जी महाराज हमसे जिज्ञासा किये– औषधि का सामान हल्दी) कहाँ से ले आते हो? समझ गया कि उनके इस प्रश्न का कोई गूढ़ अर्थ है, किन्तु वह अर्थ क्या नहीं समझ पाया। मैंने उत्तर दिया – अधिकारी जी कोठार से ले आकर हमें देते हैं। यह सुनकर वे जी को बुलाने के लिए कहे। गम्भीर भाव से कुछ देर तक चुप होकर रहे। अधिकारी जी के आने सम्बोधन करके कहने लगे– ''अरे आप सब जानते हुए हमारा परकाल विगाड़ना चाहते हो। हमारे निव में भगवद् द्रव्य लगा दिया है।''

बोला कि मठ के अधिकारी प्रायशः ज्ञानी एवं वैराग्यवान् पुरुष ही हुआ करते हैं, यह बात अधिकारी जी नीचे मुखकर चुप हो गये। कुछ शान्त होकर– शिक्षा देने के लिए श्री स्वामी जी महाराज बोले–

''तुम महा अपराध किये हो। तुम्हें जानना चाहिए, कि जो वस्तु भगवान् के व्यवहार के लिए सञ्चित है वह भगवद् द्रव्य है। यह द्रव्य केवल उन्हीं की सेवा में व्यवहार करना चाहिए। अन्यथा व्यवहार पर वह महा अपराध नाम से परिगणित होता है। भगवद् द्रव्य का अपहार करना महा अपराध है। इस

अपराध के लिए फल भोग करना होता है, इस कार्य में संश्लिष्ट समस्त व्यक्तियों को ही इस महा अपराध का फलभोग करना होता है अधिकारी जी तुम्हें यह द्रव्य दिये हैं तुम इसके द्वारा औषध प्रस्तुत कर प्रलेप दिये हो, एवं वह प्रलेप हमारे देह में दिया गया है अतएव हम तीन जन ही उपयुक्त फल भोग के पात्र हैं। सावधान– इस समय से तुम लोग अपने अर्थ से बाजार से चून एवं हल्दी खरीद कर उसके द्वारा प्रलेप प्रस्तुत करना। अन्य किसी समय में भी भगवान् की सेवा के भिन्न अन्य किसी भी कार्य में भगवद् द्रव्य व्यवहार नहीं करना। भगवत्पूजा महोत्सवादि के प्रवाह की रक्षा के लिए स्थापित भगवत् सम्पत्ति अपने कार्य में अथवा अन्य कार्य में यहाँ तक कि अन्य कोई सामान्य धर्म के कार्य में भी व्यय नहीं करना। यह कार्य भगवद् व्यवहार रूप निषिद्ध कुकार्य है। इसका कुफल अवश्य भोग करना होता है। यह शास्त्र वचन है, शास्त्र वचन कभी मिथ्या नहीं होता। मठाधीश अथवा देव मन्दिर के कुलपति को ऐसे अपराध की समधिक सम्भावना रहती है। इसलिए उन लोगों को सर्वदा सतर्क एवं सावधान इस विषय में रहना पड़ता है। इस विषय वाल्मीकीय रामायण कहते हैं –

यभिच्छेन्नरकंनेतुं, सपुत्र पशुवान्धवम् ।
देवष्वधिष्ठितं कुर्यात्, गोषुच ब्राह्मणेषुच ।।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु, कौलपत्यं न कारयेत् ।। (उत्तर काण्ड)

पुत्र पशु और बन्धु बान्धव सहित जिसे नरक में भेजने की इच्छा हो उसको उसे देव मन्दिर अथवा मठ में अधिष्ठित करो, गौ एवं ब्राह्मण की सेवा में लगा दो। (कारण देवता, गौ एवं ब्राह्मण के निकट अपराध नरक का हेतु होता है।) अतएव किसी अवस्था में भी मठ अथवा देव मन्दिर में कौलपत्य नहीं करना।'' यह उपदेश देकर वे सार्द्र करुणा दृष्टि से हम लोगों की तरफ देखते रहे।

श्री स्वामी जी जिस प्रकार का अमूल्य उपदेश दिये वह हम लोगों के लिए स्वप्न में भी अगोचर था। साधारणतः हम लोगों की यह धारणा है कि जो आश्रम की सेवा में भगवान् की सेवा में अपना तन मन धन समस्त ही अर्पण कर दिये हैं, उनके रोग की चिकित्सा का व्यय भार आश्रम के कोष से बहन करना ही तो न्याय सङ्गत है, इसमें दोष क्या रह सकता है। विशेषतः आलोच्य यह है कि इस क्षेत्र में खरचा तो मात्र – एक पैसे की हल्दी, दो पैसे का चून, सुतरां इसमें क्या दोष हो सकता है। हम लोगों के सदृश अनभिज्ञों के पक्ष में यह युक्ति समीचीन मन में हो सकती है, किन्तु शास्त्र बचन इसको समर्थन नहीं करते। धर्म संश्लिष्ट विधि निषेध के प्रसङ्ग में साधारण युक्ति अथवा तर्क भ्रम पर नहीं हो सकता। इस विषय में शास्त्र क्या बोलते हैं उसे ही देखना होगा। इस विषय में शास्त्र ही बलीयान् और गरीपान् है। शास्त्र विधि के अनुसार ही कार्य करना उचित है।

'तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते, कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं, कर्मकर्त्तुमिहार्हसि।।' गीता– 16/24।

हम लोगों के श्री स्वामी जी महाराज जीवन्त शास्त्र थे। केवल मात्र शास्त्र ज्ञान में ही वे पूर्ण थे ऐसा नहीं इस ज्ञानानुगुण अनुष्ठान में भी वे परिपूर्ण थे। अनुष्ठान के द्वारा वे अपने ज्ञान की प्राणवन्त मूर्ति को हम लोगों को दिखा कर गये हैं। वे मूर्त्तिमान शास्त्र थे। विभिन्न शास्त्र वचन का निहित उद्देश्य जो क्या है वह वे अपने अनुष्ठान के द्वारा वे आलोकित करके हम लोगों के मानस–पट पर उज्ज्वल रेखापात कर गये हैं।

उनके श्री मुख से सुना हूँ, कि भगवद्द्रव्य वा सम्पत्ति का अन्यथा व्यवहार करना जिस तरह निषिद्ध है उसी तरह कोई देवालय अथवा मठ आश्रम में किसी विशिष्ट अतिथि के आ जाने पर केवल उसके सत्कार

का अभिप्राय लेकर भगवद्द्रव्य के द्वारा यदि विशेष भाव से भगवान का भोग लगाया जाय एवं भोग के प्रसाद से अतिथि का सत्कार किया जाय तो वह भी दूषणीय है। कारण उस विशेष अतिथि के उद्देश्य से विशेष भोग की व्यवस्था की गई है, भगवान् की विशेष सेवा इसका प्रधान लक्ष्य नहीं है। इसको 'निमित्त' भोग कहा जाता है।

इस दृष्टान्त से अपने प्रयोजन के लिए भगवद्द्रव्य का व्यवहार करना कितना बड़ा अपराध है हमलोग उपलब्धि कर पाये। अत: पर उनके एक शिष्य को ऐसे ही स्वार्थ में भगवद्द्रव्य व्यवहार रूप अप... आभास के लिए भी किस तरह शासन किये थे उनका एक मूर्त्त विवरण दिया जा रहा है–

श्री स्वामी जी महाराज के एक शिष्य थे उनकी उम्र अन्दाज 35 वर्ष की थी। लिखित इस घटना के दस वर्ष पूर्व श्री स्वामी जी महाराज के चरण में समाश्रित हुए थे। गुरु स्थान से बहुत दूर पर उनका नि... स्थान था। इसलिए गुरु सत्संग का लाभ का सौभाग्य उन्हें नहीं हुआ। तथापि उनके प्रति निष्ठावान थे। सांसारिक क्षेत्र में उदीयमान थे। वे अपने लिए एक वास गृह निर्माण कर रहे थे एवं इसीलिए कुछ ऋण... हो गये थे। इस भार को वे लघु करने के लिए अपने गुरु देव के पास से कुछ अर्थ ऋण रूप लेने हेतु मनस्थ किये। यथायथ समस्त अवस्था वर्णना करके श्री ठाकुर जी के कोष से दो हजार रूपया पाने... प्रार्थना पूर्वक श्री स्वामी जी को एक पत्र लिखे एवं शीघ्र ही यह ऋण परिशोध कर देगे।, उसे भी उनसे नि... किये।

अद्विग्न चित्त से पत्र के अनुकूल उत्तर पाने की आशा से प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें यह विश्वास था गुरुदेव उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे। शीघ्र ही उनके पत्र का उत्तर आया, उत्तर सांसारिक हित... अनुकूल नहीं वरं प्रतिकूल था। उत्तर आया– प्रार्थना स्वीकार नहीं भर्त्सना वाक्य था। स्वाभाविक... मधुर भाषा में वे पत्र लिखते वह भाषा इस पत्र में नहीं थी, उसके बदले कठोर भाषा थी। भाषा एवं वक्तव्य... ही अप्रत्याशित थे। वे लिखे थे कि :–

''तुम अर्वाचीन हो, धर्म के मौलिक विषय में तुम्हारा कोई ज्ञान नहीं है। श्री ठाकुर जी को व्यवहार के... कोई वस्तु दूसरे किसी व्यापार में लग जाय तो लगाने वाला व्यक्ति घोर अपराधी हो जाता है। पुन: जो... प्रकार के कार्य में सहायता करता है वे भी घोर अपराधी हो जाते हैं। दोनों का ही परलोक बिगड़ जाता है। ठाकुर जी की कोई वस्तु ऋण लेने से भी महान् अपराध का भागी होना पड़ता है। किसी कारण से इस... ऋण के परिशोध करने में ऋणी व्यक्ति यदि असमर्थ हो जाय तब ऋण लेने वाला एवं ऋण देने वाला दोनों ही इस लोक में महान अनर्थ हो जाता है तथा परलोक में घोर नरक प्राप्त होता है। किसी रूप में भगवद्... लेने का विचार नहीं करना चाहिए। मैं आशीर्वाद करता हूँ तुम्हारी बुद्धि सुधर जाये'' गुरुदेव का यह पत्र... शिष्य मर्म ही मर्म में व्यथित हो पड़े। यह पत्र एक गुरु भ्राता को दिखाकर अत्यन्त विभर्ष भाव से बोले- ''... विचार किया था कि गुरुदेव इह लोक एवं परलोक दोनों में ही हमारे परम सहाय हैं। यह भावना लेकर ही... इस आर्थिक दु:समय में अर्थ साहाय्य की प्रार्थना किया था। यह साहाय्य -प्रार्थना उनके निकट नहीं करूँ... किसके निकट करूँगा? जितना शीघ्र सम्भव इस ऋण को जब मैं परिशोध कर दूँगा, तब इस देव ऋण... लेने में जो इतना दोष रह सकता है, यह भी नही समझ पाया। अपने इस प्रस्ताव में मैं गुरुदेव का रोष... हो जाने से अत्यन्त व्यथित हो पड़ा हूँ।

यह गुरुभ्राता अपने बन्धु को सान्त्वना देने की चेष्टा करने लगे। बोले– ''देखो भाई– श्री स्वामी जी के सिद्धान्त समस्त ही दृढ़ हैं, अभ्रान्त एवं शास्त्र सिद्ध हैं। वे धर्म के एक सजीव मूर्ति हैं। उनके प्रत्येक अनुष्ठान में धर्म का तथ्य प्रकट हो रहा है। तुम विचलित नहीं होना, तुम्हारे ऊपर वे रुष्ट नहीं हुए, तुम्हारे हित के लिए, तुम्हारे कल्याण के लिए ही तुम्हें ऐसी शिक्षा दिये हैं। स्खलन शील शिष्य को शासन करना अथवा शिक्षा देना आचार्य का एक विशेष गुण एवं कृत्य है। इसीलिए आचार्य को 'स्खालित्ये– शासिता' कहा जाता है। तुम ऋण परिशोध कर देने की भावना किये थे, एवं निश्चय ही परिशोध कर देते। किन्तु यदि किसी भी कारण से तुम्हारी आर्थिक – अवस्था की अबनति हो जाती, अथवा भगवान न करें यदि अकस्मात् तुम्हारा देहान्त हो जाता तब यह देव ऋण परिशोध करना सम्भव नहीं होगा, एवं इस घोर तर अपराध के फल से परलोक में तुम्हारा महा – पतन होगा, एवं तुम महा दुर्दशा को पाओगे।''

शास्त्र कहते हैं कि – जो स्वदत्त अथवा परदत्त भगवत् सम्पति को अपने भोग में लगाता रहता है, देहान्त में वह दीर्घकाल तक विष्ठा भोजी कृमि होकर जन्म ग्रहण करता है।

''य : स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुर विप्रयोः ।
वृत्तिंसजायते विड्भुंक् , वर्षाणामयुतायुतम् ।।'' भाः 11/17/54

यदि कोई मठाध्यक्ष वाकुलपति इस कार्य में सहायता करते हैं तो वे भी समान भाव से अपराधी होते हैं।

''यभिच्छन्नरकं नेतुं, सपुत्र पशु वान्धवम्।
देवेष्वधिष्ठितं कुर्यात्, गोषुच ब्राह्मणेषुच ।।'' वाः राः – उत्तर कां0।

यदि किसी को भी नरक में गिरा देने इच्छा करो तब उसको किसी देवालय का कुलपति वा मठाध्यक्ष बना दो। मठाध्यक्ष को इस महाभय की आशङ्का रहने के कारण शास्त्र सतर्क कर देते हैं –

'तस्मात् सर्वास्ववस्थासु, कौलपत्यंनकारयेत्।।'

तात्पर्य यह है कि – मन्दिर के कुलपति भगवद् द्रव्य के व्यवहार करने में सर्वदा ही सावधान रहेंगे। अपने प्रयोजन में भगवद् द्रव्य व्यवहार करने से जो कितना अपराध होता है उस विषय में त्रिशद भाव से जो शिक्षा दिये हैं उसको ऊपर में विवृत किया गया है। इस प्रकार अन्य एक व्यापार में उनके और एक असाधारण शिक्षा की बात कह रहा हूँ – यह होता है औषध की मर्यादा का विषय। उपरोक्त घटना के कई एक मास बाद श्री स्वामी जी महाराज के चरण में पुनः आघात लगा है।

उनकी –अत्यन्त प्रवीण अवस्था थी। दोनों नेत्र ही दृष्टिहीन, लाठी के भरोसे पर धीरे–धीरे कुछ कुछ चलते फिरते थे।

सावधानता रहते हुए भी असमतल स्थल पर पद विक्षेप से उनके चरण में आघात गया। जहाँ पर आघात लगा है उसमें खूब व्यथा हुई तथा फूल गया। वैद्य परीक्षा करके देशीय औषधि पीस कर प्रत्यह उसे तीन बार लगाने की व्यवस्था किये – प्रातः 6 बजे,दोपहर के बाद 2 बजे एवं सन्ध्या 8 बजे । साधारणतः प्रातः कृत्य समाप्त करते करते श्री स्वामी जी महाराज को 7 बज जाता/ठीक समय पर औषध लगवाने के लिए सुबह 6 बजे पहले ही प्रातः कृत्य समाप्त करके वे प्रस्तुत रहते। साधारणतः उनकी प्रत्याहिक दिनचर्य्या पाषाण की रेखा के सदृश अचल नियम में बँधी रहती। किन्तु इस विशेष क्षेत्र में वैद्य के विधानानुसार औषध का नियम एवं समय की मर्यादा यथा यथ पालन करने के लिए वे स्व प्रातःकृत्य प्रायः एक घण्टा आगे ही सम्पन्न कर लेते।

मध्याह्न में भी उसी तरह ही बेला 2 बजे एवं सन्ध्या 8 बजे प्रलेप प्रस्तुत करके प्रयोग किया जाता। प्रलेप के उपादान यथारीति पीस कर गरम किया जाता प्रयोग के उपयोगी करने में प्रायः आधा घण्टा लगता।

अपने आचार्य देव की असुस्थता का समाचार सुनकर लेखक उस समय कई एक दिन के लिए उनके निकट उपस्थित हुआ है। यह प्रलेप लगाने का भार हमारे ऊपर न्यस्त हुआ था। एक दिन दोपहर प्रलेप लगाने का उपक्रम विलम्ब हो गया। भयभीत होकर प्रलेप लगाने का उपक्रम कर रहा हूँ। भय का कारण यह है – कि यह विलम्ब देखकर पीछे वे असन्तुष्ट अथवा रुष्ट न हो जायें, वे जिज्ञासा किये – इस समय कितना बजा है? हम सङ्कुचित होकर उत्तर दिये ढाई बजा है? प्रलेप लगाने का काल अतिक्रान्त हो गया है सुनकर हमारे प्रति विशेष विरक्त हुए। बोले – ''तुम लोगों को कोई मर्यादा का ज्ञान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति, चेतन अथवा अचेतन प्रत्येक द्रव्य की अपनी अपनी मर्यादा है। कदापि उनकी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए औषधि की मर्यादा उल्लंघन करने पर उससे सुफल नहीं मिलता। वैद्य के निर्देशानुसार यथा विधि औषधि प्रस्तुत कर एवं यथा समय पर यथा रीति उसका सेवन अथवा प्रयोग करे तभी उसकी मर्यादा की रक्षा होती है। यह बात तुम लोगों को सर्वदा मन में स्मरण रखना चाहिए एवं पालन करना चाहिए। बोला बाहुल्य, इसके बाद से यथावत् निर्धारित समय पर नियम पूर्वक उनके पाद–देश में औषध प्रयोग किया जाता। वे शीघ्र ही अच्छे हो गये। मनुष्य की मर्यादा हम लोग अच्छी तरह जानते हैं। किन्तु औषध की मर्यादा अथवा किसी अचेतन वस्तु की मर्यादा का मूल्य जो क्या है उसको उस समय ठीक ठीक धारणा करने में समर्थ नहीं हो सके थे। अथच महाज्ञानी महा अनुभवी महापुरुष गुरुदेव जब आज्ञा कर रहे हैं तब इस विषय में सन्देह करने का कोई अवकाश नहीं हो सकता। तत्रत्य साधुगण अचेतन वस्तु की मर्यादा के विषय में परस्पर आलोचना करके निम्नोक्त भाव से परिस्फुट करने की चेष्टा किये। अंग्रेजी में कहा हुआ है – "Repeatation is the mother of knowledge" अर्थात् पुनः पुनः पढ़ते जाओ, पठित विषय में ज्ञान लाभ कर सकोगें। इस भाव को परिस्फुट करके संस्कृत भाषा में कहा हुआ है– 'आवृत्तिरसकृदेव गरीयसी'। किसी विषय में ज्ञान लाभ के लिए उस विषय की पुनः पुनः आवृत्ति करना ही श्रेष्ठ है। इस उक्ति का मुख्य अभिप्राय यह होता है कि आवृत्ति का विशेष उत्कर्ष प्रतिपादन करना। शास्त्र विश्वासशाली भक्तगण बोल रहे हैं कि 'ग्रन्थ की पूजा करो, उसको मान दो तब ग्रन्थ कृपा करेंगे। अर्थात् ग्रन्थ को यदि अच्छी तरह मर्यादा दो तो ग्रन्थ का प्रति पाद्य विषय तुम्हारे निकट स्वतः ही प्रतिभात हो जायेगा। उपरोक्त तीनों उक्तियों में प्रत्येक ही महामूल्यवान हैं एवं प्रत्येक के मध्य में ही सत्यकथा निहित है। 'ग्रन्थ ही कृपा करेंगे' इस उक्ति में ग्रन्थ को कार्यतः चैतन्य मय वस्तु मान कर ग्रहण किया गया है। उसी तरह औषधि अचेतन वस्तु होने पर भी कार्यतः यह चैतन्यमय है। औषधि की भी मर्यादा रक्षा करना सर्वथा भाव से प्रायोजन है।

''अर्न्तदृष्टि–प्रावल्य''

इस दृष्टिहीन अवस्था में उनकी भगवद्भागवद् विषय में चिन्ता इतनी ऐकान्तिक और आत्यन्तिक थी कि वे अप्रत्यक्ष व्यापार को भी अर्न्तदृष्टि केवल से दर्शन कर लेते। अपनी इस अलौकिक शक्ति की बात को वे अपने मुख से कभी भी नहीं प्रकाश करते। कभी कभी इस प्रकार की अतिशय इष्ट कर अथवा अतिशय अनिष्ट कर घटना का विषय असावधानी से उनके श्रीमुख से प्रकाश हो पड़ता। ऐसी दो एक अलौकिक घटनाये नीचे दी जा रहीं है।

''इष्ट विषय में स्वामी जी की अन्तर्दृष्टि मशहरी लगाने की घटना''

श्री स्वामी जी प्रतिदिन अन्दाज रात्रि 11 बजे शयन करते। उनके कम्बल की शय्या पर एक चादर बिछाई जाती और मशहरी लगाई जाती थी। शय्या लगाने की यह सेवा अधिकारी श्रीगरुड़ध्वज का कृत्य था। एक दिन वे शय्या बिछा दिए, और मशहरी लगाने के पूर्व ही आश्रम के किसी एक जरूरी कार्य से चले गये। कार्य शेष करके वह मशहरी लगाने के लिए पुनः श्री स्वामी जी के घर में आये। आने में कुछ विलम्ब हो गया है। घर में प्रवेश करते ही वे स्तम्भित हो गये। घर एक अनुपम सुगन्ध से भर गया है। देखे कि मशहरी लगाई हुई है, मशहरी के मध्य में श्री स्वामी जी महाराज बैठकर हाथ जोड़े हुए बोल रहे हैं – ''प्रभु जी! आप यह क्या कर रहे हैं, मैं महा अपराधी बन जाऊँगा।'' ऐसे ही समय में महा सौभाग्यवश श्री अधिकारी जी घर में प्रवेश किये। (उस समय श्री स्वामी जी महाराज का दोनों नेत्र ही दृष्टिहीन था) कोई घर में प्रवेश किया है यह शब्द के द्वारा अनुमान करके श्री स्वामी जी महाराज नीरव हो गये। श्री अधिकारी जी इस महान दिव्य घटना को साक्षात् अनुभव करके निर्वाक हो गये। उन्हें यह समझने में बाकी नहीं रहा कि श्री स्वामीजी महराज यह मसहरी स्वयं नहीं लगाये हैं, एवं श्री स्वामी जी महाराज त्रस्त होकर ससम्भ्रम हाथ जोड़े हुए उनको विरत होने की प्रार्थना कर रहे हैं। श्री अधिकारी जी असमीचीन समझ कर उस समय इस विषय में श्री स्वामी जी महाराज से कोई कथा जिज्ञासा नहीं किये। कुछ प्रकृतिस्थ होकर पुलक पूरित गात्र से वे अनुमति लेकर मशहरी के मध्य प्रवेश करके धीरे–धीरे श्री स्वामी जी महाराज का पाद संवाहन करने लगे। वे अतीव गम्भीर प्रकृति के पुरुष थे। कौन आकर मशहरी लगा दिया है अथवा किसके साथ वे हाथ जोड़ कर वार्तालाप कर रहे थे उस विषय में वे कुछ भी प्रकाश नहीं किये। उनके प्रकाश नहीं करने पर भी घर के मध्य में परिपूर्ण अनुपम दिव्य परिमल, एवं हाथ जोड़ कर श्री स्वामी जी महाराज की, प्रार्थना करना, अधिकारी के सदृश महान साधु द्वारा इस दो दिव्य घटना के प्रत्यक्ष अनुभव से (केवल अनुमान से नहीं) गरुडध्वज स्वामी को सुस्पष्ट ही प्रतीति हो गई थी कि यह दिव्य घटना श्री राम रामानुज की ही महाकरुणा की खेला है। इस प्रकार महाकरुणा के पात्र सिद्ध महापुरुष श्री स्वामी जी महाराज के संस्पर्श में आने का सौभाग्य जो लोग लाभ कर सके हैं वे ही धन्य हैं, उनके अमोध श्री चरण युगल में जो लोग समाश्रय लाभ से महा सौभाग्यवान हुए है वेधन्यातिधन्य हैं । ऐसे सिद्ध महापुरुष की जय हो अमृतमयी जीवन यात्रा की वार्ता जगत में अच्छी प्रकार प्रचार लाभ करे – यही परात्पर परम पुरुष के चरणारविन्द में आन्तरिक प्रार्थना है।

एक परम इष्ट दिव्य घटना की कथा उल्लिखित हुई। अब एक अनिष्ट कर घटना का उल्लेख किया जा रहा है, जिससे जाना जायेगा गुप्त भाव में अनुष्ठित होने पर भी महा अनिष्ट कर घटना वहिर्दृष्टिहीन अन्तर्दृष्टिपूर्ण सर्वज्ञ श्री स्वामी जी महाराज की अन्तर्दृष्टि के वहिर्भूत होने में समर्थ नहीं होती।

एक दिन कोई एक वहिरागत भक्त श्री विजयराघव जी महाराज के भोग के उद्देश्य से कुछ अर्थ श्री स्वामी जी महाराज के निकट अर्पण कर भगवान् का विशेष भोग लगाने के लिए प्रार्थना किये। भक्त के कल्याण के लिए वे यह अर्थ स्वीकार किये। उस अर्थ के व्यय से दूसरे दिन श्री विजयराघव भगवान् के विशेष भोग की व्यवस्था किये। दूसरे दिन पूड़ी, लड्डू, मोहन भोग के लिए रन्धन किया गया। भोग रन्धन के लिए श्री मन्दिर में एक रन्धन शाला है। मन्दिर के केन्द्र स्थल में गर्भ मन्दिर में अर्चाविग्रह विराजमान हैं, मन्दिर के चारों तरफ प्रदक्षिणा का एक मार्ग है, इस मार्ग में तीन दरवाजे हैं, दो दरवाजा बाहर जाने और एक दरवाजा रन्धन गृह में

जाने के लिए है। प्रदक्षिणा मार्ग में संलग्न यह रन्धन गृह विद्यमान है। भोग का समय उपस्थित होने प्रदक्षिणा मार्ग के बाहिर के जाने वाले दोना दरवाजे बन्द कर दिये जाते है। रन्धन में संलग्न दरवाजे से पक्क भोग गर्भ मन्दिर में ले आकर रक्खा जाता है। इस भोग को ले आने का कार्य रसोईयाँ लोगों का गर्भ मन्दिर में अर्चाविग्रह के सन्मुख भोग स्थापित होने पर पुजारी जी उस समय विधि के अनुसार अर्चाविग्रह को निवेदन करते हैं। आरती के पश्चात् वही निवेदित भगवत् प्रसाद भागवत्गण को परिवेशन जाता है। भागवत्गण को प्रसाद परिवेशन के बाद अवशिष्ट कुछ प्रसाद रह जाने पर वह अभ्यागतों एवं गौ और वछड़ों को दिया जाता है। यही श्री मन्दिर में भोग रन्धन, भोग आनयन, भोग निवेदन एवं प्रसाद के सम्बन्ध में प्रचलित विधि है। उक्त विशेष भोग के दिन भोग का समय उपस्थित होने पर (समय प्राय: 12" रसोइयाँ लोग भोग सामग्री ले आकर गर्भ मन्दिर में रखते हैं। अधिकांश द्रव्य आ गया है। श्री स्वामी जी महा अपने घर में आसन पर बैठे हुए हैं, उनके प्रिय–भक्त श्री रामाचारी स्वामी जी उनके पास बैठे हैं। सहसा त्रस्त श्री स्वामी जी महाराज उत्कष्ठित भाव से उन्हें आदेश किये – ''श्री मन्दिर में जाओ, देखो तो भोग वस्तु में तु छोड़ी गई कि अभी नहीं? तुलसी छोड़ना शुरू हो गया हो तो हमारा नाम लेकर उसे बन्द कर दें बोलो।''रामाचारी स्वामी गर्भ मन्दिरस्थ पुजारी से प्रश्न पूर्वक जानकर आये कि उस समय किसी भी भोग के में तुलसी अर्पण नहीं किया गया है। श्री स्वामी जी महाराज पुनः उत्कंठित भाव से निर्देश दिये – ''पुजारी बोलो तुलसी छोड़ना अभी बन्द रक्खें।'' श्री रामाचारी स्वामी निषेध करने के लिए जा रहे थे। इतने में वे देखे प्रदक्षिणा मार्ग में एकजन रसोइयाँ बैठकर रो रहे हैं। एवं थर थर करते हुए काँप रहे हैं। उनके पास ही एक भर्त्ती मोहन भोग रक्खा हुआ है। वे इस अद्भुत अवस्था को देखने से विस्मित होकर रसोइयाँ से जिज्ञासा कि कि तुम काँपते क्यों हो, और रोते ही क्यों हो? किस लिए मोहन भोग भरे पात्र को गर्भ मन्दिर में नहीं रखकर प्रदक्षिणा पथ में रक्खे हो? तव रसोइयाँ रोते रोते उनसे बोलने लगा 'इस मोहन भोग को खाने के लिए मैं प्रलुब्ध हो गया था फिर रसोई घर से गर्भ मन्दिर में ले जाने के समय मैं अवश होकर दूसरों के अनजान में छि कुछ मोहन भोग खा लिया। खाते ही ज्ञान हुआ कि मैनें इस दुष्कर्म से कितना भयङ्कर महा अपराध कर इसीलिए ही यह मोहन भोग गर्भ मन्दिर में नहीं ले गया, एवं इसी अपराध के भय से ही मैं काँप रहा हूँ एवं रुदन रहा हूँ।' यह अमानवीय काण्ड सुनकर अत्यन्त शङ्कित चित्त से रामाचारी स्वामी भोग निवेदन में उद्युक्त पुजारी से भोग निवेदन बन्द रखने के लिए निर्देश देकर श्री स्वामी जी महाराज के चरण में आनुपूर्विक समस्त घ निवेदन किये। 'तब श्री स्वामी जी महाराज कुछ आश्वस्त हुए, तदनन्तर सतर्कता का अवलम्बन कर भोग नि करने का आदेश दिये, एवं अनिवेदित समस्त उच्छिष्ट मोहन भोग में निकट वर्ती जङ्गल में फेंक देने को कहे, यह निर्देश दिये कि इसे श्री मन्दिर में गौ को भी नहीं दिया जाये'। इसका अभिप्राय यह है कि किसी आश्रम की बात तो दूर रहे, मन्दिर में रहने वाले कोई पशु तक भी यह अनिवेदित अन्न नहीं खाने पायें। प्रकृत साधु के लिए भगवद् अनिवेदित भोज्य द्रव्य एकान्तवर्जनीय नाम से विवेचित है। श्री स्वामी जी महाराज का हृदय अ गम्भीर एवं गम्भीर था, उनके हृदय का आ सरलता पूर्वक समझने की शक्ति किसी में नहीं थी। किन्तु अप्रत्याशित महा अनिष्ट कर घ्टना से वे इतना अधिक अधीर हो पड़े थे कि अतर्कित एवं अवश्यता भाव सन्मुखस्थ रामाराचारी स्वामी से उस समय बोल ही दिये – ''जब गभवत् सेवा में कोई महा – अपराध हो है, तब श्री भगवत्सङ्कल्प से परोक्ष घटना भी मेरे को प्रत्यक्ष हो जाती है। आज अर्चावतार भगवान् मुझको

विदित कर दिये, इस महान् अपचार से रक्षा किये।''

श्री स्वामी जी महाराज के श्री मुख से निकली हुई यह अति गोपनीय रहस्य वाणी सुनकर श्री रामाचारी स्वामी अत्यन्त धन्य हो गये। उनके श्री मुख से सुनकर अन्य अन्य आश्रमवासी भी अतिधन्य हुए। यह दिव्यवाणी साक्षात् रूप में रामाचारी स्वामी के श्री मुख से सुनकर हम लोग भी धन्याति धन्य हो गये थे। सिद्ध महापुरुष के दुर्लभ सङ्गलाभ से जो धन्य हो गये हैं,उन समस्त महा भागवत्गण का सङ्ग भी जो कितना पुण्यमय एवं सौभाग्यमय है उसे भी हम लोग प्रत्यक्ष उपलब्धि किये।

श्री स्वामी जी महाराज के निर्देश से अपराधी मूर्ति को प्रसाद भोजन कराया गया। इस के पश्चात् उसके विश्राम कर लेने पर उसे श्री मन्दिर त्याग कर चले जाने को कहा गया। मूर्ति उसी समय श्री स्वामी जी महाराज के चरण में साष्टाङ्ग प्रणाम किये एवं अनुतप्त होकर रोते रोते क्षमा प्रार्थना किये। श्री स्वामी जी महाराज उसको क्षमा कर दिये एवं भोग विषय में पवित्रता, भोग का माहात्म्य, रसोइयाँ का भोग के विषय में अपचार, इस महा अपचार के फल भोग विषय में विविध उपदेश दान दिये। वह रसोइयाँ श्री स्वामी जी के निर्देशानुसार आश्रम त्याग करके अन्यत्र चला गया।

अत्यन्त इष्ट कर एवं अत्यन्त अनिष्ट कर व्यापार में श्री स्वामी जी महाराज के तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि का परिचायक दो अलौकिक घटना का दृष्टान्त उल्लिखित हुआ। यह उल्लेख एक दिग्दर्शन स्वरूप है। वहुविध क्षेत्र में इस प्रकार का परिचय हम लोग श्रवण किये हैं, उनके सङ्गलाभ से धन्य हुए साधु महात्माओं के निकट से। उनके प्रिय अन्तरङ्ग शिष्यवर्ग, श्री भागवताचार्य स्वामी श्री रामप्रपन्नचार्य श्री पराङ्कुशाचार्य स्वामी, श्री गरुडध्वज स्वामी, श्रीकमलनयन स्वामी, श्री रामाचारी स्वामी प्रभृति पास से हम श्री स्वामी जी महाराज के अलौकिक ज्ञान का अलौकिक परिचायक विविध विवरण पाये हैं। यथा योग्य स्थल पर इस ग्रन्थ में वह समस्त कुछ कुछ प्रकाशित हुआ है। दृष्टिहीन होने से पूर्व भी उनके ऐसी दिव्य शक्ति का परिचय प्रकाश हो पड़ता। वहिर्दृष्टि विलुप्त होने के बाद से उनके अनुचरवर्ग उनके अन्तर्दृष्टि के दिव्य शक्ति का स्वःस्फूर्त प्रकाश बहुमुखी भाव में प्राय: ही उपलब्धि करते। वैराग्य, ज्ञान, प्रपत्ति, भगवद् ध्यान भगवद् आलापन, भगवत् प्रीत्यर्थ अनुष्ठान आदि उनके मध्य सर्वमय परिव्याप्त हो गये। उस समय वे एकजन प्रकृष्ट परमहंस सिद्ध महापुरुष रूप में विराज करने लगे। समस्त आश्रम में सर्वदा ही एक विशुद्ध सात्त्विक भाव विराज करने लगा। सारा आश्रमवासी उस विशुद्ध भाव से भावित होकर विविध कैङ्कर्य निरत होकर काल यापन करने लगे। श्री स्वामी जी महाराज के पूत पवित्र सङ्गलाभ से धन्य होकर समस्त आश्रमवासी ही आनन्द में भरपूर होकर उज्जीवित होने लगे। उनकी इस परमहंस अवस्था की कथा सारे भारत में बिखर कर फैल गई। दक्षिण और उत्तर भारत के नाना स्थान से सन्यासी साधु सन्त उनके दर्शन के लिए आश्रम में आने लगे। समस्त अयोध्या का साधु समाज धर्म सम्बन्धी नाना प्रश्न के सदुत्तर की आशा से नाना सन्देह के निरसन की आशा से उनकी सन्निधि में आकर उपस्थित होने लगे। सभी अपनी अपनी अभिलाषा पूर्ण कर के जाने लगे। श्री स्वामी जी महाराज की यह अवस्था 34/35 वर्ष पूर्व की कथा है, तथापि एतत्कालीन उनकी यह अनुपम दिनचर्य्या हम लोगों के मानस पट पर उज्ज्वल भाव में अङ्कित होकर विद्यमान है।

पाठकों के हित के लिए परमहंस श्री स्वामी जी महाराज की तदानीन्तन अनुपम दिव्य दिनचर्य्या इसके बाद प्रदत्त हुई है।

तृतीय प्रवाह

सप्तम अध्याय

''श्री स्वामी जी महाराज की दिव्य दिनचर्य्या''

किञ्चितन्यूनाधिक प्रायः तीन घण्टा समय निद्रा के बाद वे शेष रात्रि में ढाई 2।। बजे शय्या से उठ जाते। जागने के बाद उनके श्री मुख से स्वतः ही श्री भगवान् का नाम उच्चारित होता। तदनन्तर अन्तरङ्ग सेवक श्री कमलनयन स्वामी उनका हाथ पकड़ कर घर के बाहर थोड़ी दूर निर्दिष्ट लघुशङ्का करने के स्थान पर ले जाते। उस स्थान पर लघुशङ्का एवं मुखादि प्रक्षालन करके पुनः घर के भीतर ले आने पर एक कम्बल के आसन पर बैठते। एवं बैठ जाने के बाद से ही उनका प्रातः कृत्य आरम्भ हो जाता।

जितना बाहर से देख पाया था वही बोला गया है। उनके तुल्य अति गम्भीर अति मानव के अन्तर की भाव धारा, ध्यान, धारणा समझने का समर्थ भी न ही है, वर्णन करने की शक्ति भी नहीं है। प्रातः कृत्य का यह अंश स्तव स्तुति मूलक श्लोकों की आवृत्ति थी। विशेष करके आचार्य परम्परा की स्तवस्तुति ही इसका विषयवस्तु था। उसकी प्रथम आवृत्ति थी। अर्चिरादि मार्ग के श्लोक स्मरण –

सत्सङ्गाद्भवनिःस्पृहः............तेनैव धन्यः पुमान्।। पूर्व में समस्त श्लोक और श्री स्वामी जी महाराज का बताया हुआ अर्थ दिया हुआ है। यह श्लोक मुक्त पुरुष के देहान्त में देह विमुक्त मुक्त–आत्मा के वैकुण्ठ प्राप्ति का मार्ग क्रम 'अर्चिरादि– मार्ग का' अनुसन्धान स्वरूप है। इस श्लोक की आवृत्ति के बाद वे नियमित 'गुरु परम्परा' के श्लोकों का अनुसन्धान करते। पहले संक्षिप्त गुरु परम्परा की आवृत्ति करके वृहत् गुरु परम्परा की आवृत्ति करते।

''संक्षिप्त गुरुपम्परा''

अस्मद्देशिकमस्मदीयपरमाचार्यनशेषान्गुरून,
श्रीमल्लक्ष्मणयोगिपुङ्गवमहापूर्णौमुनिं यामुनम् ।
रामं पद्म विलोचनं मुनिवरं नाथं शठद्वेषिणम्,
सेनेशं श्रियमिन्दिरा सहचरंनारायणं संश्रये ।।

इसका अर्थ :– हम लोगों के गुरुदेव, उनके समस्त गुरु भ्रातागण, हम लोगों के परम गुरुदेव, उनके समस्त भ्रातागण के चरपा में मैं शरणागत होता हूँ। श्रीमत्लक्ष्मण मुनि (रामानुज स्वामी) महापूर्ण स्वामी, राममिश्र स्वामी, पुण्डरी काक्षस्वामी, मुनिवर यामुन मुनि, नाथ मुनि, शठकोप स्वामी, सेनेश विष्वक् सेन जी, श्री जी (लक्ष्मी जी) एवं इन्दिरा सहचर श्रीपति नारायण के चरणारविन्द में मैं शरणागत होता हूँ। यही गुरु परंपरा का आरोहण क्रम है। इस गुरु परम्परा का संक्षिप्त दिग्दर्शन रूपी और एक अति संक्षिप्त अवरोहणक्रम श्री वैष्णव मात्र ही सर्वक्षेत्र में अनुसन्धान करते रहते हैं।

लक्ष्मीनाथ समारम्भां, नाथ यामुन मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां, वन्दे गुरु परम्पराम् ।।

श्री नारद पाञ्चरात्र, श्री पद्मपुराण प्रभृति ग्रन्थों से जाना जाता है कि 'श्री जी (लक्ष्मी जी) इस श्री सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। इसीलिए ही यह श्री सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। नारायण से उपदिष्ट होकर 'श्री जी' इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किये हैं। जिन जिन आचार्यो के माध्यम से होकर यह गुरु परम्परा हमारे

गुरुदेव श्री बलराम स्वामी जी महाराज पर्यन्त आकर उपस्थित हुई है वही हम लोगों की गुरु परम्परा का क्रम है। इस क्रम में 37 जन आचार्य एवं नारायण, श्री जी और नित्य–सूरि विष्वक्सेन का उल्लेख है। प्रत्येक आचार्य के गुणों से युक्त एक स्तुति श्लोक उनके शिष्य वर्ग रचना करि गए है, इसको तमिल भाषा में तनियन श्लोक कहा जाता है। पूर्ववर्ती आचार्यो के समस्त 'तनियन' श्लोक समस्त परम उपादेय ज्ञान से परवर्ती शिष्यों को अवश्य स्मरण करने योग्य है। इन 37 जनपूर्वाचार्यों का (लक्ष्मी और नारायण के सहित) 37 तनियन श्लोक श्री स्वामी जी महाराज प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त्त में आवृत्ति पूर्वक नित्य अनुसन्धान करते थे। विस्तार का भय होने पर भी परम हितकर और परम उपादेय समझकर इन समस्त श्लोकों को उद्धृत करने का लोभ संवरण करना सम्भव नहीं हुआ।

''वृहत् गुरुपरम्परा (आरोहणक्रम)''

समस्त श्लोक अर्थ के सहित नीचे दिये जा रहे हैं :–

बाधूल–वंश कलशाम्बुधिपूर्णचन्द्रम्,
श्री श्रीनिवास गुरुवर्यपदाब्जभृङ्गम् ।
श्रीवास सूरि तनयं विनयोज्ज्वलन्तम्,
श्रीरङ्गदेशिकमहं शरणं प्रपद्ये ।। 1।।

जो समुद्र के समान विराट वाधूल वंश में उद्भूत हैं, एवं उस वाधूलवंश के जो पूर्णचन्द्ररूपी हैं, जो श्री निवास गुरु के चरणकमल के भृङ्ग (शिष्य) हैं, जो श्रीवास सूरि के तनय हैं, एवं जो विनय गुण से उज्ज्वल हैं, उस श्रीरङ्गदेशिक गुरु का मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

श्रीमच्छेष गुरुद्वहाङ्घ्रि युगलाम्भोजान्त सत् षट्पदम,
श्री कृष्णार्यलसत्कृपामृतपरीवाहस्य रत्नाकरम् ।
शान्ताद्यस्यगुणोत्करस्यनिलयंमन्त्रार्थ विज्ञानदम्,
श्रीमत्श्रीनिलयार्यदेशिकमहंवन्देकृपासागरम् ।। 2।।

जो श्रीमान् शेष गुरु के चरण कमल युगल में भ्रमर हैं, जो श्री कृष्ण गुरु के उज्ज्वल कृपा रूप अमृत प्रवाह के सिन्धु स्वरूप (आधार स्वरूप) हैं, अर्थात् जो श्रीकृष्ण गुरु के कृपापात्र हैं, जो शमदमादि उत्कृष्ट गुणों के निलय हैं, जो मन्त्रार्थ के रहस्य प्रदाता हैं, उन कृपा सागर श्रीमान् श्री निवास गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।।2।।

श्री कृष्णार्य गुरोः सूनुं श्री निवास कृपास्पदम् ।
श्री वेङ्कट कृपा पात्रं, शेषाचार्यमहं भजे ।। 3।।

जो शेषाचारी गुरु के पुत्र हैं, जो श्री निवास गुरु के कृपापात्र हैं, जो श्री वेङ्कटाचार्य के कृपा पात्र हैं, उन शेषाचारी गुरु की मैं भजन करता हूँ।। 3।।

वेङ्कटार्य गुरोः सूनुं, धीशमादि गुणार्णवम् ।
श्रीनिवासाङ्घ्रि–सद्भक्तं, श्रीकृष्ण गुरुमाश्रये ।। 4।।

जो श्री वेङ्कटाचारी गुरु के पुत्र हैं, जो ज्ञान एवं शमदम प्रभृति गुणों के सागर स्वरूप हैं, जो श्री निवास आचार्य के सद्भक्त हैं, उन श्री कृष्ण गुरु का मैं आश्रय लेता हूँ ।।4।।

श्री निवास गुरोः पाद–पङ्केरुह मधुव्रतम् ।
श्री शठारिकृपापात्रं, श्रीवेङ्कटगुरुं भजे ।। 5।।

जो श्री निवास गुरु के पाद पङ्कज के मधुप हैं जो शठकोपस्वामी के कृपापात्र हैं, उन श्री वेङ्कट गुरु की मैं भजन करता हूँ।। 5।।

बाधूल श्रीनिवासार्य, पद पङ्कजषट्पदम् ।
गोवर्द्धनाचलावासं, श्रीशठारि गुरुं भजे ।। 6।।

जो बाधूल वंश सम्भूत श्री निवासाचार्य के चरणकमल में भ्रमर रूपी है, गोवर्द्धन गिरि निवासी उस शठकोप गुरु की मैं भजन करता हूँ।

'दक्षिण भारत के अँण्णन् गद्दीस्थ ये शठकोपाचार्य ही गोवर्द्धन गद्दी के प्रवर्त्तक हैं। हम लोगों के गुरुदेव श्री बलराम स्वामी जी महाराज इस गोवर्द्धन गद्दी के षष्ठ पर्याय में अवस्थित हैं।'

वरद गुरुवर्यतनयं, तत्करुणालब्ध निगम सारार्थम् ।
प्रणतार्ति हरार्यशरणं, प्रणमामि श्री निवास गुरुवर्यम् ।। 7।।

जो वरद गुरुवर्य के तनय हैं, जो उनकी कृपा से वेदान्त का सारार्थ लाभ कियेहैं, जो प्रणतार्ति हर आचार्य के शिष्य हैं, उस श्री निवास गुरुवर्य को मैं प्रणाम करता हूँ।।7।।

यतीन्द्र चरणत्राण– वंशजं वरदाह्वयम्। वेङ्कटाचार्य गुरोः पौत्रं, वन्दे तत्पाद संश्रयम्।।

वेङ्कटार्य गुरु के पौत्र एवं उनके पदाश्रित हैं उस वरदार्य गुरु के चरण की वन्दना करता हूँ।।8।।

वाधूलवंश तिलकं, वात्सल्य गुणसागरम् ।
वेङ्कटार्य गुरोः सूनुं प्रणतार्तिहरं भजे ।। 9।।

जो वाधूल वंश के तिलक स्वरूप हैं, जो वात्सल्य गुण के सागर हैं, जो वेङ्कटार्य गुरु के पुत्र हैं, उस प्रणतार्त्तिहार आचार्य की मैं भजन करता हूँ।।9।।

वाधूलवेङ्कटाचार्य–तनयं विनयेज्ज्वलम् ।
वेदान्तद्वयसारज्ञं, वन्दे वरद देशिकम् ।। 10।।

जो वाधूल कुल जात वेङ्कटाचार्य के पुत्र हैं, एवं जो विनय गुण से उज्ज्वल हैं, एवं जो उभय वेदान्त के सारज्ञ (संस्कृत वेदान्त एवं द्राविड़ वेदान्त–आड्वारों के रचित दिव्य प्रबन्धों को द्रविण वेदान्त कहा जाता है) उस वरद देशिक गुरु की मैं वन्दना करता हूँ ।। 10।।

वाधूलान्वय जीवातुं वरदाचार्यनन्दनम् ।
वेङ्कटार्य दया पात्रं, वेङ्कटेश गुरुं भजे ।। 11।।

जो वाधूलवंश समुद्भूत एवं वरदाचार्य के पुत्र हैं, जो वेङ्कटाचार्य के दया पात्र शिष्य है उस वेङ्कटेश गुरु की मैं भजन करता हूँ।।11।।

वाधूल रत्नाकर पूर्णचन्द्रं, श्री वेङ्कटाचार्य दयैकपात्रम् ।
श्रीरङ्गराजार्य गुरोस्तनूजं, श्रीवेङ्कटाचार्यमहं, प्रपद्ये ।। 12।।

रत्नाकर (समुद्र) रुप बाधूलवंश केजो पूर्णचन्द्र स्वरूप है एवं वेङ्कटाचार्य के प्रधान दयापात्र तथा रङ्गराजाचार्य गुरु के पुत्र हैं उस वेङ्कटाचार्य गुरु का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।।12।।

वाधूल धूर्वहनतार्त्तिहरार्य सूनोः,
सूनोः सुतस्य वरदार्य गुरोस्तनूजम्''
वेदान्त युग्म विशदी करणैक दीक्षम्,
श्रीमन्नतार्तिहर देशिकमाश्रयामः।। 13।।

जो वाधूल वंश के नेतृ स्थानीय प्रणातार्तिहर आचार्य के पुत्र वरदाचार्य गुरु के पुत्र हैं उभय वेदान्त के विशदीकार है उन श्री मन्नतार्तिहर आचार्य का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ।। 13 ।।

वाधूलधूर्य वरदार्य दयैकपात्रं, श्रीवेङ्कटेशगुरुवर्यतनूजरत्नम् ।
वेदान्तयुग्मविशदी करणैक दीक्षं, क्षान्त्यर्णवं वरद देशिक वर्यमीडे ।। 14।।

जो वाधूल वंश के नेतृत्व स्थानीय वरदाचार्य के दयापात्र एवं वेङ्कटेश गुरु के पुत्र रत्न हैं एवं उभय वेदान्त के विशदकारी, विस्तृत व्याख्या और उपदेशकर्ता) तथा क्षमा गुण के स्वरूप हैं उस वरदार्यवर्य की मैं स्तुति करता हूँ ।। 14।।

वाधूल धूर्वहन्नतार्त्तिहराग्रसूनोः,
तत्संश्रयस्य वरदार्य गुरोस्तनूजम् ।
वेदान्त युग्म विशदी करणैक दीक्षम्,
श्री वेङ्कटेश गुरुवर्यमहं प्रपद्ये ।। 15।।

जो वाधूल वंश के नेतृत्व स्थानीय नतार्तिहर आचार्य के पुत्र एवं समाश्रित (शिष्य) हैं, जो वरदार्य गुरु के पुत्र हैं, जो उभय–वेदान्त के विशदीकरण में दृढ़व्रत हैं उस वेङ्कटेश गुरुवर्य का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।। 15।।

प्रणतार्त्तिहराचार्यसूनुंवरद देशिकम् ।
प्रपद्ये श्री निवासार्य, प्रणवं सद्गुणार्णवम् ।। 16।।

जो प्रणतार्त्ति–हर आचार्य के पुत्र एवं श्रीनिवास आचार्य के प्रवण (अत्यन्त आसक्त) एवं सद्गुणों के सागर हैं उस वरद देशिक का मैं शरण ग्रहण करता हूँ।।16।।

यद् गुरुः श्रीनिवासार्यो, वाधूलोवरदानुजः।
तंवन्दे तत्कुलोत्तंसं, प्रणतार्त्तिहरं गुरुम् ।। 17।।

जो वाधूल वंशीय वरदाचार्य के अनुज हैं, श्री निवासाचार्य जिनके गुरु हैं तथा जो वाधूल वंश के शिखामणि हैं, उस प्रणतार्त्तिहार आचार्य की मैं वन्दना करता हूँ।। 17।।

वरद गुरु चरणशरणं वरवर मुनिवार्य धन कृपा पात्रम्,
प्रवर गुण रत्न जलधिं प्रणमामि श्रीनिवासगुरुम् ।
देशिकं श्री निवासाख्यं, देवराज गुरोसुतम्,
भूषितं सद्गुणैर्वन्दे, जीवितं मम सर्वदा ।। 18।।

जो वरद गुरु के चरण में शरण ग्रहण किये हैं, जो वरवर मुनिवर्य के अत्यन्त कृपापात्र हैं, उस उत्कृष्ट गुण रत्न के सागर – श्री निवास गुरुवर्य को मैं प्रणाम करता हूँ। ये श्री निवास गुरुवर देवराज गुरु के पुत्र हैं, सद्गुणों से भूषित हैं एवं हमारे जीवन स्वरुप हैं। सर्वदा मैं उनकी वन्दना करता हूँ ।।18।।

सकल वेदान्त सारार्थपूर्णाशयं,
विपुल वाधूल गोत्रोद्भवानांवरम् ।
रुचिरजामातृयोगीन्द्र पादाश्रयम्,
वरदनारायणं मद्गुरुं संश्रये ।। 19।।

समस्त वेदान्त का सारार्थ जो पूर्ण भाव से परिज्ञात हैं जो विपुल वाधूल वंशीयों के मध्य में श्रेष्ठ हैं, जो गुरु जामातृमुनि के पदाश्रित हैं अपने उस वरद नारायण गुरु की मैं सम्यक् आश्रय ग्रहण करता हूँ।।19।।

यही वरद नारायण गुरु 'अण्णन' के नाम से प्रसिद्ध हैं, श्री वरवर मुनि स्वामी के प्रतिष्ठित अष्ट दिग्गज के मध्य में एकजन ये हैं। इनकी प्रतिष्ठित गद्दी 'अण्णन गद्दी' नाम से अभिहित है, अस्मद् गुरुवर श्री ... स्वामी जी की शाखा अण्णन् गद्दी के अन्तर्भुक्त है।

श्री शैलेश दयापात्रं, धी भक्त्यादि गुणार्णवम् ।
यतीन्द्र प्रवणं वन्दे, रम्यजामातरं मुनिम् ।। 20।।

जो शैलेश गुरु के दया के पात्र हैं एवं ज्ञान भक्ति प्रभृति गुण के सागर हैं, जो यतीन्द्र रामानुज के प्रति अत्यन्त आसक्त, उस सुन्दर जामातृ मुनि (वरवर मुनि) की मैं वन्दना करता हूँ।।20।।

(उक्त श्लोक के विषय में यह प्रवाद है कि श्री रङ्गनाथ भगवान् वरवर मुनि स्वामी के इस तनियन श्लोक को स्वयं रचना किये हैं।)

नमः श्री शैलनाथाय, कुन्तीनगर जन्मने ।
प्रसाद लब्ध परम–प्राप्य कैङ्कर्य शालिने ।।21।।

जो श्री भगवान की परम प्राप्य भगवत्कैङ्कर्य के अनुष्ठान में सदा ही निरत रहते, जो कुन्ती नगर में उत्पन्न हुए उन शैलनाथ गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।। 21।।

लोकाचार्याय गुरवे, कृष्णपादस्य सूनवे ।
संसार–भोगिसन्दष्ट, जीव जीवातवे नमः।।22।।

जो कृष्ण पाद स्वामी के पुत्र हैं, जो संसार रूपी सर्प से दंशित जीवों के औषधि स्वरूप (त्रितापदग्ध संसारी जीवों के उद्धारकर्ता) हैं, उस लोक–गुरु लोकाचारी स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।। 22।।

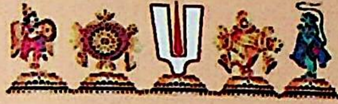
कृष्णपादापादाब्जे नमामि शिरसा सदा,
यत्प्रसाद प्रमाणेव सर्वसिद्धिरभून्मम ।। 23 ।।

जिसकी प्रसन्नता के प्रभाव से हमें सर्व सिद्धि हुई है, उस कृष्ण पाद स्वामी के चरण कमल में नतशिर होकर प्रणाम करता हूँ।। 23।।

वेदान्त वेद्यामृत वारिराशेः,
वेदार्थसारामृत–पूरमग्र्यम्।
आदाय वर्षन्तमहं प्रपद्ये,
कारुण्य–पूर्ण कलिवैरिदासम्।।24।।

जो वेदान्त वेद्य अमृतसिन्धु मन्थन करके उसका सारभूत अमृत लेकर वर्षण किये, उस कारुण्यपूर्ण कलिवैरिदास– स्वामी की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।।24।।

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्री कमलनयनाचार्य स्वामी जी महाराज

नमो वेदान्त वेद्याय, जगन्मङ्गल हेतवे ।
यस्य वागमृतासार–पूरितं भुवनत्रयम् ।। 25।।

जो जगत के मङ्गल के हेतु हैं, जिनका वाक्य रूप अमृत का सार त्रिभुवन को परिपूर्ण कर दिया है, उन वेदान्त विद् वेदान्ती स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।।25।।

श्री पराशर भट्टार्यः, श्रीरङ्गेशपुरोहितः।
श्रीवत्साङ्कसुतः श्रीमान्, श्रेयसे मेऽस्तु भूयसे ।। 26।।

श्रीवत्साङ्क कूरेश स्वामी के जो पुत्र हैं, जो अर्चावतार श्रीरङ्गनाथ भगवान् के जो पुरोहित हैं, वे गुरुवर पराशर भट्टार्य स्वामी हमारा विशेष मङ्गल साधन करें।।26।।

रामानुजपदच्छाया, गोविन्दाह्वानपायिनी।
तदायत्तस्वरूपासा, जीयान्मद्विश्रमस्थली ।। 27।।

जो रामानुज की अनपायिनी पदच्छायारूपी। (निरन्तर अनुचर, सङ्गी) हैं, जिनका स्वरूप उन्ही रामानुज के आयत्ताधीन है, हमारे विश्राम स्थल वे गोविन्दाचार्य स्वामी चिर जीवी रहें। 27।।

श्रीवत्सचिह्नमिश्रेभ्यो, नमउक्तिमधीमहि ।
यदुक्तयस्त्रयी कण्ठे, यान्ति मङ्गल सूत्रताम् ।। 28।।

जिसकी, पापहारी वेदत्रय की उक्ति यज्ञोपवीत के सदृश सर्वदा विराजमान करती उस श्रीवत्सचिह्न (कूरेश) स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।। 28।।

पादुके यतिराजस्य, कथयन्ति यदाख्यया ।
तस्य दाशरथेः पादौ, शिरसा धारयाम्यहम् ।। 29।।

जो यतिराज रामानुज स्वामी के पादुका नाम से प्रसिद्ध हैं, उस दाशरथी स्वामी के चरणयुगल का मैं आश्रय लेता हूँ ।।29।।

यो नित्यमच्युत पदाम्बुज युग्मरुक्य
व्यामोहतसतदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद् गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धोः,
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ।। 30।।

अच्युत भगवान् के अरुण चरण कमल युगल में नित्य व्यामुग्ध होकर जो तद् व्यतिरिक्त समस्त वस्तु को तृण के सदृश ज्ञान करते, हम लोगों के गुरु दया सिन्धु उसी भगवान् रामानुज के दोनों चरण का मैं शरण ग्रहण करता हूँ।। 30।।

कमलापति कल्याण – गुणामृत निषेवया।
पूर्ण कामाय सततं, पूर्णाय महते नमः ।।31।।

कमलापति के कल्याण गुणामृत पान से जो सर्वदा पूर्णकाम, उस महापूर्ण स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ ।। 31।।

यत्पादाम्भोरुह–ध्यान, विध्वस्ताशेषकल्मषः।
वस्तुतामुपयातोऽहं, यामुनेयं नमामितम् ।। 32।।

जिनका पादपद्म चिन्ता करने से अशेष पाप विनष्ट होकर परिशुद्ध आत्म वस्तु रूप में परिणत हो जाते हैं, उस यामुन मुनि को मैं प्रणाम करता हूँ।।32।।

अयत्नतो यामुनमात्मदासम्,
अलर्क पत्रार्पण निष्क्रियेण ।
यः क्रीतवानास्थित यौवराज्यम्,
नमामि तं राममेय सत्त्वम् ।। 33।।

पाचक (रसोइयाँ) को जो गोपन में मन निर्मलकारी अलर्क पत्र (एक प्रकार का साग) नित्य देते हुए युवराज यामुन को क्रय करके अपने अधीन में ले आये थे उस राममिश्र स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।।33।।

नमः पङ्कज नेत्राय, नाथ श्री पाद पङ्कजे ।
न्यस्त सर्वभरायास्मत्, कुलनाथाय धीमते ।। 34।।

नाथ मुनि के पाद पङ्कज में सम्पूर्ण रूप से जो अपने को न्यस्त कर दिये थे अर्थात् एकान्त भाव से शरणागत हुए थे, हम लोगों के कुलनाथ ज्ञान पूर्ण उस पङ्कजनेत्र (पुण्डरीकाक्ष) स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।।

नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्ट, ज्ञान वैराग्य राशये ।
नाथायमुनयेऽगाध, भगवद् भक्ति सिन्धवे ।। 35।।

जो अचिन्त्य अद्भुत एवं अक्लिष्ट ज्ञान और वैराग्य राशि से परिपूर्ण हैं, जो अगाध भगवद् भक्ति के सिन्धु स्वरूप हैं उस नाथ मुनि को मैं नमस्कार करता हूँ।। 35।।

माता पिता युवतयस्तनयाविभूतिः,
सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्यनः कुलपतेर्वकुलाभिरामम्,
श्रीमत्तदङ्घ्रि युगलं प्रणमामिमूर्ध्ना ।।36।।

जिनका चरण युगल हमारे एवं हमारे सम्बन्धियों के माता पिता, पत्नी, तनया ऐश्वर्य प्रभृति समस्त उपभोग्य वस्तु के सदृश है। हमारे आदि कुलपति शठकोप स्वामी वकुलाभिराम (मनोहर वकुल माला धारी) उनका श्री चरण युगल मैं मस्तक पर धारण करके प्रणाम करता हूँ ।। 36।।

श्रीरङ्गचन्द्रमसमिन्दिरया विहर्त्तुम,
विन्यस्य विश्वचिदचिन्नयनाधिकारम् ।
यो निर्वहत्य निशभङ्गुलिमुद्रयैव,
सेनान्यमन्य विमुखास्तमशिश्रियामः।। 37।।

श्री लक्ष्मी जी के सहित श्रीरङ्गचन्द्र (नारायण) को विहार का अवसर देने के लिए अङ्गुलिके इशारे से चित् और अचिद्विशिष्ट समस्त जगत का निर्वाह करते रहते हैं, जो इतर वस्तुओं से विमुख हैं, उस सेनानी विष्कक्सेन जी को मैं समाश्रय करता हूँ ।।37।।

नमः श्रीरङ्ग नायक्यै, यद् भ्रूविभ्रम भेदतः।
ईशेशितव्य वैषम्य, निम्नोन्नत मिदं जगत् ।। 38।।

जिसकी भ्रूभाङ्गिमा मात्र से उच्चनीच विशिष्ट यह जगत् शासित होता है उस रङ्गनाथ की लक्ष्मी जी को मैं प्रणाम करता हूँ।। 38।।

श्रीस्तनाभरणं तेजः श्रीरङ्गेशयमाश्रये ।
चिन्तामणिभिवोद्धान्त - मुत्सङ्गेरङ्गभोगिनः।। 39।।

जो लक्ष्मी जी के स्तन के आभरण स्वरूप हैं, जो अनन्त देव के गोदी में विराज करते हैं, उस चिन्ता मणि तुल्य ज्योतिर्मय तेजोमय विग्रह श्रीरङ्गनाथ भगवान को मैं समाश्रय करता हूँ।। 39।।

यह समस्त गुरु परम्परा अनुधावन करने पर, स्पष्ट ही प्रतीयमान होता है इस परम्परा में आये हुए समस्त पूर्वाचार्यगण ही ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य के आकर स्वरूप थे, सभी उभय वेदान्त (संस्कृत वेदान्त एवं आड्वरों के दिव्य प्रबन्ध तामिल वेदान्त) में सम्यक् पारदर्शी, एवं अपने अपने आचार्य के प्रति एकान्त अनुरक्त और अनुवर्तनशील थे। किसी आचार्य को उनकी 'पादुका' किसी को उनकी 'पदच्छाया' कहकर अभिहित किया हुआ है। इन पूर्वाचार्यो के मध्य में अनेक को ही 'वेदान्त युग्म विशदीकार' कहकर विवृत किया हुआ है। आदर्श सदाचार्य परम्परा की गुणावली एवं नित्य का नित्य पाठ, नित्य स्मरण एवं नित्य स्तुति इस गुरु परम्परा की कृपा से, शिष्य परम्परा के मध्य में आचार्य निष्ठा का उद्रेक करके तदनुगुण ज्ञान एवं अनुष्ठान के अनुकरण में आकृष्ट करने में समर्थ होता है। नित्य गुरु परम्परा पाठ की यही उपकारिता है। इसी लिए विशेष शास्त्र का वक्तव्य है = –जप्तव्यं गुरु परम्परा'। श्री स्वामी जी महाराज गुरु परम्परा की आवृति करने के पश्चात् 'अतिमानुषस्तव' की आवृत्ति करके उसका अनुसन्धान करते। प्रायः 900 वर्ष पूर्व श्री रामानुज स्वामी के प्रधान शिष्य ज्ञानी भक्त श्री कूरेश स्वामी इस स्तव की रचना किये हैं, यह स्तव सर्व समेत 61 श्लोकों से युक्त है। उसके मध्य में प्रथम 33 श्लोक श्री रामचन्द्र जी की महिमा से परिपूर्ण है, अवशिष्ट 28 श्लोक श्रीकृष्ण चन्द्र जी के वैभव से पूर्ण है। ग्रन्थ विस्तार के भय से ये समस्त श्लोक इस स्थल पर उल्लिखित नहीं हुए। पिपासु पाठकगण अनुग्रह पूर्वक श्री कूरेश स्वामी विरचित 'पञ्चस्तवी' ग्रन्थ के अन्तर्गत यह अतिमानुषस्तव पाठ कर लेंगे।

यह समस्त नित्य अनुसन्धान करते करते श्री स्वामी जी महाराज को दो घण्टा समय लग जाता। तब सूर्योदय का आभास देखकर उनके अन्तरङ्ग सेवक श्री कमलनयन जी उनको इस विषय में निवेदन करते। तब वे शौच जाने के लिए प्रस्तुत होते। दो जन सेवक उन्हें छोटी चौकी पर बैठाकर बहन करके ले जाते। शौच एवं उसके बाद शुद्धि समापन कराकर उन्हें पूर्ववत् वहन करके उनके कक्ष के एक पास में ले आया जाता। उस स्थान पर ही उनका स्नानकार्य श्री कमलनयनं जी सम्पादन कर देते। तदनन्तर उन्हें कौपीन, कटिवस्त्र पहनाकर उनके नित्य नियत कम्बल के आसन पर बैठा देते। इस समय वे एकजन सुवोधबाल के सदृश सेवक के अधीन होकर विराज करते। अब श्री कमलनयन जी उन्हें तिलक एवं श्री धारण करा देते। उनकी यह आनुष्ठानिक पूजा खूब अल्पकाल व्यापी प्रायः पाँच दस मिनट थी। ऐसे सिद्ध महापुरुष की आनुष्ठानिक आराधना इतनी अल्पव्यापी होने का हेतु क्या है उसे परिस्फुट करने के लिए प्रासङ्गिक रूप में श्री पराशर भट्टर स्वामी की आराधना विषय में एक घटना का उल्लेख किया जाता है।

पराशर भट्टार्य श्री रामानुज स्वामी के वर पुत्र थे, रामानुज के प्रधान शिष्य कूरेश के पुत्र एवं रामानुज के अतिप्रिय शिष्य गोविन्दाचार्य के शिष्य तथा अनुभव योग्य महापुरुष थे। 25 वर्ष की अवस्था में ही वे श्री वैष्णव

धर्म के संरक्षक एवं प्रधान आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। सर्वदा ही कोई न कोई भगवद् भागवत कैङ्कर्य में निरत रहते। वे वैष्णव समाज में 'भट्टर स्वामी' नाम से सुपरिचित थे। एक समय एक सोम-याजी याज्ञिक वैष्णव उनको विनीत भाव से जिज्ञासा किया, स्वामी! आराधना क्रम के विषय में मुझको दया करके उपदेश दीजिये। भट्टर स्वामी उसको रामानुज कर्तृक दीर्घ नित्य आराधना क्रम का उपदेश किये। तदनन्तर याज्ञिक वैष्णव उपदिष्ट आराधना क्रम का अभ्यास करने लगे। इस भाव की आराधना में उनका अधिक समय अतिवाहित होने लगा। एक दिन भट्टर स्वामी की आराधना देखने का सुयोग उन्हें मिला। अपनी उपदिष्ट आराधना क्रम का एक अङ्ग भी उस भट्टर स्वामी की आराधना में वे नहीं देख पाये। वे देखे कि उनका आराधना क्रम–स्नान, स्नान के अन्त में शुद्ध वस्त्र परिधान, ऊर्द्धपुण्ड्रादि तिलक धारण, कई एक बार मन्त्र का उच्चारण, तदनन्तर गृह देवता को भोग निवेदन करके प्रसाद भोजन। अति अल्पक्षण में ही उनकी यह आराधना समाप्त हो गई।

इसको देखकर सोम याजी विस्मित और हताश हो गये। वे भट्टर स्वामी से जिज्ञासा किये–'कि स्वामी हमको ज़ो आराधन क्रम का उपदेश दिया था उसका एक अंश भी आप के इस अनुष्ठान में तो नहीं देखा इसका क्या कारण? अनुग्रह पूर्वक कहिये।' ऐसा सुनकर भट्टर स्वामी बोले– समस्त वेदान्त शास्त्र की आलोचना कर यह समझा कि पूर्वोपदिष्ट आराधना पद्धति के अलावा तुम्हारे उपयुक्त दूसरा कोई आराधना क्रम और नहीं है, एवं हमारी आराधना में अपने लिए कोई भी कर्तव्य देख नहीं पाया। सोमयाजी जी वैष्णव ऐसा सुनकर नीरव हो रहे।

उनके पक्ष में आनुष्ठानिक, अंगवहुल आराधना उपयोगी नही है, पराशर भट्टार्य स्वामी श्री रङ्गम में श्री रङ्गनाथ भगवान के प्रधान अर्चक एवं श्री वेष्णववों के मुख्यतम आचार्य तथा श्रीवैष्णव समाज के संरक्षक थे। उनको सर्वदा ही भगवद्–भागवत् आचार्य के किसी न किसी प्रकार के कैङ्कर्य में व्यस्त रहना पड़ता था।

भट्टर स्वामी की इस उक्ति का अर्थ अच्छी तरह समझना अत्यन्त कठिन है। अभिनिवेश पूर्वक मन लगाकर चिन्ता करने पर इस उक्ति का कुछ कुछ तात्पर्य समझ में आ सकता है। वैदिक यज्ञ में अभ्यस्त पुरुष का मन स्वतः ही कर्माङ्गवहुल दीर्घ अनुष्ठान की तरफ ही आकृष्ट होता है। अतएव आराधना की प्रथम अवस्था में उसके पक्ष में बहुत अङ्गों से युक्त आराधना का क्रम ही उपयोगी है। क्रमशः आराध्य– वस्तु की कृपा से आराधनागत सारतत्व वस्तु का जितना ही ज्ञान होता रहेगा उतना ही आराधना का रूप परिवर्तित आकार धारण करेगा। उपासक के मानसिक वृत्ति भेद से यह परिवर्तन विभिन्न प्रकार का होता है। भगवान के सङ्कल्प से जिनकों सर्वदा भगवत् भागवत् – आचार्य के कैङ्गर्य रूप आराधना में लिप्त रहना पड़ता है। अतएव उनके द्वारा अल्पकालीय आराधना क्रम ही उनके पक्ष में सर्वोत्तम है। भगवद् आराधना का फल होता है भगवद् भागवत् कैङ्कर्य। यह कैङ्कर्य सब प्रकार की आराधन्ना के ऊपर है। वे इस परिपक्क फल के ही अधिकारी थे।

पूजा समाप्ति क़े बाद हाथ पकड़कर श्री स्वामी जी महाराज को श्री विजराघवजी के मन्दिर में ले जाया जाता। वहाँ उपस्थित होकर साष्टाङ्ग प्रणाम करने के पश्चात् वे हाथ जोड़कर कुछ समय श्री विजयराघवजी भगवान के सन्मुख निष्पन्द भाव से खड़े रहते। इस समय उनकी श्री मूर्त्ति एक अपरूप शोभा धारण करती। उस समय की यह दिव्य कान्ति दिव्य मूर्त्ति दर्शन करने के महा सौभाग्य में यह दीन लेखक कई एक बार सौभाग्यवान हुआ था। वहि दृष्टि होने पर भी वे श्री विजय राघव भगवान एवं श्री अम्बा ज़ी का भली भाँति दर्शन

कर रहे हैं। अन्तर अन्तर से परस्पर कथा का विनिमय हो रहा है। कुछ समय इस भाव से अतिवाहित करने के बाद वे सन्मुखस्थ पुजारी जी को श्री विजयराघव जी महाराज का तीर्थ (चरणामृत) तुलसी देने के लिए निर्देश करते। पुजारी जी भी यह निर्देश नहीं पाने तक अपेक्षा करते। श्री पादतीर्थ, तुलसी एवं शठकोप लेने के बाद वे बायें से दाहिने की तरफ घूमते हुए सात बार श्री मन्दिर की प्रदक्षिणा करते। इस समय भी ऐसा मालूम होता जैसे श्री विजयराघव जी एवं अम्बा जी के साथ अपने अन्तर का भाव विनिमय कर रहे हैं। सात बार प्रदक्षिणा करके पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम करते। इस साष्टाङ्ग की भङ्गी अपरूप थीं। कई एक मिनट तक ही वे इसी भाव में दण्डवत् भूलुष्ठित रहने के बाद उठकर खड़े होते। पुनर्वार हाथ जोड़े हुए श्री विजराघव जी भगवान् के निकट प्रार्थना करते। तदनन्तर सेवक की सहायता से आकर अपने आसन पर बैठे रहते। श्री स्वामी जी महाराज का श्री मन्दिर में श्री विग्रह दर्शन के समय, साष्टाङ्ग प्रणाम के समय, प्रदक्षिणा के समय जो उनके साथ श्री विजयराघव जी एवं अम्बा जी के अर्चाविग्रह का भाव विनिमय, वार्ताविनिमय होता उसका अनुमान करना कठिन नहीं होता। उनकी इस अनुष्ठान भङ्गिमा को जो ही एकाग्र चित्त से देखते, अनुभव करते वे इस अव्यक्त अलौकिक समाचार को सहज में ही अनुमान और अनुभव कर पाते। कदाचित् कभी यह दुर्लभ अनभिव्यक्त संवाद स्वतः उद्घाटित हो पड़ता। भगवान् एवं उनके परमप्रिय भक्त के घनिष्ठ सम्बन्ध का रहस्य प्रकाशित हो पड़ता। ऐसी ही एक सुदुर्लभ अलौकिक यथार्थ दिव्य घटना की कथा नीचे दी ज़ा रही है।

श्री स्वामी जी महाराज जी अपने नेत्र की पीड़ा के समय जब लगातार तीन चार दिन अत्यन्त यन्त्रणा भोग कर रहे थे,उनकी इस असह्य यन्त्रणा नहीं देख सकने पर उस समय हमारे एक गुरु भ्राता श्रीयदुनन्दन रामानुज दास (श्री योगेशचन्द्र सेन) श्री विजयराघव जी की सन्निधि में उपस्थित होकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके श्री स्वामी जी महाराज के इस असह्य यन्त्रणा की शान्ति के लिए कातर प्रार्थना किये। इस बात को विन्दु मात्र भी वे अन्य किसी से भी नहीं बोले। अपने मन में ही छिपाकर रखे थे। दूसरे दिन श्री स्वामी जी महाराज स्नान और पूजा करके यथारीति श्री मन्दिर में गये। श्री विजयराघव जी महाराज को साष्टाङ्ग करके प्रदक्षिणादि के बाद अपने कक्ष में लौट आये। अपने आसन पर बैठने ही वे यदुनन्दन जी को बुलवाये। वे आदेश पाते ही श्री स्वामी जी महाराज के समीप उपस्थित हुए। तब श्री स्वामी जी महाराज शासन स्वर से जिज्ञासा किये –

''क्या तुमने हमारे नेत्र पीड़ा के आरोग्य के लिए श्रीविजय राघव जी महाराज की सन्निध में प्रार्थना किया था। यदुनन्दन जी नीचे मुख कर उत्तर दिए (हाँ स्वामी जी) श्री स्वामी जी महाराज उपदेश मुख में दृढ़ कण्ठ से बोले– विशेष अन्याय किये हो। भविष्य में ऐसी प्रार्थना कभी नहीं करना। ऐसा करने से अपराध होता है, उनकी करुणा के विषय में सन्देह करना हो जाता है। वे सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमय, करुणामय हैं। वे क्या यह नहीं जानते कि मैं कितना दु:ख भोग कर रहा हूँ, और क्यों कर रहा हूँ? हमारे कर्म के अनुगुण उसके अनुरूप फल भोग, दु:ख कष्ट का भोग वे कभी नहीं देते, वे ताल समान कर्म फल को केवल तिल समान भोगकर अव्याहति देते रहते हैं, हम लोग अपने दु:ख से जितना दु:खी होते हैं, वे स्वयं इसके लिए उससे अधिक दु:खी होकर रहते हैं, तुम क्या यह नहीं जानते कि वे ''व्यसनेषु मनुष्याणामभृशं भवति दुखितः वे ।। स्वयं ही अल्प दु:ख भोग कराकर हमारा बहुत दु:ख दूर कर देंगे। वे मङ्गलमय हैं, मङ्गल ही करेंगे। इस विषय में कभी जरासा भी सन्देह नहीं करना।'' वहाँ पर उपस्थित भक्तवृन्द श्री स्वामी जी महाराज का यह अपरूप दृढ़ सिद्धान्त सुनकर विस्मित

हो गये। अपने आचार्य की व्याधि–शान्ति के लिए श्री भगवान् के चरण में प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए, प्रार्थना नहीं करने से अपराध होता है यही सभी जानते थे। किन्तु श्री स्वामी जी का सिद्धान्त ठीक विपरीत है। उनके सिद्धान्त से ऐसी प्रार्थना करना ही अपराध है, क्योंकि यह भगवान के प्रति अविश्वास निदर्शन है। वे जो करुणामय एवं मङ्गलमय हैं उस विषय में दृढ़ता के अभाव का निदर्शन है। एकाग्र चित्त विचार करके यदि देखा जाय तो यह साक्षात् प्रतीयमान होगा कि श्री भगवान के कल्याण गुण के साक्षात् उपलब्धि करने वाले श्री स्वामी जी महाराज का यह सुसिद्धान्त अकाट्य है। जिस अलौकिक घटना को अवलम्बन करके श्री स्वामी जी महाराज यह उपदेश देकर सबको कृतार्थ और चमत्कृत किये। वह घटना इस स्थल पर हम लोगों के आलोच्य का विषय है। श्री अर्चाविग्रह विजयराघव जी की सन्निधि में साष्टाङ्ग प्रणाम प्रदक्षिणा इत्यादि के समय वे जो अपने अर्न्तदृष्टि से अर्चाविग्रह का दर्शन करते, उनके सहित वार्तालाप का विनिमय करते, निवेदनीय विषय अर्चाविग्रह को निवेदन करते, अर्चाविग्रह भी जो सब विषय में उन्हें उत्तर प्रदान करते, निवेदन नहीं करने पर भी अर्चाविग्रह विविध ज्ञातव्य विषय उन्हें ज्ञापन करते, आपद विपद में उन्हें उपदेश देकर परिचालना करते, संशय स्थल पर पथ दिखा देते – उक्त दिव्य घटना उसकी गवाही दे रही है। अर्चाविग्रह की यह स्थिति है कि– 'सर्व शोऽपि अज्ञ एव, सर्वशक्तिरपि अशक्त इव, अर्चक पराधीनः स्थितिः। शास्त्र विधि के मत से प्रतिष्ठित एवं शास्त्र विधि के मत से नियत अर्चित इस अर्चावतार में सर्व–ज्ञान सर्वशक्ति निहित है। वे सर्वज्ञ होकर भी अज्ञ की तरह, सर्वशक्तिमान् होकर भी अशक्त की तरह विद्यमान रहते हैं। वे सर्वत्र गमनशील होकर भी निश्चल रूप से, सर्ववाक् होकर भी निर्वाक् की तरह, चेतन होते हुए भी अचेतन रूप में विराजमान हैं। किन्तु यही अर्चावतार जो प्रिय भक्त के निकट अपना प्रकृत–भाव गोपन नहीं कर पाते। वे जो ऐसे भक्त को अपना सर्व प्रकार अनुभव देकर कृतकृत्य करते हैं, अपने अशेष सौन्दर्य मय दिव्यरूप, एवं अशेष कल्याण गुण की उपलब्धि देकर धन्यातिधन्य किये रहते हैं उपरोक्त घटना उसकी गवाही दे रही है। इसी कारण अनुभवी सिद्ध महापुरुषगण एवं प्रेमपरवश भक्तगण कह गये हैं- 'गुण पूर्तिः अर्चावतारे'। श्री स्वामी जी महाराज के प्रातःकालीन दिनचर्य्या के अन्तर्गत श्री विग्रह दर्शन एवं प्रदक्षिणा का संक्षिप्त विवरण उल्लिखित हुआ। प्रसङ्ग क्रम से श्री स्वामी जी महाराज की अन्तर्दृष्टि अर्चाविग्रह के वैभव का विषय भी दृष्टान्त के सहित संक्षेप में वर्णित हुआ। दर्शन और प्रदक्षिणा करने के बाद कक्ष में लौट कर श्री स्वामी जी अपने कम्बल के आसन पर स्थिर होकर बैठ जाते, एकान्त मन से फरकते हुए अधर से इष्ट मन्त्र के जप में निरत रहते। इसी अवसर में उनके अन्तरङ्ग सेवकगण अपना अपना प्रातःकृत्य समाप्त कर लेते। शौच स्नान पूजा आदि समाप्त करने में उनको एक, डेढ़ घण्टा समय लगता। इसके मध्य कई एक जन अनुरागी वैष्णव एवं आश्रमवासी विशेष विशेष धर्म ग्रन्थ लेकर श्री स्वामी जी के निकट उपस्थित हो जाते। इसी समय में उनका रहस्य विषयक ग्रन्थ अथवा सिद्धान्त विषयक ग्रन्थ के अध्यापना का काल था। उनके व्यक्तिगत सेवकगण अपना अपना प्रातः कृत्य समाप्त करके जब तक उनके पास आ नहीं जाते वे अपेक्षा करते। उनके आ जाने के बाद यह अध्यापना आरम्भ करते। उनके प्रिय सेवक श्री कमलनयन जी ग्रन्थ का पाठ करते जाते एवं श्री स्वामी जी महाराज स्वयं वही पाठ–विषय विश्लेषण करके उपस्थित विद्यार्थी भक्तगण को समझा देते। इसी प्रकार में नित्य प्रातःकाल 9 बजे से लेकर दस, साढ़े दस बजे तक यह अध्यापना चलती। विद्यार्थी और साधुगण अध्ययन करके अपने अपने स्थान में चले जाते। तब वे पुनः एकान्त भाव से इष्ट चिन्ता में मग्न हो जाते। 11/12 बजे

कमलनयन जी शक्कर मिश्रित आधा सेर दूध भोग लगाकर ले आते। श्री स्वामी जी महाराज घर को बन्द कर एकान्त में वह प्रसादी दूध पान करते। दूध लेने के बाद प्रायः एक घण्टा उनका विश्राम काल था। इस समय भी वे घर बन्द कर शयन करते। वे शयन करते कि भगवद्विषयक चिन्ता में निमग्न रहते उसे हम लोग नहीं जानते। 12॥/1 बजे के अन्दाज वे शय्या त्याग करते। श्री मुख, कर पद धोकर अपने आसन पर बैठ जाते। वे इस समय मैं नित्य मन्त्र एवं मन्त्रार्थ के विषय में उपदेश देते। उपयुक्त अधिकारी बैष्णव को छोड़कर इस उपदेश काल में किसी को भी वहाँ जाने का अधिकार नहीं था। 'अष्टश्लोकी, निगमन पड़ि, मुमुक्षुपड़ि', प्रभृति ग्रन्थ का अवलम्बन करके यह मन्त्रार्थ का उपदेश होता। इस कालक्षेप के समय उपस्थित रहने का सौभाग्य हम लोगों को हुआ था। मन्त्र के मध्य में जो सर्वव्यापी इतना अर्थ निहित है उसे श्रवण कर हम लोग विस्मित हो जाते। मन्त्र की इस बहुमुखी महिमा को जानकर हम लोग पुलकित और कृतकृत्य हो जाते। मन्त्रार्थ के सम्यक् ज्ञाता एवं तदनुगुण सम्यक् अनुष्ठाता सिद्ध सदाचार्य के श्री मुख से निकला हुआ मन्त्रार्थ का उपदेश जो कितना शक्तिशाली होता है वह भाषा के द्वारा वर्णना करने के अतीत हैं, वह केवल इस उपदेश के परम सौभाग्यवान् श्रोता गुरु कृपालब्ध शिष्य के प्रत्यक्ष अनुभव गम्य है।

वेला प्रायः दो ढाई बजे श्री स्वामी जी महाराज पुनः शौच स्नानादि करते। स्नान के पश्चात् तिलकसेवा करके आसन पर स्थिर भाव से विराज करते। प्रातःकाल के सदृश सेवकों की सहायता से ही यह सकल कृत्य सम्पन्न होता। इस समय अपराह्न तीन बजे से 4/4॥ बजे तक प्रवीण साधु महात्मागण प्रत्यह ही उनके पास आते। शास्त्र सम्बन्धीय, धर्म सम्बन्धीय अनुष्ठान विषयक विविध प्रश्न विविध शङ्का उनके निकट उपस्थित करते। सहज एवं सरल भाव से आलोचना करके वे इन समस्त प्रश्नों का उत्तर देकर उन लोगों को सन्तुष्ट करते। उन लोगों के सन्देह का निरसन कर देते। कोई कोई तर्क प्रवण वहिरागत साधु अपना मतवाद स्थापन के लिए उनके निकट आकर तर्क की अगर अवतारणा करते तब वे सहज बोध्य युक्ति के द्वारा उन लोगों को निवृत्त कर देते। इस विषय में एक सुन्दर दृष्टान्त दिया जा रहा है।

एक समय एकजन अद्वैतवादी त्रिपुण्ड्रधारी सन्यासी अयोध्या आये हुए थे, तत्रत्य साधु समाज के मध्य में अद्वैतवाद प्रतिष्ठा करने के लिए वे भ्रमण करते करते यहाँ आये थे। भिन्न – भिन्न स्थान पर भिन्न भिन्न साधुओं के सहित वादानुवाद में प्रवृत्त हुए थे। तर्क जाल उपस्थित करके कहीं पर जयी हुए थे और कहीं पर पराजित हुए थे। चित्त में सन्तोष नहीं है, सदा जैसे एक द्वन्द्व युद्ध का भाव है। एक दिन वे आकर श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में उपस्थित हुए। अल्पक्षण के बाद ही वे अद्वैत बाद, विशिष्टाद्वैत बाद के सम्बन्ध में वादा वाद के तर्क की अवतारणा किये। कुछ क्षण के बाद श्री स्वामी जी महाराज उनसे बोले – ''देखिये वादावाद तर्क युक्त करने में हमारी प्रवृत्ति नहीं है इस विषय में आप विरत रहिये।'' तब वे सन्यासी बोले– 'तब क्या आप पराजय स्वीकार कर लिये'। यह सुनकर श्री स्वामी जी महाराज कुछ भी उसका प्रतिवाद नहीं किये। तव 'मैनं सम्मति लक्ष्मण्' सोचकर वे सन्यासी बोले– 'तब आप ऊर्द्धपुण्ड्र' परित्याग करके हम लोगों की तरह 'त्रिपुण्ड्र' तिलक धारण कीजिये। श्री स्वामी जी महाराज बोले– नहीं मैं वह नहीं करूँगा। अद्वैतवादी – क्यों नहीं करेंगे? त्रिपुण्ड्र तिलक क्या अशास्त्रीय हैं? श्री स्वामी जी महाराज – नहीं अशास्त्रीय नहीं है। अद्वैतवादी तब क्यों आप उसे धारण नहीं करेंगे? श्री स्वामी जी महाराज–''त्रिपुण्ड्र आपके निकट उत्तम है हमारे नही। आप इसके अधिकारी हैं। हमारे लिए ऊर्द्धपुण्ड्र उत्तम हैं हम इसके अधिकारी हें। अधिकार भेद के कारण ही

आप और हम दोनों के मध्य में मतभेद है। विभिन्न अधिकार भेद का विभिन्न विभिन्न विधान ही हिन्दू धर्म की विशेषता हैं यह सिद्धान्त मन में रखने पर फिर कोई विपद नहीं रहता। तर्क के द्वारा सिद्धान्त कभी प्रतिष्ठित नहीं होता– 'तर्कोऽप्रतिष्ठः'। श्री स्वामी जी मधुर अथ च दृढ़ कण्ठ से यह सिद्धान्त ज्ञापन किये। तर्क प्रिय सन्यासी इस धरण के मीमांसा की आशा नहीं किये थे एवं कहीं भी इस धारण का समाधान नही पाए थे। वे श्री स्वामी जी महाराज के गम्भीर आशय की उपलब्धि कर लिये। उनकी तर्कमति शान्त हो गई। वे सन्तुष्ट चित्त से श्री स्वामी जी महाराज को साष्टाङ्ग किये। एवं श्री स्वामी जी के दिये हुए प्रसाद को ग्रहण करके प्रस्थान किये। इसी भाव से अनुकूल अथवा प्रतिकूल समस्त साधु सन्त ही उनकी धीर शान्त प्रकृति से उनके आलोचना की धारा से सन्तुष्ट हो विदा लेते। सायाह्न 5 बजे 6।। बजे तक उनके कालक्षेप के समय अयोध्या नगरी के बहुत विशिष्ट साधु सन्त नित्य इस कालक्षेप में योगदान करते उनके इस भागवती कथा को सुनकर मुग्ध हो जाते। कालक्षेप के अवसान में कोई कोई साधु अपनी अपनी विशेष शास्त्र की शङ्का को मिटाने के लिए उनके पास आकर वैठते। श्री स्वामी जी महाराज इन समस्त विषयों की सरल व्याख्या कर देते। उसके बाद सन्तुष्ट चित्त से वे अपने स्थान को प्रस्थान करते।

सन्ध्या के बाद श्री मन्दिर में आरती होती। सायं काल तक वे इसी तरह कालयापन करते। आरति के प्रारम्भ होने पर वे अधिकांश दिन ही अपने स्थान पर बैठे हुए ही आरति के बाजा की तरफ, स्तोत्र पाठ के छन्द की तरफ विशेष भाव से लक्ष्य रखते। घड़ी घण्टा काँसर शंख नगाड़ा प्रभृति वाजना के सुसामञ्जस्य की तरफ उनकी तीक्ष्ण दृष्टि और मनोनिवेश रहता। विभिन्न प्रकार बाजना के छन्द और लय में एकतानता की त्रुटि होने पर स्तोत्र पाठ में छन्द अथवा स्वर की त्रुटि होने पर आरति के समय में ही वे उन लोगों को सतर्क करने के लिए इस त्रुटि को संशोधन करने की व्यवस्था कर देते। इसी कारण बजाने वाला एवं स्तोत्र करने वाला सभी सशङ्क चित्त से सुष्ठुभाव में अपना अपना आरति का कृत्य पालन करते।

'शङ्कित वादक स्तोता त्रुटि नाहीं रहे सेथा
कभू नहे मर्यादा लङ्घन।।'

सन्ध्या आरति का कृत्य सम्पन्न होने में एक घण्टा लगता। आरति के अवसान में समस्त आश्रमवासीगण श्री स्वामी जी महाराज के चरण प्रान्त में आकर उपस्थित होते। उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनके निकट कुछ देर तक बैठे रहते। उस समय श्री स्वामी जी महाराज उन सभी को मधुर बचन से हितकर उपदेश देते। जिससे उन लोगों के आत्मा की उन्नति हो। प्रत्यह इस समय में श्री स्वामी जी महाराज के श्री मुख से निकले हुए हितकारी उपदेश को सुनने का सुयोग प्रत्येक आश्रमवासी पाते। उन लोगों के चले जाने पर विभिन्न विभागीय भार प्राप्त सेवक को अधिकारी जी कुठारी, रसोइयाँ, गौ–सेवक प्रभृति को अपने अपने विभाग की सुष्टु परिचालना करने का परामर्श देते, सदुपदेश देते। यह उनका नित्य कृत्य था। समस्त सेवक गण के चले जाने पर वे अधिकारी गरुड़ध्वज स्वामी जी के सहित, आश्रम सम्बन्धीय यदि कोई जटिल विषय रहता तो उस विषय में परामर्श देते। एतदनन्तर 9/9।। बजे जब आश्रमवासीगण प्रसाद पाते तो उन लोगों की देखरेख के लिए अधिकारी जी विदा लेते। श्री अधिकारी के चले जाने के बाद वे कुछ दुग्ध सेवन करते। दोनों वेला में तीन पाव से लेकर एक सेर दूध प्रसाद का सेवन ही उनका दैनन्दिन का आहार था। यदि कोई सेवक उनकी सेवा के लिए कोई भी फल को लेकर जाता तो वे उस फल का रस भोग लगाकर प्रसाद पाते। सन्तरा अङ्गूर अथवा अनार का रस – यही उनका सेवनीय था।

इसके बाद एकान्त एकाग्र चित्त से अपने आसन पर बैठकर इष्ट ध्यान में निमग्न हो जाते। इस समय अन्तरङ्ग सेवक श्री कमलनयन जी और अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी को छोड़कर श्री स्वामी जी के कक्ष में दूसरा कोई नहीं आता ।रात्रि 10।1/2 से 11 बजे के भीतर श्री कमलनयन जी एवं श्री गरुड़ध्वज जी उनकी शय्या (कम्बल के ऊपर चादर एवं वालिश) प्रस्तुत कर देते, मशहरी लगा देते। तब वे शयन करते। रात्रि 11/1।2 बजे से 2।1/2 बजे तक उनके सोने का समय था। हम लोगों के मन में होता है कि निद्रा में वा स्वप्न में भी भगवदनुभव में वे कालातिपात करते। भगवदनुभव उनकी अस्थि मज्जा के अणु परमाणु में प्रवेश कर गया था।

श्री बलराम स्वामी जी की अद्वितीय दिनचर्य्या का विषय वर्णित हुआ। 'आचार्य प्रकाश नामक' पद्यः पुस्तिका में प्रकाशित यह वृत्तान्त नीचे उद्धृत किया जाता है।

याम मात्र सुप्ति होले जागरन सत्त्व काले
श्रीहरि श्रीहरि उच्चारण ।
हये पुन सावधाने वसिनिज आसने
सन्धान श्रीपतिचरण ।।
स्वरूपव रूप गुण लीला आदिकीर्त्तन
स्तोत्रपाठ सुमधुरस्वरे।
रजनी प्रभात होले स्नान पूजा समापिये
मन्त्रजप स्फुरित अधरे।।
इष्टदेव दरशन साष्टाङ्गेते प्रणमन
प्रदक्षिणाकरि सप्तवार।
एवे मधुर वचने व्याख्याकरि रामायणे
साधुश्रोता पुलक अन्तर।।
तवे से आश्रित कुले प्रकाशि रहस्य जाले
ता सवार स्वरूपवर्द्धन
तेंह अवसरे पुन अतीव एकान्त मन
दिव्य भावे श्रीकान्तचिन्तन
ईश आराधनापरे होइ लोये ये द्विप्रहरे
फलाहार प्रसाद सेवन ।
प्रसादान्ते कियत्काल लभिया विश्राम भाल
पुन शौच स्नान समापन ।।
विराजित शान्त मूर्त्ति जिज्ञासुर आशापूर्त्ति
यत भागवत समागम।
भागवती कथा धारा सुनि तारा आत्महारा
कथा स्थले नाहिं तिलस्थान।।

कथा अन्ते स्वामी पासे शास्त्र–शङ्का लये आसे
प्रवीणेरा पाय निरसन।
सन्ध्या काले एक चित्त प्रेमाकुल यत चित्त
ध्यान मग्न निज प्राणधन।।
घड़ी घण्टा वाद्य साधे आरती व स्तोत्र पाठे
सुने प्रभुहये एकमन।
शङ्कित वादक स्तोता त्रुटि नाहिं रहे सेथा
कभूनाहें मर्यादालङ्घन।।
आरतिर अवसाने प्रणमे आश्रित–गणे
प्रिय हित पर उपदेश।
मन्दिर सेवक गणे अतिशय सन्तर्पणे
सेवा विधि करने आदेश।।
अल्प दुग्ध करि सेवा शयने विश्राम लभा
निज इष्ट देवेर चिन्तन।
शयने स्वपने रहे अनुभव विनुनहे
स्वरूप विभव रूप गुण।।
ए हेन हे नित्य सूरि तुलना दिवारे नारि
सेई मोर एक मात्र गति
इहा आछे सुनिश्चय नाहिक नाहिक भय
'यतीन्द्र' प्रणमे निजपति।।

श्री स्वामी जी केमहाप्रयाण के बाद ही उनके एक वङ्गदेशीय पण्डित शिष्य श्री पराङ्कुश शास्त्री महाशय 25 श्लोक में उनकी इस दिनचर्या के विषय में एक स्तोत्र रचना किये थे। अर्थ के सहित उस स्तोत्र को यहाँ उद्धृत किया जाता है।

।। बलराम सूरि – पञ्च विंशतिः।।

श्रीरङ्गराजाङ्घ्रि सरोज तत्व
प्रवीण रङ्गाङ्घ्रि रतैक भक्तेः।
गुरोर्गरिष्ठौ बलराम सूरेः
पादार विन्दौ शरणं प्रपद्ये ।। 1।।

श्रीरङ्गनाथ भगवान के चरण कमल के तत्त्व ज्ञान में जो प्रवीण हैं, उसी रङ्गनाथ के चरणरत ऐकान्तिक भक्त अपने गुरुवर श्री बलराम सूरिके चरण कमल की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

संसार तापार्त्ति–तृषातुराणाम्,
कृपारस–स्रावि – पदाश्रितानाम्।

तापप्रशान्ति – प्रविधान–दक्षम्,
देवं प्रपद्ये बलरामसूरिम् ।। 2।।

संसार ताप से आर्त्त तृषातुर अपने पदाश्रितों के प्रति जो कृपा की वर्षा करके उनके ताप को शान्त कर देने में जो निपुण हैं मैं उसी देव श्री बलराम सूरि की शरण ग्रहण करता हूँ।।2।।

निशान्त यामे प्रतिवुध्य नित्यम्,
श्रीकान्त संक्रान्त गुणानुवादम् ।
गाम्भीर्यपूर्णैर्मधुरैर्वचोभिः,
कुर्वन्तमार्यं शरणं प्रपद्ये ।। 3।।

रात्रि के शेष में निद्रा त्याग करके गम्भीर मधुर वचन से जो नित्य श्रीपति नारायण का गुणानुकीर्त्तन करते रहते मैं उसी श्री बलराम आचार्य की शरण ग्रहण करता हूँ ।। 3।।

कृत्वाच शौचं वहिरेत्य वाह्यम,
प्रत्यूषसि स्नान विधिं समाप्य ।
ध्यायन्त मीशं हृदयाव्ज मध्ये,
प्रभुं श्रयेऽहं बलराम सूरिम् ।। 4।।

रजनी प्रभात होने पर शौचादि एवं स्नान समाप्त करके जो हृदय कमल के मध्य में श्रीनाथ का ध्यान करते हुए निमग्न रहते मैं उस प्रभू श्री बलराम सूरिका आश्रय लेता हूँ ।।4।।

साष्टाङ्ग पातं प्रणिपत्य देवम्,
प्रदक्षिणी कृत्य च सप्त वारान् ।
रामायणं वाचयतः सुकण्ठम्,
भजेपदाब्जे मम देशिकस्य ।। 5 ।।

पश्चात् निज इष्ट देव को साष्टाङ्ग प्रणाम करने के अनन्तर सात बार प्रदक्षिणा करके अपने आसन पर आकर जो बैठकर रामायण पाठ और व्याख्या करते अपने उस आचार्यवर्य के चरण कमल की मैं भजना करता हूँ ।। 5।।

ततश्च भृत्यान् प्रणत्ति प्रसक्तान्
रहस्य जालं प्रतिबोधयन्तम् ।
दिव्येन भावेन च दीप्तमानम्
सूरिं महान्तं हृदि भावयामि ।। 6 ।।

तदन्तर प्रत्येक भक्तों के निकट जो रहस्य विषयक ज्ञान को अनावृत कर देते उस दिव्य भाव दीप्त महान सूरि की मैं हृदय में भावना करता हूँ ।। 6।।

आराधनान्ते पुरुषोत्तस्य
कृत्वा फलाहार मतीवहृद्यम् ।
सुशोभमाने शयने शयानम्
भक्त्यानतोऽस्मीह मदार्यमीशम् ।। 7।।

पुरुषोत्तम श्री विजयराघव जी की आराधना समाप्त होने पर जो सुरस फलाहार करके शयन करते अपने उस गुरुवर नियन्ता को मैं प्रणाम करता हूँ ।। 7 ।।

विश्रम्य किञ्चित् सुसुखं प्रसन्नम्,
कृत्वा पराह्णे पुनरेव शौचम् ।
स्नानेन पूतं धृतदिव्य भावम्,
वन्दे च भक्त्या बलराममार्यम् ।। 8।।

प्रसन्न भाव से सुख पूर्वक थोड़ा विश्राम करके अपराह्ण में पुनः शौच एवं स्नान करके दिव्य भाव धारण करते, उस श्री बलरामाचार्य के चरणों में मैं पूर्ण भक्ति के सहित प्रणत होता हूँ ।। 8।।

कथा सुधां पातुमुपागतानाम,
जाताग्रहाणां समितौ समेत्य ।
प्रवाचयन्तं सुकथां मनोज्ञाम्,
स्मरामिचार्यं शुककल्पमीशम् ।। 9।।

अपराह्ण में जिसकी भागवती कथा सुनने के लिए समस्त साधु सन्त आग्रह के सहित समागत होते और जिसका यह मनोज्ञ प्रवचन सुनकर वे परितृप्त हो जाते । उस शुकदेव के समान प्रभु गुरुवर को मैं स्मरण करता हूँ ।। 9।।

कथावसनि सुगभीर मर्थम,
श्रोतृ – प्रवीण – प्रणयोपनीतम् ।
व्याख्यान सौकर्य गुणेन सम्यग्,
आह्लादयन्तं मुनिमानतोऽस्मि ।। 10।।

कथा के अन्त में प्रवीण श्रोताओं के गम्भीर प्रश्नों का यथोचित्त सरल भाव से जो अच्छी तरह व्याख्या करके उन लोगों का आनन्द वर्द्धन करते उस मुनि श्री बलराम के चरण में मैं प्रणत होता हूँ ।। 10।।

तदस्तु सन्ध्यासमये प्रवृते,
एकान्त संस्थान यतात्मचित्तम ।
ध्यायन्तमाद्यं पुरुषं स्वचित्ते,
आचार्यवर्यं हृदि भावयामि ।। 11।।

तदनन्तर सन्ध्याकाल आने पर जो एकान्त चित्त से आदि पुरुष के ध्यान में निमग्न रहते उस आचार्यवर्य की मैं हृदय में भावना करता हूँ ।।11।।

अथारतेवद्यि विमिश्रशब्दम्,
सुकुण्ठ गीतं मधुरं स्तवञ्च ।
श्रृण्वन्तमत्यादर पूर्वकं में,
भजेऽहमार्यं बलराम सूरिम् ।। 12।।

उसके बाद सन्ध्या – आरति के वाद्य और सुकण्ठ गीत मधुर स्तव को जो अति आदर के साथ सुनते उस श्री बलराम सूरि गुरुवर की मैं भजना करता हूँ।।12।।

ततस्तु साष्टाङ्गनतात्म भृत्यान्,
सोल्लासमभ्यर्थन– पूर्वकञ्च ।
रतिं सुदिव्यामनु भावयन्तम्,
आचार्यवर्यं हृदि भावयामि ।।13।।

आरति और स्तोत्र पाठ के अनन्तर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणामरत जो शिष्य वर्ग है ऐसे अपने शिष्यों की रति, मति को उपदेश के द्वारा नित्य आनन्द के सहित जो भगवद् विषय में अनुभावित करतेउस आचार्यवर्य की मैं हृदय में अनुभव करता हूँ।।13।।

तथैव कृत्येष्वधिकार भाजा,
सुशील भृत्येन च मन्त्रयन्तम् ।
विधेय कैङ्कर्य विधिं दिशन्तम्,
वन्देच सूरिं सुनयप्रवीणम् ।। 14।।

फिर इस प्रकार से मन्दिरस्थ विभिन्न सेवा के अधिकारी सुशील उनकी उनकी सेवा के विषय में जो नित्य उपदेश देते रहते हैं उस सुनीतिज्ञ प्रवीण सूरिकी मैं वन्दना करता हूँ।।14।।

कृत्वाशनं किञ्चिदुदार वृत्तेः,
गुरोः शयानस्य सुतल्प मध्ये ।
भृत्येन संवाहित देहकस्य,
पादारविन्दौलसतां सदा मे।। 15।।

वाद कुछ दुग्ध पान करके अपनी शय्या पर शयनकारी एवं भृत्यों के द्वारा सेव्यमान प्रभु का चरण युगल सर्वदा हमारे आनन्द को वर्द्धन करे।।15।।

यत्यग्रणीनाञ्च पराङ्कुशानाम्,
सूक्तीः स्मरन्तं भवदुःखहन्त्रीः ।
सुषुप्ति भावेऽपिच वोधयुक्तम्,
स्मराभि नित्यं वलराम मार्य्यम् ।। 16।।

शयन समय में ज्ञानियों में अग्रणी आड्वार पराङ्कुश (शठकोप) की भवदुःख को विनाश करने वाली दिव्य सूक्तियों के स्मरण सुषुप्ति काल में भी वोधयुक्त श्री वलराम सूरिको मैं नित्य स्मरण करता हूँ।।16।।

श्रीकान्त भक्ति प्रवणात्मवृत्ते,
अदीनधीर्लोक गुरोः प्रवन्धान्।
प्रशंसयन्तं शतधा मुखेन,
मुनिं मनो मे मनतां सदैव।।17।।

जो श्रीकान्त में अतिशय भक्तिमान आत्मस्वरूपज्ञ ज्ञानाधिक, लोकाचारी के दिव्य प्रबन्धों को शत मुख होकर प्रशंसा करते, उस मुनि श्री श्री बलराम का विषय हमारा मन सदा ही मनन करे।।1,

श्री यामुनार्यस्य मुनेः प्रबन्धम्,
सुदिव्य भावं निज भृत्य वर्गान्।

प्रागेव यत्नेन च शिक्षयन्तम्,
गुरुं प्रपद्ये रतिभाव हन्तम् ।।18।।

अपने भृत्यों को जो यामुनाचार्य मुनिके दिव्य प्रबन्ध आलवन्दार स्तोत्रादि और उसका दिव्यभाव यत्न के सहित शिक्षा देते, उस रतिवर्द्धन गुरुदेव का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।।18।।

यतीन्द्र पादाब्ज मधुव्रतानाम्,
यतीन्द्र–सूक्तीर्जपताञ्च नित्यम्।
यतीन्द्र भावाकुल विग्रहाणाम्,
यतीन्द्र – कल्पार्यवरैः स्मरामि।।19।।

जो यतीन्द्र श्रीरामानुज स्वामी के चरण कमल के भ्रमररूपी, जो यतीन्द्र की दिव्य सूक्ति नित्य जप करते रहते, उस यतीन्द्र तुल्य आचार्यवर का मैं स्मरण करता हूँ ।।19।।

श्री वैष्णवानां करुणार्णवानाम्,
निवृत्त देहात्म विवोधनानाम्।
सदैव सम्वर्द्धन तत्परं मे,
आचार्यवर्यं हृदि पूजयामि ।।20।।

करुणाा सागर देहात्म बुद्धि रहित ज्ञानवृद्ध श्री वैष्णवों की सम्वर्द्धना में जो सर्वदा तत्पर रहते, उन गुरुवर की मैं हृदय में पूजा करता हूँ।।20।।

वैकुण्ठ यात्रा समयं समागतम्,
विज्ञाय सम्यग् भृशमार्त्ततां गतः।
कृत्वा व्यवस्थां परमात्म कर्मणि,
कृतैहिको मे गुरुरस्तु मानसे।।21।।

जो पूर्व से ही अपने वैकुण्ठ यात्रा कासमय सम्यग् जानकर अत्यन्त आर्त्तप्रयन्न का भाव प्राप्त हो गये थे, एवं जो परमात्मा श्री विजयराघव जी के समस्त व्यवस्था कर देकर ऐहिक समस्त कृत कृत्य हो गये थे, वह गुरुदेव हमारे मानस पट पर विराज करें।।21।।

मासात्परं मे भविता प्रयाणम्,
वैकुण्ठ धाम्नीत्य सकृद्वदन्तम्।
समिङ्गिते नैव च भृत्य मुख्यान्,
सर्वज्ञमेवं गुरुमानतोऽस्मि ।। 22।।

एक मास के बाद ही मैं श्री वैकुण्ठ धाम गमन करूँगा यह बात जो मुख्य मुख्य सेवकों को संकेत से बहुत दफे वोले थे। सर्वज्ञ उस गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।।22।।

'अहो वकीयं स्तनकाल कूटम्',
'ननु प्रपन्न, सकृदेव नाथ' ।
इत्याद्य पद्यान् कथयन्तमुच्चैः,
भृशार्त्त मार्यं हृदये नमामि ।। 23।।

प्रयाणकाल में जो श्रीमद्भागवत का 'अहोवकीयंस्तनकाल कूटम', आलवन्दास्तोत्र का 'ननु प्रपन्नः सकृद्देवनाथ' आदि स्तोत्रों को उच्चैःस्वर में आर्त्त भाव से स्तव किये थे, उस गुरुवर को मैं आन्तरिक भाव से प्रणाम करता हूँ।।23।।

अकिञ्चनान्नो निजभृत्य जातान्,
आशीर्मय श्री कवचेन वद्धा ।
घोरारिषडवर्ग जयायनित्यम्,
गत्युन्मुखं नित्यपदे नतोऽस्मि ।। 24।।

जो अकिञ्चन एवं अनन्य अपने दासा का अङ्ग अपने आशीर्मय कवच के द्वारा बन्धन करके घोर षड्रिपुओं को जीतते हुए नित्यपद को जाने में प्रवृत है, गत्युन्मुख उस गुरुवर को मैं नमस्कार करता हूँ।। 24।।

सर्वात्मना श्री जियाद्य राघवे,
भावं द्धानं परमेष्ट वस्तुनि ।
सुखेन विसृज्य शारीरकं गुरुम्,
यान्तं हि बैकुण्ठ पदे भजे सदा ।। 25।।

परम अमीष्ट वस्तु श्री विजयराघव के चरण में सर्वात्म भाव से परम जो अपने को समर्पण कर दिये थे, जो इस शरीर को परित्याग करके विष्णु पद में गमन किये हैं उनका श्री चरण मैं सर्वदा भजन करता हूँ।।25।।

स्तोत्रन्त्विदं श्री वलराम वैभवम्,
कृतंतुतद्दास पराङ्कुशेन वै ।
यो वा पठेदेक मना समाद्रात्,
लभेत भक्तिं स परेश पादयोः ।। 26।।

उनके शिष्य पराङ्कुश द्वारा रचित 'श्री वलराम वैभव' नामक यह स्तोत्र जो आदर के सहित एकाग्र मन से पाठ करेंगे, वे परमेश्वर के चरण कमल में भक्ति लाभ करेंगे।।26।।

श्री स्वामी जी महराज की अलौकिक आदर्श दिनचर्य्या विभिन्न विवरण के सहित संक्षेप में वर्णित हुई। इस दिनर्य्या की तुलना मिलना इस समय मुश्किल है। चतुर्दश खृष्टाब्द में अविर्भूति महान् श्री वैष्णवाचार्य श्री वरवर मुनि श्री रामानुज स्वामी के द्वितीय अवतार कहकर परिगणित हैं, इस वरवर मुनि की अद्वितीय दिनचर्या जो उनके प्रिय शिष्य श्री देवराज मुनि के द्वारा विरचित हुई थी व मुद्रित हुई है। उत्तर एवं दक्षिण भारत के श्री वैष्णव समाज में सर्वत्र ही आदर्श रूप में परिगणित और परिपठित है। यह दिव्य दिनचर्य्या दो भाग में विभक्त है – (1) पूर्व दिनचर्या, (2) उत्तर दिनचर्य्या। पाठकों के ज्ञान और अनुधावन के लिए अर्थ के सहित संस्कृत दिनचर्य्या उद्धृत की जा रही है।

"श्री देवराज मुनि स्वामी की दिनचर्चा (देवराजकृत)"

'पूर्वदिनचर्य्या'

परेद्युः पश्चिमे यामे, यमिन्या समुपस्थिते ।
प्रबुद्धय शरणं गत्वा, परां गुरुपरम्पराम् ॥ 1 ॥
ध्यात्वा रहस्य त्रितयं, तत्त्व याथात्म्यदर्शनम् ।
परव्यूहादिकान् पत्युः प्रकारान् प्रणिधाय च ॥ 2 ॥
ततः प्रत्यूषसि स्नात्वा, कृत्वा पौर्वाह्णिकी क्रियाः ।
यतीन्द्र चरण द्वन्द्व, प्रवणेनैव चेतसा ॥ 3 ॥
अथ रङ्गनिधिं सम्यगभिगम्य निजं प्रभुम् ।
श्रीनिधानं शनैस्तस्य, शोधयित्वा पदद्वयम् ॥ 4॥
ततस्तत्सन्निधिस्तम्भ–मूल भूतल भूषणम् ।
प्राङ्मुखं सुखमासीनं प्रसाद मधुर स्मितम् ॥ 5॥
साक्षात्फलैक लक्ष्यत्व् प्रतिपत्ति पवित्रितम् ।
मन्त्र रत्नं प्रयच्छन्तं वन्देवरवरं मुनिम् ॥ 6॥
ततः सार्द्धं विनिर्गत्य, भृत्यैर्नित्यान पायिभिः ।
श्रीरङ्ग मङ्गलं द्रष्टुं, पुरुषं भुजगेशयम् ॥ 7 ॥
महति श्रीमति द्वारे, गोपुरं चतुराननम् ।
प्रणिपत्य शनैरन्तः प्रविशान्तं भजामितम् ॥ 8 ॥
देवी गोदा यतिपति शठद्वेषिणौ रङ्गश्रृङ्गम्
सेनानाथो विहगवृषभः श्रीनिधिः सिन्धुकन्या ।
भूमी नीला गुरुजनवृतः पूरुषश्चेत्मीषां,
अग्रेनित्यं वरवरमुने रङ्घ्रियुगलं प्रपद्ये ॥ 9 ॥
मङ्गलाशासनं कृत्वा तत्र तत्र यथोचित्तम ।
धाम्नस्तस्माद्विनिष्क्रम्य, प्रविश्य स्वं निकेतनम् ॥ 10॥
अथ श्री शैलनाथार्यन्नाम्नि श्रीमति मण्डपे ।
तदेङ्घ्रि पद्मजद्वन्द्वच्छाया मध्यनिर्वासिनम् ॥ 11॥
तत्त्वं दिव्यप्रबन्धनां, सारं संसारवैरिणाम् ।
सरसं सरहस्यानां व्याचक्षाणं नमामित्तम ॥ 12॥
ततः स्वचरणाम्भोज स्पर्श सम्पन्न सौरभैः ।
पावनैरर्थिनस्तीर्थैः भावयन्तं नमामितम् ॥ 13॥
अराध्य श्री निधिं पश्चात् अनुभागं विधाय च ।
प्रसाद पात्रं मां कृत्वा पश्यन्तम् भावयामितम ॥ 14॥
ततश्चेतः समाधाय पुरुषे पुष्करेक्षणे ।
उत्तंसित करद्वन्द्वमुपविष्टमुपह्वये ॥ 15॥



श्रीमद् उपेन्द्र मोहन जी

अव्जासनस्थमवदात सुजात मूर्त्तिम्,
आमीलिताक्षमनुसंहित मन्त्र रत्नम् ।
आनम्र मौलिभिरुपासितमन्तरङ्गैः,
नित्यं मुनिंवरवरं निभृतो भजामि ॥ 16॥
ततः शुभाश्रये तस्मिन्, निमग्नं निभृतं मनः।
यतीन्द्र प्रवणं कर्त्तुं, यत मानं नमामितम् ॥ 17॥
॥ इति पूर्व दिनचर्य्या॥

॥ उत्तर दिनचर्या॥

अथगोष्ठीं गरिष्ठानामधिष्ठाय सुमेधसाम् ।
वाक्यालङ्कृति वाक्यानि व्याख्याकारं नमाभितम् ॥ 1॥
सायनतनं ततः कृत्वा, सम्यगाराधनं हरेः।
स्वैरालापैः शुभैः श्रोतृन्, नन्दयन्तं नमामितम्॥ 2॥
ततः कनकपर्यङ्के तरुण द्युमणि द्युतौ ।
विशाल विमलश्लक्ष्ण तुङ्ग तूलासनोज्ज्वले ॥ 3॥
समग्र सौरभोद्गारः निरन्तर दिगन्तरे।
सोपाधाने सुखासीनं वरासने नमामितम्॥4॥
अपगतमदमानैरन्तिमोपायनिष्ठैः,
अधिगत परमार्थैरर्थ कामानपेक्षैः ।
निखिलजन सुहृद्भिर्निर्जित क्रोधलोभैः,
वरवर मुनिभृत्यैरस्तु मे नित्य योगः ॥ 5॥
इतिस्तुति निवन्धेन, सूचित स्वमनीषितान् ।
भृत्यान् प्रेमार्द्रया दृष्टया, सिञ्चन्तं चिन्तयामितम् ॥ 6॥
अथ भृत्याननुज्ञाप्य, कृत्वाचेतः शुभाश्रये ।
शयनीयं परिष्कृत्य, शयानं संस्मराभितम् ॥ 7॥

॥ वरवर मुनि की पूर्व दिनर्य्या ॥

अर्थ :– जो रात्रि के शेष में निद्रा से जागृत होकर प्रथम श्रेष्ठ ध्येय वस्तु अपनी गुरु परम्परा के शरणागत होकर आदि से अन्त तक प्रत्येक आचार्यो की गुण राशि स्मरण करते हुए स्तुति पूर्वक उन लोगों को प्रणाम करते, उसके बाद चित अचित् एवं ईश्वर इस तत्वत्रय के यथार्थ स्वरुप का दर्पण रुप मन्त्रत्रय अनुसन्धान करने के बाद अपने इष्टदेव नारायण के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चावतार इस पञ्च अवस्था के ध्यान में निरत रहते, प्रातःकाल होकर स्नान के अन्त में प्रातः कृत्य समाप्ति पूर्वक अत्यन्त प्रवण चित होकर यतीन्द्र श्री रामानुज के चरण युगल में अभिनिविष्ट हुए रहते, तद् अपने मठ में स्थित अर्चाविग्रह निज प्रभु श्री निधान रङ्गनिधि के सन्निधि में जाकर उनके चरण युगल की पूजा करके तत्रस्थ स्तम्भ के मूल

देश में पूर्व मुख होकर मन्दस्मित प्रसन्न वदन से सुख पूर्वक बैठे हुए इष्टफल के विषय में पवित्र बुद्धि जनक मन्त्रार्थ की व्याख्या और कालक्षेप करते रहते उस मन्त्रप्रद आचार्य 'वरवर मुनि' की मैं वन्दना करता हूँ ।।1–6।।

मन्त्र रहस्य कालक्षेप के बाद जो नित्य अनुचर शिष्यों के सहित परमपुरुष मङ्गलमय श्रीरङ्गनाथ के दर्शन के लिए अपने मठ से बाहर होकर श्रीरङ्ग मन्दिर में आगमन करते, पहले उस महा मन्दिर के बाहर आँगन में स्थित 'चतुर्मुख' नामक गोपुर के शोभनीय महाद्वार पर उपस्थित होकर उस स्थल पर प्रणाम करके धीरे-धीरे भीतर प्रवेश करते, हमारे गुरुवर उस वरवर मुनि का मैं भजना करता हूँ ।। इस महा मन्दिर के भीतर प्रवेश करते हुए बाहर की परिक्रमा में पहले आड्वार श्री गोदम्बा जी और श्रीरामानुज स्वामी जी के अर्चाविग्रह का दर्शन एवं साष्टाङ्ग प्रणाम करते तदनन्तर भीतर की परिक्रमा में श्रीरंग विमान (श्रीरंगनाथ गर्भ मन्दिर का शिखर अर्चा विग्रह विश्वक्सेन स्वामी एवं गरुण जी का दर्शन प्रणाम एवं प्रदक्षिणा करने के पश्चात् श्रीरङ्गनाथ भगवान (अर्चाविग्रह) के गर्भ मन्दिर में सिन्धु कन्या श्री लक्ष्मी जी भूमि देवी नीला देवी एवं ब्रह्मादि गुरुजन परिवृत श्रीरङ्गनाथ भगवान के समीप में आकर दर्शन और प्रदक्षिणा करते उस वरवर मुनि के चरण युगल की मैं शरण लेता हूँ।। दर्शन करने के पश्चात् तीर्थ ग्रहण (चरणामृत पान) एवं मङ्गला शासन (श्रीरङ्गनाथ की मङ्गल प्रार्थना) के बाद श्री मन्दिर की प्रदक्षिणा करते हुए श्रीरङ्गधाम से बाहर निकल कर अपने मठ में प्रवेश करते, तदनन्तर (उनके गुरुदेव के नाम से अभिहित) श्री शैलनाथ नामक मण्डप में उनके चरण कमल युगल की छाया में अवस्थान करके अपने आश्रितों को आड्वारों के द्वारा रचित संसार विमोचनकारी विभिन्न दिव्य – प्रबन्धगत सारवस्तुओं के समस्त रहस्यों को उद्घाटन करके सरल भाव में जो व्याख्या करते व्याख्या कर्त्ताउस वरवर मुनि को मैं प्रणाम करता हूँ।।

इसके बाद जो प्रार्थीगण शिष्यों को अपने चरणकमल के स्पर्श से सुरभित पावन तीर्थ (चरणोदक) देकर धन्य कर देते, ऐसे दयाशील वरवर मुनि की मैं भजन करता हूँ। इस कालक्षेप के बाद जो मठस्थ श्री विग्रह श्री निधि भगवान की आराधना एवं अनुयागादि (पूजा के अन्त में होम) सम्पन्न कर के कृतकृत्य हो जाते, एवं प्रसन्न वदन से हमारे ऊपर दृष्टि निक्षेप करके हमें अनुगृहीत करते, उनकी भावना में जिससे मैं सदा निमग्न रहूँ।। तदनन्तर जो कमलनयन परम पुरुष में अपना चित्त समाहित करके ऊपर हाथ जोड़े हुए एकान्त में बैठे रहते, अनन्तर जो सौम्य मूर्त्ति कमलासन से बैठे हुए आँख मूँद कर मन्त्र रत्न का अनुसन्धान करते रहते, जो नत शिर अन्तरङ्ग अपने अनुचरों द्वारा सदा उपासित होते रहते, उस वरवर मुनि की मैं नित्य एकान्त में भजन करता हूँ।।

तदनन्तर जो शोभाश्रय भगवान में एकान्त भाव से मन को निमग्न रखकर श्री रामानुज स्वामी के चरण में प्रवण चित्त होने के लिए यतनशील हुए रहते उस वरवर मुनि को मैं प्रणाम करता हूँ।।

''सायाह्न में उत्तर दिनचर्य्या''

तदनन्तर तीसरे प्रहर में श्रेष्ठ बुद्धिमानों की गोष्ठी में (विशिष्ट साधु मण्डली में) विराज करते हुए जो सरस एवं मधुर वाक्य से शास्त्र व्याख्या करते व्याख्याकार उस वरवर मुनि को मैं प्रणाम करता हूँ।।

सन्ध्या के समय जो श्री हरि की सान्ध्य–आराधना सम्यक् सम्पन्न करते, तत्पश्चात् शुभ शास्त्रालाप के द्वारा समस्त श्रोताओं का आनन्दवर्द्धन करते, रात्रि होने पर उज्ज्वल विमल सुरभित गद्दी पर उपाधान (तकिया) आलम्बन करके बैठे रहते एवं उस समय अनुचर शिष्यवर्ग जिसे परिवेष्टन करके आचार्य सङ्ग सुख

अनुभव करते, उनके चरण युगल की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।। वे समस्त शिष्य वर्ग गुण – मण्डित, मद और मान शून्य, आचार्याभिमान रूप पञ्चमोपाय निष्ठ थे, निखिलजनों के प्रकृत सुहृद् एवं क्रोध–लोभादि विवर्जित ऐसे आदर्श साधु शिष्य वर्गों के सहित हमारा नित्य योग स्थापित हो। इस भाव से अवस्थान के समय जो अपने मनीषी शिष्यों के प्रति प्रेमार्द्रदृष्टि द्वारा कृपावारि वर्षण करके उन्हें सिञ्चित करते रहते, उस वरवर मुनि स्वामी का मैं नित्य ध्यान करता हूँ।।

इस भाव से कालक्षेप के पश्चात् जो अपने भृत्यों को विदा लेने की अनुमति देकर शुभाश्रय भगवान में चित्त समाहित रखकर परिष्कृत शय्या पर शयन करते, उस अपरूप आदर्श दिनचर्य्यारत अपने स्वामी श्री वरवर मुनि को मैं पुनः पुनः स्मरण करता हूँ ध्यान करता हूँ।।

तृतीय प्रवाह
अष्टम अध्याय
।। श्री स्वामी जी की शिक्षादान की धारा।।

श्री स्वामी जी महाराज अपने दृष्टिहीन असहाय अवस्था में अपने सर्व स्वधन श्री विजयराघव जी महाराज की पूजा अर्चना का भार एवं आश्रम के कैङ्कर्य का भार सम्पूर्ण भाव से अपने परम प्रिय दो शिष्य शास्त्री जी श्री भागवताचारी स्वामी एवं अधिकारी जी श्री गरुड़ध्वज सवामी के ऊपर समर्पण किय। इसी उद्देश्य से आइन (कानून) गत दृढ़ता के लिए खृः 1915 साल में रजिस्ट्रीकृत उनके दलील के अनुगत और एक दलील खृः 1927 साल में रजिस्ट्री कर दिये। उसमें श्री भागवताचारी स्वामी को भावी महान्त पद पर एवं श्री गरुड़ध्वज स्वामी को आम मोक्तार पद पर दृढ़ भाव से वहाल कर दिये। इस दलील की नकल नीचे दी जा रही है :–

'मैं श्री बलराम स्वामी श्री कनक मण्डप उत्तर द्वार के मन्दिर का आम मोक्तार श्रीगरुड़ध्वज रामानुज दास मेरे वर्तमान काल में मन्दिर कनक मण्डप उत्तर द्वार का श्री ठाकुर जी का सर्व कार्य करते हैं, और आगे करेंगे। हमारे शिष्य विरक्त श्री भागवताचार्य को अपने पीछे के लिए सर्वराहकारी लिखा, ये हमारे आगे मन्दिर का कुछ कार्य भी करते रहे, उनके नाम से हम एक 'वसीयत नामा'' तारीख 17 दिसम्बर सन् 1927 साल में लिखा, जिसमें हम उनको अनेक अधिकार लिखा उस प्रसङ्ग में हम एक प्रस्ताव लिखे कि हमारा शिष्य आम मोक्तार श्री गरुड़ध्वज रामानुज दास पण्डित श्री भागवताचार्य के आगे मन्दिर का सर्वकाम करेंगे, तथा उनके पीछे पण्डित श्री रामप्रपन्नाचार्य महान्त होंगे, उनके आगे भी श्री गरुड़ध्वज रामानुज दास जी मन्दिर का कार्य करेंगे।'

इस रजिस्ट्री दलील का एक नकल करके हम लोगों की अवगति के लिए शीघ्र ही रजिस्ट्री पत्र के द्वारा हम लोगों के निकट भेज दिये।

।। श्री भागवताचार्य स्वामी।।

1927 खृष्टाब्द में श्री स्वामी जी महाराज की नेत्र पीड़ा एवं तज्जन्य वहिर्दृष्टि विलुप्त हो जाने के पश्चात् उनकी शान्त एवं दिव्य भावापन्न अवस्था का एक संक्षिप्त वृत्तान्त वर्णित हुआ। इस दुर्विसह नेत्र पीड़ा का सम्वाद सुनकर उनके अतिप्रिय परम अनुगत शिष्य श्री भागवताचारी शास्त्री जी श्री अयोध्या आश्रम में लौट आये थे। अपने श्वास, खाँसी व्याधि के लिए वे अधिकांश समय व्याकुल रहते। दो चार स्वास्थ्य कर स्थान में

उनके पक्ष में जल वायु अनुकूल रहता। श्वास का कष्ट भी उपशम रहता। वे अधिकांश समय इन्हीं सब स्थानों में वास करते। अपने गुरुदेव श्री स्वामी जी महाराज की नेत्र पीड़ा के समय से अपनी श्वास व्याधि जनित क्लेश कर अवस्था रहने पर भी अवशिष्ट जीवन आश्रम में ही अतिवाहित किये थे। उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। श्वास कष्ट के कारण वे विशेष चल फिर नहीं सकते थे। प्रायः ही एक स्थान पर बैठकर बिताते। उनकी अवस्था –प्रवीण वयस प्रायः 75 वर्ष। उस समय श्री स्वामी जी महाराज पीड़ा ग्रस्त थे। आश्रम के बहुमुखी कैङ्कर्य के व्यापार में उनके प्रतिनिधि रूप से श्री भागवताचारी शास्त्री जी को ही निर्देश देना पड़ता। शारीरिक अपटुता होने पर भी एक स्थान पर बैठकर ही वे विशेष प्रयोजनीय स्थल पर विलक्षण परामर्श देकर आश्रम के सेवकों को परिचालित करते। अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी प्रायः ही आश्रम की विविध समस्या में उनके संग परामर्श करते, उनका निर्देश ग्रहण करते। सारे भारत के वैष्णव समाज के निकट श्री स्वामी जी महाराज परिचित थे। सभी उनकी विशेष श्रद्धा भक्ति करते। उनके कठिन योग का संम्बाद पाकर अथवा दीर्घ पर्यटन काल में जब विशिष्ट साधु महात्मागण आश्रम में आ जाते, तो उस समय श्री भागवताचारी स्वामी श्री स्वामी जी महाराज के प्रतिनिधि रूप में उन लोगों के साथ विविध धर्मालाप से मधुर शिष्टाचार से उन लोगों को परितुष्ट कर देते। वे ज्ञानी गुणी मधुरालापी शिष्टाचारी सत्पुरुष थे। वे आचार्य–निष्ठ आचार्य सेवा परायण एवं आचार्य के विशेष प्रसन्नता के पात्र थे। जो वे यथोचित आचार्य परतन्त्र थे हम लोग उसका बहुत परिचय पाये हैं। उसके निदर्शन स्वरूप एक घटना का उल्लेख इस स्थल पर किया जा रहा है।

''श्री भागवताचारी के आचार्य पारतन्त्र्य का निदर्शन''

एक समय एक साधु एक कठिन श्लोक के अर्थ को स्वतः उपलब्धि करने में असमर्थ होकर श्री भागवताचारी जी से अर्थ को समझा देने के लिए प्रार्थना किये। उस समय यत्न के सहित उन्हें अच्छी तरह उस श्लोक का अर्थ विश्लेषण करके समझा दिये । तब वे साधु प्रसन्नता पूर्वक बिदा लेकर श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ उनके पास गये । साधु जी वार्तालाप करते करते श्री भागवताचारी से विश्लेषण किये हुए उक्त कठिन श्लोक का अर्थ विश्लेषण करने की बात श्री स्वामी जी महाराज से कहे। श्री स्वामी जी महाराज उस श्लोका का अर्थ साधु से पूछे । वे यर्थाथ उत्तर नहीं दे सके । तब श्री स्वामी जी श्री भागवताचारी जी को बुलाने के लिए उन्हें निर्देश दिये । वे सशङ्कचित्त से आकर उपस्थित हुए । तब श्री स्वामी जी महाराज उनसे जिज्ञासा किये कि 'तुम इस श्लोक का क्या अर्थ किये हो ?' श्री भागवताचारी जी चुप रहे, दो तीन बार प्रश्न करने पर भी वे श्लोक का अर्थ विश्लेषण करके उनके निकट नहीं बोले । वे बोले 'आप इस अर्थ को विश्लेषण करके हम लोगों को शिक्षा देने की कृपा कीजिये ।'

श्री स्वामी जी महाराज उस समय मृदुहास्य करके समवेत साधु भक्तों से कहने लगे ''भागवताचारी इस श्लोक का अर्थ अच्छी तरह से जानते हैं, परन्तु मेरें सामने बताते नहीं । सत् शिष्य को ऐसा ही करना चाहिये । अपने आचार्य की सन्निधि में अज्ञ के सदृश रहना चाहिये – ' आचार्य सन्निधौ स्वस्य अज्ञानं अनु सन्दधीत' सद्गुरु श्री स्वामी जी महाराज रहस्य ज्ञान के सागर स्वरूप थे एवं उनके सत् शिष्य श्री भागवताचारी स्वामी इस ज्ञान के यथोचित अनुष्ठाता पुरुष थे। इसी हेतु से वे अपने आचार्य के अतिप्रिय पात्र थे। उनकी दुर्लभ गुणराशि ज्ञान राशि को अनुभव करके ही गुण मुग्ध साधुगण उनके गुणपना का कीर्तन गाये हैं –

श्रीमत्काश्यपवंशपद्मविपिने विद्योतनं भास्करम्,
वेदान्तद्वयतर्कशास्त्रविशदीकारैकवाणीपतिम् ।
स्वामी श्री बलरामदेशिकपद प्रेमालयं पावनम्,
वन्दे भागवतार्य देशिकवरं विद्यापगा वारिधिम् ।।

समृद्ध कश्यपवंशरूप पद्मवन के मुखोल्लासकारी साक्षात् भास्कर स्वरूप अर्थात् समृद्ध कश्यपवंश के समस्त श्रेष्ठ पुरुषगण जिनकी अत्युज्ज्वल प्रभा से श्री सम्पन्न और प्रफुल्लित हुए हैं, जो संस्कृत और द्राविड़ यह उभय वेदान्त एवं समस्ततर्कशास्त्र विशद भाव से आयत्त और अध्यापना करके विद्वानों में श्रेष्ठ कहकर परिगणित हुए हैं, आचार्य श्री बलराम स्वामी जी का चरण युगल जिनके प्रेम का एकमात्र आवासस्थल, अर्थात् जिनका समग्र प्रेम श्री गुरुदेव के चरण कमल में अर्पित हुआ है, एवं सब नदियाँ जिस तरह समुद्र का आश्रय करती हैं उसी तरह सब विद्याएँ जिनका आश्रय किए थीं, उस विद्या निधि वैष्णव कुल के पावनकारी देशिक श्रेष्ठ भागवताचार्य स्वामी के चरण युगल की सर्वदा वन्दना करता हूँ। श्री गुरुदेव के महासङ्कट काल में स्वास्थ्य की अति प्रतिकूल अवस्था होने पर भी ये सत् शिष्य भागवताचारी स्वामी सद्गुरु श्री स्वामी जी महाराज के चरण तल में पड़े रहे, यथा साध्य आश्रम के कैङ्कर्य की सहायता करते हुए जीवन यापन करने लगे। श्री स्वामी जी महाराज की दृष्टिहीन अवस्था में श्री भागवताचारी अपने लिए जलवायु की प्रतिकूल अवस्था होने पर भी स्व आचार्य को छोड़कर बाहर नहीं जा सके, आश्रम में ही निवास करते रहे। उनका श्वास कष्ट (दमा) बढ़ने लगा, वे नीरवता पूर्वक समस्त कष्ट सहन करते हुए आश्रम के नाना विध कैङ्कर्य में मन्त्रणा दान-रूप सहायता करने लगे। श्री स्वामी जी महाराज भी बीच बीच में कोई न कोई विषय में परामर्श करने के लिए उन्हें बुलवाते। क्रमशः वे चलच्छक्तिरहित हो गये, उनमें रक्तशून्यता कालक्षण दिखाई देने लगा। उनके इस असाध्य समय में श्री कमलनयन जी उनकी यथा साध्य सेवा करने लगे एवं साथ ही साथ श्री स्वामी जी महाराज की भी सेवा करते रहते।

''श्रीभागवताचारी जी का अन्तिमकाल''

श्री स्वामी जी महाराज के सभी शिष्यों के मध्य श्री भाग बताचारी स्वामी जो सब विषय में ही श्रेष्ठ थे इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। गुरु में उनकी असीम भक्ति थी। एवं एकजन धुरन्धर पण्डित थे। उनका विरचित संस्कृत पद्य पाठ करने पर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। उनकी भाषा जिस प्रकार सुष्ठु सुललित थी उसी प्रकार सरल एवं हृदयग्राही थी। तथापि वे अपने को अपने गुरुदेव की तुलना में तुच्छ मानते। कोई किसी विषय में अगर प्रश्न उत्थापन करता तो वे कहते कि ऊपर में श्री स्वामी जी महाराज हैं उनके पास जाओ, तुम्हारे प्रश्न का ठीक ठीक समाधान हो जायेगा। हम तो सियार हैं ऊपर में शेर बैठ हुए हैं। श्री स्वामी जी महाराज उनका अत्यन्त स्नेह करते एवं यथोचित मर्यादा देते। अपने परम पद जाने के बाद वे परम उपयुक्त शिष्य इन्हीं श्री भागवताचारी जी को आश्रम के महन्त पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए एक दलील रजिस्ट्री करके रख दिये थे।

श्री भागवताचारी स्वामी दमा के रोग से जरा ग्रस्त हो पड़े थे। जिस दिन वे यह समझ पाये कि मेरे देहावसान में अब और विलम्ब नहीं है, उसी दिन ही वे दूसरे एकजन की सहायता से अतिकष्ट से श्री स्वामी जी महाराज के समक्ष उपस्थित हुए। श्री स्वामी जी महाराज कातर भाव से बोले– ''तुम काहें अपने से आया, हम

तो तुम्हारे पास जाने के लिए उपाय कर रहे थे।'' अत्यन्त शान्त होकर गद् गद भाषा में श्री भागवताचारी जी बोले, ''मैं आप के शेष दर्शन की आशा से आया हूँ।'' यही कहकर अपने नित्य सेवक कमलनयन रामानुज दास जी को ('वर्तमान मठाध्यक्ष श्री कमलनयन स्वामी) श्री स्वामी जी महाराज के चरण में अर्पण करते हुए बोले– ''महाराज अपनी दी हुई वस्तु आप लौटा लीजिये, यह कायमनो वाक्य से हमारी सेवा किया है, इसके ऊपर आप कृपा करेंगे।''

श्री स्वामी जी महाराज बोले–''उसके वास्ते चिन्ता नहीं करना, उसका समस्त भार हम लेते हैं।'' इसी भाव से श्री भागवताचारी स्वामी का शरीर और ज्यादा दिन नहीं रहा। वे अत्यधिक रक्तहीन हो गये, उनके सर्वाङ्ग में शोथ दिखाई दिया। अवशेष में खृष्टाब्द 1928 साल वे श्री विजयराघव जी महाराज के आश्रम में अपने अभीष्ट सिद्ध गुरुदेव के चरणाश्रय में उनके अशीर्वाद से पवित्र और धन्य होकर शेष निःश्वास त्याग करते हुए परम पद में प्रयाण किये। इस परम प्रिय एवं परम अनुगत गुणी ज्ञानी आचार्य परतन्त्र शिष्य के देहान्त से श्री स्वामी जी महाराज विशेष मनस्ताप पाये। श्री भागवताचारी स्वामी उनके प्रथम 3/4 जन शिष्य के मध्य अन्यतम थे । मेधावी एवं वैराग्यवान देखकर उनको वृन्दावन में सर्व शास्त्र विशारद परम पण्डित सुदर्शनाचारी शास्त्री जी के निकट अध्ययन के लिए समर्पण किये थे। उनकी परिचालना में श्री भागवताचारी स्वामी भी गुरु कृपा से सर्वशास्त्र में पारदर्शी हो गये थे। श्री अम्बा जी, श्री लक्ष्मण जी एवं श्री हनुमान जी के सहित श्री विजयराघव जी महाराज इनके ही माध्यम से श्री श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में दक्षिण भारत से श्री अयोध्या धाम आगमन किये थे। श्री स्वामी जी महाराज अपने अप्रकट काल में अपने अतिप्रिय उपयुक्त शिष्य इन्हीं श्री भागवताचारी को आइन सङ्गत भाव से उत्तराधिकारी महन्त पद पर अभिषिक्त कर रखे थे। इस प्रकार के अतिप्रिय सर्व शास्त्र विशारद ज्ञानी भक्त सुदर्शन सुमधुरभाषी शिष्टाचारी आचार्य– अभिमान धन श्री भागवताचारी के विरोधान से वे अतीव शोकार्त हो गएं वैष्णव समाज भी कातरहो गया। आदर्श धैर्यवान महापुरुष आदर्श आचार्य श्री स्वामी जी धैर्य धारण करके अपने शिष्य श्री भागवताचारी स्वामी की अन्त्येष्टि-क्रिया वैष्णव पद्धति के अनुसार (ब्रह्म मेघ संस्कार) सम्पन्न करा दिये। त्रयोदश दिवस में वैकुण्ठोत्सव करा दिये।

''श्री स्वामी जी महाराज की शिक्षा दान प्रणाली''

उनके उपदेशों को दो भागों में विभक्त किया जाता है। प्रथम – साधारण उपदेश। द्वितीय विशेष विषय में उपदेश। विशेष विषय में उपदेश ही उनका विशेषत्व था। इस विशेष विषय के उपदेश में उनकी प्रणाली अपरूप एवं सुपरिकल्पित थी। वे प्रथम एक विशिष्ट विषय की अवतारणा करते। प्राञ्जल भाषा से हिन्दी में उसे समझा देते। उसके बाद उस विषय का बोधक एक शास्त्रीय श्लोक लिखा देते। उनकी इस अपरूप पद्धति के फल से सुदीर्घ 40 वर्ष के पहले लिखी हुई, डायरी से आज भी उनके उपदेश के प्रतिस्मरण में आज भी अधिकांश ही समर्थ हो रहे हैं। तीक्ष्ण दृष्टिसम्पन्न श्री स्वामी जी महाराज का यह समस्त श्लोक लिखा देने का और एक विशेष उद्देश्य था। अपक्वबुद्धि शिष्यों के मन में जिससे उनके उपदेश के विषय में किसी प्रकार के सन्देह का अवकाश नहीं रहे, इसी अभिप्राय से वे प्रायः प्रत्येक विशेष उपदेश में संश्लिष्ट तत्सम्बन्धीय संश्लिष्ट श्लोकों को साथ ही साथ लिखा देते। जिससे शास्त्र में दृढ़तर विश्वास हो वे इस अभिप्राय से कभी कभी कुछ ऐसे श्लोक लिखा देते कि जिसका अर्थ आपात विरुद्ध रूप से प्रतिभात होता, अथवा जिसके अर्थ में सन्देह का अवकाश रहता, इसके फल से शास्त्र में दृढ़ विश्वास मलीन हो जाने की सम्भावना रहती। ऐसे

श्लोक को लिखाकर विचार और विश्लेषण पूर्वक उसके प्रकृत मर्म प्रकृत रहस्य को उद्घाघन करते हुए अन्यान्य एक ही प्रकार के शास्त्र वाक्यों के साथ समन्वय साधन कर देते, उस रहस्य का अर्थ लिखा देते। वे कहते कि अधिकारी भेद से शास्त्रोपदेश का पार्थक्य रह सकता है, किन्तु एक ही प्रसङ्ग में विभिन्न शास्त्र वाक्यों के अर्थ में विरोध कभी नहीं रह सकता। इस प्रसङ्ग श्रीरामानुज स्वामी का एक अमूल्य वाक्य उद्धृत कर देते– "नाना रूपाणां वाक्यानां अविरोधो मुख्यार्थ अपरित्यागश्च यथा सम्भवति तथा वर्णनीयम्।। अर्थात् जिससे नाना रूप शास्त्र वाक्यों में परस्पर विरोध नहीं रहे, अथच इन समस्त वाक्यों का मुख्य अर्थ भी परित्याग नहीं किया जाये उसी भाव से अर्थ करना चाहिए। शास्त्र वाक्य सभी सत्य हैं। किसी प्रसङ्ग का उपदेश समाप्त होने पर हम लोग जो लिखे रहते उसे वे हम लोगों से पढ़ने के लिए बोलते उसका शुद्ध उच्चारण करना सिखा देते। ह्रस्व और दीर्घ स्वर एवं विभिन्न युक्त अक्षर जिससे शुद्ध रूप से उच्चारित हो वही पहले शिक्षा देते। उनके श्री मुख अनेक बार सुना हूँ कि शब्द का उच्चारण देहस्थानीय है एवं शब्द गत अर्थ प्राण स्थानीय है। जैसे देह और प्राण एकत्र नहीं होने पर मूर्त्ति जीवन्त नहीं हो सकती, उसी तरह शब्द एवं श्लोक के विशुद्ध उच्चारण के सहित विशुद्ध अर्थ के संमिश्रण से ही शास्त्राध्ययन प्राण बन्त हो सकता है। इसी कारण से वे पहले विशुद्ध उच्चारण करना सिखाते। उनके श्री मुख से नि:सृत मुक्तावली के सदृश प्रत्येक शास्त्रागत शब्द का सुस्पष्ट विशुद्ध उच्चारण अधिगत होने पर तब वे श्लोकवद्ध अंशों का अन्वय करके उनका पृथक् पृथक् अर्थ समझा देते एवं लिखा देते। बाद में वाक्यगत अर्थएवं तात्पर्यार्थ भी विश्लेषण करके समझा देते एवं लिखा देते। सबके शेष में क्या लिखा हुआ है उसे एक बार पूर्वापर सुन लेते। उसमें यदि कोई भूल रहती तो उसे संशोधन कर देते। तत्पश्चात् अध्यापना समाप्त करते। जितनी शिक्षा देते उसे अवसर मत उसी दिन पुन: पुन: मनन करने को कहते। दूसरे दिन प्रात:काल प्रथम पूर्व दिन की शिक्षाको संक्षेप में आवृत्ति कर देते, बाद में पुन: नूतन विषय का उपदेश आरम्भ करते। यह उनकी शिक्षा देने की अनुपम प्रणाली थी।

श्री गुरुदेव की कृपा से 35/40 वर्ष पूर्व इस भाव से लिखे हुए अमूल्य उपदेश की कई एक कॉपी हमारे पास सुरक्षित है। इन समस्त लिखे हुए उपदेशों को मध्य मध्य में पाठ करने पर आनन्द सेमन भर जाता है। तत्कालीन शिक्षादान के समय श्री स्वामी जी महाराज की दिव्य मूर्त्ति, दिव्य मृदुहास्य एवं दिव्य मधुर कष्ठ स्वर उज्ज्वल रूप से आज भी मन में प्रतिभाषित हो उठता है। उनके अभिनव शिक्षा प्रणाली की अपर एक धारा विषय इसके बाद उल्लेख किया जा रहा है।

हमारे एकजन गुरुभ्राता श्रीनृसिंहरामानुजदास (श्रीनृपेन्द्र कुमार गुप्त) महाशय के निकट प्राप्त विवरण के अनुसार लिख रहा हूँ। ये एकजन प्रवीण व्यक्ति हैं। वर्तमान वयस कुछ अधिक 80 वर्ष। संस्कृत भाषा एवं शास्त्र में अच्छा अधिकार है। हमारे पास उनके लिखे हुए पत्र से यह तथ्य संग्रहीत हुआ है। वे लिखते हैं एक बार मैं श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में बैठा हुआ था। उसी समय उनके श्री मुख से एक श्लोक सुना –

नान्यं तत: पद्मपलाशलोचनात्,
दु:खच्छिदं ते मृगयामि कञ्चन ।
यो मृग्यते हस्तगृहीत पद्मया,
श्रियेतरैरङ्ग विमृग्य मानया ।। (भा:4/8/23)

अर्थात् ब्रह्मा आदिक देवता जिसकी नित्य महिमा का अन्वेषण करते हैं, लक्ष्मी जी अपने श्रीकर में कमल

लिए हुए निरन्तर जिसका स्वरूप, रूप, गुण, एवं विभूति का अनुसन्धान करती हैं, उस पद्म पलाशलोचन नारायण को छोड़कर दूसरा कोई तुम्हारे दुःख को छेदन करने में समर्थ नहीं है, यह उपदेश माता सुनिति ने प्रत्र ध्रुव को किये हैं।

श्री स्वामी जी महाराज के सुभिष्ट गम्भीर स्वर से स्पष्ट स्पष्ट उच्चारण सुनकर उसी क्षण हमारे मन में हुआ कि, 'आवृत्तिः सर्व शास्त्राणां बोधदापि गरीयसी'। महाराज उच्चारण के ऊपर विशेष जोर देते थे। बाद में जिस समय अतिकठिन 'श्रीलक्ष्मीस्तोत्र' 'पराशर भट्टरकृत (श्री गुण रत्नकोष) हमको अध्ययन कराये, उस समय इस प्रकार से आवृत्ति के ऊपर अत्यन्त गुरुत्व स्थापन करने की वजह हमें संस्कृत उच्चारण करने में अनेक उन्नति प्राप्त हुई थी।

दूसरे एक दिन हम से पूँछे कि बोलो तो इस श्लोक का क्या अर्थ है?

नह्यम्भयानितीर्थानि, न देवाभृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरु कालेन, दर्शनादेव साधवः ।। ।। भाः 10/48/31।।

जैसा अर्थ जानता था मैंने वैसा ही अर्थ किया। मैने कहा ''जलतीर्थ नहीं हो सकता, मृण्मय मूर्ति देवता नहीं हो सकता साधु के दर्शन से ही पवित्र नहीं हो जाया जा सकता।''

महाराज जी कहने लगे– ''यह अर्थ नहीं अनर्थ है। शास्त्रगत ऐसे श्लोक का अर्थ कठिन होता है मीमांसा सूत्र के अनुसार इसका अर्थ करना पड़ेगा। ''नहि निन्दां निन्दितुं प्रवर्त्तते अपितु इतरत स्तोतुम् उदितानुदित होमवत्।'' अर्थात् जिस प्रकार वेद में जहाँ उदित होम (सूर्योदय के बाद अनुष्ठित होम) की कथा है वहाँ पर अनुदित होम (सूर्योदय के पूर्व) अनुदित होम की निन्दा है, एवं जिस जगह अनुदित होम की कथा है उस जगह उदित होम की निन्दा है इसी से समझना पड़ेगा कि निन्दा, ठीक निन्दा के लिए नहीं की हुई है क्योंकि वैसा होने पर परस्पर विरोधी अर्थ होता है, किन्तु एक स्थान पर उदित होम कर महात्म्य प्रकाश करने के लिए उसके प्रशंसा के स्थल पर अनुदित होम की निन्दा की गई है, एवं अन्य स्थल पर अनुदित होम का माहात्म प्रकाश करने का उद्देश्य लेकर ही उदित होम की निन्दा की गई है। उसी प्रकार इस श्लोक में साधु के माहात्म्य प्रकाश का उद्देश्य साधन करने के लिए ही साधु की उच्च प्रशंसा की गई है एवं गङ्गा प्रभृति तीर्थ एवं मृत् शैल इत्यादि के द्वारा गठित विग्रह के पावन कार्य की न्यूनता की कल्पना की गई है। इसी भाव से इस श्लोक का पूर्व अर्थ विश्लेषण करने के बाद श्री स्वामी जी महाराज और एक दूसरा श्लोक उद्धृत करके उसका अर्थ करने के लिए बोले

यस्यात्म बुद्धिः कुणये त्रिधातुके,
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधी ।
यत्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हिचित्,
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ।। भाः 10/84/13।।

मैं जैसा समझा था इस श्लोक का भी वैसा ही अर्थ किया। श्री महाराज बोले, अर्थ नहीं हुआ। बाद में बोले पहले इस श्लोक का ऐसा अन्वय करना होगा। ''यस्य त्रिधातु के कुणये आत्मबुद्धिः कर्हिचित् अभिज्ञेषु न स एव गोखरः, यस्य कलत्रादिषु स्वधीः, (परन्तु) कर्हिचित् अभिज्ञेषु जनेषु न स एव गोखरः, यस्य भौम

इज्यधी: परन्तु अभिज्ञेषु जनेषुन स एव गोखर:। यस्य सलिले तीर्थ बुद्धिः कर्हिचित्त अभिज्ञेषु जनेषु न स एवं गोखर: अर्थात् जिसकी वायुपित्त कक युक्त देह में आत्म बुद्धि है किन्तु अभिज्ञजनों में श्रद्धा, भक्ति नहीं है वह गर्दभ है, मृण्मय मूर्ति में जिसकी पूज्य बुद्धि है किन्तु अभिज्ञजनों में वैसी बुद्धि नहीं है वह गर्दभ है, कलत्रादि को में जिसकी ममत्त्व बुद्धि है किन्तु अभिज्ञजनों में वैसी बुद्धि नहीं है वह गर्दभ है, जल में जिसकी तीर्थ बुद्धि है किन्तु अभिज्ञजनों के प्रति भक्ति नहीं है वही गर्दभ है।''

इस श्लोक में ज्ञानाधिक अनुभव योग्य महाभागवतों के महात्म्य का प्रकाश करना ही उद्देश्य है। एक जन को विशेष भाव से बड़ा करने जाने पर साथ ही साथ दूसरे को छोटा करना पड़ता है। जैसे जब कहा जाता है 'राम के सुबुद्धिमान् लड़का आज तक मैनें नहीं देखा तब राम को छोड़कर अन्य सब लड़कों की निन्दा की हुई हो जाती है। किन्तु वास्तविक रूप में उन लोगों की निन्दा नहीं की गई किन्तु राम का उत्कर्ष ज्ञापन करने के लिए ही ऐसा कहा जाता है।

(श्रीनृसिंह जी का प्रसङ्ग समाप्त हुआ)

प्रत्येक वर्ष एक बार करके श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में उपस्थित होता। कई एक दिन वहाँ पर अवस्थान करता। हमारी स्त्री को जब दीक्षालाभ हो गया तब से वे भी प्राय: अधिकांश समय ही हमारे साथ गमन करतीं। प्रत्येक बार ही साधन, भजन और अनुष्ठान के विषय में ज्ञान गर्भ एवं भक्ति गर्भ उपदेश दान करते। हमारी स्त्री सङ्ग में रहने पर उनके योग्य उन्हें भी उपदेश देते। 1928 एवं 1929 साल में इसी प्रसङ्ग की लिखी हुई एक कॉपी में से एतत्सम्बन्धीय निर्देश और उपदेश के कुछ कुछ अंश का उल्लेख इस स्थल पर किया जाता है।

''लेखक के निकट श्री स्वामी जी का उपदेश''

1928 खृ: अगस्त महीने में स्त्री के सहित उनके चरण सन्निधि में उपस्थित हुआ हूँ। दूसरे दिन अति प्रत्यूष रात्रि तीन बजे वे हम दोनों को बुलवाये। उनकी छोटी कोठरी में हम दोनों उपस्थित हुए। साष्टाङ्गप्रणाम करके उनके सन्मुख कम्वल पर बैठ गये। वे पहले हम लोगों का कुशल समाचार पूँछे। बाद में हमारी स्त्री को पूजा, मन्त्र, मन्त्र का उच्चारण एवं मन्त्रार्थ के विषय में कितना ज्ञान हुआ है उनसे पूँछ कर जान लिए, एवं भूल त्रुटि संशोधन कर दिये। तदनन्तर स्वयं हम लोगों को उपदेश देना आरम्भ किये। इसी तरह प्रत्येक दिन वे हम लोगों को उपदेश देते हुए कृतार्थ करते रहते। इस दफे हम लोग 4/5 दिन उनके चरण सन्निधि में निवास किये थे। इस कई एक दिन की उनकी उपदेशावली उस समय एक डायरी में लिख लिये थे उसमें से नीचे कुछ कुछ उद्धृत कर रहा हूँ।

1 – प्रात: तथा सन्ध्या काल में दो घड़ी के आगे भोजन नहीं करे, निद्रा नहीं जाये। ऐसे 'आहारात् जायते व्याधि:' 'निद्रया हीयते श्रिय:' श्री हानि होती है। उस वक्त भगवद्विषय को छोड़कर दूसरा कोई विषय अध्ययन न करे, उस काल में हरि का स्मरण करना।

2– साधारण शास्त्र कहता है कि अपनी आमदनी को पाँच भागों में खर्च करें 1– धर्म में, 2– यश में 3– अर्थ के लिए, 4– काम के लिए, 5– स्वजन के लिए। धर्म – माने उपयुक्त स्थान काल एवं पात्र में दान। उपयुक्त स्थान माने – तीर्थ स्थान काल माने भगवत्पर्व दिन, पात्र माने अन्न का पात्र जो कोई हो, वस्त्र का पात्र वस्त्र का दु:खी, अर्थ का पात्र दरिद्र और दु:खी को दान:, भागवत् वेशधारी को दान। धर्मार्थ खर्च

करके हमने दिया हमारे यतन से भया, ऐसा मत समझो, ऐसा समझो कि भगवान् कृपा करके करवा लिये। यश के लिए–माने हमारा यश, मान, प्रतिष्ठा हो इस अभिप्राय से दान देना। अर्थ के लिए दान माने- पुनः अर्थागम के लिए दान देना। काम के लिए दान माने अपना भोग चरितार्थ के लिए दान देना। स्वजन के लिए दान माने – स्वजन परिजन को देना।

विशेष शास्त्र कहता है कि – भगवद् और भागवत् के लिए जो व्यय है वह प्रकृष्ट व्यय है। गुरु और देवता दर्शन में जाने के वक्त पत्र फल अथवा जल जो कुछ वने भेट करना। यही है विशेष शास्त्र, साधारण धर्मार्थ खर्च से विशेष धर्मार्थ खर्च श्रेष्ठ है।

3– काम क्रोध लोभ आदि से निवृत्त होना, भगवद्विषय में एकाग्रता होना – इसका उपाय एकमात्र श्री भगवच्चरण में शरणागति, इसे छोड़कर दूसरा उपाय नहीं है।

4– भगवद् भजन में जन्म जन्मान्तर में भी मन नहीं लगेगा। 'मन जब होगा तब भजेंगे' ऐसा विचार करने से कभी भजन नहीं होगा। मन नहीं हो तो भी कोई प्रकार से भगवत्सन्निधि में कायिक साष्टाङ्ग तो करना, और भगवत् चरण में गुरुचरण में प्रार्थना करना कि 'मेरा मन साफ हो जाय'। सदा ज्ञान व कर्म तथा भक्ति प्रार्थना करो। भगवत् कृपा होने से थोड़ा ही समय में उनको प्राप्त हो सकता है। राज परीक्षित को एक सप्ताह में मिला। खट्वाङ्ग राजा को एकमुहर्त्त में मिला।

5– शास्त्राध्ययन से ज्ञान अर्जन होना कठिन है,काहें कि बहुत स्थल में आपात विरोध देख पड़ता है, चित्त विभ्रम हो जाता है। गुरु मुख से उपदेश श्रवण करने से वही ज्ञान सच्चा होता है, वही भजना श्रेष्ठ है।

6– मन्त्र जप करने का वक्त अर्थ सहित मन्त्र उच्चारण उत्तम है। वही वक्त मन्त्रगत देवता का ध्यान और भी उत्तम है। पहले श्री चरण ध्यान, पिछे आपादमस्त श्री विग्रह ध्यान श्रेष्ठ है। चरण कमल के ध्यान में अभ्यास राखना। अपने को भगवच्चरण कमलन का मधुप समझना।

7– अपने सन्तानों को भगवद् अभिमुख करना पिता माता को अवश्य कर्त्तव्य है, नहीं तो पितृत्व व्यर्थ होता है। शास्त्र बोलते हैं – 'पिता न सस्यात्, जननीन सास्यात् न मोचयेद् यः समुपेत मृत्युम्'

8– धर्म और कर्म फल एक ही वान है, केवल यही जीव का साथ जाता है, देह और धन नहीं जाता है।

9– सब ही शास्त्र मन्थन करके दो सारतम अर्थ निकलते हैं जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान। इस बात को पक्का कर लो कि –

(क) जीव परमेश्वर का दास है।

(ख) जीव का उपाय भगवान का दो चरणारविन्द है।

(ग) भगवत् कैङ्कर्य ही जीव का फल है।

(घ) जीव का स्वरूप है कि की वह श्री भगवान् का अनन्य शेष (भोग्य है।)।

(10) मन की शुद्धि के लिए आहार – शुद्धि अत्यावश्यक है। काहें कि – ''आहार – शुद्धौ चित्त–शुद्धि, चित्त शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।'' भगवत् निवेदित अन्न भगवत् प्रसाद है। वह शुद्ध है। भगवत्प्रसाद नहीं मिले तो भोजन तैयार होने से उसमें भगवान् का नाम स्मरण करके तुलसी दल छोड़ना, तथा भोजन स्थल शुद्ध कर लेना, पीछे वही स्थल में भोजन करना। एकान्त में अलग प्रसाद करना निषिद्ध है। हाथ में लेकर कुछ द्रव्य भोजन कर सकता, वह भी पेट भर के न पाना, पत्ताव व थाली धर के न पाना ।

(11) दोष –युक्त भोजन न पाना। तीन प्रकार का दुष्ट अन्न है।

(क) जाति दुष्ट–लाल मूली, अलावू (लौकी) तरोई, लाल साग, सादा बैगन, चिचिन्हा, गोभी, दूकान में बना हुआ भोज्य भोजन, लाल मसूर दाल, इत्यादि जातिदुष्ट है। (अरहर, चना, मूँग और उरद मटर दाल शुद्ध है)।

(ख) निमित्त – दुष्ट, श्राद्धादिका भोजन। (ग) आश्रय दुष्ट–चण्डाल आदि का स्पर्श किया हुआ भोज्य, भगवद् विद्वेषी का अन्न।

लड़का लोगों का आहार शुद्धि नहीं होने से परिणाम वक्त पर खराब होगा। पिता माता को भी दोष पहुँचेगा परमेश्वर की प्रसन्नता नहीं होगी।

(12) अपनी शक्ति के अनुगुण कार्य करना, अधिकन करना। सोलह आना की शक्ति हो तो पन्द्रह आना का काम करना।

(13) जहाँ तक हो सके भगवान् की वस्तु से डरना। भगवान की वस्तु हमारे पास नहीं रहे चाहे हमारी दी हुई हो चाहे दूसरे की दी हुई हो। हमारे पीछे जो भगवद् वस्तु भगवान् में पहुँचेगी उसका क्या भरोसा। नहीं पहुँचने से बड़ी हानि पहुँचेगी। हमारा पाँच रुपैया ठाकुर जी का कार्य में जाये तो हर्जा नहीं, परन्तु ठाकुर जी का एक पैसा भी हमारे पास कभी नहीं आने पावे। मेरे मन में भी सदा ऐसी ही भीति रहती है भगवान को जो रूपैया भेंटी दिया उस रूपैया से कभी हमारी सेवा नहीं हो जाय। परन्तु मेरे को भेट दे तो उस रूपैया से मेरी सेवा हो सकती है। मेरे देहान्त के पीछे मेरा कृत्य मेरे को भेट दिया रूपैया से ही होना चाहिए, कदापि भगवान् की रूपैया से नहीं होय।

(14) श्री भगवान् अपने दिव्य मङ्गल विग्रह (अर्चावतार) के द्वारा चेतन का कैङ्कर्य स्वीकार करते हैं। त्याग बिना भगवत् कैङ्कर्य का अधिकार नहीं होता।

(15) श्री भगवान् के साथ जीव का 9 प्रकार का सम्बन्ध सदा स्मरण राखना।

'पिता च रक्षक शेषी, भर्त्ता ज्ञेयो रमापतिः ।
स्वाम्याधारो ममात्मा च, भोक्ता चेति मनूदितः ।।

जैसे विवाह के मन्त्र से पति – पत्नी सम्बन्ध होता है वैसे ही दीक्षा मन्त्र द्वारा भगवान् के साथ चेतन का 9 प्रकार का सम्बन्ध होता है।

(क) पिता पुत्र सम्बन्ध – लक्ष्मी पति जीव के पिता हैं और जीव लक्ष्मी पति का पुत्र है।

(ख) रक्ष्य – रक्षक सम्बन्ध – श्रियः पति जीव के रक्षक हैं, और जीव लक्ष्मी पति के रक्षा योग्य रक्ष्य वस्तु है।

(ग) शेषशेषी सम्बन्ध – जीव लक्ष्मी पति के यथेच्छा व्यवहार के उपयुक्त उनका एकान्त परतन्त्र 'शेष' वस्तु है, और लक्ष्मी पति जीव को यथेच्छ व्यवहार कर्त्ता परमस्वतन्त्र 'शेषी' वस्तु हैं।

(घ) भर्तृ–भार्या सम्बन्ध – लक्ष्मी पति जीव के भर्त्ता (भरणकर्त्ता) हैं, और जीव भगवान की भार्या (भरण पोषण के उपयुक्त) है।

(ङ) ज्ञातृज्ञेय सम्बन्ध – भगवान् जीव के जानने योग्य 'ज्ञेय' वस्तु हैं और जीव भगवान् को जानने वाला ज्ञाता वस्तु है।

(च) स्व–स्वामी सम्बन्ध – भगवान् जीव के स्वामी (प्रभु) हैं, और जीव स्वामी के अभिमान् का वस्तु (दास) है।

(छ) आधार– आधेय वस्तु– भगवान् जीव के आधार हैं, और जीव आधेय वस्तु है।

(ज) शरीर– शरीरी सम्बन्ध लक्ष्मी पति जीव के आत्मा हैं, और जीव उनका शरीर है।

(झ) भोक्तृ भोग्य सम्बन्ध– भगवान जीव के भोक्ता हैं, और जीव भगवान का भोग्य वस्तु है। चेतन (जीव) अपने शरीर द्वारा, अपनी इन्द्रिय द्वारा कैङ्कर्य करके वहि, कैङ्कर्य भगवान् से भोग करवाता है, यह कैसा कहें तो पाँव से प्रदक्षिणा करता है, हाथ से भगवान् के ऊपर तुलसी पुष्प चन्दन तथा वस्त्र अलङ्कारादि कैङ्कर्य करता है, नेत्र से भगवान् का श्री विग्रह दर्शन करता तथा कर्ण से भगवद् गुणानुवाद का श्रवण करता है जिह्वा से भगवद्गुणानुवाद का कीर्त्तन करता है, तथा अपने शिर से भगवच्चरणारविन्द में साष्टाङ्ग करता है। घ्राणेन्द्रिय से भगवान् के प्रसादी तुलसी पुष्प का गन्ध आघ्राण करता है, और त्वक् इन्द्रिय से भगवच्चरणार्पित चन्दनादि को अपने शरीर में धारण करता है। श्री भगवान् अपने विग्रह द्वारा चेतन के कैङ्कर्य को स्वीकार करते हैं।

सर्वेन्द्रिय द्वारा इस कैङ्कर्यधारा के उपदेश के बाद ही वे श्री भागवत् का निम्नोक्त श्लोक लिखा दिये एवं श्लोक को कण्ठस्थ कर लेने के लिए कहे।

> वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायाम्,
> हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
> स्मृत्यां शिरस्तव निवास जगत् प्रणामे,
> दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तुभवत्तनूनाम् ।।

चार पाँच दिन के बाद श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति लेकर कलिकाता लौट आये। वे सन्तुष्ट चित्त से विदा दिये। इस बार हम लोगों को कुछ अज्ञात ज्ञापन करा सके थे जैसे उनके मन में यही भाव था। फिर समय निकाल कर अयोध्या आने की यथा सम्भव शीघ्रता करने का निर्देश दिये।

हम लोग कलिकाता प्रत्यावर्त्तन किये। आने के समय गुरुदेव निर्देश दिये हैं कि समय निकाल शीघ्र ही मेरे पास आना। उनकी यह निर्देशवाणी पालन करने का सङ्कल्प किया। और चेष्टा करता रहा। नाना प्रकार से सांसारिक विघ्न वाधा रहने पर भी छः सात महीने के बाद ता0 27/2/29 साल में पुनः अयोध्या धाम श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में उपनीत हुआ। अपनी स्त्री का एकान्त आग्रह देखकर उन्हें भी सङ्ग में ले लिया।

''लेखक को श्री स्वामी जी महाराज का द्वितीयवार उपदेश दान'

इस बार भी श्री स्वामी जी महाराज अपने नियमानुसार प्रतिदिन शेष रात्रि में लोगों को अपनी कोठरी में बुला लेते, एवं उस ब्राह्म मुहूर्त में हम लोगों को अमूल्य उपदेश देकर कृतकृत्य करते। हमारी उस समय की डायरी से उनका कृपा प्रदत्त समस्त उपदेशों का एक संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। इस बार उपदेशों का वैशिष्टय होता है कुछ विशेष विशेष श्लोकों की व्याख्या। वे एक एक श्लोक करके उसका विशुद्ध उच्चारण करते हुए धीरे – धीरे बोलते गये, हम से लिखने के लिए बोले। तदनन्तर प्रत्येक श्लोक की व्याख्या कर दिये, उस व्याख्या को भी संक्षेप में लिखा दिये।

> सर्वज्ञोऽपि सर्वात्मा, महाकारुणिकोऽपि सन् ।
> संसारतन्त्रवाहित्वात्, रक्षापेक्षामपेक्षते ।।

ईश्वर यद्यपि सर्वज्ञ हैं और अन्तर्यामी रूप से सबके मध्य अवस्थान करते हैं एवं सर्वदा ही दयामय हैं, तथापि जगत् रूपी इस संसार को निर्वाह के लिए, जीव कब अपनी रक्षा के लिए हमसे प्रार्थना करेगा, इसके

लिए अपेक्षा करते हैं। (अतएव जीव का यह कर्त्तव्य हैं कि अपनी रक्षा के लिए भगवान् से प्रार्थना करे।)

एवं संसृति चक्रस्थे, भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः।
जीवेदु:खाकुले विष्णोः, कृपाकाप्युपजायते।।

इस तरह अपने अपने कर्मो के द्वारा (कर्म फल को भोग करने के निमित्त) संसार चक्र में भ्रमण करते करते जीव जब दु:ख से आकुल हो जाता है, तब विष्णु की निर्हेतुक कृपा उपजात होती है। (यह श्लोक अहिर्बुध्न्य संहिता में लिखा है)

आदावीश्वर दत्तयैव पुरुषः स्वातन्त्र्य शक्तया स्वयम्,
तत्तद्ज्ञान चिकीर्षण प्रयतनान्युत्पादयन् वर्त्तते ।
तत्रोपेक्ष्य ततोऽनुमत्य विदधत् तन्निग्रहानुग्रहौ,
तत्तत्कर्मफलं प्रयच्छति ततः सर्वस्य पुंसोहरिः ।।

''यह श्लोक अति प्राचीन है''। इसका कोई आकार नहीं दिये।

प्रथम ईश्वर जीव की सृष्टि करके उसको स्वातन्त्र्य शक्ति प्रदान किये, तत्तत् जीवों की स्वतन्त्रता के फल से उसको तदनुरूप ज्ञान उत्पन्न हुआ। ज्ञान के अनुसार कर्म में उसकी इच्छा हुई, एवं तद्रूप कर्म को करने के लिए वह चेष्टा किया। उस समय परमेश्वर हरि उन समस्त पुरुषों की इच्छा एवं प्रयत्न के अनुगुण स्वतः उदासीन रह कर अनुमति देते रहते हैं। जीव के द्वारा इस भाव से किये हुए सत्कर्म में अनुग्रह तथा असत्कर्म में निग्रह करते हुए वे समस्त जीवों को तत्तत् कर्म का फल प्रदान करते रहते हैं।

और अम्बा जी (श्रीलक्ष्मी जी) के गुणों को याद करो।

ऐश्वर्यमक्षरगतिं परमं पदंवा,
कस्मैचिदञ्जलिभरं बहते वितीर्य ।
अस्मैन किञ्चिदुचितं कृतभित्यथाम्ब,
त्वं लज्जसे कथय कोऽयमुदार भावः।।

हे अम्ब! हे मातः! कस्मैचित् – वर्ण कुल गोत्र रहित जो कोई होय, जो कोई अपना हाथ आपके सामने जोड़ता है उसी अज्जलिभार को जो वहन करता है, उसको इस लोक से लेकर ब्रह्म लोक तक का ऐश्वर्य आप देती हैं, अक्षर गतिम् कैवल्य मोक्ष आत्म प्राप्ति, परमं पदम्,–श्रीवैकुण्ठ लोक में कैङ्कर्य, वित्तीर्य –दत्त्वा देकर, अस्मै अञ्जलि भार वाहिने, अञ्जलि भार माथा लेकर चलने वाले को हमने किञ्चित, उचितं उचितं उपकारं न कृतम्–कोई उपकार ही नहीं किया, इति मत्त्वा – ऐसा मानकर आप लज्जित होती हैं, कोऽयं उदार भावः – आपका यह क्या उदार स्वभाव है?

(यह श्लोक कूरेश नन्दन पराशर भट्टर स्वामी कृत 'श्री गुण–रत्नकोष' से उद्धृत है।)

देवि! त्वन्महिमावधिर्नहरिणा नापित्वयाज्ञायते,
यद्यप्येवमथापि नैव युवयोः सर्वज्ञता हीयते ।
यन्नास्त्येव तदज्ञतामनुगुणां सर्वज्ञतायां विदुः,
व्योमाम्भोजभिदन्तता किल विदन् भ्रान्तोऽयमित्युच्यते ।।

हे देवि! त्वन्महिमावधिः– आपके महिमा की अवधि सीमा मालूम नहीं हो सकती, हरि भगवान् आपकी महिमा की अवधि सीमा नहीं जानते हैं, और आप भी अपनी महिमा की अवधि सीमा नहीं जानती हैं, यद्यपि ऐसा

है तो भी आपके सर्वज्ञता की हानि नहीं हो सकती है। व्योमाम्भोज आकाश में कमल पुष्प को (प्रकाशमान नक्षत्रराजिको) कोई अपने आगे में अगर बताता है कि आकाश में फूल फूला है ऐसा जानने वाले पुरुष के समीप में रहने वाले लोग उसे भ्रान्त कहते हैं। यन्नास्त्येव – जो वस्तु नहीं है, तदज्ञता – उस वस्तु का अज्ञान सर्वज्ञता के अनुगुण माफिक ही, विदुः – कविगण पण्डित लोग जानते हैं। (यह श्लोक कूरेश स्वामी रचित 'श्रीस्वत' से उद्धृत है।)

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिः शय्यासनं वाहनम्,
वेदात्मा विहगेश्वरो यवनिका मायाजगन्मोहिनी ।
ब्रह्मेशादि सुरव्रजः सदयित स्त्वद्दासदासीगणः,
श्री रित्येवचनामतेभगवति! ब्रूमः कथंत्वांवयम् ।।

हे भगवति! हेषड् गुण सम्पन्ने! ज्ञान शक्तिवल ऐश्वर्य वीर्य तेज युक्ते! वयंत्वां कथं ब्रूयः– हम लोग किस प्रकार से आपकी स्तुति करने में समर्थ हो सकते हैं? हम लोग आप की स्तुति करेंगे? ते कान्तः पुरुषोत्तमः- आपके कान्त परम पुरुष नारायण हैं, फणिपतिः अनन्त शेष जी, ते शय्या सनम्– आपके शयन की शय्या बैठने के सिंहासन हैं।, वेदात्मा विहगेश्वरः – वेद की मूर्त्ति पक्षिराज गरुड़ ते वाहनम्– आपके बैठने के चलने के वाहन हैं। जगन्मोहिनी माया यवनिका–जगत को मोहने वाली माया आपका पर्दा है (जैसे स्त्रियों का पर्दा होता है।) चतुर्मुख ब्रह्मा ईशान्त महादेव जी आदि सुरगण देव समूह, सदयितः– अपनी अपनी भार्याओं के साथ आपके दास दासी गण हैं, ते नाम श्री रिति– आपका नाम श्री है, तो हम कैसे आपकी स्तुति कर सकते हैं।

(यह श्लोक यामुनाचार्य रचित वरदवल्लभा स्तोत्र से उद्धृत)

''और अर्चावतार के वैभव को जानो–

स्वपन् रङ्गे जाग्रन् यदुशिरसि तिष्ठन्वृषगिरौ,
प्रयागे सन्मज्जन्नथ वदरिका भूमिषुजपन् ।
जगन्नाथे चाशन्नति सुखमयोध्यामधिवसन्,
सदा द्वारावत्यां विहरति सलीलं यदुपतिः।।

यदुपतिः यादव पति भगवान् श्रीकृष्ण यदुवंशियों के पालन करने वाले रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्रीरङ्ग जी में शयन करते हैं, यदवाचल पर्वत के ऊपर जागते हैं, वेङ्कटाद्रि पर्वत के ऊपर खड़े होते हैं। श्री प्रयागराज त्रिवेणी में स्नान करते हैं, वदरिकाश्रम में अष्टाक्षर मन्त्र का जप करते हैं, श्री जगन्नाथपुरी में भोजन करते हैं, श्री अयोध्यापुरी में सुख पूर्वक वास करते हैं, सर्वकाल में श्री द्वारकापुरी में लीला पूर्वक विहार करते हैं।''

''और गुरु तथा मन्त्र का वैभव सुनो''

गुरुम्प्रकाशयेद्धीमान, मन्त्रं यत्नेन गोपयेत् ।
अप्रकाश प्रकाशाभ्याम्, हीयते सम्पदायुषी ।।

बुद्धिमान् शिष्य लोक में अपने गुरु का वैभव प्रकाश करे, अपने आत्मा के रक्षा करने वाले मन्त्र को न सुनावे, किसी से नहीं कहे मन्त्र का अर्थ कोई पुरुष हो अथवा स्त्री हो। यदि कदाचित् जो कोई अपने गुरु का वैभव नहीं प्रकट करता, और गुरु के दिये हुए मन्त्र को किसी से प्रकट कर देता है तथा अर्थ को किसी

अनाधिकारी से कह देता है तो उस शिष्य का सम्पद् ऐश्वर्य धन क्षीण हो जाता है नाश हो जाता है उसके पास कुछ नहीं रहता है। उस शिष्य की आयु क्षीण हो जाती है, शत वर्ष की आयु हो तो भी थोड़े ही समय में मर जाता है।" श्री स्वामी जी महाराज जिस समय यह समस्त श्लोक और व्याख्या लिखा रहे थे उस समय एकजन प्रवीण वैष्णव वहाँ उपस्थित थे। वे जिज्ञासा किये–"श्री स्वामी जी महाराज शास्त्र जब इस तरह से गोपन करने के लिए निर्देश दे रहा है तब श्री रामानुज स्वामी गोपुर पर चढ़कर ऊँचे स्वर से यह मन्त्र सर्वसाधारण को वितरण किये किस प्रकार से? यह तो शास्त्र विरुद्ध आचरण हुआ?"

यह प्रश्न सुनकर श्री स्वामी जी महाराज समाहित चित्त हो कर उपदेश के छल से उनका यह अमूलक सन्देह विदूरितकर दिये! श्री स्वामी जी महाराज कहने लगे– देखिये इस विषय में प्रमाण श्लोक क्या बोलता है–

गोष्ठी पुर्य्यां तदातस्यां नृसिंह स्वामिनो हरेः।
महोत्सवं द्रष्टुकामान् नाना दिग्भ्यः समागतान् ॥
वैष्णवान्वीक्ष्यहृष्टात्मा, लक्ष्मणार्यः कृपानिधिः।
सन्निधौतस्यदेवस्य, वैष्णवेभ्योऽञ्जसातदा ॥
गोपुरादय रात्र्यर्द्धे वदन्नुच्चस्वरेणतम्।
चतुःसप्ततिः कृपयाऽष्टाक्षरम् तभ्यो प्रपदौमन्त्रमुत्तमम् ॥

इन श्लोकों का अन्वय देखिये–

कृपानिधिः लक्ष्मणार्यः रात्र्यर्द्धे नृसिंह स्वामिनः महोत्सवं द्रष्टु कामान् नाना दिग्भ्यः समागतान् वैष्णवान् वीक्ष्य तस्य देवस्य सन्निधौ तेभ्यः अञ्जसा उच्चस्वरेणगोपुरात् तान् वदन् स्थितः। चतुः सप्तति संख्या काः ब्राह्मणोत्तमाःतत् श्रुतवन्तः। तेभ्यः (चतुः सप्तति संख्यक ब्राह्मणोत्तमेभ्यः)

कृपया उत्तमं अष्टाक्षर मन्त्रं प्रददौ॥

तात्पर्य यह कि चौहत्तर संख्यक श्री वैष्णवों को श्री राजानुज स्वामी परम कृपा करके अष्टाक्षर मन्त्र को प्रदान किये। यदि कोई कुतर्की लोग कुतर्क करे कि गोपुर से उच्च स्वर में अष्टाक्षर मन्त्र को क्यों सुनाये, ऐसा कहे तो उसका कुतर्क असङ्गत है, क्यों कि अर्द्ध रात्रि में श्री नृसिंह भगवान् की सन्निधि में होने वाले चौहत्तर वैष्णवों को ही अष्टाक्षर मन्त्र का उपदेश ही सङ्गत है। चण्डालपयन्त सब लोगों को सुनाये ऐसा कहे तो अर्द्ध रात्रि में क्यों सुनाये? श्रीनृसिंह जी की सन्निधि में क्यों सुनाये? ब्राह्मण लोगों को क्यों सुनाये? ब्राह्मणों में भी चौहत्तर ब्राह्मण वैष्णवों को क्यों श्रवण कराये इत्यादि बहुत विरोध है।"

श्री स्वामी जी महाराज का ऐसा निपुण विश्लेषण श्रवण करके प्रवीण वैष्णव प्रश्नकर्त्ता एवं समुपस्थित हम सभी विस्मित और चमत्कृत हो गये।

ता0 2/3/29 साल प्रातःकाल श्री स्वामी जी महाराज 'अर्थ पञ्चक' विषय में हम लोगों को एक संक्षिप्त उपदेश दिये। वे बोले मोक्षकामी मुमुक्षु व्यक्ति मात्र को अर्थ पञ्चक का ज्ञान अति आवश्यक है। सर्वशास्त्र सर्व उपदेष्टा साधु कोई न कोई रूप में इन्हीं पाँचों विषयों का वर्णन करते हैं।"

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं, प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेः, तथा प्राप्ति विरोधि च ॥

वदन्ति सकलाः वेदाः, सेतिहास पुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानः, वेदवेदान्त वेदिनः।।

अर्थ–पञ्चक विषय में हारीत संहिता का यह श्लोक कण्ठस्थ कर लेना। इसमें पञ्च विषय के स्वरूप का वर्णन है। प्रत्येक विषय पाँच –पाँच भाग में विभक्त हैं।

(1) स्वस्वरूप (जीवात्मा का स्वरूप) जीव परमात्मा का अनन्य शेष वस्तु (दास) है। दूसरे किसी का दास होने के योग्य नहीं है। 'भगवदनन्यार्हि शेष है। यह जीव जड़वस्तु वरावर परमात्मा का परतन्त्र एकान्त पराधीन वस्तु है। 'तदेक परतन्त्र' है। परमात्मा का 'अनन्य भोग्य' है।

जीव पाँच प्रकार का है–

(1) नित्य, (2) – मुक्त, (3) वद्ध, (4) मुमुक्षु, (5) केवल।

(क) नित्य– अर्थात् सर्वकाल में जन्म मरण रहित अनन्त, गरुड़, विष्वक्सेन आदि नित्य सूरि लोग हैं।

(ख) मुक्त जीव– जो जनमरूप वन्धन से, प्रकृति सम्बन्ध से 'संसार सम्बन्ध से) छूट गया है। भगवत्कृपा से जटायू आदि तिर्यग् योनि भी मुक्त हो गया।

(ग) वद्ध जीव – जो प्रकृति सम्बन्ध से जन्म मरण सम्बन्ध से छूटने नहीं पाये वही बद्ध हैं। हम लोग वद्ध जीव हैं।

(घ) केवल – जन्म मरण से छूट कर विरजा नदी के पार जाकर जो केवल आत्म स्वरूप को अनुभव करते हैं वह 'केवल' हैं।

(ङ) मुमुक्षु – जन्म मरण से जो छूटने की इच्छा करते हैं वे जीव 'मुमुक्षु' हैं। मुमुक्षु जीव चाहते हैं कि श्रियः पति मेरे को जन्म मरण के बन्धन से छुड़ा दें।

(2) परस्वरूप– परमात्मा के स्वरूप पाँच प्रकार के होते हैं।

(क) पर अवस्था– जिनसे सब अवतार होते हैं। सर्व अवतारों के आदि सर्व जगत् के आदि' पर वासुदेव' भगवान् वैकुण्ठ लोक में रहने वाले।

(ख) व्यूह– वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यही चार विभाग है। पर वासुदेव से व्यूह वासुदेव होते हैं। व्यूह वासुदेव से क्रमशः सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध होते हैं।

(ग) विभव–राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, मत्स्य, कूर्म, इत्यादि अवतार/ अनिरुद्ध से निभव (अवतार) होते हैं।

(घ) अन्तर्यामी–सर्व जीवों के ह्रदय में रहते हैं।

(ङ) अर्चावतार– जगन्नाथ, रङ्गनाथ, द्वारका नाथ, ब्रदीनाथ, मुक्तिनाथ इत्यादि।

(3) उपाय स्वरूप –

कर्म– जनकादि कर्मयोगी

ज्ञान– भरतादि ज्ञान योगी

भक्ति–गोपी पह्लादादि भक्ति योगी

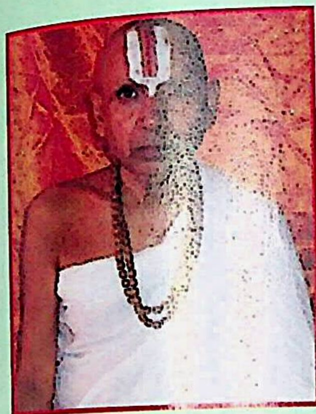
प्रपत्ति–(शरणागति) मुचकुन्द आदि

आचार्याभिमान– गुरु ही हमारे उत्तारक हैं ऐसा अभिमान। शठकोप शिष्य–मधुर कवि, रामानुज शिष्य–आन्ध्रपूर्ण आदि।

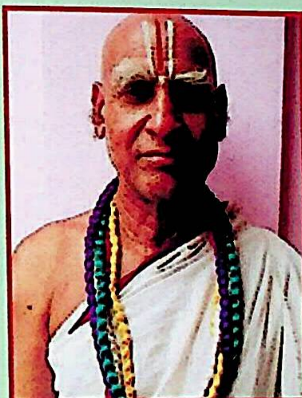
श्रीमते रामानुजाय नम:



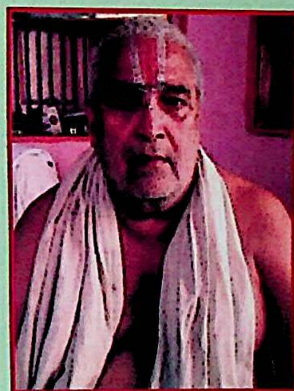
श्री विजय राघव मन्दिर के ट्रस्टीगण



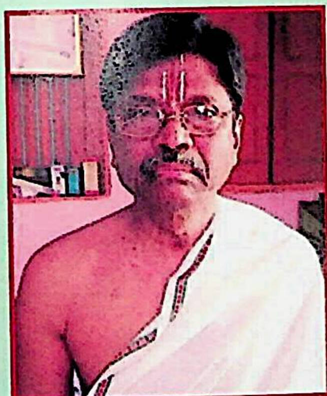
स्वामी श्री श्रीधराचार्य जी महाराज



श्री शिवपूजन त्रिपाठी जी



श्री केदारनाथ त्रिपाठी जी



श्री लक्ष्मी कुमार गुप्त जी

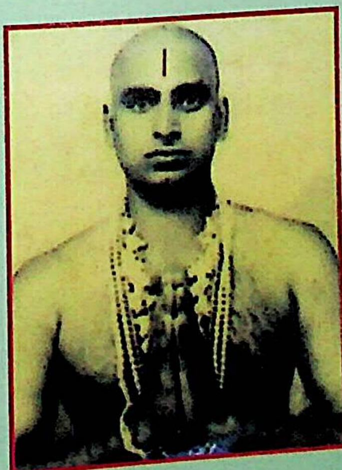


श्री सोमनाथ महाजन जी

सेवा की तीन पीढ़ियाँ



वै.वा. राघवेन्द्राचार्य जी



वै. वा. राजेन्द्र प्रताप सिंह जी



श्री यादवेन्द्र प्रताप सिंह जी

(4) फलस्वरूप–जगत् में पाँच प्रकार के पुरुष पाँच प्रकार फल मानते हैं।
(क) धर्म–कोई धर्म को फल मानते हैं।
(ख) अर्थ – कोई अर्थ को फल मानते हैं। हमारे पास लाख रूपिया हो जाय वही फल है।
(ग) काम – कोई काम को फल मानते हैं। ऐहिक सुख, स्वर्ग सुख, इन्द्रादि का सुख ही जिसका काम्य है।
(घ) आत्मानुभव – कोई निज आत्मा के अनुभव को ही फल मानते हैं।
(ङ) भगवदनुभव–कोई भगवदनुभव को फल मानते हैं। भगत्स्वरूप, रूप, गुण, लीला, विभूति को फल मानते हैं।
श्रेष्ठ फल यही है।
(5) विरोधी स्वरूप–
(क) स्व–स्वरूप ज्ञान का विरोधी– जो अपने स्वरूप को जानने नहीं देता वह अज्ञान स्व–स्वरूप ज्ञान का विरोधी है।
(ख) पर स्वरूप ज्ञान का विरोधी– जो भगवत्स्वरूप को जानने नहीं देता वह अज्ञान पर स्वरूप ज्ञान का विरोधी है।
(ग) उपाय स्वरूप ज्ञान का विरोधी–भगवत्प्राप्ति के विभिन्न उपाय विषय को नहीं जानने देने वाले विभिन्न अज्ञान।
(घ) फल स्वरूप ज्ञान का विरोधी – विभिन्न फल प्राप्ति में विरोधी अज्ञान।
(ङ) भगवत्प्राप्ति का विरोधी– जो भगवत्प्राप्ति होने नहीं देता वह अज्ञान भगवत्प्राप्ति विरोधी होता है।
अर्थ पञ्चक विषय में यह संक्षिप्त उपदेश देकर श्री स्वामी जी महाराज बोले–
मुमुक्षु पुरुष का यह 'अर्थ पञ्चक' अवश्य ज्ञातव्य है। फिर कभी सुनना।
(श्री स्वामी जी महाराज की यह भविष्य–वाणी सार्थक हुई थी, वे दोबारा अर्थ पञ्चक का कोई कोई स्थल हम लोगों के सामने पुनः विशद भाव से अपने देहान्त के कुछ पहले ही विश्लेषण कर दिये थे)

इस दफे आश्रम में रहने के समय हम दोनों के ऊपर में ही श्री स्वामी जी महाराज की करुणावारि बहुत प्रकार से वर्षित हुई थी। विस्तृत रूप से प्राण भर के उपदेश देने की बात इसके पूर्व विवृत हुई है। स्खलित शिष्य के प्रति उनके शासन की बात भी इसके पहले कही हुई है। एक विशेष करुणा का विषय अब आगे उल्लेख कर रहा हूँ।

पूर्व ही कहा गया है कि श्री स्वामी जी महाराज केवल दूध एवं कभी फल का रस अथवा नरम फल संतरा आदि प्रसाद पाते। उनके अन्तरङ्ग सेवक श्री कमलनयन स्वामी उनके पाने लायक दुग्धादि प्रस्तुत करके श्री विजयराघव जी महाराज को भोग लगा कर उनकी कोठरी में ले आकर रखा देते। वे कोठरी का दरवाजा बन्द करके एकान्त में प्रसाद ग्रहण करते। उस समय वहाँ पर दूसरा कोई रहने नहीं पाता। उस समय केवल श्री कमलनयन जी ही उनकी कोठरी में रहते। उनके प्रयोजन के अनुयायी पीने का पानी। अथवा हस्त प्रक्षालन करने के लिए पानी दे देते। एक दिन दोपहर के समय अपनी स्त्री के सहित मैं उनकी सन्निधि में बैठा हुआ था, इतने में श्री कमलनयन जी वस्त्र से आच्छादित करके उनका प्रसाद लिए हुए कोठरी में प्रवेश किए उसे देखकर हम दोनों उठ पड़े कोठरी से बाहर आने के लिए। वे समझ गये कि हम लोग कोठरी के बाहर जा रहे

हैं। उस समय वे स्नेह के सहित हम लोगों से बोले–' तुम लोग यहाँ पर ही बैठे रहो, बाहर नहीं जाना होगा' उनका आदेश सुनकर हम लोग विस्मित होकर महा आनन्द से वहाँ पर बैठे रहे। मन में भावना करने लगा कि आज वे अपने दुर्लभ दर्शन आहार दर्शन का अधिकारी किये। हम लोग देखे कि कमलनयन स्वामी घर के एक तरफ कम्बल का एक आसन बिछा दिये, आसन के सन्मुख एक पीढ़ा काठ का रखकर उस पर जल छिड़क कर उसे पोछ दिये। उस पर दूध की कटोरी रख दिये, धोया हुआ एक पत्तल रखकर उसके ऊपर सन्तरा के छिलका निकाल कर कई कोआ रख दिये। श्री स्वामी जी महाराज कम्पित हस्त से कटोरी को उठाकर ऊपर से दूध को पान किये। दुग्ध पान करने के पश्चात् सन्तरे का पाँच छः कोआ लेकर उसे चूस कर रस पान किये। उस समय चार पाँच छः कोआ बाकी था। शाल–पत्तल से अपना प्रसादित दो दो कोआ लेकर हमारे हाथ में दिये एवं हमारी स्त्री के हाथ में आदर के सहित प्रदान किये। देकर बोले– ''लो पाओ, सङ्कोच मत करो।'' अनुग्रह पूर्वक प्रदत्त यह प्रसाद पाकर हम लोग अपने हाथ में रख लिये थे, नीचे अपने घर में जाकर इसे पाऊँगा, मन में यह सोचे थे कि श्री स्वामी जी महाराज के सामने पाना उचित नहीं है तब श्री कमलनयन स्वामी बोले कि 'आप लोग यह प्रसाद इसी जगह भोजन कर लीजिये यही श्री स्वामी जी की अभिलाषा एवं आदेश है, आप लोग उनका आदेश पालन करें।' तब हम लोग निःशंङ्कचित्त से उसी जगह यह प्रसाद पालिये। आज हम लोगों का क्या सौभाग्य है, सौभाग्य बोलने पर ठीक नहीं बोलना होगा, वे केवल अपनी निर्हेतुक कृपा से हम लोगों को अपने भोजन कालीन दुर्लभ दर्शन का अधिकारी किये। केवल यह ही नहीं, परम अनुग्रह करके अपने हाथ बिना याचना किये हुए ही हम लोगों को अपना प्रसादी महाप्रसाद दान किये एवं विशेष भाव से आदेश करके अपने आगे ही यह प्रसाद भोजन कराये। केवल इतने में ही उनका करुणा वर्षण समाप्त नहीं हुआ। प्रसाद पाना समाप्त होने पर वे कमलनयन स्वामी से बोले–''हमारा पञ्चमाल ले आओ, जो माला हम पूजा के वक्त नित्य पहरते हैं। वे दो पञ्चमाल लेकर श्री स्वामी जी महाराज के हाथ में प्रदान किये, पूजा के समय अपना पहिना हुआ एक पञ्चमाल वे हमारे हाथ में दिये, दूसरा हमारी स्त्री मधुसूदन रामानुज दासी के हाथ में दिये। उनके आदेश से उसी समय यह माला हम लोग परिधान किये। सद्गुरु प्रसादित पूत पवित्र वह पञ्चमाल हम लोग आज भी परिधान करके धन्य हो रहे हैं। उस समय उनकी इस करुणा धारा के स्रोत से हम लोगों की क्या अवस्था हो गई थी उसको लिख कर व कहकर प्रकाश करना असम्भव है। यह जो वे सन्मुख निगलित महा प्रसाद अपने हाथ से प्रदान किये यह जो वे चिर काल से पूजा के समय जिस पञ्चमाल को स्वतः व्यवहार कराए हैं उसे अपने हाथ से प्रदान किए । जिस पञ्चमाला को स्वतः व्यवहार कराए हैं उसे अपने हाथ से प्रदान किए । यह जो वे चिर काल से इस महा करुणा की तुलना कहाँ है! अहो भाग्यम! आज उनकी उस निर्हेतुक कृपा की कथा, परम अनुग्रह की कथा अनुभव करके हम लोगों को प्राण, मन, देह समस्त महा-आनन्द में डूब गया। यह एक अपूर्व अलभ्य लाभ है। ऐसी निर्हेतुक आचार्य कृपा ही जो परम प्रार्थनीय, परम ध्येय, एवं परम प्राप्य वस्तु है उसको मर्म ही मर्म में उपलब्धि किया। हम लोगों के दोनों नेत्रों से महा अनुग्रहाश्रु विगलित होने लगा। अनेक समय में अपना प्रयोजन नहीं रहते हुए भी श्री स्वामी जी महाराज क्लेशाकर अनुष्ठान करके भक्त और शिष्यों को धर्माचरण की शिक्षा देते। ऐसा एक अनुष्ठान का विषय उल्लेख किया जा रहा हैं –

श्री अयोध्या धाम माघमास में प्रचण्ड शीत होती है। एक बार इस माघ मास में चन्द्र ग्रहण हुआ। उस समय हम लोग गुरु देव के निकट अयोध्या धाम गये हुए थे। रात्रि साढ़े तीन बजे के समय ग्रहण की मुक्ति थी।

समस्त आश्रमवासी मुक्ति स्नान के लिए रात्रि तीन बजे सरयू नदी के अभिमुख जा रहे थे, हम लोग भी पीछे पीछे जा रहे थे। हम लोगों के आश्रम से सरयू नदी प्रायः आधा कोश की दूरी पर हैं। 20/25 जन आश्रवासी चल रहे थे। अत्यन्त ठण्डी हवा वह रही थी। अस्मद् गुरुदेव श्री बलराम स्वामी जी सभी के आगे चल रहे थे। उनकी अवस्था उस समय लगभग 85 वर्ष की थी। अत्यन्त वृद्धावस्था होते हुए भी उनकी गति मन्द नहीं थी। एक लम्बा लाठी के सहारे द्रुत गति से चल रहे थे। शिष्य वर्ग लाचार होकर उसी गति से उनका अनुसरणकर रहे थे। श्री स्वामी जी महाराज सरयू के घाट पर पहुँचकर अवगाहन स्नान किये, उसके बाद अन्य सभी स्नान किये। सरयू नदी का जल भीषण ठण्डा था, जल में प्रवेश करते ही मन में हुआ कि देह को कोई काट लिया। समस्त देह असार हो गया। जो हो स्नान करके गरम कपड़ा पहन तथा ओढ़कर भगवान् का नाम गान करते करते कुछ आराम लगा, सभी आश्रम में लौट आये।

दूसरे दिन प्रात:काल एक प्रवीण साधु श्री स्वामी जी महाराज के पास आये। धर्म के विषय में नाना प्रकार का वार्तालाप होने लगा। प्रसङ्गतः साधु जी उनसे जिज्ञासा किये ''महाराज! इतने प्रचण्ड शीत में भी कल आप मुक्तिस्तान करने गये थे, अब और आपका ग्रहण में स्नान करने का प्रयोजन क्या है आपको अब और कोई पुण्य अर्जन करना बाकी है क्या ? साधु के इस प्रश्न को सुनकर श्री स्वामी जी महाराज स्वाभाविक अपने मधुर हास्य से बोले–

''मैं कोई पुण्य अर्जन करने के अभिप्राय से कल ग्रहण में स्नान करने नहीं गया था। भगवान् के शरणागत भक्त को कोई पुण्य अर्जन की अभिलाषा नहीं रहती। भगवत्प्राप्ति और भगवत्सेवा ही उन लोगों की एक मात्र अभिलाषा है। जिस किसी फलासिद्धि के लिए वे लोग भगवान् को ही, भगवान का, सन्तोष एवं कृपा को ही एक मात्र उपाय समझ दृढ़ता पूर्वक धरे रहते हैं। ग्रहण में स्नान शास्त्रीय विधि है। शास्त्र का समस्त विधि निषेध भगवान् के ही विधानुसार होता है भगवान की आज्ञा जानकर प्रपन्न व्यक्तिगण समस्त शास्त्रीय विधि निषेध पालन करते हैं। कोई विशेष पुण्य फल अर्जन उन लोगों का उद्देश्य नहीं है। इस विधि निषेध का पालन करना ही समस्त जीवों का स्वरूप है। शरणागत व्यक्तिगण अपना यह स्वरूप का विषय अवहित रहते हैं। इसीलिए वे कर्तव्य हिसाब से भगवान का प्रसन्नता विधायक समझकर ग्रहण में स्नान योग यज्ञ का अनुष्ठान आदि शास्त्रीय क्रिया कर्म, उत्सव वा अन्यान्य लोक हितकर कार्य का अनुष्ठान करने रहते हैं। मैं यह भावना लेकर ही अति प्रतिकूल अवस्था होने पर भी गतकाल शेष रात्रि ग्रहण स्नान करने के लिए गया था। इस प्रकार के स्नान आदि अनुष्ठान का और एक उद्देश्य है लोक संग्रह। यदि हम लोग इन समस्त अनुष्ठानों को छोड़ देंगे तब साधरण लोग भी इन अनुष्ठान को छोड़ देंगे। क्रमशः शास्त्रीय अनुज्ञा लोक समाज में शिथिला हो जायेगी। यह शिथिलता भगवान को अभिप्रेत नहीं है। साधु पुरुष का अनुष्ठान ही कृत्य हिसाब से प्रमाण माना जाता है। यह भगवान का अभिप्रेत एवं सन्तोष विद्यायक है। इसीलिए वे गीता में बोल गये हैं –

''यद्–यदाचरति श्रेष्ठ, तत्तदेवेतरो जनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्त्तते ।।''

आश्रम का ग्रन्थागार–

श्री स्वामी जी महाराज के महत्सङ्ग के गुण से श्री सम्प्रदाय के प्रति घनिष्ठनिष्ठा हम लोगों में बढ़नी आरम्भ हुई। वे मन्त्र और मन्त्रार्थ आदि शिक्षा देने के समय प्रासङ्गिक रूप से पूर्व पूर्व अचार्य गण की जो

समस्त महिमा कुछ कुछ जो प्रकाश करते वह अत्यन्त मधुर लगती। दिन भर आते हुए साधु महात्माओं के सहित धर्मालोचना में भी वे बीच–बीच में सम्प्रदाय गत विभिन्न दृष्टान्तों का उल्लेख करते, उसे सुनकर मुग्ध हो जाता। और भी विचार रूप से यह समस्त साम्प्रदायिक ज्ञान और अनुष्ठान का दृष्टान्त जानने की प्रवल इच्छा होती। श्री स्वामी जी महाराज से इस सब विषयों में प्रश्न करने का साहस नहीं होता। अवसर पाते ही अधि-कारी श्री गरुड़ स्वामी जी से इन सब विषयों को जिज्ञासा करता। वे आदर पूर्वक हमारे विविध प्रश्नों का उत्तर देकर हमारी विविध समस्याओं का समाधान कर देकर हमको तृप्त कर देते। क्रमशः यह ज्ञान की पिपासा बढ़ने लगी। इस पिपासा की शान्ति के लिए उपयुक्त अवसर में श्री स्वामी जी महराज के पास ही बैठा रहता, अन्यान्य समय में अधिकारी जी का सङ्ग करता। उक्त आलोचना के समय वे जिन समस्त ग्रन्थों का नाम उल्लेख करते, अथवा जिन सब ग्रन्थों को आश्रम के ग्रन्थागार से मँगाकर संशिष्ट अंशों को पढ़कर सुनाते उन सब ग्रन्थों को संग्रह करने की प्रवल इच्छा मन में उदय होने लगी। बोला बाहुल्य जो श्री स्वामी जी महाराज के आश्रम में एक महा मूल्यवान् ग्रन्थागार था और अब भी है। उनमें बहुत से ग्रन्थ ही दुष्प्राप्य एवं अमुद्रित थे, अधि-काश ग्रन्थ ही हस्तलिखित पोथी थी। ग्रन्थागार की ग्रन्थ संख्या छोटा और बड़ा मिलाकर कुछ कम या ज्यादा एक सहस होगी। बहुत ग्रन्थ मिलाकर कुछ कम या ज्यादा एक सहस होगी। एवं बहुत ग्रन्थ उनके प्रिय शिष्य श्री भागवताचारी स्वामी संग्रह किये थे अथवा उनके हस्त लिखित थे। ये सब अमूल्य ग्रन्थ (मुदित अथवा हस्तलिखित पोथी) भारत वर्ष के सभी प्रदेश से संग्रहीत हुए थे। संग्रह का मूल स्थान वृन्दावनस्थ विशाल श्री रङ्ग मन्दिर का सुवृहत् ग्रन्था गार था। हम लोगों के परमाचार्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी स्वयं इस ग्रन्थागार की स्थापना किये हैं, और क्रमशः अपने विशेष विशेष विद्वान् ज्ञानी शिष्य वर्ग की सहायता से यह ग्रन्थागार परिपुष्ट किये। अपने ग्रन्थागार के सभी ग्रन्थ ही श्री स्वामी जी महाराज अध्ययन किये थे। प्रत्येक ग्रन्थगत विभिन्न विषयावली किस पृष्ठ में किस स्थल पर यहाँ तक किस पंक्ति में है वह भी उन्हें कण्ठस्थ था। केवल अध्ययन ही नहीं, प्रत्येक ग्रन्थ के आदेशानुयायी अनुष्ठान में भी वे परिपूर्ण थे। वे एक जन असाधारण ज्ञान – सिद्ध और अनुष्ठान – सिद्ध महापुरुष थे। ऐसे दुष्प्राप्य सिद्ध महापुरुष को अपने आचार्य रूप में पाकर एवं प्रत्यक्ष भाव से उन्हें अनुभव करके मन में अपने को महा सौभाग्यवान् मानने लगा। अपना जीवन और जनम सफल रूप से उपलब्धि करने लगा।

अनुभव योग्य सिद्ध पुरुष

शास्त्र साधु महात्माओं को तीन भाग में विभक्त किये हैं।

(1) जिन लोगों को बाहर में साधु की वेशभूषा है, किन्तु ज्ञान अथवा अनुष्ठान अतिअल्प है। (2) जिन लोगों को वेशभूषा है, शास्त्र ज्ञान भी है, किन्तु तदनुगुण अनुष्ठान नहीं है।

(3) जो लोग वेशभूषा, ज्ञान, एवं तदनुगुण अनुष्ठान सभी में परिपूर्ण हैं। प्रथम श्रेणी के साधुगुण 'सत्कार योग्य'। उन लोगों के आने पर खड़ा हो जाना, उनकी अभ्यर्थना करना, उन लोगों के हाथ पाँव धोने की व्यवस्था कर देना, कुशल प्रश्न करना, एवं विश्राम आदि का आयोजन कर देने को सत्कार कहा जाता है। द्वितीय श्रेणी के साधु महात्मागण 'सह वास योग्य' होते हैं। उन लोगों का सत्कार करने के अलावा उन लोगों के सहित धर्मालोचना करना, परस्पर में भगवत्प्रसङ्ग बोधन कीर्त्तन अस्वादन करके परितृप्त होना चाहिए।

यथा गीता में कहे हैं –

'मच्चित्ता मद्‌गतप्राणाः, बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्चमां नित्यं, तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।'

तृतीय श्रेणी के साधु महात्मागण जिस प्रकार भगवद् भागवत् आचार्य के विषय में पूर्ण ज्ञानवान् होते हैं, उसी प्रकार तदनुगुण त्रुटिहीन आचरण में भी वे सिद्धहस्त होते हैं। वे अनुभव योग्य, सिद्ध पुरुष होते हैं। उन लोगों की सन्निधि में रहकर उनका ज्ञानोपदेश श्रवण मनन करना चाहिए। एवं उन लोगों का समस्त अनुष्ठान दर्शन आरै अनुभव करना चाहिए। उन लोगों की सन्निधि में स्वयं कोई प्रश्न नहीं करने पर भी चलता है। उन लोगों के सान्निध्य का इतना प्रभाव एवं इतनी महिमा है कि उन लोगों के पास मौन भाव में उपस्थित रहकर उनके उपदेश को श्रवण एवं अनुष्ठान को दर्शन करने से ही भक्तों के मन के समस्त प्रश्नों का उत्तर समस्त संदेहों का निरसन प्राप्त हो जाता है। अपने उज्जीवन के लिए उद्दीपना लाभ की जाती है।

''साधुसंस्पर्श वा साधुसङ्ग का फल''

किसी बैटरी में विद्युत्शक्ति सञ्चय के लिए विद्युत् शक्ति के उत्पादन यन्त्र **(Dynamo)** के सहित तार की सहायता से कुछ काल तक संयुक्त रखना पड़ता है यही साधारण नियम है। किन्तु बाटरी को तार के सहित संयोग नहीं करके किसी एक प्रवल शक्तिशाली डायनामा के सन्निकट यूँ ही रख दिया जाय तो देखा जाता है कि कुछ काल के बाद किसी भी तार की सहायता के बिना ही वैद्युतिक शक्तिकण अतिसूक्ष्म भाव से प्रवाहित होकर उस बैटरी में वैद्युतिक शक्ति सञ्चारित हो गई है। उसी तरह उज्जीवन के लिए भक्ति ज्ञान और अनुष्ठान अर्जन के लिए वैराग्य ज्ञान भक्ति और अनुष्ठान सम्पन्न साधु का सङ्ग करना चाहिए। उन लोगों के सहित धर्मालोचना करना यही साधारण नियम है। किन्तु महाभाग्य वल से यदि ज्ञान एवं अनुष्ठान में सिद्ध महापुरुषों का सान्निध्यि लाभ हो जाय तब किसी उपदेश और निर्देश के बिना ही उन लोगों की दिव्यशक्ति एवं सङ्कल्प के प्रभाव से सानिध्य प्राप्त इस मुमुक्षु व्यक्ति के मध्य में वैराग्य ज्ञान एवं भक्ति का गुण सूक्ष्म भाव से अनुप्रविष्ट होकर रहता है। ऐसे सिद्ध महापुरुष अतीव विरल हैं। श्री भगवान् की निर्हेतुकी कृपा से ही हम लोगों के सदृश अयोग्य पात्र के पक्ष में इस भाव के मुदुर्लभ महापुरुष को स्वआचार्य रूप में लाभ करने का महा सौभाग्य हुआ था।

पाँचवे दिन श्री स्वामी जी महाराज कलिकाता लौटने की अनुमति दिये। विदा के समय उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया वे हाँसी मुख से बोले–

'मन्त्र, मन्त्रार्थ सदा ही मनन करना, अर्थानुगुण अनुष्ठान करने का प्रयत्न करना। शेष में भक्ति मिश्रित कण्ठ से उच्चारण किये –

मङ्गलं भगवान विष्णु:, मङ्गलं गरुड़ध्वज: ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्ष:, मङ्गलायतनो हरि: ।।

अधिकारी श्री गरुड़ध्वज स्वामी एवं आश्रमस्थ अन्यान्य साधुवृन्द को साष्टाङ्ग कर आस्वस्थ चित्त लेकर कलिकाता के अभिमुख रवाना हुए।

तृतीय प्रवाह

नवम अध्याय

।। परम हंस श्री स्वामी जी ।।

मन्त्रद्रष्टा जीवन्मुक्त अवस्था–

नेत्रहीन होने के बाद श्री स्वामी जी महाराज अब सम्पूर्ण परम हंस अवस्था प्राप्त हो गये। इस अवस्था की

कथा इसके पूर्व विशद भाव में वर्णित हुई है। पाषाण की रेखा के सदृश अविचल भाव में उनकी आदर्श दिनचर्य्या, उनका भगवद्, अनुसन्धान, 'उनका कैङ्कर्य निर्वाह' चलता रहा। इस समय उनकी अवस्था 87/88 वर्ष की थी। इस परिपक्व, प्रवीण अतिवृद्ध अवस्था में भी उनका अलौकिक तत्व ज्ञान, असाधारण रहस्य ज्ञान, ज्ञानानुगुण सम्यग् अनुष्ठान अनुभव करके अज्ञानी, अल्पज्ञानी एवं पूर्ण ज्ञानी सभी मुग्ध चित्त होकर उनका बहुमान करने लगे। उनके सन्मुख उपस्थित होने पर सभी का मस्तक अपने आप ही अवनत हो जाता। वे मन्त्र सिद्ध मन्त्रदृष्टा महापुरुष थे। मन्त्र जप करते करते उनकी अस्थि मज्जा में ओत प्रोत भाव से मन्त्र मिल गया था। वे मन्त्रार्थ के सम्यग् ज्ञाता महापुरुष थे, केवल यह ही नहीं वे इस अर्थ के अनुगुण सम्यक् अनुष्ठाता पुरुष थे। श्री रामानुज स्वामी के ज्ञान पुत्र श्री पराशर भट्टर स्वामी गान किये हैं– ''मन्त्रगतार्थः येन अधिकारिणा ज्ञातो भवति, अनुष्ठितो भवति, तेन मन्त्रार्थ, सम्यग् ज्ञानो भवति, अन्यथा मन्त्र सम्बन्धः संदिग्धः।'' अर्थात्– जो मन्त्रगत अर्थ को गुरु के मुख से अच्छी तरह सुनने के बाद स्वयं पुनः पुनः इसका अर्थ हृदयङ्गम कर लिए हैं,

मन्त्र द्रष्टा	:	तदनन्तर इस ज्ञात अर्थ के अनुगुण जो अनुष्ठान
शब्द का	:	किये है, अनुष्ठान सिद्ध वे पुरुष ही यह मन्त्रार्थ
अर्थ	:	सम्यक् जान सकते हैं। अन्यथा इस मन्त्र के

अर्थ ज्ञान में सन्देह रह जाता है। अनुष्ठान सिद्ध श्री स्वामी जी महाराज मन्त्रार्थ के प्रकृत ज्ञाता महापुरुष थे। वे जो केवल मन्त्र द्रष्टा ऋषि ही थे ऐसा नहीं, वे मन्त्र दर्शन में स्थितिवान् महर्षि थे। मन्त्र दर्शन के बाद जब विरोधि वर्ग अहङ्कार एवं ममकार निवृत्त हो जाते हैं, तब मन्त्र दर्शन में स्थिति लाभ होती है। शास्त्र बोलते हैं – ''दर्शनानन्तरं निरसनीयम् विरोधिवर्गम्, निरसनानन्तरं दर्शने स्थितिः।'' यह अहङ्कार और ममकार रूप विरोधी वर्ग निवृत्त हो जाने पर मन्त्र का दर्शन लाभ होता है एवं यह दर्शन स्थायी होता है। इस मन्त्र दर्शन एवं मन्त्रगत ज्ञान का अर्थ– स्व – स्वरूप ज्ञान, स्वरूप याथात्म्य ज्ञान (मर्मार्थ ज्ञान), उपाय ज्ञान, उपाय-याथात्म्य ज्ञान (मर्मार्थज्ञान), फलज्ञान, फल –याथात्म्यज्ञान (मर्मार्थ ज्ञान), स्व–स्वरुप ज्ञान माने–भगवान् का एकान्त शेषत्व, एकान्त पारतन्त्र्य रूप ज्ञान होना, स्व–स्वरूप का मर्मार्थज्ञ माने–भगवद् भागवत् का एकान्त शेषत्व, एकान्त पारतन्त्र्य रूप ज्ञान। उपाय ज्ञान माने–भगवत्प्राप्ति के लिए ईश्वर को ही एकमात्र उपाय रूप से जानना। उपाय का मर्मार्थ ज्ञान माने–आचार्य की कृपा को ही श्रेष्ठ उपाय रूप से जानना। फल ज्ञान माने भगवत्प्राप्ति को ही श्रेष्ठ फल रूप से जानना। फल का मर्मार्थ ज्ञान माने– भगवद्–भागवत् कैङ्कर्य को श्रेष्ठ फल रूप से जानना। मन्त्रगत उक्त समस्त ज्ञान में सम्यग् ज्ञानवान माने – भगवद् भागवत् कैङ्कर्य को श्रेष्ठ फल रूप से जानना। मन्त्रगत उक्त समस्त ज्ञान में सम्यग् भगवान् महापुरुष को मन्त्र दर्शन में स्थितिवान कहा जाता है। ऐसे मन्त्रदर्शन में स्थितिवान् एवं तदनुगुण अनुष्ठान में सिद्ध महापुरुष को जीवन्मुक्त पुरुष कहा जाता है। ''परं प्राप्यं समीपमागच्छति इति विचार्य्य स्वस्य आगामी फलं दृष्टा हृष्टमना एतत् प्रतिबन्धकेन सह वर्तमान दशायाम् भगवद्भागवतद्विषयेषु स्वरूपानुरूपाणि उपाय बुद्धया अहङ्कार ममकाराभ्यां च निवृत्या स्वयं प्रयोजनानि कैङ्कर्याणि करोति यः स मुक्त प्रायः।''

सारार्थ– परम प्राप्य वस्तु भगवान् दर्शन देंगे ऐसा विचार करते हुए जो इस भावी फल के विषय में विश्वासशाली होकर अहङ्कार ममकार रूप विरोधी वर्जित नहीं होकर भी सन्तुष्ट चित्त से कालाति पात करते,

हैं, वे महा विश्वासशाली महापुरुष प्रपन्न जब भगवद् भागवत की कृपा को ही उपाय रूप से दृढ़ता पूर्वक मान लेते हैं, अहङ्कार एवं ममकार (मैं और हमार) वर्जित होकर उक्त भगवद् भागवत् कैङ्कर्य करने को ही अपना स्वरूप जानकर स्वाभाविक भाव से स्वयं प्रयोजन के ज्ञान से (अर्थात् अन्य किसी फल लाभ की आशा नहीं रखकर) करणीय समझते हुए उस कैङ्कर्य में निरत रहते हैं, तब उन्हें मुक्त–प्राय अर्थात् जीचन्मुक्त कहा जाता हैं। इस स्तर के सिद्ध जीवन्मुक्त महापुरुषगण को अनुभव योग्य महानुभव कहा जाता है।

इस प्रकार के सम्यग् ज्ञानानुष्ठान सिद्ध श्री स्वामी जी महाराज जो एकजन अति विरल अनुभव योग्य जीवन्मुक्त महापुरुष थे वह अब सहज में ही उपलब्धि हो जायेगा। श्री स्वामी जी महाराज की अवशिष्ट जीवन यात्रा न्यूनाधिक दो वर्ष निरवच्छिन्न भाव में इस एक ही धारा से प्रवाहित थी। उनकी इह लीला के शेष दो तीन वर्ष के मध्य में, उनके दिव्य अनुष्ठान के माध्यम में अन्तर्निहित बहुत धर्म रहस्य, बहुत धर्मतत्व अपरूप बहुत सुदृढ़ सिद्धान्त प्रकट हो पड़े थे। उनकी कृपा से उसके मध्य कई एक ऐसा अनुष्ठान अपने नेत्रों से देखने का महा सौभाग्य हम लोगों को हुआ था। वैसी कई एक घटना नीचे दी जा रही है। श्री स्वामी जी महाराज उस समय कई एक दिन लगातार असुस्थ होकर पड़े थे। इसी कारण कई एक दिन से आश्रम में नियत 'श्री विष्णु सहस्र नाम' पाठ किया जा रहा था। उनकी असुस्थता का सम्वाद पाकर एकजन प्रवीण साधु उनका दर्शन करने आये। कुछ देर तक बैठे रहने के बाद श्री स्वामी जी से साधु जी पूँछे – आज आप कैसे हैं?

श्री स्वामी जी – आज दो दिन से थोड़ा अच्छे हैं। साधुजी श्री विष्णु सहस्रनाम का पाठ कितने दिन से हो रहा है स्वामी जी आज दश दिन हुआ। साधु जी– इसी तरह और भी कुछ दिन पाठ चलते रहने पर आप सम्पूर्ण आरोग्य लाभ करेंगे। श्री स्वामी जी महाराज इसको सुनकर कुछ उत्तर नहीं दिये केवल धीरे से थोड़ा हँस दिये और भी कुछ देर तक रहकर साधु जी प्रस्थान किये। उनके चले चले जाने पर श्री स्वामी जी महाराज अधिकारी जी को यह निर्देश दिये कि – आगामी काल से विष्णु सहस्र नाम का पाठ बन्द कर दो।

उनका ऐसा निर्देश सुनकर सभी विस्मित और हतवाक् हो गये! ऐसे विपरीत निर्देश का कारण हम लोग जरा सा भी नहीं समझ सके। हम लोग भावना करने लगे कि – नाम की महिमा को तो सभी शास्त्र ही कीर्त्तन करते हैं। 'नाम और नामी में भेद नहीं हैं, अपिचनामी से नाम बड़ा है। तब क्यों श्री स्वामी जी महाराज श्री विष्णु सहस्रनाम का पाठ बन्द कर दिये। इस प्रकार का एक विराट प्रश्न सभी के मन में उठ रहा था। किन्तु कोई ही इस विषय में श्री स्वामी जी महाराज से प्रश्न करने का साहस नहीं किया, सभी नीरव रहे। तब अन्तर्यामी श्री स्वामी जी महाराज स्वतः ही कहने लगे–

''देखो तुम लोगों को 'अनन्य गतित्त्वरूप सिद्धान्त' के रहस्य विषय में उपदेश दे रहा हूँ आज यह प्रसंग उठा है, इसी हेतु समीचीन विवेचना द्वारा कहता हूँ। हमारी असुस्थता के कारण श्री मन्दिर में श्री विष्णु सहस्र नाम के पाठ की व्यवस्था की गई है। आज दश दिन से पाठ हो रहा है, एवं हमारी व्याधिका कुछ उपशम हुआ है। यह दो घटना मिलाकर कुछ समय पहले आये हुए महात्मा जी कहते थे कि और भी कुछ दिन श्री विष्णु सहस्र नाम का पाठ होते रहने पर मैं सम्पूर्ण निरामय हो जाऊँगा। अर्थात् इस स्थल पर श्री विष्णु सहस्र नाम ही हमारे आरोग्य में उपाय है, यही उनका सिद्धान्त है। किन्तु यह सिद्धान्त सुसिद्धान्त नहीं है।

इस विषय में यथार्थ रहस्य, यथार्थ सिद्धान्त को तुम लोग धीर चित्त से श्रवण करो। 'विष्णु सहस्र नाम' जो रोगी को रोग मुक्त कर देता है इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। इसी लिए ही तो विष्णु सहस्र नाम की फल

श्रुति में है – 'रोगार्त्तो मुच्यते रोगात्।' नाम की महिमा नाम का वैभव जो शास्त्र में लिखा है वह सभी सत्य है किन्तु वह नाम की महिमा नामी के विधान से ही है। जैसे कर्म मार्ग ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग समस्त मार्ग ही संसार विमुक्ति के उपाय जरूर हैं, किन्तु भगवान के सङ्कल्प से ही ये तीन मार्ग भगवत्प्राप्ति के उपाय होते हैं। वे कहे हैं –'भक्तास्त्वतीव में प्रिया:, भक्तगण मेरे अत्यन्त प्रिय हैं, 'ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्', ज्ञानी तो हमारे प्राण स्वरूप हैं, इसी कारण ही तो ज्ञान मार्ग भक्ति मार्ग उनकी प्राप्ति का उपाय है, और भी वे बोले हैं – 'सर्व दुर्गाणिमत् प्रसादात् तरिष्यसि', 'मत्प्रसादादवाप्नोति', हमारी प्रसन्नता होने पर समस्त वाधाविघ्न विदूरित होकर हमको प्राप्त हो जाओगे। वे चरम एवं परम कथा बोले हैं– 'सर्व धर्मान्परित्यज्य, मामेकं शरणंव्रज। अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:। तुम कर्म, ज्ञान एवं भक्ति मार्ग को हमारी प्राप्ति के उपाय रूप बुद्धि को परित्याग करके हमारी शरण को ग्रहण करो। मैं ही तुम्हें सब पापों से विमुक्त करके अपने को प्राप्त करा दूँगा। स्वयं श्री भगवान् के श्री मुख से निकली हुई इन समस्त उक्तियों से, उनके चरम एवं परम इस वाक्य से समझना होगा कि भगवान् स्वयं ही अपनी प्राप्ति के उपाय हैं। उनका सङ्कल्प समझकर उनकी इच्छा समझकर सभी उपाय उनकी प्राप्ति के उपाय होते रहते हैं। कर्म ज्ञान भक्ति साधन के बिना ही तो उनकी इच्छा से बहुत जीव उद्धार पा गये हैं। इसी लिए तो रहस्य वेत्ता प्रवीण अनुभवी साधु लिख गये हैं :–

त्वामामनन्ति कवय: करुणामृताब्धे,
ज्ञानक्रिया भजनलभ्यमलभ्यमन्यै: ।
एतेषुकेन वरदोत्तर कोशलस्था:,
पूर्वं सदूर्वमभजन्त हि जन्तवस्त्वाम् ।।

अर्थ – हे करुणासिन्धो! विद्वानगण तुम्हें कर्म, ज्ञान एवं भक्ति के द्वारा लभ्य कहते रहते हैं। यह बात यदि सत्य है तो फिर अयोध्या और जनकपुर के साधन में अशक्त दूर्वादल प्रभृति जीवगण क्या करके मुक्ति लाभ किये, क्या करके तुम को प्राप्त किये। अभिप्राय यह है कि वे सब तो साधन भजन तो कुछ किये नहीं भगवान् की इच्छा से ही उनकी कृपा से ही उनको लाभ किये थे। भगवान् की यह इच्छा एवं कृपा ही भगवत्प्राप्ति का मूल कारण होती है। उनके सङ्कल्प से ही कर्म ज्ञान एवं भक्ति उनकी प्राप्ति के विभिन्न मार्ग होते हैं। इसी प्रकार भगवन्नाम की यह सर्व विघ्नहरा एवं सर्वरोगहरा शक्ति, नामी भगवान् के सङ्कल्प से ही उन्हीं की इच्छा से ही कार्यकरी होती है। जिस समय कृष्णा (द्रौपदी) सर्वसाधारण के सामने कौरवों के सभामध्य दु:शासन द्वारा विवस्त्रा हो रही थी, उस समय परम आर्त्ता होकर द्रौपदी निजउद्धार के लिए दोनों हाथ जोड़कर श्री कृष्ण को पुकारी थी–

हे कृष्ण! द्वारकावासिन! क्वासि यादवनन्दन!
इमामवस्थां सम्प्राप्तां, किमर्थं मामुपेक्षसे ।
शङ्खचक्र गदापाणे! द्वारका निलयाच्युत!
गोविन्द! पुण्डरीकाक्ष! रक्ष मां शरणागताम् ।।

हे शंख चक्र गदाधारिन! हे मथुरानाथ! हे कृष्ण! हमारे इस महाविपद के समय आकर मेरी रक्षा कीजिये। मेरी लज्जा निवारण कीजिये। बचाइये। उस समय यह नाम वस्त्र के रूप में परिणत होकर द्रौपदी की रक्षा किया था। किन्तु प्रकृत पक्ष में इस व्यापार के मूल में भी कृष्ण का अमोघ सङ्कल्प था। यह विज्ञात होता है उनके

श्री मुख से निकली हुई वाणी के द्वारा–

हा ! कृष्णेति यदाक्रन्दत्, कृष्णा मां दूवासिनम् ।
ऋणं प्रवृद्धमेव मे, हृदयान्नापसर्पति ।।

जिस समय द्रौपदी दूरवासी हमें – 'हा! कृष्ण रक्षा करो' कहकर प्राण भरकर क्रन्दन कर रहती थी, उस समय हमारे ऊपर ऋण को बढ़ा दिया था। कृष्ण कहकर उसका यह आकुल क्रन्दन अपने हृदय किसी भी तरह दूर करने में समर्थ नहीं हो रहा हूँ। नामी के इस महा सङ्कल्प के कारण से ही नाम का इतना बड़ा प्रभाव है। समस्त वस्तुओं एवं गुणों के मूल में भगवान् स्वयं विराजित रहते हैं। आदर्श शरणागत व्यक्ति मात्र को ही इस धारणा को दृढ़ता पूर्वक अपने हृदय में रखना चाहिए। विष्णु सहस्र नाम का पाठ रोग मुक्ति के लिए अवश्य करना चाहिए। इस नाम से रोग विमुक्ति होती है। यह नाम सर्वफलप्रद है यह बात अति सत्य है। किन्तु साथ ही साथ मन में यह पक्की धारणा अवश्य रखनी चाहिए कि नाम का यह प्रभाव नामी की इच्छा एवं सङ्कल्प से है। इन सब फलों के देने के आदि कारण भगवान् का अमोध सङ्कल्प एवं भगवान् स्वयं होते हैं। अनन्य गतित्व सिद्धान्त का अनन्य गति के रहस्य की यही शेष सीमा है। प्रपन्न व्यक्ति मात्र को ही इस चरम सिद्धान्त में दृढ़ रहना एकान्त कर्त्तव्य है। आज ये प्रवीण महात्मा जी बोले कि विष्णु सहस्र नाम ही हमारे रोग के उपशम का कारण है। किन्तु सूक्ष्म विचार से यह उक्ति, यह भावना चिरपोषित आदर्श सिद्धान्त के अनुरूप नहीं है। मैंने इसी कारण से विष्णु सहस्र नाम का पाठ वन्द करा दिया। फिर मैं इस पाठ का आरम्भ कराऊँगा। किन्तु सभी लोगों को दृढ़ता पूर्वक यह अवश्य जान लेना चाहिए कि इस पाठ का उद्देश्य भगवान की प्रसन्नता लाभ करना है, एवं उनकी प्रसन्नता ही व्याधि से निरामय कर देगी।''

श्री स्वामी जी महाराज नाम – महिमा सिद्धान्त के रहस्यजाल को अनावृत कर दिये। समुपस्थित अनुचर वृन्द एकाग्रता पूर्वक उनके श्री मुख से निकली हुई वाणी को सुनकर विस्मित हो गये, विमुग्ध हो गये, कृतकृत्य हो गये। श्री विष्णु सहस्र नाम का पाठ जिस तरह चल रहा था फिर उसी तरह चलने लगा। निर्हेतुकरुणा करके हम लोगों को शिक्षा देने के लिए ही श्री स्वामी जी महाराज विष्णु सहस्र नाम का पाठ बन्द कर देने को बोले थे। यही सद्गुरु का आदर्श अनुष्ठान है, यही शिष्य के प्रति सद्गुरु के कृपा का निदर्शन है श्री स्वामी जी महाराज के अनन्य–गतित्व सिद्धान्तगत रहस्य विषय में अच्छी तरह दृढ़ता सूचक एक अलौकिक अनुष्ठान का दृष्टान्त ऊपर में उल्लिखित हुआ। अब उनके 'भागवत् – पारतन्त्र्य' गुण का परिचायक एक असाधारण अनुष्ठान का वर्णित हो रहा हैं

श्री अयोध्याधाम बहुत साधुसन्तों की निवास भूमि हैं। शतायु अथवा अस्सी वर्ष के ऊपर अवस्था वाले प्रवीण साधु भी बहुत हैं। इन सब शिष्ट व्यक्तिओं के मध्य श्री वेदान्ती स्वामी भी एकजन थे। वे एकजन श्रोत्रिय धर्मनिष्ठ साधननिष्ठ साधु सेवा परायण अस्सी वर्ष के ऊपर उम्र वाले सात्विक पुरुष थे। वे श्री स्वामी जी महाराज की विशेष श्रद्धा भक्ति करते, एवं प्रायः ही उनके पास आते थे। अच्छी तरह से कुछ देर तक बैठे रहते, धर्मालोचना करते। एक समय श्री स्वामी जी कान की पीड़ा से अस्वस्थ हो पड़े थे, इस पीड़ा की शान्ति के लिए कोई औषध व्यवहार करने के अनिच्छुक थे। श्री भगवान् के अनुसन्धान एवं अनुभव में कालातिपात करते हुए नीरव रहकर मन्त्रणा सहन कर रहे थे। उनकी इस अस्वस्थता का सम्वाद पाकर श्री स्वामी उनका दर्शन करने आये। साथ एक छोटी शीशी में कुछ तरल औषध ले आये। किन्तु वे वैद्य नहीं थे, उनकी कुटी में यत्न

पूर्वक रक्षित बहुत पुरानी यह औषधि प्रीतिवश ले आये थे। श्री स्वामी जी महाराज से कान की पीड़ा के विषय में नाना प्रकार का प्रश्न किये, इसके बाद बोले– ''महाराज! मैं आपके कान में डालने के लिए एक दवा ले आया हूँ। यह रामवाण हैं, अर्थात् रामवाण की तरह यह अमोध है कभी विफल नहीं होगी। इस औषधि को मैं स्वयं आपके कान में डाल दूँगा। वेदान्ती जी की ऐसी अभिलाषा सुनते ही पीड़ित कान अच्छी तरह से वेदान्ती जी के सन्मुख कर दिये जिससे कि औषधि डालने में कोई असुविधा नहीं हो। वेदान्ती स्वामी जी काँपते हुए हाथ से कान में दवा डालने का उपक्रम करने लगे। उस समय उस घर में और भी दो एक जन साधु उपस्थित थे। उनके मध्य श्री रामप्रपन्नचार्य शास्त्री जी भी थे। ये श्री स्वामी जी महाराज के एकजन गुणी और प्राचीन शिष्य थे। उनके परमपद के बाद अयोध्या आश्रम के उत्तराधिकारी महान्त हुए थे। इन राम प्रपन्न स्वामी जी की यह इच्छा नहीं थी एक अजाना औषध एक अनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा श्री स्वामी जी महाराज के कान में डलवाई जाय। अथच गुरुदेव श्री स्वामी जी की इच्छा के विरुद्ध कोई बात कहने का वे साहस नहीं पाते थे। वेदान्ती स्वामी शीशी को उलट करके श्री स्वामी जी महाराज के कान में दवा डालना शुरू किये, श्री रामप्रपन्न स्वामी भयभीत होकर एकाग्रता पूर्वक देख रहे थे। कई एक सैकेण्ड के बाद ही श्रीराम प्रपन्न स्वामी वेदान्ती स्वामी से बोले– ''दवा कान के भीतर पड़ गई है, अब आप डालना बन्द कर दिजिए। क्षीण दृष्टि वेदान्ती स्वामी बन्द कर दिए । उनके मन में हुआ कि दवा यथायथ प्रयुक्त हुई है। श्री स्वामी जी महाराज भी मस्तक सीधा करके स्वाभाविक रूप से बैठ गये। वास्तविक औषध एक बूंद भी कान में नहीं गई थी। बिना जानी हुई यह दवा कान के भीतर जाकर पीछे कोई अनिष्ट नहीं करे, इसी भय से श्री रामप्रपन्न स्वामी कौशल करके औषध डालना बन्द करा दिये थे। उस समय वहाँ उपस्थित रहकर यह घटना साक्षात् दर्शन करने का महा सौभाग्य लेखक को हुआ था।

इस घटना में तीन जन साधु पुरुष का तीन विलक्षण अनुष्ठान परिलक्षित होता है। (1) अपने गुरुदेव की भावी अनिष्ट की आशङ्का दूर करने के उद्देश्य से उनके सन्मुख, उनके श्रवण गोचर मिथ्या भाषण। (2) एकजन सिद्ध महापुरुष के पीड़ा के शान्ति के लिए अन्य साधु पुरुष का आकुल आग्रह, एवं उचित अनुचित विचार शून्य होकर इस पीड़ा को शान्त करने का प्रयत्न। (3) भागवत् पारतन्त्र्य रूप आदर्श गुण सिद्ध महापुरुष के द्वारा इष्टानिष्ट विचार शून्य हो कर अपनी व्याधि में औषध देने में अनभिज्ञ साधु–पुरुष को असाधारणा मर्यादा दान, एवं उनके परतन्त्र होकर अवस्थान। इस प्रसङ्ग में प्रथम दो अनुष्ठानों के कोई चर्चा नहीं की हुई है। तृतीय अनुष्ठान का विषय यत्किञ्चित् इस स्थल पर आलोचित हो रहा है। उच्चस्तर के साधु पुरुषों का मन और उनका आशय अतीव गम्भीर होता है। उनका आचार व अनुष्ठान सभी विलक्षण होता है। इन सब आचार और अनुष्ठान के पीछे बहुत गूढ़तत्त्व निहित रहता है। आलोच्य स्थल में देखा जाता है कि श्री स्वामी जी महाराज कई एक दिन से कान की पीड़ा के कारण गुरुतर यन्त्रणा भोग करते हुए भी औषध सेवन करने या औषध कान में डालने के लिए अनुरोध उपरोध करने पर भी औषध लेने में असम्मत थे। किन्तु चिकित्सा में सम्पूर्ण अनभिज्ञ, अनाहूत साधु पुरुष की प्रार्थना पर फलाफल का कोई विचार नहीं करके वे उसी क्षण औषध लेने के लिए प्रस्तुत हो गये।

अभिनिवेश के साथ भावना करके देखने पर यह समझने में विलम्ब नहीं लगता कि स्वामी जी महाराज के सदृश महाज्ञानी पुरुष की औषधि लेने में यह व्यवहित सम्मति निश्चय एक विशिष्ट विचार के द्वारा

प्रणोदित हुई थी। उनके श्री मुख से इस विषय में कोई विश्लेषण सुनने का सौभाग्य हम लोगों को नहीं मिला। तथापि उनके इस विलक्षण आचरण कार्य कारण संश्लिष्ट अनुमान किया जा सकता है। प्रपन्न महापुरुषों के निकट भागवतों की मर्यादा सर्वोच्च होती है। जिस तरह भागवतों का मन गम्भीर होता है उसी तरह उनकी इच्छाएँ भी गाम्भीर्य पूर्ण होती हैं। उनकी प्रार्थना भी अमोघ, रामवाण के सदृश अव्यर्थ होती है। यथार्थ भागवतों की प्रार्थना को बिना पूरा किये हुए नहीं रह सकते। भागवत् की इस महिमा का विषय, भगवान् का यह पारतन्त्र्य का विषय श्री स्वामी जी महाराज विशेष रूप से ही उपलब्धि करते। और फिर जिस तरह भगवान का एक प्रधान गुण भक्त पारतन्त्र्य है, उसी तरह प्रपन्न महापुरुष का भी प्रधानतम गुण यह भागवत्पारतन्त्र्य होता है। भगवान् के सन्तोष विधान की अपेक्षा भागवत् के सन्तोष विधान में वे अधिक गुरुत्त्व आरोपण करते हैं। इसी कारण सिद्धान्त शास्त्र का शिरोमणि –स्वरूप 'श्रीवचन भूषण' ग्रन्थ बोलता है– **'प्रथम पर्व भगवत्कैङ्कर्य, चरम पर्व भागवत्कैङ्कर्य'** भागवत्कैङ्कर्य को चरम पर्व कहा गया है, अर्थात् भागवतों की सेवा ही सर्व श्रेष्ठ सेवा है, भगवान् की सेवा के अपेक्षा भी श्रेष्ठ कह कर निर्णय किया गया है।

श्री स्वामी जी महाराज बिना विचार किये ही अपने देह की अनिष्ट सम्भावना रहने पर भी किस कारण से व्याधि ग्रस्त कान में औषध डालने की सम्मति शीघ्र ही दे दिये थे। वह उपरोक्त तत्त्वों के प्रणिधान करने पर कुछ अनुमान किया जा सकता है। जो वे विशेष शास्त्र में कीर्त्तित इन सब तत्वों को केवल जानते ही नहीं थे, अपिच वे समस्त तत्वों को अच्छी तरह उपलब्धि करके, सब तरह से उसके अनुगुण अनुष्ठान करके इनका सजीव रूप प्रकट कर गये हैं। इसी कारण ही साधु समाज उनको 'श्री वचन भूषण' गत दिव्य भावों का विशदीकार प्रवीण महापुरुष कहकर अभिहित कर रखे हैं। वे थे 'श्री वाग्भूषण दिव्यभाव विशदीकार प्रवीणः।' नित्य पाठ्य उनकी तनियतन् की (स्तुतिश्लोक की) एक विशिष्ट यह पंक्ति है।

शाण्डिल्याह्वयवंशभूषणमणिंरामावतारात्मजम्,
श्रीरङ्गार्य–पदारविन्दमधुपं मान्यं सदा साधुभिः ।
श्री वाग्भूषणदिव्यभाव विशदीकारप्रवीणं सदा,
शान्तं श्री बलराम सूरिमनघं नित्यं भजे सादरम् ॥

इस स्थल पर जिस दिव्य अनुष्ठान की आलोचना की हुई है, उस अनुष्ठान के समय श्री स्वामी जी महाराज की उम्र न्यूनाधिक अष्टाशी वर्ष की रही होगी। इसके पश्चात् वो कुछ ज्यादा एक साल तक घरा धाम पर विराज किये थे। इस अतिवृद्ध अवस्था में भी उनकी आदर्श दिनचर्या अटूट थी। उनका आलाप आलोचना, आचार व्यवहार, निष्ठा, अनुष्ठान प्रत्येक ही लोकातीत था। प्रत्येक ही अमूल्य और शिक्षा प्रद था। वे अफुरन्त ज्ञान के भण्डार थे। एवं अफुरन्त भक्ति के उत्स थे। यह ज्ञान और भक्ति की आलोक छटा उनके दिव्य मङ्गल विग्रह को उद्भसित कर दिया था। धर्म का अमूल्य तत्व समूह उनकी हृदय कन्दरा में अति यत्न के सहित निहित थे। वे नये नये अनुष्ठानों के द्वारा धर्मगत रहस्य जाल अनावृत करके साधु समाज में ज्ञान पिपासुओं के ज्ञान नेत्र को उन्मीलित कर गये हैं। एक वाक्य में वे विग्रहवान् जीवन्त धर्म थे।

उनके इस शेष वर्ष के नित्य नव विचित्र ज्ञान गर्भ अनुष्ठान की कथा आश्रमवासियों से श्रवण किया हूँ किन्तु व्यक्ति अभिज्ञता नहीं रहने की वजह उसका वर्णन विकृत आकार धारण कर सकता है इस महा अपराध के भय से उसे उल्लेख नहीं किया गया। इस अति परिपक्क दशा में वे ''वैष्णव भास्कर'' नाम से समग्र

भारत के वैष्णव समाज में सर्वत्र पूजित थे। उनकी ज्ञान, भक्ति प्रपत्ति एवं अनुष्ठान की अंशुराशि समग्र वैष्णव समाज को आलोकित कर रखी थी।

मर्त्य धाम में शेष वर्ष–

इस समय (खृ0 1930–1931) श्री स्वामी जी महाराज का दिव्य आत्मभाव जिस प्रकार अतीव पुर उज्जवल रूप से विराज करने लगा था। उसी प्रकार उनका दिव्य देह उसके विपरीत भाव से क्षीण से क्षीणतर होने लगा। उनका आहार दिनान्त में केवल तीन पाव दूध था। उनका जीर्ण देह देखकर कोई भक्त व शिष्य यदि दूध की मात्रा बढ़ाने को अथवा नित्य कुछ फलमूल भोजन करने की प्रार्थना करता तो उसे स्वीकार नहीं करते। वे कहते कि – यह देह तो अब और ज्यादा दिन रहेगा नहीं, इसको पुष्ट करने का अधिक प्रयोजन नहीं है, अधिक यत्न करने से कोई फलोदय नहीं होगा।' उनके श्री मुख से निकली हुई ये सब बातों से अथवा उनके आकार इङ्गित से, उनके अन्तरङ्ग अनुचर सभी के मन में यह होता कि अब और अधिक दिन इस मर्त्य धाम में ये विराज नहीं करेंगे। उनका यहाँ का कृत्य शेष हो गया है। आदर्श धर्म भाव का प्रचार एवं प्रसार श्री रामानुज स्वामी के दिव्य आज्ञा की अभिवृद्धि वे सम्पादन कर दिये हैं। वे इस समय निज धाम परम पद जाने का उत्सुक हो रहे हैं। हम लोग तो जानते, किन्तु अगर उनके प्रति श्री भगवान् का इस प्रकार से निर्देश भी हुआ हो तो वे उसे उपलब्धि किये थे। उनका जीर्ण शीर्ण दिव्य मङ्गल विग्रह क्रमशः अवनति की तरफ जाता देखकर उनके सभी अनुचरवर्ग अतीव चिन्तित हो पड़े। उन सबों के मन में यह उदय हुआ कि किसी न किसी दिन एक आकस्मिक व्याधि आ पड़ेगी। जिसे उनका जीर्ण शीर्ण दिव्य देह सहन नहीं कर सकेगा। और हम लोग उनको हरा देंगे।

उनके अनुचर वर्गो की यह बात हम लोगों के भी कान में आ पहुँची। हम लोग अत्यन्त चिन्तित और आशङ्कित हो गये। किन्तु चिन्ता और आशङ्का होने पर भी हम लोगों में उसके प्रतिकार करने की शक्ति ही क्या है? श्री भगवान् का एवं श्री गुरु देव का सङ्कल्प अमोध है।

इस समय हमारे मन हुआ कि 'हमारे भाई, भगिनी और भगिनी प्रति अनेक ही उनकी कृपा पाये हैं, उनसे समाश्रित हुए हैं, किन्तु हमारे पुत्र कन्या आज तक भी इस कृपा लाभ से वञ्चित ही रह गये। उस समय हमारे कनिष्ठ सन्तान की उम्र पाँच वर्ष की और ज्येष्ठ की तेरह वर्ष की थी। इनको शीघ्र ही उनके चरण में समाश्रित करा देना हमारा परम कर्तव्य है। यदि पिता माता सन्तानों की केवल ऐहिक उन्नति की ही व्यवस्था करें, पारत्रिक उन्नति की व्यवस्थान करें, संसार रूप मृत्यु से उद्धार नहीं करें, तो फिर वह पिता, पिता ही नहीं, और माता, माता ही नहीं है। श्री स्वामी जी महाराज द्वारा उपदृष्ट श्री मद्भागवत के इस अमूल्य श्लोक की बात हमारे मन में उदय हुई –

गुरुर्न सस्यात् स्वजनोसस्यात्,
पिता न स स्यात्, जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्नपतिश्च स स्यात्,
न मोचयेद्यः समुपेत् मृत्युम्।। (भाः 5/5/18)

यह विचार कर एक मास के मध्य ही मैं अपनी स्त्री दो पुत्र और एक कन्या एवं अन्यान्य दो, चार आत्मीय को लेकर 1931 खृः फरवरी मास में आयोध्या धाम पहुँचे। अपने प्राण का आग्रह उनके चरण में निवेदन किये। वे दो एक दिन के मध्य ही उन सबको ही समाश्रित कर लिये, एवं प्राण भर कर आशीर्वाद किये। हमारी

आन्तरिक अभिलाषा को अपनी कृपा से चरितार्थ किये। हम लोग भी पुत्र कन्या के प्रति अपना परम कर्तव्य पालित हुआ देख कर कृतकृत्य हो गये।

श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य विग्रह के विषय में उनके अनुचर वर्ग की आशङ्का कार्य में परिणत होने में विशेष विलम्ब नहीं हुआ। कई एक महीना के बाद ही वे अकस्मात् अस्वस्थ हो गये। यह व्याधि ही उनके अन्तिम व्याधि रूप में परिणत हो गई। सिद्ध महापुरुष थे। वे पहले ही से देख पाये थे कि अति अल्प दिन के भीतर ही वे इस मर्त्य धाम को परित्याग करके चले जायेंगे। इसका प्रकृष्ट निदर्शन उनकी दिव्य उक्ति एवं दिव्य आचरण में हम लोगों को मिलता है। वे अपने परम पद के दो मास पूर्व ही अपने परम पद के बाद प्रिय, ज्ञानी और भक्तिमान् शिष्य श्री राम प्रपन्नचार्य स्वामी को उत्तराधिकारी महन्त पद पर नियोग किये एवं अधिकारी गरुड़ध्वज स्वामी को आम मोक्तार के पद पर वहाल रखकर एक नूतन दलील आइन सङ्गत भाव में रजिस्ट्री कर दिये। और यह बात एक रजिष्ट्री पत्र से हम लोगों को विदित कर दिये। उस समय वे स्वतः लिखने में असमर्थ रहने के कारण एक शिष्य से लिखाकर उसका एक नकल हम लोगों में प्रत्येक के पास भेज दिये। उसकी नकल नीचे दी जा रही है –

'कुछ दिन आगे पण्डित श्री भागवताचार्य जी का परम पद हो गया। हम लिखे रहे कि हमारे अन्तकाल के पीछे श्री भागवाताचार्य महन्त होंगे, सो हमारे आगे उनका वैकुण्ठ वास हो गया। हम मन्दिर के प्रथम सर्वराहकार रहे, उनके पीछे आज दिन भी मन्दिर का सर्वराहकार है। हमारे पीछे पण्डित रामप्रपन्नचार्य मन्दिर के सर्वराहकार होंगे। उनके आगे भी मन्दिर का आम मोक्तार श्री गरुड़ध्वज रामानुजदास मन्दिर श्री ठाकुर जी का सर्वकार्य करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं। यह सम्वाद पञ्चों को विदित होय और कमेटी में भी हम यह संवाद विदित करेंगे।

द: श्रीवलराम स्वामी

व: कमलनयन रामानुजदास जी।

दलील की नकल (30/7/31) रजिष्ट्री करके श्री स्वामी जी महाराज के निर्देश से अधिकारी श्री गरुड़ध्वज स्वामी हमारे पास कलिकाता में भेज दिये।

उनके परमपद जाने के एकमास पूर्व एकजन ज्ञानी कर्मकाण्डी दक्षिण भारतीय पण्डित श्री तोताद्रि आयङ्गार अयोध्या धाम आकर दक्षिणी मन्दिर में अवस्थान करते थे। कई एक दिन के बाद उस स्थल पर उनका कार्य शेष हो गया, अब वे अयोध्या परित्याग करके चले जाने का वन्दोवस्त करने लगे। श्री स्वामी जी महाराज यह सम्वाद पाकर अधिकारी श्री गुरुड़ध्वज स्वामी को निर्देश किये– '' श्री तोताद्रि आयङ्गार स्वामी को और भी कुछ दिन रहने के लिए अनुरोध करो जैसे वे अयोध्या में रह जाये, एक मास के मध्य में ही उनकी सहायता का विशेष प्रयोजन होगा। '' अधिकारी जी उनके पास जाकर श्री स्वामी जी का अभिप्राय उनसे निवेदन किये। तब ये दक्षिणी पण्डित जी अपना जाना स्थगित कर दिये। इस विशेष व्यापार से सभी आश्रमवासी यह स्पष्ट समझ गये कि श्री स्वामी जी महाराज एक मास के मध्य में ही अपनी इह लीला संवरण करेंगे। वास्तव पक्ष में हुआ भी वही। उपरोक्त अपने निर्देशानुयायी एक मास के मध्य में ही इस धाम को परित्याग करके परम पद को प्रयाण किये थे। इस तोताद्रि आयङ्गार स्वामी की परिचालना में श्री स्वामी जी महाराज का 'बह्म मेध संस्कार' एवं 'वैकुण्ठोत्सव' प्रभृति समपार लौकि क्रिया सुसम्पन्न हुई थी।

मासाधिक पूर्व होते निज भृत्यगणे ।
आज्ञादिले देह कृत्य शास्त्र विधिसने ।
'ब्रह्म मेध' शास्त्रपाठ 'वैकुण्ठ–उत्सव।
'वैष्णवाराधन' आदि यत किछू सब ।। (आचार्य – प्रकाश)

तृतीय प्रवाह – दशम अध्याय

।। महा–प्रयाण के प्राक्काल में।।

खृ: 1931 साल 15 अथवा 16 अगस्त को आदि केशव रामानुज दास के (आशुतोषधर) एवं हमारे पास अधिकारी श्री गरुड़ध्वज स्वामी का एक पत्र आया, उसमें लिखे थे– ''श्री स्वामी जी महाराज का दोनों ही चरण फूल उठा है, तुम लोग शीघ्र ही माधव कविराज के पास से एक प्रलेप 'प्रयोग की नियमावली के साथ भेज दो।'

श्री माधव चन्द्र भट्टाचार्य कलिकाता के एकजन सुविख्यात अति प्रवीण अस्सी वर्ष से अधिक उम्र वाले कविराज थे। वे एक जन धर्म प्रवण एवं आचार–निष्ठ पुरुष थे। बीच बीच में प्रयोजन पड़ने पर श्री स्वामी जी महाराज के लिए बाह्य प्रयोग करने के औषध उनसे लेकर हम लोग भेज दिया करते थे। इस दफे भी उनके पास से प्रयोग के उपयोगी प्रलेप को ले आया। नव्वे वर्ष की अवस्था में श्री स्वामी जी महाराज के दोनों चरण में यह शोथ की अवस्था जो विशेष उद्वेग का कारण है, उसे मैं आदि केशव जी को बताया एवं उनसे कहा– कि यह औषध लेकर हम दोनों में एक जन को आज ही अयोध्या अवश्य चला जाना चाहिए। वे उसी रात्रि में औषध लेकर अयोध्या चले गये। उनको गाड़ी में बैठाने के लिए मैं भी हावड़ा स्टेशन गया। ट्रेन छोड़ने के समय कह दिया कि मैं भी उद्विग्न हूँ, अतिशीघ्र जाना चाहता हूँ, आप वहाँ पहुँचते ही श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति लेकर उनका समाचार हम को विज्ञापित करना। आपका पत्र पाते ही म भी अयोध्या के लिए रवाना हो जाऊँगा। आदि के शव जी के अयोध्या पहुँचने के दूसरे दिन ही हमें टेलिग्राम मिला – कि श्री स्वामी जी महाराज हमको अतिशीघ्र अयोध्या जाने के लिए निर्देश किये हैं। हमारा अयोध्या जाना सुनकर डॉ0 ज्योतिषचन्द्र गुप्त की माता श्रीमती चक्रपाणि रामानुजदासी हमारे सङ्ग अयोध्या जाने के लिए बहुत कहने लगी मैं उनको अपने साथ चलने के लिए सम्मत हो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल 18 कि 19 अगस्त को हम दोनों अयोध्या पहुँच गये। पहुँचते ही देखता हूँ कि अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी आश्रम के द्वार पर खड़े हुए हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनसे सुना कि श्री स्वामी जी महाराज कई एक दिन से कुछ असुस्थ मालूम पड़ते हैं एवं दुर्वलता अनुभव कर रहे हैं। अन्यान्य दिक् से चिन्ता का कारण विशेष है ऐसा मालूम नहीं होता। हम लोग थोड़ा आश्वस्त हुए। हाथ मुख–पाँव धोकर श्री स्वामी जी महाराज की कोठरी में जाकर उनका दर्शन कर के साष्टाङ्ग किया। बाहर देखने की कुछ भी शक्ति नहीं थी, दो चक्षु ही दृष्टि शक्तिहीन थे। श्री चक्रपाणि रामानुजदासी और हम अपना अपना नाम उच्चारण करके दोनों जन साष्टाङ्ग किये, यही वैष्णव विधि है। अधिकारी भी, हम लोगों का आना श्री स्वामी जी महाराज से सूचित किये। श्री स्वामी जी महाराज का मुख मण्डल प्रसन्न हो गया। वे कुशल समाचार पूँछे। उनसे उनके दिव्य मङ्गल विग्रह की अवस्था पूछने के पहले ही वे हम लोगों से कहने लगे– ''हमारे लिए चिन्ता नहीं करो, हमारे पाँव में कुछ शोथ हो गया है, इस वृद्ध अवस्था में इस तरह होने की ही

बात है।'' उनके कथन की भङ्गिमा से किन्तु हम लोग जरा सा भी निश्चिन्त नहीं हो सके। वरञ्च भीत ही हुए। तदनन्तर हम लोगों को स्नान पूजा समाप्त करके वाल भोग प्रसाद ग्रहण करके आने को कहे। मैं निर्देश पालन करके पुनः उनकी सन्निधि में आया, उस वक्त आठ, साढ़े आठ बज रहा होगा। देखा कि वे अपनी कोठरी के छत पर बैठे हैं, अपने सन्मुख स्व अन्तरङ्ग सेवक श्री कमलनयन जी को 'अर्थ पञ्चक' पढ़ रहे हैं। उनसे दिव्य मङ्गल विग्रह को उत्तम रूप से निरीक्षण कर लिया। उनके दोनों चरण में शोथ के अलावा अन्य किसी विलक्षणता को नहीं समझ सका। पहले जिस भाव में उन्हें योगासन से बैठे हुए देखा हूँ, जिस भाव में एकाग्र मन से शास्त्र पढ़ाते देखा हूँ, आज भी उसी भाव को लक्ष्य किया। किन्तु तथापि मन निश्चिन्त नहीं हुआ। सर्वदा मन भयमुक्त प्रश्न उठता था क्यों यह चरण फूला हुआ है। श्री स्वामी जी महाराज हमें आदेश नहीं देने से उनको परीक्षा करके देखने के लिए अनुमति लेने का साहस नहीं पाया। श्री भगवान के निकट प्रार्थना किया, अनुमति पाने की प्रतीक्षा करने लगा। 'अर्थ पञ्चक' का पाठ होता देखकर विस्मय एवं पुलक से हमारा सर्वाङ्ग भर उठा। श्री अयोध्या आने के समय ट्रेन पर सर्वदा ही हृदय में यह तीव्र आकांक्षा हो रही थी इस दफे जिससे श्री स्वामी जी महाराज के श्री मुख से 'अर्थ पञ्चक' के कालक्षेप सुनने का सौभाग्य हो। वे दो वर्ष आगे संक्षेप में इस अर्थ पञ्चक का उपदेश दिये थे, उपदेश के अन्त में बोले थे– ''अर्थ पञ्चक मुमुक्षु पुरुष को अवश्य जानना चाहिए, यह फिर कभी सुनना।'' उस समय से लेकर उनके श्री मुख से इस विषय में विशद उपदेश सुनने का आग्रह बढ़ता जा रहा था। मन ही मन उनके चरण में एवं श्री विजय राघव जी महाराज के चरण में प्रार्थना पूर्वक ज्ञापन करता था। इस बार अयोध्या पहुँच कर ही देखा कि वही अर्थ पञ्चक का कालक्षेप चल रहा है। श्री गुरु–गोविन्द की इस अनुपम करुणा का निदर्शन देख कर विस्मय एवं आनन्द में डूब गया। श्री स्वामी जी महाराज आसन पर बैठे हुए हैं, उनके सामने कम्बल बिछा हुआ है उस पर उनके अन्तरङ्ग सेवक कमलनयन जी एवं और भी दो एकजन ज्ञानवृद्ध अयोध्यावासी साधु बैठे हुए हैं। मैं उन लोगों के एक पास में बैठ गया। श्री स्वामी जी महाराज प्रेम के सहित उन लोगों को अर्थ पञ्चक ग्रन्थ के विषयों की शिक्षा दे रहे थे। श्री भगवान को लाभ करने के विविध उपायों का विषय वर्णन कर रहे थे। पहले ही बोले –

भगवत्प्राप्ति का पाँच उपाय :–

1 – कर्म योग
2– ज्ञान योग
3– भक्ति योग
4– प्रपत्तिवा शरणागति
5– आचार्याभिमान

तदनन्तर कर्म योग का विश्लेषण करना आरम्भ किये। यज्ञ, दान, तीर्थ भ्रमण, पुण्य नदी स्नान, रामनवमी, जन्माष्टमी प्रभृति व्रतानुष्ठान, फल मूल भोजन, शास्त्राध्ययन, जप, तर्पणादिकार्य समस्त कर्मयोग के अन्तर्गत हैं। यह समस्त कार्य भगवान् के सन्तोषार्थ ही मैं करता हूँ ऐसी बुद्धि से कर्म – कर्ता यदि कर्म करते हैं तभी इन सभी कार्यो के द्वारा परिणाम में उनकी संसार विमुक्ति होती है और भगवप्राप्ति हो जाती है। यह कर्म का अनुष्ठान भगवान् के सेवा बुद्धि से नहीं करने पर ये समस्त पुण्य कार्य केवल ऐहिकवापारत्रिक (स्वर्गादि) सुखदान करते हैं, यह सुखभोग समाप्त हो जाने पर पुनः संसार में प्रत्यावर्तन करना पड़ता है। "क्षीणे पुण्ये प्रविशन्ति मर्त्यलोकम्''। साधारण रूप से इस बात को कहकर श्री स्वामी जी महाराज एक विलक्षण कर्म का विषय बोलना आरम्भ किये।

''कर्मयोग की वैशिष्टय व्याख्या''

यज्ञ भगवान् की सेवा बुद्धि से करना। अगर मन में सन्देह हो कि विविध यज्ञकार्य में विविध देवताओं के उद्देश्य से उनकी प्रसन्नता के लिए यज्ञानुष्ठान हुआ करते हैं तो फिर उसमें भगवान् की सेवा बुद्धि आएगी किस प्रकार ? ऐसी भावना करना ठीक नहीं है । ऐसी भावना करना कि प्रत्येक देवताओं ही के भीतर अन्तर्यामी रूप से भगवान विराजमान हैं, एवं इस यज्ञ के द्वारा ये परमात्मा भी सन्तुष्ट होंगे यज्ञादि में विविध देवताओं के उद्देश्य से आहुति देने के बाद नारायणाय स्वाहा, वासुदेवाय स्वाहा, दामोदराय स्वाहा,' यह कर आहुति पूर्ण की जाती है।

'दान' रूप कर्म– सत्पात्र में धर्म बुद्धि पूर्वक 'देय' इसी बात को शास्त्र बोलते हैं। इस कर्म में हम कुछ फल नहीं चाहते हैं भगवान् प्रसन्न हो इसीलिए हम कर्म कर रहे हैं, प्रीयतां भगवान् विष्णुः', इसी बुद्धि को धर्म बुद्धि कहते हैं।' 'ध्यान' एक प्रकार का कर्म योग। इस ध्यान को करते समय श्री भगवान् एवं तद्विषयक मन्त्र इन्हीं दोनों का ध्यान करना चाहिए। 'ध्यात्वा देवं जपेन्मन्त्रम्'। 'पुण्य क्षेत्र में वास' – यह कर्म योग के अन्तर्गत एक कर्म है। इस पुण्य तीर्थ वास करने के समय यह भावना करना होगा कि यह तीर्थ वास हमारी वासना पूर्ण करेगा। भगवान् की प्रसन्नता को बढ़ाकर भगवत्प्राप्ति करा देगा। 'देशोऽयं सर्वकामधुक्' ऐसी बुद्धि रखना होगा। 'फल मूल भोजन'- यह व्यापार भी कर्मयोग के अन्तर्गत है। किन्तु केवल फल मूल भोजन भगवत् प्राप्ति का सहायक नहीं होता। यथार्थ बुद्धि मुक्त होकर इस फल मूल भोजन में प्रवृत्ति करना चाहिए।

इस प्रकार का भोजन मनः शुद्धि का सहायक है, अतएव भगवान की प्रसन्नता का विधायक है। ऐसी बुद्धि ही फलमूल भोजन व्यापार का सारभूत वस्तु है। 'प्रीयतां भगवान् विष्णुः? ऐसी बुद्धि से युक्त होकर फलमूल भोजन करना चाहिए। 'शास्त्राभ्यास' – यह कर्मयोग का एक प्रधान अङ्ग है। इस शास्त्राभ्यास शब्द का अर्थ मुख्यतः साम्प्रदायिक शास्त्रों का अभ्यास करना है। सम्प्रदायगत पूर्वाचार्यो की भावना अवलम्बन करके तदनुगत भाव से शास्त्रों का अभ्यास करना। इस तरह का शास्त्राभ्यास ही ज्ञान चक्षु को उन्मीलित कर देता है, अन्यथा दिशाहारा हो जाना पड़ता है। 'शास्त्राभ्यास' – वहुक्लेशं, बुद्धेश्चलनकारणम्' 'देव –पितृ–ऋषि तर्पण' – यह कार्य श्री भगवन्सन्तोषार्थ बुद्धि युक्त होकर ही अनुष्ठान करना पड़ता है। देवता पितृ – एवं त्रिषियों के मध्य अन्तर्यामी रूप से एवं ऋषियों के तर्पण से भगवान् सन्तुष्ट होंगे ऐसी बुद्धि से तर्पण कार्य करना चाहिए। इसे भगवान् के सन्तोषार्थ करना चाहिए, तभी यह कर्म योग नाम के उपयुक्त होगा। तभी ये समस्त कार्य भगवत्प्राप्ति के सहायक होंगे। इन सब कर्मो के अनुष्ठानों के द्वारा क्रमशः शरीर शुद्धि एवं मनः शुद्धि होती रहती है। तब यह निर्मल मन आत्म विषय को अनुभव करने के लिए आग्रह करता है। इसी उद्देश्य से कोई कोई कर्मयोग निष्ठ पुरुषयम, नियम, आसन, प्राणयामादि आरम्भ करते हैं। इस योगाभ्यास के समय क्रमशः बढ़ाते हुए शेष में परिपक्क अवस्था हो जाने पर वे आत्मानुभव रूप ज्ञान लाभ कर लेते हैं। इस प्रकार से आत्मानुभव की पूर्वावस्थातक योगाभ्यास का अनुष्ठान कर्म योग के अन्तर्गत होता है। इस अभ्यास की परिपक्क दशा में, आत्मानुभव रूप ज्ञान लाभ की अवस्था में ज्ञान योग की दशा आरम्भ होती है। ज्ञान कभी अपने विषय को छोड़कर अलग नहीं रह सकता। अशुद्ध मन से यही ज्ञान रूप, रस, शब्द, स्पर्श गन्ध युक्त प्राकृत विषयों को लेकर ही मग्न रहता है। पूर्वोक्त कर्म योगानुष्ठान के द्वारा शरीर एवं मन शुद्ध हो जाने पर तब उसका ज्ञान इस प्राकृत विषय की स्पृहा परित्याग करके अप्राकृत आत्म–विषय की तरफ आकृष्ट होता है एवं परिशेष में परमात्मा के विषय में प्रलुब्ध हो जाता है।'' श्री स्वामी जी महाराज की

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्री रघुनाथ जी का मन्दिर, बड़ा खटला

हनुमान कुण्ड, श्री अयोध्या जी

असुस्थता बढ़ जाने की वजह अर्थपञ्चक के अवशिष्ट अंशका विश्लेषण उनके श्री मुख से सुनने का सौभाग्य हम लोगों को नहीं हुआ। श्री स्वामी जी महाराज के द्वारा कर्मयोग के मर्मार्थ का ऐसा विश्लेषण सुनकर परितृप्त हो गया, बहुत दिन की पिपासा शान्त हो गई। अपने को महा सौभाग्य वान् एवं कृतकृत्य मानने लगा। साधारणत: हम लोगों की ऐसा धारणा है कि फलासक्ति रहित होकर नित्य नैमित्तिक समस्त सांसारिक कार्यो को किये जाना ही कर्मयोग है। श्री स्वामी जी महाराज के द्वारा ऊपर में उपदिष्ट विशेष विशेष धर्मानुष्ठान भी कर्मयोग के अन्तर्गत हैं, किस रूप से उनका अनुष्ठान करना चाहिए उसको सुनकर कर्मयोग के विषय में एक नया आलोक लाभ करके आज धन्य हो गया। कुछ अधिक एक घण्टा तक कालक्षेप चला। कालक्षेप के अन्त में उनको विशेष क्लान्त दिखाई नहीं पड़ा। तथापि हम लोगों की चिन्ता एवं उद्वेग का प्रशमन नहीं हुआ। कालक्षेप के बाद श्री स्वामी जी महाराज को चौकी के आसन पर बिठाकर उनकी कोठरी के भीतर ले जाकर यथा स्थान उनके आसन पर उन्हें बिठा दिया गया। मैं उनके निकट बैठा रहा। अवसर समझकर उनके इस असुस्थता का सूत्रपात्, विभिन्न उपसार्ग के विषय में उनसे पूँछा, एवं उनके श्री अङ्ग में विभिन्न लक्षणों को निरीक्षण करके यह समझा कि हृदय यन्त्र की दुर्बलता ही उनके वर्तमान व्याधि का कारण है। नव्वे वर्ष की अवस्था में उनकी ऐसी व्याधि अत्यन्त चिन्ता और भय का विषय है वह भी समझा। इस व्याधि की वर्तमान अवस्था निर्धारण करने के लिए उनका दिव्य देह परीक्षा करने के लिए उद्विग्न हो गया। इस विषय में उनसे विनम्र निवेदन विज्ञापन करने पर वे बोले – ''आगामी काल सवेरे परीक्षा करना।'' उनकी व्याधि के विषयों में उनके श्रीमुख से जो कई एक बात सुना, इससे उनके मन में कोई चिन्ता अथवा भय का कोई भी कारण है इसका जरा सा भी आभास नहीं पाया। कुछ देर के बाद ही आदि केशव जी एवं चक्रपाणि रामानुज दासी आकर उपस्थित हो गई। कलिकाता से आये हुए हम तीनों जनको ही उपस्थित देखकर श्री स्वामी जी हम लोगों को धीरे–धीरे कुछ उपदेश देने लगे। इस उपदेश का सारभूत तात्पर्य दो है +(१) -इष्टदेव में निष्ठा, (2) – भगवद–भागवत् एवं आचार्य विषय में नियत कैङ्कर्य करने की प्रवृत्ति। उनके उपदेश का यह सारतम अंश हम लोग लिख लिए –

(1) '' वस्तव्यमाचार्य सन्निधिर्भगवत्सन्निधिश्च''– यथासंभव गुरु की सन्निधि एवं अर्चाविग्रह भगवान् की सन्निधि में वास करना। इसका फल आचार्य का उपदेश श्रवण, उनका अनुष्ठान दर्शन, एवं भगवत्प्रसन्नता लाभ है।

(2) – ''वक्तव्यमाचार्य वैभवं, स्वनिष्कर्षश्च''– इसका अभिप्राय यह होता है कि – अपने आचार्य के वैराग्य ज्ञान भक्ति आदि के गुणों को प्रकाश करना, एवं स्वरूप नाशक अपने गुणों का चिन्तन करना, कहना एवं उसे दूर करने का प्रयत्न करना।

(3) ''जप्तव्यं गुरु परम्परा द्वयञ्च'' – गुरु परम्परा कहने से अपने आचार्य गुरुदेव से आरम्भ कर श्री भगवान तक आरोहण क्रम से गुरुवंशों का एवं उनके दिव्य गुणों सन्धान करना समझना चाहिए। समस्त सत् सम्प्रदाय के गुरुवंश के आदि पुरुष श्री भगवान् स्वयं होते हैं।

(4) – ''परि ग्राह्यं पूर्वाचार्यवचनं अनुष्ठानञ्च'' – पूर्वाचार्यो का उपदेश वचन एवं अनुष्ठानावली जो परवर्ती आचार्यो के द्वारा संगृहीत होकर दिव्य ग्रन्थों में सुरक्षित हैं उसे आलोचना करना। उन समस्त तत्वों को अपने आचार्य के श्री मुख से, अथवा आचार्य स्थानीय विभिन्न महापुरुषों के श्री मुख से श्रवण करना। उनके उपदेशों के अनुगुण अपने अनुष्ठान की दृढ़ता के लिए ये समस्त विषय, महापुरुषों का सजीव अनुष्ठान अपने

नेत्र से देखना एवं अनुभव करना। बहु परिश्रम से होने योग्य कृषि कार्य का फल स्वरूप थके हुए समस्त धान्य, धान्य क्षेत्र में कृषक के द्वारा सुरक्षित धान्य से धान्य संग्रह के सदृश पूर्वाचार्यों का वचन एवं अनुष्ठान सङ्ग्रह करन चाहिए।

(5) ''परित्याज्यं अभक्त सहवासं अभिमानञ्च'' – अभक्त का सहवास एवं अभिमान अथवा अहङ्कार ये दोनों ही ज्ञान एवं अनुष्ठान के विनाश करने वाले होते हैं अतएव ये दोनों परित्याज्य हैं।

(6) ''कर्तव्यं आचार्य कैङ्कर्यं भगवत्कैङ्कर्यञ्च'' – प्रेम पूर्वक आचार्य का एवं भगवान् का कैङ्कर्य करना। भागवतों का कैङ्कर्य भी इसके अन्तर्भुक्त है। यह कैङ्कर्य ही ध्येय और सर्वदा करणीय है, भगवत्कैङ्कर्य की अपेक्षा आचार्य कैङ्कर्य प्रधान है।

थोड़ी बात एवं थोड़े समय में श्री स्वामी जी महाराज हम लोगों को यह अमूल्य उपदेश दिये। उसके बाद प्राण भर के आशीर्वाद किये। उन्हीं के आशीर्वाद से यह समस्त अल्पाक्षरी उपदेश का मर्म, शक्ति एवं सुफल क्रमशः हम लोगों के हृदय में प्रस्फुटित हो उठ रहा है। अब अन्दाज दस –ग्यारह बज गया। हम लोग उनको क्लान्त रूप से अनुभव किये। अतः हम लोग उन्हें विश्राम करने के लिए प्रार्थना पूर्वक निवेदन किये। उस समय वे भी प्रसन्तमन से हम लोगों को विदा किये।

इसी अवसर में आदि केशव जी और हम अधिकारी श्री गरुड़ध्वज स्वामी के निकट गमन किये। वे हम से श्री स्वामी जी महाराज के स्वास्थ्य की बात जिज्ञासा किये। एवं इस व्याधि का निदान और परिणति की कथा जिज्ञासा किये। मैनें कहा अभी भी उनको परीक्षा करके देखने का सुयोग नहीं पाया। श्री स्वामी जी महाराज कल प्रातः काल अपने स्नान के पूर्व परीक्षा करके देखने की अनुमति दिये हैं। उनका उतसर्ग एवं वाह्य लक्षणों के देख कर हृदय यन्त्र की दुर्बलता ही मालूम पड़ रहा है । इस अति बृद्ध अवस्था में हृदि यन्त्र का विकार होना हम लोगों के विशेष चिन्ता एवं भय का कारण है। किन्तु उनके चिराचरिता दिनचर्या का जरा सा भी वैलक्षण्य नहीं देख रहा हूँ। यह अतीव आश्चर्य का विषय है। वे आज सवेरे बहुत देर तक जिस प्रकार से अर्थ पञ्चक पढ़ाये, हम लोगों को प्राण भर के हितोपदेश दिये एवं आशीर्वाद किये, उससे उनकी व्याधि जो अत्यन्त कठिन है यह उपलब्धि ही नहीं कर पा रहा हूँ। उनका यह प्राण भरा उपदेश और आशीर्वाद हम लोगों को अभूतपूर्व है। हम लोगों के मुख से श्री स्वामी जी महाराज के विषय की ऐसी बात सुनकर अधिकारी जी बोले– तुम ठीक ही कह रहे हो, ऐसा मालूम हो रहा है। कि वे हम लोगों के निकट अब अधिक दिन नहीं रहेंगे। वे हम लोगों के शीघ्र ही छोड़कर नित्य धाम में प्रवेश करेंगे ऐसा हम लोगों को इसके मध्य ही इङ्गित दिये हैं। कई एक दिन हुआ। अयोध्या में एक जन विद्वान् कर्म काण्डी दक्षिणी आये हैं। वे श्री वैष्णवों के परम पद के बाद विलक्षण विधि से उनका देह संस्कार (ब्रह्ममेघ) एवं देहान्त के बाद दशमदिन से लेकर त्रयोदश दिन लगातार तीन दिन तक विलक्षण उत्सव (श्री वैकुण्ठोत्सव) के जो समस्त विशिष्ट क्रिया कर्म हैं, उसके परिज्ञाता पुरुष हैं। चार पाँच दिन आगे श्री स्वामी जी महाराज हम लोगों से बोले हैं –

''दक्षिणी कर्मकाण्डी विद्वान वैष्णव जो उपस्थित दक्षिणी मन्दिर में जब स्थान करते हैं। जिससे वे और भी एक महीना अयोध्या रहें उस विषय में विशेष प्रयत्न करो। हमारा नाम लेकर रहने के लिए उनसे प्रार्थना करना। उनका विशेष प्रयोजन होगा।'' कुछ देर के बाद फिर बोले– ''यदि हमारा परमपद हो जाये तब एक एक पाव वजन का एक लड्डू तैयार करके भोग लगाना, और गोष्ठी विनियोग करना अर्थात् भागवतों के मध्य

वितरण करना।'' उनकी यह मर्म भेदी बात को सुनकर हम सभी कातर होकर प्रार्थना करने लगे–'आप की ऐसी निर्देश वाणी को सुनकर हम लोग अत्यन्त भीत और आर्त्त हो गये हैं, आपका जो क्या सङ्कल्प है वह हम लोग समझ नहीं पा रहे हैं। आपका सङ्कल्प अमोघ है, आप हम लोगों पर कृपा कीजिये। इसका वे कोई उत्तर नहीं दिये, मृदु मृदु हास्य किये। उस दिन से हम लोग अत्यन्त और भी संत्रस्त हो गये हैं। वर्तमान व्याधिका लक्षण जो ही हो, किन्तु उनका सङ्कल्प अमोघ है। अपने महा–प्रयाण के सङ्कल्प का विषय इतने में ही आभास दिये हैं। वे निश्चय ही भविष्य दर्शी हैं। अधिकारी जी के निकट ऐसी मर्मान्तिक बात सुनकर हम लोग भी विह्वल हो गये। इसी प्रसङ्ग में श्री स्वामी जी महाराज की अमोघ भविष्यवाणी के सम्बन्ध में और भी कई एक घटनाओं को अधिकारी जी विवृत किये। मध्याह्न आरति का समय हुआ, आरति दर्शन में गये, आरति दर्शन करने के बाद प्रसाद पाये। प्रसाद पाने के बाद कमलनयन जी सुने श्री स्वामी जी महाराज दुग्ध सेवन करके विश्राम कर रहे हैं, उनकी कोठरी का दरवाजा बन्द है। आदि केशव जी चक्रपाणि जी अधिकारी जी कमलनयन जी महाराज की व्याधि के उपशम के लिए करने योग्य विषय में परामर्श करने लगा। यह ठीक हुआ कि प्रलेप के लिए कलिकाता से जो औषधि लाई गई है, उसका प्रयोग किया जाय, और स्थानीय सर्वोत्तम वैद्य को बुलाकर उसके परामर्श के अनुसार चिकित्सा की व्यवस्था की जाय। इसी अवसर में देखा कि श्री स्वामी जी महाराज की कोठरी का दरवाजा खुला हुआ है, हम लोग उनके पास जाकर बैठ गये। अधिकारी जी को अग्रसर करके हम लोग उनके वर्तमान अवस्था की चिकित्सा का विषय उनसे निवेदन किये। वे प्रलेप लगाने की व्यवस्था को अनुमोदन किये। शुभ मुहूर्त देखकर दूसरे दिन से प्रलेप आरम्भ करने का निर्देश दिये। किन्तु किसी वैद्य की चिकित्सा के अधीन रहने को सम्मत नहीं हुए। वे बोले– ''वैद्य की चिकित्सा का कोई प्रयोजन नहीं है, उस समय हर तरह भगवान की प्रसन्नता का ही प्रयोजन है, एवं सर्वोत्तम फलप्रद है। 'वैद्यो नारायण : हरिः''। उनका सिद्धान्त अटल था, अतएव और कोई दूसरी उपाय नहीं देखकर हम लोग अगत्या नीरव रहे। प्रलेप लगाने का भार हमारे ऊपर पड़ा। श्री स्वामी जी महाराज के निर्देशानुसार दूसरे दिन प्रातःकाल से प्रलेप आरम्भ होगा।

अब वेला तीन बज गया। श्री स्वामी शौच करने जायेगे। नेत्र में ग्लुकोमा (चक्षुरोग) होकर उनका दोनों चक्षुदृष्टिहीन हो जाने के बाद से एक उपयोगी चौकी पर बैठाकर सेवकगण उन्हें शौच कक्ष के द्वार पर वहन करके ले जाते। शौच समापन के बाद फिर उन्हें वहन करके उनकी कोठरी में ले आकर स्नानादि सम्पन्न कराकर आसन पर बिठा दिया जाता। अन्तरङ्ग सेवक कमलनयन जी उनको तिलक सेवा कर देते। प्रतिदिन दो बार शौच में जाते, प्रातः काल एवं मध्याह्न के बाद तीन बजे। आज भी वैसा ही कराया गया। यथा तृतीय प्रहर में उनकी सन्निधि में साधु समागम हुआ। प्रायः एक घण्टा यथा रीति कालक्षेप चला। तदनन्तर अपने आसन पर आकर विराजित हुए। दो एकजन आश्रम के सेवक उनके पास रहे। हम सभी सायं कृत्य समापन के लिए सायं कृत्य करने के बाद सन्ध्या आरति दर्शन करके उनकी सन्निाधि में आकर साष्टाङ्ग किया। आश्रमवासीगण एवं अन्यान्य साधुगण उन्हें साष्टाङ्ग करके चले गये। आदिकेशव जी, चक्रपाणि जी और मैं उनके पास बैठे रहे। कुछ क्षण के बाद श्री स्वामी जी महाराज पूँछे कि 'यहाँ पर तुम लोग कौन कौन हो'? हम लोग उत्तर दिये।

''अर्चावतार की महिमा के विषय में उपदेश दान''

तब वे धीरे –धीरे भगवत्प्रसङ्ग आरम्भ किये। भगवद् भागवत् आचार्य की सेवा ही हम लोगों का परम धर्म

है, एवं परम कल्याण है। तथा भगवत्प्रसन्नता का मुख्य हेतु जो यह कैङ्कर्य है इसे युक्ति, शास्त्रवचन एवं पूर्वाचारियों के अनुष्ठानों का दृष्टान्त देकर खूब सरल रूप से समझा दिये। अर्चाविग्रह की महिमा का वर्णन किये। श्री विजयराघव जी की महिमा वर्णन किये। वे बोले–''आड़वारगण, एवं पूर्वाचार्यगण अर्चावतार की शरणागति किये थे, अर्चावतार में भगवान के समस्त गुणों की ही परिपूर्त्ति है।

'पूर्वाचार्याः अर्चावतारे प्रपत्तिं अकुर्वन्।'' 'गुणपूर्त्तिः अर्चावतारे।' (श्रीवचन भूषण)। इस प्रकार साधारण भाव से अर्चावतार की महिमा कीर्तन करके साथ ही साथ अर्चावतार की महिमा विशद भाव सेवे हम लोगों के निकट कीर्तन किये। श्री विजयराघव जी के चरण में हम लोगों की भक्ति जिससे अटूट रहे तथा उनके कैङ्कर्य में जिससे हम लोग सर्वान्तः करण से सर्वदा तत्पर रहें उस विषय में निर्देश दिये। उनकी जीव दशा में जिस तरह कैङ्कर्य हम लोगा करते आ रहे हैं उनकी अप्रकट दशा में भी जिससे हम लोग श्री विजयराघव जी के चरण में उसी भाव से कैङ्कर्य में निरत रहें, उस विषय में आदेश दिये। वे बोले– ''अपने आचार्य का अभिमान पाने के लिए, एवं भगवान् की प्रसन्नता पाने के लिए यह कैङ्कर्य ही जो प्रकृष्ट उपाय है इसको सदा स्मरण रखना''। श्री स्वामी जी महाराज के विश्राम में अतिकाल हो जायेगा, इसी भय से उनकी अनुमति लेकर विदा लिए।

''20 अगसत 1931 खृष्टाब्द''

श्री स्वामी जी महाराज ऐसा अभूत पूर्व उपदेश सुनकर हम लोगों का मानसिक आतङ्क और भी ज़्यादा बढ़ गया। समस्त निद्रा नहीं हुई। बहुत सवेरे रात्रि 3 बजे हम लोग उठे, श्री स्वामी जी महाराज का कष्ठ स्वर सुनने में आया, वे मधुर कण्ठ से स्तोत्र पाठ कर रहे थे। हम लोग मुख, हाथ, पाँव धोकर उनकी कोठरी के द्वार पर उपनीत हुए। उनके अन्तरङ्ग सेवक उनकी कोठरी में ही शयन करते थे। वे हम लोगों का आगमन समझकर दरवाजा खोल दिये। हम लोग भीतर प्रवेश करके थोड़ी दूरी पर बैठ गये। आज वे कुछ ऊँचे स्वर से ही स्तोत्र की आवृत्ति कर रहे। यह उनका नियत नियम नहीं था। अधिकांश स्तोत्र ही प्रार्थना मूलक थे। कुछ कुछ शरणागति के भी सूचक थे। और कोई कोई स्तोत्र भगवान गुणों के कीर्त्तन सम्बन्धी थे। वे भक्ति पूर्ण स्वर से एवं आर्त्तभाव में अनर्गल श्लोकों की आवृत्ति किये जा रहे थे। हम लोग नीरव भावसे बैठे हुए न्यून कण्ठ से दिव्य भाव युक्त दिव्य श्लोकों की आवृत्ति सुन कर पूत पवित्र हो रहे थे, धन्याति धन्य हो रहे थे। आवृत्ति के समय उनकी यह भाव भङ्गी, उनका यह कण्ठ इसके पूर्व हम लोग कभी नहीं सुने थे। अधिकारी जी कमलनयन जी आदि आश्रमवासी भी कभी नहीं सुने थे। हम लोग चुप होकर बैठे हैं वे श्लोक के बाद श्लोक की आवृत्ति किये जा रहे हैं। प्रातःकाल 5 बजे शौच आदि का समय हो गया है कहकर उनके सेवक श्री कमलनयन जी निवेदन किये, वे आवृत्ति बन्द कर दिये। उपयुक्त अवसर समझ कर उनकी दिव्य देह परीक्षा करने के लिए प्रार्थना पूर्वक उनसे निवेदन किया। वे अनुमति दिये। मैं धीरे – धीरे गुरुदेव का दिव्य देह यथोचित रूप से परीक्षा कर लिया। हृदयन्त्र का विकार ही निश्चय किया। समझा कि बीच बीच में एक एक करके हृदयन्त्र का स्पन्दन बन्द होता जा रहा है। उन्हें प्रश्न करके यह समझा, ठीक इतने में ही वे शरीर के भीतर असुविधा बोध किये। हमें भीषण भय हुआ। समझ गया कि इसका परिणाम अत्यन्त अशुभ है। परीक्षा करने के बाद वे अपनी व्याधि के विषय में हमसे कुछ नहीं पूँछे निर्विकार भाव में रहे। मैं भी नीरव रहा। इस अशुभ लक्षण की बात कुछ भी निवेदन नहीं किया। अतः पर उन्हें चौकी पर बिठाया गया और वहन करके शौच स्थान पर ले जाया गया। इस वहन कार्य में मैं भी अंशग्रहण किया। शौच से लौटने के पश्चात् कमलनयन जी उनके स्नान और पूजा की व्यवस्था

करने लगे। हम लोग श्री प्रातः कृत्य समाप्त करने के लिए वहाँ से चले आये। श्री स्वामी जी महाराज की व्याधि जो अतीव गुरुतर एवं अत्यन्त चिन्ता का कारण है उस विषय में उसी समय अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी से कहा। वे सभी धीर भाव से सुने। और बोले– ''श्री स्वामी जी महाराज इसके पहले आभास दे दिये हैं। वे जो अब और अपनी देह रक्षा नहीं करेंगे वह स्पष्ट ही समझने में आ रहा है। भगवत्संकल्प के अनुरूप ही उनका सङ्कल्प है। हर तरह से वे भगवत्सङ्कल्प को वे समझने में समर्थ हैं। इस सङ्कल्प के अनुगण वे सम्पूर्ण भाव से प्रस्तुत हैं। श्री भगवान् की इच्छा, श्री स्वामी जी की इच्छा ही पूर्ण होगी। अधिकारी जी बात सुनकर हम सभी विह्वल हो गये। प्रातः कृत्य समाप्त करके हम लोग पुनः श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में आये। उनके चरण द्वय में आयुर्वैदिक प्रलेप लगाने की अनुमति पाकर हम प्रलेप प्रस्तुत करने लगे। इतने में अधिकारी जी आकर उपस्थित हुए। उनकी व्याधि के विषय में अन्यान्य शिष्य मण्डली और भक्त मण्डली को संवाद देने के लिए अधिकारी जी श्री स्वामी जी महाराज से प्रार्थना किये, एक एक करके समस्त भक्तों का नाम लिए, किन्तु किसी को भी वे संवाद देने की अनुमति नहीं दिये। उनकी अनुमति न पाकर इतने शिष्यों के मध्य में किसी को भी उनके इस गुरुतर व्याधि के विषय में संवाद देना सम्भव नहीं हुआ। वे क्यों इस विस्मयकर सिद्धान्त को ग्रहण किये वह आज भी हम लोगों के निकट समाधान विहीन समस्या हो गई है। इस के मध्य में प्रलेप प्रस्तुत कर लिया। श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति लेकर उनके दोनों चरणों के यथा स्थान पर प्रलेप लगा दिया। प्रलेप लगाकर हम लोग उनकी सन्निधि में बैठे रहे। अधिकारी जी एवं कमलनयन जी भी बैठे। श्री स्वामी जी महाराज पूँछे – ''इस जगह पर तुम लोग कौन कौन हो''? अधिकारी जी प्रश्न का उत्तर दिये। उस समय वे घर का दरवाजा बन्द करने का आदेश दिये। वैसा ही किया गया। तब वे वैष्णवों के पर पद होने के बाद करणीय विधि क्या क्या है उसे धीरे – धीरे गम्भीर कण्ठ से कहने लगे –

(1) परित्यक्त देह के लिए कम से कम 4 जन श्रीवैष्णव रहना चाहिए।

(2) प्रत्येक वाहक को दो दो कटिवस्त्र देना चाहिए। एक कटि वस्त्र को पहना देना चाहिए और एक साथ में देना चाहिए।

(3) वैष्णवाग्नि के द्वारा देह सत्कार करना चाहिए। इस देह सत्कार का दूसरा एक नाम ''ब्रह्म मेध संस्कार' है। श्री रामचन्द्रजी रावण के द्वारा निहत जटायु का यही ब्रह्ममेध संस्कार करके उसे दिव्य गति प्रदान किये थे। युधिष्ठिर मृत देह का ब्रह्ममेघ संस्कार किये थे।

(4) अग्नि संस्कार के लिए देह ले जाने के समय ढोते हुए देह के आगे एवं पीछे वैष्णवों को 'आल–वन्दार स्तोत्र, वरद वल्लभा स्तोत्र, नारायणवल्ली, स्तोत्र पाठ करते हुए जाना चाहिए।

(5) यदि किसी देव स्थान पर किसी वैष्णव का परपद हो जाये, तो तुरन्त ही श्री विग्रह का मन्दिर बन्द कर दिया जाता है। वाहकगण देह संस्कार करके लौट आने के बाद मन्दिर –प्राङ्गण और मन्दिर के भीतर शुद्धि करके तदन्तर मन्दिर का द्वार खोलना चाहिए। आरती करके नियत सेवा करना चाहिए।

(6) त्रयोदश दिवस में यथा विधि 'वैकुण्ठोत्सव' की समाप्ति हो जाती है। इस उत्सव में विद्वान् ब्राह्मण वैष्णवगणों के द्वारा उपनिषद्, श्री भाष्य, आड़वारों के दिव्य प्रबन्ध, वाल्मीकि रामायण, विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत, श्रीमद् भगवद्गीता, महाभारत शान्ति पर्व आदि पाठ कराने की विधि है।

(7) सर्वशेष में 'तदीयाराधना' होने की विधि है। अर्थात् वैष्णवों को भगवान् का प्रसाद उदर पूर्ति भोजन कराना चाहिए। किसी कारणवश कोई आमन्त्रित वैष्णव का श्री मन्दिर में आकर प्रसाद पाना असम्भव हो, तो

उस समय उस के स्थान पर अमनियाँ सब सामान भेज देना चाहिए।

इन सब बातों को कहकर श्री स्वामी जी महाराज अल्पक्षण के लिए नीरव हो गये। तत्पश्चात् फिर से बोले– ''हमारा जब परम पद होगा। तो उसके बाद वैकुण्ठोत्सव के समय तदीयाराधना के समय एक एक पाव का एक एक लड्डू प्रस्तुत करा कर उससे वैष्णवों की आराधना करना यह ही हमारी इच्छा।'' श्री स्वामी जी महाराज के इन समस्त वाक्यों को सुनने से उनका मनोगत भाव उपलब्धि करके हम सभी अश्रु–वर्षण करने लगे। रुदन करते हुए हम सभी उनके चरण में प्रार्थना करने लगे कि आप अभी देह त्याग का सङ्कल्प नहीं करें। हम सभी को क्रन्दनरत देखकर वे सान्त्वना देने लगे – ''तुम लोग वृथा क्यों– क्रन्दन कर रहे हो, हम तो यह बात नहीं कहे कि अभी तुम लोगों को छोड़ कर हम चले जा रहे हैं। देखो, मनुष्य देह अनित्य और क्षणभङ्गुर है, एक न एक दिन तो यह मर देह चला ही जायेगा, समय रहते रहते प्रस्तुत हो जाना चाहिए। भगवत्सङ्कल्प की बात कही नहीं जा सकती । जब हमारा देहान्त हो जायेगा तो तुम लोग उपरोक्त विधि वाक्यों को मन में रखना। हमारे चले जाने पर भी श्री विजयराघव जी महाराज तुम लोगों के लिए रहेंगे। हम भी तुम लोगों के समीप ही समीप में रहेंगे, चिन्ता नहीं करो।''

हम लोगों को अपने सान्त्वना वाक्यों के द्वारा उनके आश्वस्त करने की चेष्टा करने पर भी हम लोगों का मन नहीं माना। अन्तर अनवरत क्रन्दन करने लगा। हम लोगों को अन्यमनस्क करने के लिए अन्यान्य वाक्यों का वे उत्थापन किये। हमसे प्रलेप प्रस्तुत करने को कहे। उस समय प्रायः साढ़े नव बज गया, प्रलेप लगाने का समय व्यतीत हो गया था। हम प्रलेप प्रस्तुत करके लगा दिये। उसके बाद ही श्री स्वामी जी महाराज कालक्षेप के लिए श्री कमलनयन जी से अर्थपञ्चक ग्रन्थ को ले आने के लिए बोले। उस समय हम सभी एक साथ मिलकर कालक्षेप को बन्द रखने के लिए प्रार्थना किये। हम लोगों मिलकर कालक्षेप को बन्द रखने के लिए प्रार्थना किये। हम लोगों की विनम्र प्रार्थना से अगत्या वे उस दिन कालक्षेप बन्द रखे। उनके निर्देश से हम लोग भाराक्रान्ता चित्त होकर विदा ग्रहण किये। सभी अत्यन्त विषण्ण हुए, सभी सारा दिन चिन्ता और क्लेश से अधीर रहे, किङ्कर्त्तव्य विमूढ़ होकर रहे। समसृत निरुपायों के एकमात्र उपाय श्री भगवान् के चरण में कातर प्रार्थना विज्ञात करने लगे। सारा दिन श्री स्वामी जी महाराज जी सन्निधि में यथा साध्य रहे। यथा समय उनके दोनों चरण में प्रलेप लगा दिया। आश्रमस्थ सभी महाउद्विग्न और अल्पभाषी रुप में रहे। अन्यान्य गुरु भ्राताओं के निकट इस संवाद को भेजने की तीव्र इच्छा हुई, किन्तु श्री स्वामी जी महाराज का निर्देश नहीं होने की वजह इच्छा रहते हुए भी हम लोग किसी को संवाद नहीं दे सके रात्रि में नींद किसी को भी नहीं आई। रात्रि दो बजे के समय सुना श्री स्वामी जी महाराज की कोठरी से उनका कण्ठ स्वर आ रहा था। वे आर्त्तभाव से स्तोत्रों की आवृत्ति कर रहे थे। ऐसी आर्त्ति से युक्त स्तोत्र पाठ सुनकर हम लोग अब और स्थिर नहीं रह सके। उसी समय हम लोग जाकर उनकी कोठरी के द्वार पर उपस्थित हुए। देखा कि वे अपने आसन पर योगासन से बैठकर स्तोत्रों का पाठ कर रहे हैं। अधिकारी जी के सङ्केत से हम लोग कोठरी में प्रवेश करके उनके पास चुपचाप बैठ गये। हम लोगों के आने की बात अधिकारी जी श्री स्वामी जी महाराज से निवेदन किये। उस समय वे निम्नलिखित श्लोक का पाठ कर रहे थे।

तव दास्य सुखैक सङ्गिनाम, भवनेष्वस्त्वपि कीट जन्म में ।
इतरावसथेषु भास्म भूत्, अपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ।।

हे प्रभो! तुम्हारे परम एकान्ती भक्तों के घर में कीट पतङ्ग आदि रूप से भी यदि जन्म मिले तो वह भी हमारा परम लाभ हैं। कीट पतङ्ग होने पर भी भक्तसङ्ग पाने से धन्य हो जाऊँगा। तुम्हारे प्रति जिसकी भक्ति नहीं है, ऐसे प्रतिकूल अभक्तों के घर में मनुष्य जन्म की बात तो दूर रहे, यहाँ तक कि तुम्हारे ही नाभिकमल से उत्पन्न चतुर्मुख ब्रह्मा रूप में भी जिस प्रकार हमारा जन्म नहीं हो। उक्त श्लोक की आवृत्ति करके श्री स्वामी जी महाराज हम लोगों के उद्देश्य से कहने लगे –

''कीट जन्म की प्रार्थना का क्या कारण है उसे सुनो। भक्त के घर में जन्म होने से भागवत् सम्बन्ध होगा। कीट होकर जन्म लेने से भागवत् को छोड़कर और कही भी जाना नहीं पड़ेगा। किन्तु भागवत् के घर में मनुष्य जन्म होने पर उस भागवत् को छोड़कर अन्यत्र जाना हो भी सकता है। इसीलिए भक्त के घर में मनुष्य जन्म की अपेक्षा कीट जन्म श्रेष्ठ है। भागवत् के घर में दूसरा एक उत्कर्ष यह है कि कीट जन्म में भागवताचार की सम्भावना नहीं है। परम ऐकान्तिक भक्त को ऐसी ही प्रार्थना करनी चाहिए। श्री भगवान् का कृत्य परम पद प्रदान करना, होता है। भागवत, आचार्य एवं श्री लक्ष्मी का सम्बन्ध ही इस मोक्ष लाभ का माध्यम है।''

इस श्लोक के बाद ही वे सुर–लय युक्त मधुर कण्ठ से गान किये –

अमर्यादः क्षुद्श्चलभतिरसूया प्रसवभूः,
कृतघ्नोदुर्मानी स्मरपरवशो वञ्चन परः ।
नृशंसः पापिष्ठः कथमहभितो दुःखजलधेः,
अपारादुत्तीर्णस्तव परिचरेयं चरणयोः ।।

हे प्रभो मैं शास्त्र मर्यादा का उल्लङ्घनकारी हूँ, अतिक्षुद्र एवं चञ्चलमति वाला हूँ, गुणों के रहने पर भी सबके भीतर दोष को, देखने वाला हूँ, कृतघ्न, दुरभिमानी, कामुक, महाठग, अति निष्ठुर एवं महापापी हूँ। मैं किस तरह इस अनन्त दुःख पूर्ण अपार संसार सागर को पार होकर तुम्हारे चरण युगल की सेवा कर पाऊँगा? अर्थात् मैं सर्व दोष युक्त होने पर भी, सर्वशक्तिमान् परम कारुणिक तुम्हारी कृपा से ही यह सम्भव होगा।

इस श्लोक का तात्पर्य हम लोगों को समझाये –

निजदोषानुसन्धान का प्रकार, अपने प्रयत्न उद्धार होने की असमर्थता का ज्ञापन एवं कैङ्कर्य प्रार्थना– यह तीन भागवतों के चिन्ता धारा की प्रधान प्रणाली होती है। ' भगवत्सन्निधौस्वस्य नीचत्वं अनुसन्दधीत' यही पूर्वाचार्यो का सार वचन है निज दोषानुसन्धान एवं अन्यान्य भागवतों का गुणानुसन्धान करना। संसार रूप महा समुद्र से उद्धार करने में समर्थ केवल एक भगवान् और उनकी कृपा ही है। संसार विभुक्ति के पश्चात् मुक्त जीव का भगवत्कैङ्कर्य ही उपभोग्य कृत्य है यही भागवतों की भावनात्रय है।'

उसके बाद ही गान किये–

रघुवर! यद्भूस्त्वं तादृशोवायसस्य, प्रणत इतिदयालु र्यच्च चैद्यस्यकृष्णः ।
प्रतिभवमपराद्धुर्मुग्ध सायुज्यदोऽभूः, वद किमपदमागस्तस्यतेऽस्ति क्षमायाः ।।

हे राघवेन्द्र! जिस समय सीता देवी के प्रति महा अपराधी, महापापिष्ठ काक वेशी इन्द्र पुत्र जयन्त काक भी प्रणत होने पर, यह हमारी शरण लिया है' ऐसा कहकर उसके प्रति दयार्द्र होकर उसकी रक्षा किये थे, तीन जन्म से तुम्हारे प्रति महा अपराध करने वाले चेदिराज शिशुपाल को भी सायुज्य मुक्ति दे दिये थे, तब हे करुणा निधे! बोलो जगत में ऐसा कौन पाप है जो कि तुम्हारे क्षमा के वहिर्भूत है। तादृशो वायसस्य'– शब्द का

यह अर्थ है– कि (इन्द्र पुत्र जयन्त काक का रूप धारण करके चित्रकूट पर आया, और उस पर्वत पर निद्रित बाम पार्श्व में अवस्थित सीता देवी का स्तन अपने चञ्चु पुट से क्षत विक्षत कर दिया) अतएव वाक्य के अगोचर महा पाप करने वाला काक, ऐसा महापापी काक भी केवल कायिक शरणा गति के द्वारा रामचन्द्र की कृपा से ही अपने प्राण को लौटा पाया था। तीन जन्म के प्रति जन्म में (प्रतिभव) तुम्हारे प्रति महा अपराध करने वाला (चैद्य) शिशु पाल भी जब तुम्हारी इस अतिक्षमा को लाभ किया था, तो मैं भी क्या तुम्हारे अतिक्षमा का पात्र नहीं हो सकूँगा?

(अति क्षमायाः पात्रं न भवामि किम्?)

अपराध सहस्र भाजनम्, पतितं भीम भवार्णवोदरे ।
अगतिं शरणागतं हरे! कृपया केवल मात्मसात्कुरु ।।

हे हरे! हे आश्रित दुरित निवर्त्तक! मैं अतीव सहस्रों महापराधो से अपराधी एवं संसार समुद्र में डूबा हुआ हूँ। तुम्हें छोड़कर हमारी दूसरी गति नहीं है। मैं तुम्हारे श्री चरण में शरण ले रहा हूँ। हे निर्हेतुक कृपा सिन्धो! तुम अपने गुण से निर्हेतुक कृपा करके हमको आत्मसात् कर लो। ये चारों ही श्लोक श्रीरामानुज स्वामी के परमगुरु श्री यामुनमुनि विरचित जगत्प्रसिद्ध 'आलवन्दार' स्तोत्र के अन्तर्गत। श्लोकों की आवृत्ति करने के बाद ही श्री स्वामी जी महाराज फिर बोलने लगे –

''पूर्वाचारियों का कैसा दुर्लभ ज्ञान है। कहते हैं 'कृपया केवलं आत्मसात्कुरु,'– आत्माधीनं कुरुष्व। अर्थात् हे भगवन्! तुम हमारे प्रभु हो, शेषी हो, मैं तुम्हारा दास, शेष हूँ। यही तुममें और हममें सर्वदा नित्य सम्बन्ध है, यही हमारा स्वरूप है। अपने कृतकर्म के कारण अज्ञानान्ध होकर मैं स्वाधीन और स्वतन्त्र हो गया हूँ, तुम्हें छोड़कर हमारे स्वरूप लाभ का कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम कृपा करके हमें अपने अधीन अपने परतन्त्र बना लो। पूर्वाचार्यगण इस श्लोक में, स्वरूपनाश का कारण, स्वरूप लाभ का उपाय, स्वरूप का वेश (लक्षण) – इन तीन महातत्वों को ही अनुभव किये हैं। अब सुबह हो गया, आकाश साफ हो गया। उनके शौच आदि का समय हो गया। अधिकारी जी, कमलनयन जी शौच में ले जाने की व्यवस्था करने लगे। चौकी ले आई गई। और भी दो जन उपयुक्त आश्रमवासी वहन करके ले जाने के लिए आये। उन लोगों के साथ मैं भी श्री स्वामी जी को शौच कक्ष में वहन करके ले गया। शौच के अन्त में पुनः वहन करके उनको ले आया। अन्तरङ्ग सेवक अधिकारी जी कमलनयन जी उन्हें स्नान कराये। कमलनयन जी उनको तिलक सेवा और पूजा करा दिये। यथा पूर्व श्री स्वामी जी अपने आसन पर योगासन से ध्यान मग्न होकर इष्ट चिन्ता में निमग्न हो रहे।

24 अगस्त सोमवार 1931 खृः

आज सोमवार 24 अगस्त सोमवार। हम लोग प्रातः कृत्य समाप्त करके कुछ बालभोग प्रसाद पाये। इसके अनन्तर श्री स्वामी जी महाराज की सन्निधि में आकर उनके दोनों चरण में प्रलेप लगा दिये। प्रलेप लगाने के समय देखो कि आज चरण का शोथ बढ़ गया है। आज वे अधिकक्लान्त मालूम पड़ रहे हैं। अपने आसन पर बैठे हुए हैं। अधिकांश समय ध्यान मग्न वाक्य खूब कम बोलते हैं। मालूम होता था कि सर्वदा ही श्री भगवान् के चरण में एकान्त भाव से मनोनिवेश किये हुए हैं। तथापि उनका दोनों अधर धीरे –धीरे स्फुरण कर रहा है। हम लोग समझ गये कि वे निरन्तर मन्त्र का जप कर रहे हैं। बीच – बीच में बाहर से कोई कोई साधु महात्मा आते हैं। उनसे उनकी शारीरिक अवस्था के विषय में प्रश्न करते हैं, वे थोड़ी बात में उनका उत्तर दे देते

है। उन्हें क्लान्त और चिन्ता मग्न देखकर वे अल्पक्षण के मध्य ही साष्टाङ्ग करके उद्विग्न चित्त से चले जाते हैं। कोई कोई यह भी जिज्ञासा करते हैं कि अपराहण में भगवत्कथा होगी कि नहीं? अधिकारी जी सङ्केत से बाहर से जाकर कह देते हैं। कि आज वे विश्राम लेगे। उनको भय था कि यह बात श्री स्वामी जी के कान में जाने से वे शास्त्र कथा बन्द नहीं करने देगे। उनका सिद्धान्त अटल है, कोई भी अनुरोध किं वा प्रार्थना से यह नियम बन्द होने को नहीं, अथच इनपकी इस वर्तमान अवस्था में ऐसी आलोचना अत्यन्त क्षतिकर होगी। अधिकांश समय ही अधिकारी जी एवं कमलनयन जी श्री स्वामी जी की कोठरी में ही बैठे रहते हैं। हम लोग भी बैठे हुए हैं। इस तरह से 11 बज गया। मध्याह्न आरती का घण्टा बजा। उनके निर्देश से आरति दर्शन के लिए गये। आरति के अनन्तर प्रसाद पाया। दोपहर से पारी से उनके पास रहने के वास्ते दो सेवक का नियम कर दिया गया। दुग्ध सेवन के बाद आज वे कुछ अच्छी तरह सोये रहे, मालूम होता है क क्लान्ति के अधिक्ता के कारण ही ऐसा हुआ, कारण यह उनके अभ्यास के बहि भूति था। प्रायः तीन बजे उठ गये। शौच स्नानादि समाप्त करके पुनः ध्यान मग्न अवस्था में अपने आसन पर अपने स्वभाव सुलभ भाव से बैठे। आज और कालक्षेप नहीं हुआ। अधिकांश साधु ही जानते थे। कि आज भगवत्कथा नहीं होगी इसलिए नहीं आये। जो आये थे वे भी बाहर से ही श्री स्वामी जी महाराज को साष्टाङ्ग करके चले गये। श्री स्वामी जी महाराज की असुस्थता के कारण वे लोग कोठरी के भीतर जिससे प्रवेश न करे इसीलिए अधिकारी जी प्रत्येक से अनुरोध करने लगे। आज श्री स्वामी जी सारा दिन ध्यान मग्न रहे, अति अल्प ही वार्तालाप किये, केवल बीच बीच में श्री विजयराघव जी महाराज की आराधना एवं सेवा के परिपाटी की बात जिज्ञासा करते रहे। उनका यह भाव देखकर अधिकारी आदि प्रमुख आश्रमवासी सभी अत्यन्त आतङ्कित हो गये, किन्तु निरुपाय थे। सन्ध्या हुई। उनके निर्देश से सन्ध्या आरति दर्शन करके पुनः उनकी सन्निधि में आये। अनुमति लेकर उनके चरण में पुनः प्रलेप लगा दिये। वे सारे दिन के सदृश सन्ध्या के बाद भी उसी एक भाव से ध्यान मग्न रहे। अधिकारी श्री गरुडध्वज जी के निर्देशानुसार दोजन सेवक अपनी पारी पर रात्रि जागरण किये।

25 अगस्त मङ्गलवार 1931 खृष्टाब्द

दूसरे दिन रात्रि दो बजे से श्री स्वामी जी महाराज उच्च कण्ठ से स्वर, लय के सहित स्तोत्रों की आवृत्ति आरम्भ दिये। आदि केशव जी चक्रपाणि जी एवं मैं उनके कक्ष में जाकर उपनीत हुआ। देखा कि अधिकारी जी, कमलनयन जी वहाँ पर बैठे हुए हैं। वे हम लोगों की उपस्थिति का संवाद श्री स्वामी जी से निवेदन किये। एवं श्री स्वामी जी बैठने लिए कहे।

श्री स्वामी जी महाराज बोले– ''श्री व्यास देव अपने वैराग्य पूर्ण पुत्र शुकदेव को लौटाने के उद्देश्य से उसे सुनाने के लिए लड़कों को जो श्लोक सिखा दिये थे उसमें श्री कृष्ण चन्द्र की अपरूप वर्णना! क्या लीला माधुर्य!''

वर्हापीडंनटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारम्,
विभ्रद्वासः कनक कपिशं वैजयन्तीञ्च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधर सुधया पूरयन् गोपवृन्दैः,
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्रविशद् गीत कीर्त्तिः ।।

अर्थात् – (शिखिपुच्छधारी, नटके सदृश परमरमणीय विग्रह वाले, दोनों कानों में पद्म पुष्प की आकृति वाला कनक के सदृश पुश्प पहने हुए, उज्ज्वल पीताम्बर पहने हुए, गले मैं वैजयन्ती माला धारण किये हुए,

अधर सुधा के द्वारा वंशी के रन्ध्र को पूर्ण करते हुए, गोप सखाओं के द्वारा कीर्तित होकर श्री कृष्णचन्द्र वृन्दावन में प्रवेश किये। यही श्री कृष्ण का भुवन मोहन रूप है। इस अनुपम रूप की वर्णना सुनते ही दूसरे के प्रति भ्रूक्षेप रहित महा वैराग्यवान् शुकदेव उन लोगों की तरफ देखे। और उनकी दया ही कैसी अनुपम है। श्री शुकदेव जी गान किये हैं –

अहोवकी यं स्तनकालकूटम्, जिघांसयाऽपाययदप्य साध्वी ।
लेभेगतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यम्, कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ।।

अर्थ :– अहा! जो राक्षसी पूतना प्राण विनाश के लिए कृष्ण को कालकूट विष मिश्रित अपना स्तन्य पान कराई थी, वह असाध्वी भी उनकी कृपा से स्तन्यदात्री धात्री के योग्य गति पा गई थी उस परम दया मय श्री कृष्ण भिन्न मैं और किस दूसरे दयालु की शरण ग्रहण करूँ?

जब पूतना वैकुण्ठ गई, तो गो और गोपियों की क्या बात है! जब विषदान कर्त्री पूतना ही वैकुण्ठ धाम चली गई, तो गौ एवं गोपियों के कहने की क्या बात है? श्री कृष्णचन्द्र के रूप एवं गुण की बात चिन्ता करते-करते, जो उन्हीं की शरणागति करना उचित है इस भावना से उनका हृदय पूर्ण हो गया। यह भावना उनके आर्त्ति युक्त कण्ठ से कीर्त्तन के रूप में अभिव्यक्त हुई –

सकृदेव प्रपन्नाय, तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो, ददाम्येतद् व्रतं मम ।।

समुद्र के तीर पर रावण के सहित युद्ध के प्राक्काल शरण में आये हुए विभीषण की रक्षा के उद्देश्य से सुग्रीवादि श्रेष्ठ वानरो सन्मुख श्री रामचन्द्र की उक्ति – जो कोई जीव एक बार केवल मन एवं प्राण से 'मैं तुम्हारा हुआ' ऐसा कह देता है, हमारी शरण में आ जाता है, तो वह कोई भी प्राणी क्यों न हो तो मैं उसे अभय प्रदान करता हूँ। यही हमारा व्रत है।

वे हम लोगों से कहने लगे –

जयन्त काक केवल कायिक शरणागति किया था, गजेन्द्र केवल मानसिक शरणागति, एवं विभीषण की कायिक वाचिक एवं मानसिक त्रिविध शरणागति थी। सभी उद्धार लाभ किये थे। यही भावना लेकर महाचार्य यामुन मुनि अपने आल्वन्दर स्तोत्र में गान किये हैं –

ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ्, तवाहमस्मीति च याचमानः ।
तवानुकम्प्यः स्मरतत्प्रतिज्ञाम्, मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते ।।

हे नाथ तुम अपने मुख से प्रतिज्ञा किये हो कि मैं तुम्हारा हुआ यह वाक्य केवल एक बार कहकर जो व्यक्ति तुम्हारे निकट शरणागत होता है, वह तुम्हारी दया का पात्र हो जाता है। इस समय तुम अपनी यह प्रतिज्ञा स्मरण करो। बोलो– क्या केवल हमारे प्रति ही तुम्हारी प्रतिज्ञा लागू नहीं होगी। वैसा हो नहीं सकता, हमारी भी तुम अवश्य रक्षा करोगे।

ऐसा कहकर पुनः विश्लेषण करने लगे–

ननु प्रपन्नः हे नाथ! कायिक वाचिक, तथा मानसिक करण त्रय से एक होकर एक बार साष्टाङ्ग कर करके जीव जब कहता है 'तव अस्मि' तब ऐसे प्रपन्न 'तव अनुकम्प्यः', तुम्हारी दया का विषय हो जाता है, समुद्र के तीर आपने ऐसी प्रतिज्ञा किया था। सकृदेव प्रपन्नाय.....। तब प्रपन्न के विषय में ते व्रतं मदेक वर्जं किं

? अर्थात प्रपन्न को विषय में आपका यही व्रत हमारे विषय में प्रयुक्त नहीं होगा क्या? सर्व शास्त्र कहते हैं कि भगवान् केवल ज्ञान कर्म एवं भक्ति से ही लभ्य हैं (ज्ञान क्रिया भजन लभ्यम्, अलभ्यमन्यै:)।

कर्मणैव हि संदिद्धि:', 'ज्ञानात्: मोक्ष:', 'भक्त्याहं एकया ग्राह्य:', यह सधारण शास्त्र है, परन्तु भागवत् के लिए विशेष शास्त्र है। उत्तर कोशल जो कि अम्बा सीता देवी जी का देश है, उस देश के सम्बन्ध बालों को कर्म ज्ञान एवं भक्ति का क्या प्रयोजन नहीं हुआ। इसीलिए विशेष शास्त्र के मर्म वेत्ता आचार्य गान किये हैं।

त्वामामनन्ति कवय: करुणामृताब्धे:,
ज्ञान क्रिया भजन लभ्यमलभ्यमन्यै:।
एतेषु केन वरदोत्तर कोशलस्था:,
पूर्वं सदूर्वमभजन्तहि जन्तवस्त्वाम् ।। पञ्चस्तवी वरदराज स्तव।। (69)

हे करुणा सिन्धो! पण्डितगण कहा करते हैं कि तुम कर्म ज्ञान एवं भक्ति योग के द्वारा लभ्य हो। यदि यह बात सत्य है तो बोलो इन सब उपायों में से किस उपाय के द्वारा भजन करके उत्तर कोशल अयोध्या एवं मिथिला के जन्तुगण यहाँ तक कि दूर्वादल पर्यन्त मुक्ति पा गये थे? तुम्हारी प्राप्ति का कारण केवल तुम्हारी कृपा ही है। साधारण शास्त्र कहते हैं कि सर्प दंशन से अप मृत्यु होने पर मोक्ष नहीं होता, परन्तु राजा परीक्षित को सर्पदंशन से मृत्यु होने पर भी मोक्ष लाभ हो गया था। वे प्रकृत भागवत थे इसीलिए ही उनके निमित्त यह विशेष शास्त्र लागू हुआ।

आज भोर में उक्त श्लोकों का कीर्त्तन, एवं उसका मर्मार्थ विश्लेषण, एवं रहस्यार्थ का उद्घाटन एक अभूतपूर्व अद्भुत व्यापार हुआ। अपने गम्भीर हृदय के द्वार को खोल देकर आज वे जिन प्रकृत धर्मो के समस्त रहस्यों की वार्ता का उपदेश दिये थे, उसे इसके पहले कभी सुनने का सौभाग्य किसी का भी नहीं हुआ था। यहाँ तक कि अधिकारी गरुडध्वज स्वामी एवं कमलनयन स्वामी भी इसके पहले श्री स्वामी जी महाराज का ऐसा प्राण खोला भाव कभी नहीं देखे थे। आज जैसे वे कल्पवृक्ष के सदृश भूरिदान कर रहे हैं। हमारी तत्कालीन (33 वर्ष के पूर्व) लिखी हुई डायरी में जितना लिखा था उतने का ही अवलम्बन करके उपरोक्त अमूल्य वाक्यों को लिखा हूँ। एतद् व्यतीत और भी अनेक उपदेश दिये थे। उन सब विषयों को यथायथ स्मरण करके लिखना अपने क्षुद्र सामर्थ्य के अतीत समझ कर इस स्थल पर लिखने का साहस नहीं हुआ। प्रात: शौच स्नानादि का समय आगत देखकर सेवक कमलनयन स्वामी उनसे निवेदन किये। तब वे कालक्षेप को बन्द करके शौचार्थ जाने के लिए प्रस्तुत हुए। हम लोग भी प्रात: कृत्य समाप्तकरके एक डेढ़ घण्टा के बाद पुन: उनकी सन्निधि में उपस्थित हुए। देखा वे पूजा पाठ समाप्त करके अपने आसन पर यथारीति बैठे हुए हैं। ध्यान में मग्न हैं।

हम लोग उनके सन्मुख एक कम्बल चुप चाप बैठे हुए हैं। उसी घर में कमलनयन स्वामी कुछ काज कर्म में व्यस्त हैं। अधिकारी जी घर में नहीं हैं, आश्रम के नाना कार्यों में लगे हैं। थोड़ी देर के बाद मैं प्रलेप प्रस्तुत करके गरम करके ले आया उनके दोनों चरण में लगा दिया।

आज मङ्गल बार साढ़े नव दस बज गया। ऐसे समय में उनके मुख मण्डल पर मांस पेशी का आकस्मिक कुञ्चन (SPASIN) आरम्भ होता देखा गया। अतिशीघ्र समस्त देह में यह आक्षेप फैल गया, वे संज्ञा हीन हो गये। हम लोग धराधारी करके उन्हें सुला दिये। कई एक सिकेण्ड इसी भाव में रहे। उसके बाद धीरे – धीरे मांस पेशी का आक्षेप कम हो गया, एवं प्राय: दो मिनट के मध्य ही वे संज्ञा लाभ किये, उस समय उठकर चाहे,

हम लोग उन्हें धीरे – धीरे बैठा दिये। इस समय हम लोगों क्या व्याकुल अवस्था कितना हाहाकार करे रहती श्री वह प्रकाश करना सम्भव नहीं। हम लोग सभी अत्यन्त शिथिल हो गये और क्रन्दन करने लगे। कमलनयन जी उसी कोठरी में ही थे, अधिकारी जी खबर सुनकर दौड़े आये। श्री स्वामी जी पूँछने पर वे बोले– 'हमें कोई कष्ट नहीं हैं मैं अच्छे ही हूँ'।

श्री गोपालाचारी स्वामी श्री विजयराघव जी के मन्दिर में कमेटी के एक विशिष्ट सदस्य थे। अयोध्या, वृन्दावन, आरा प्रभृति कई एक स्थानों में उनका मठ मन्दिर है। वे एक जन विशिष्ट सामर्थ्यवान् साधु पुरुष हैं। उस समय में अयोध्या के अपने मठ में ही थे। उन्हें तुरन्त ही श्री स्वामी जी महाराज के इस भयावह नये उपसर्ग के विषय में खबर भेज दी गई। संवाद पाते ही वे श्री मन्दिर में आकर उपस्थित हो गये। उस समय श्री स्वामी जी स्वाभाविक भाव था मन में कोई चञ्चलता नहीं थी। वे अपने आसन पर निविष्ट चित्त से इष्ट चिन्ता में निमग्न थे। श्री गोपालाचारी स्वामी उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके सामने बैठे गये। यथाविधि सम्मान पूर्वक उनके व्याधि की बात एवं वर्तमान कष्ट की बात जिज्ञासा करने लगे। उनके इस व्याधि की वजह श्री भगवान् के प्रति किञ्चित् कटाक्ष पात करके श्री गोपालाचारी स्वामी कहने लगे– भगवान् ऐसे सिद्ध महापुरुष एवं अपने प्रिय भक्त को जब इतना कष्ट देते हैं, तो नहीं मालूम हम लोगों कितना कष्ट सहन करना पड़ेगा।' श्री भगवान् के प्रति ऐसी वक्रोक्ति श्री स्वामी जी महाराज को सहन नहीं हुई। वे और स्थिर नहीं रह सके। वे कहने लगे– "ऐसी बात नहीं बोलना। एक आदमी रास्ता में जाता रहा, जाते जाते कुआँ में गिर गया। उस वक्त एक साधु कुआँ के पास खड़ा रहा। उस आदमी ने कहा कि देखो रास्ता में हम जाते रहे भगवान् हमको हुएँ में गिरा दिये। साधु ने कहा तुम्हारी वह बात ठीक नहीं है। ऐसा कहो कि हमारा कर्म हमको गिरा दिया। फिर स्वामी जी महाराज कहे कि आदमी को जो भोग होता है उसके कर्म से होता है। भगवान् परम दयालु हैं। उस कर्म का भोग थोड़े से ही में मिटा देते हैं। जीव का सदा कर्तव्य है 'तवाहम् अस्मि' मैं तुम्हारी वस्तु हूँ' यही यही प्रार्थना करना। 'तब प्राचीन दासोऽहम्' मैं तुम्हारा नित्य दास हूँ यही प्रार्थना करना। जीव को सदा स्मर्त्तव्य,सदा प्रार्थनीय दो विषय है–

(1) ''प्रभो! आपके उसी श्री चरणारविन्द में मन सदा लगा रहे। मन कभी नहीं हटे।

(2) दास आपके कैङ्कर्य में सदा लगा रहे। यह कैङ्कर्य आप अपनी कृपा से करवा लेते हैं, ऐसी भावना सदा बनी रहे। अहङ्कार ममकार से मन कभी दुष्ट नहीं रहे।'' दो सारतम वाक्यों का उपदेश देकर श्री स्वामी जी महाराज पुनः इष्ट चिन्ता में रत हुए। उनका मुखमण्डल इस समय अद्भुत शोभा धारण किया। जैसे उनका मन और किसी ऐहलौकिक चिन्ता में युक्त नहीं है। मालूम ऐसा पड़ता था कि निरवच्छिन्न भगवच्चिन्ता में ही व्याप्त है। उनकी इस उक्ति को सुनकर एवं इस भाव को देखकर श्री गोपालाचारी स्वामी हम लोगों से कहने लगे – सिद्ध भक्त की ऐसी महिमा का अनुभव करके ही भगवान् गीता में कहे हैं – 'कौन्तेय! प्रति जानीहि, नमे भक्तः प्रणश्यति।'

समय 11 बजे का हो गया, श्री स्वामी जी महाराज की अनुमति लेकर श्री गोपालाचारी स्वामी अति क्लिष्ट मन से चले गये। जाने के समय वे अधिकारी स्वामी से कह गये 'कि बहुत दिन से श्री स्वामी जी महाराज का प्रसाद पाने के लिए हमारे मन में विशेष आग्रह है, तुम आज ही इसकी एक व्यवस्था कर दो।' श्री स्वामी जी महाराज अपना प्रसाद किसी को भी देना नहीं चाहते थे, जो हो अधिकारी जी की एकान्त प्रार्थना से वे सम्मत हुए। गोपालाचारी स्वामी मध्याह्न के बाद पुनः श्री मन्दिर में आगमन किये। और उनका प्रसाद पाकर अपने को

धन्य मानने लगे। प्रायः अन्दाज 12 बजे श्री स्वामी जी को दूसरी बार मूर्च्छा हुई। प्रथम बार के सदृश पहले मुख मण्डल का आक्षेप एवं थोड़ा थोड़ा मांस पेशी संकोच क्रमशः सारे अङ्गमें फैल गया, एवं उत्तरोत्तर अधिक शक्तिशाली सङ्कोच होने लगा। साथ ही साथ संज्ञा हीन हो गये। प्रायः एक मिनट के बाद ही धीरे–धीरे मांस पेशी सहज अवस्था धारण किया, और प्रायः दो मिनट के बाद धीरे – धीरे उनकी संज्ञा लौट आई। प्रकृतिस्थ होने में प्रायः और पाँच सात मिनट समय लगा। वह एक मर्म–भेदी दृश्य था। 33/34 वर्ष पूर्व की घटना आज भी उस भया वह दृश्य जैसे आँख के सामने देख रहा हूँ। उस समय श्री स्वामी जी की कोठरी में अधिकारी जी, कमलनयन जी, आदि केशव जी और मैं था। सभी के मुख में ही कालिमा छाई हुई है। उनके प्रकृतिस्थ होने के बाद कुछ देर बाद अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी श्री स्वामी जी से पूँछे– आपको क्या कष्ट हो रहा है। वे धीरे – धीरे उत्तर दिये –''हमें कोई कष्ट कोई दुःख नहीं है। प्रभु जो करेंगे अच्छा ही करेंगे।'' अल्पक्षण के बाद वे स्वतः कहने लगे –''हमारा शरीर छूटने पर श्री विजयराघव जी महाराज के भोग राग का कुछ कसूर न होने पावे यही मैं सोचता हूँ।'' उनके इस अस्वस्थता का परिणाम क्या है उसे उनके श्री मुख निःसृत इन समस्त वाणी को सुनकर हम सभी स्पष्ट समझ सके। हम लोग नीरव रहकर अश्रुविसर्जन करने लगे। श्री स्वामी जी महाराज के इस गुरुतर पीड़ा की बात शीघ्र ही सारी अयोध्या नगरी में फैल गई। अनेक साधु महात्मा उनके सहित साक्षात् करने आने लगे। दो चार जन कोठरी के अन्दर जाकर उन्हें दर्शन कर गये। अन्यान्य साधुओं को श्री स्वामी जी पीड़ा का गुरुत्व विषय निवेदन करके अधिकारी जी हाथ जोड़कर प्रार्थना किए जिससे वे लोगा दया करके कोठरी के भीतर प्रवेश न करें। उनकी पीड़ा का संवाद लेकर बाहर से ही लौट जायें। इस समय श्री गरुडध्वज जी अन्यान्य गुरु भ्राताओं को उनकी इस अवस्था का संवाद देने के लिए फिर श्री स्वामी जी महाराज से उनकी अनुमति पाने की प्रार्थना किये। किन्तु वे उससे स्वीकृत हुए नहीं। यहाँ तक कि अपने भावी उत्तराधिकारी श्री रामप्रपन्न स्वामी तक को भी संवाद देने को स्वीकृत नहीं हुए। अब से हम लोग डियूटी बनाकर तीन जन सशङ्कचित्त से उनके कोठरी में हमेशा उपस्थित रहने लगे। वे स्थिर भाव से श्री गुरुगोविन्द की ऐकान्तिक चिन्ता में निमग्न रहते, हम लोग भी उस स्थल पर चुपचाप बैठे रहते। बाहर से आये हुए किसी को भी भीतर आने नहीं दिया जाता। उनके दुग्ध प्रसाद लेने का समय बीत गया, वे दूध नहीं पायेंगे यह बोल दिये हैं। वे सरयू नदी का जल पान किये हैं, केवल इष्ट देव के ध्यान में लगे हुए हैं। 'औषधिः जाह्नवी तोयम्, वैद्यो नारायणो हरिः।' अपने अनुष्ठान से इस शास्त्र वाक्य को वे सजीव कर रखे हैं। तीसरे पहर तीन बजे उन्हें और एक बार मूर्च्छा हुई। इस बार पिछले दो बार की अपेक्षा प्रबलतर कम्पन हुआ। इस तीसरी बार मूर्च्छा होने के बाद हम सब मिलकर सोकर रहने के लिए सनिर्वन्ध प्रार्थना किये। हम लोगों के सन्तोषार्थ वे कुछ क्षण सोये जरूर किन्तु अल्पक्षण के बाद ही पुनः उठकर बैठ गये, अपनी चिराचरित प्रथा से योगासन पर उपवेशन किये। प्रायः 4 बजा, उनके शौच जाने का समय हुआ कोई ऐसी अवस्था में उनको निर्धारित शौच स्थान पर ले जाने का भरोसा नहीं किया। यदि पीछे शौच स्थान पर ही मूर्च्छा एवं फिर हो जाय और उसका परिणाम और भी सोचनीय हो पड़े, इसी भय से हम लोग अत्यन्त भीत हुए। इसी विषय में खूब धीरे–धीरे कथोप कथन कर रहे थे। श्री स्वामी जी महाराज इसको समझ गए। अपने चिराभ्यस्त शौच स्थान के अलावा दूसरी जगह शौच करने को वे किसी प्रकार भी स्वीकृत नहीं हुए। कारण यह आचार विरुद्ध एवं शुचि विरुद्ध है। वे दृढ़ता पूर्वक भङ्गिमा से कहने लगे। ''देखो! अभी तक मेरा असाध्य समय नहीं भया। मेरा नित्य नियम नहीं छुड़ाना। मैं कह

देता हूँ कि शौच स्थान में बेहोशी हमें कभी नहीं आयेगी, तुम लोग डरो मत्।'' साधारण क्षेत्र में सांसारिक हिसाब से इस अन्तिम अवस्था में इस प्रकार की उक्ति अविश्वास्य होने पर भी श्री स्वामी जी महाराज की इस असाधारण अवस्था में उनके श्री मुख से निकली हुई यह वाणी जो सम्पूर्ण विश्वास योग्य एवं सम्पूर्ण निर्भर योग्य है, यह वाणी जो अमोघ है, कभी मिथ्या होने को नहीं है, उसे हम लोग मर्म मर्म में समझ सके थे। वे जो भविष्यज्ञ थे इस तथ्य को यत्न के सहित गोपन करके रखते, असावधानता से किसी किसी विशेष मुहूर्त में हठात् प्रकाशित हो पड़ता। इस क्षेत्र में भी जो वैसा ही हुआ उसे समझने में कठिनाई नहीं हुई। अब हम लोग निःशङ्क चित्त से उन्हें उनके चिराभ्यस्त शौच स्थान पर ले गये, उनके धन धन मूर्च्छा और फिर होते हुए भी शौच स्थान पर कभी उनको मूर्च्छा अथवा फिर, (बेहोशी) नहीं हुआ। शौच के अन्त में नियमित प्रथा के अनुसार उन्हें स्नान कराकर तिलक लगा दिया गया। वे अपने आसन पर बैठकर इस गुरु पीड़ा के कारण निश्चल निर्विकार, धीर भाव से ध्यान मग्न हो गये। मन ही मन प्रार्थना स्मरण कर हम लोग अतिकातर भाव से मन ही मन प्रार्थना करने लगे, कि जिससे श्री स्वामी जी महाराज हम लोगों के जीवन यात्रा का अवलम्बन स्वरूप सारतम हितोंपदेश देकर कृतार्थ करें। यह अन्तर की बात इस समय मुँह खोल कर बोलने का अवसर नहीं था। किन्तु वे अन्तर्यामी रूप से हम लोगों के अन्तर की बात जान लिए। थोड़ी देर बाद वे आदर्श अनुष्ठान के विषय में पञ्च महातत्व का उपदेश प्रदान किये –

(1) भगवत्सन्निधि में अपना नीचत्व (दोषावली) का अनुसन्धान करना।
(2) आचार्य की सन्निधि में अपना अज्ञान अनुसन्धान करना। आचार्य ज्ञान देते हैं।
(3) भागवत् की सन्निधि में अपना भागवत् – पारतन्त्र्य अनुसन्धान करना।
(4) आचार्य, हितोपदेश के द्वारा शिष्य का हित करते हैं, शिष्य के स्खलन से उसका शासन करते हैं। शिष्य द्वारा भगवत्कैङ्कर्य कराकर उसको भगवान् का प्रिय बना देते हैं।
(5) शिष्य, आचार्य का प्रिय करते हैं। भगवत्सन्निधि में आचार्य के हित भिक्षा करते हैं।

इस उपदेश पञ्चक को परम उपादेय के ज्ञान से सर्वदा दृढ़ राखने के लिए हम लोगों को आज्ञा दिये। एवं अपने जीवन में अपने अनुष्ठान से इस सारतम उपदेशों को प्रस्फुटित करने का निर्देश दिये। यह उपदेश देकर वे पुनः चिन्तामग्न हो गये।

श्री स्वामी जी महाराज की इस आर्त्तदशा में उनके श्री मुख से अमोघ, शक्ति पुष्ट एवं आशीर्वाद पुष्ट इन उपदेशों को जो क्या सुफल हुआ उसे हम लोग परवर्त्ती जीवन में क्रमशः उपलब्धि कर पा रहे हैं। श्री गुरु से समाश्रित हो उनकी सन्निधि में वास करने की यही तो महिमा है। इसी लिए शास्त्र कहते हैं –

'सिद्धं सत्सम्प्रदाये स्थिरधियमनधं देशिकं भूष्णुरीप्सेत' अर्थात् मुमुक्षुव्यक्ति, गुरुपरम्परा पुष्ट सत्सम्प्रदाय में महाज्ञानी सद्गुरु लाभ की कामना करे। शिष्य की अनुष्ठान सिद्धि के लिए उक्त उपदेश पञ्चक निधि रूप है, यह निधि आचार्य की हृदय गुहा में निहित रहती है। परम दयालु श्री स्वामी जी महाराज अपने इस अन्तिम काल में दासों के प्रति निर्हेतुक कृपा करके यह अमूल्य उज्ज्वल निधि पञ्चक अयाचित भाव में मुक्त हस्त से वितरण करके हम लोगों को धन्यातिधन्यकर दिये। उक्त महा उपदेश पञ्चक अस्मत्पूर्वाचार्य श्री लोकाचारी प्रणीत 'अर्थ पञ्चक' एवं 'श्री वचन भूषण' नामक अमूल्य दोनों ग्रन्थों में स्वर्णाक्षर से लिखा हुआ है। श्री स्वामी जी महाराज ग्रन्थ गत उन ग्रन्थाक्षरों को सजीव करके हम लोगों के जीवन सहचर रूप में प्रदान कर गये। अर्थ पञ्चक में कहा गया है –

(1) ईश्वर सन्निधौ स्वस्यनीचत्वं अनुसन्दधीत्।
(2) आचार्य सन्निधौ स्वस्य अज्ञानं अनुसन्दधीत।
(3) भागवत सन्निधौ स्वस्य पारतन्त्र्यं अनुसन्दधीत। (अर्थपञ्चक – सूत्र 44–46)
(4) आचार्यो हितं प्रवर्त्तयेत्। (श्रीवचन भूषण सूत्र 334) आचार्यो उज्जीवने तत्परो वर्तेत (सूत्र 335)
(5) शिष्य स्वयं प्रियं प्रवर्त्तयेत्, ईश्वरेण हितं प्रवर्त्तयेत्। शिष्यः प्रीतौ तत्परो वर्त्तेत्। (सूत्र – 334–335)

अस्मत् पूर्वाचार्य जगदाचारी लोकाचारी प्रणीत 'श्री वचन भूषण' ग्रन्थ उज्जीवन का भी मुमुक्षु व्यक्ति मात्र के लिए ही अमूल्य अलङ्कार स्वरूप है। इसी क़ारण ही श्रीवचन भूषण के व्याख्या करने वाले श्री वरवर मुनि अपनी उपक्रमणिका में गान किये हैं –

आलोच्यतां वचन भूषणमात्मनीनम्,
निष्ठीयतां च नियमेन तदुक्ति मार्गे ॥

श्री वचन भूषण के तत्व एवं उपदेशों को पुनः पुनः आलोचना करना चाहिए एवं अनुष्ठान भी करना चाहिए। श्री रामानुज स्वामी के द्वितीय अवतार महान् पूर्वाचारी श्री वरवर मुनि का उक्त निर्देश श्री स्वामी जी महाराज अक्षरशः पालन करते थे। अपने आचरण एवं अनुष्ठान द्वारा श्री वचन भूषण के वाक्यों को परिस्फुट करके उसे सजीव कर रखे थे। इसी कारण साधु समाज उनको श्री वागभूषण दिव्य भाव विशदीकार प्रवीण :' कहकर प्रचार कर गये हैं।

उक्त उपदेशों को देने के पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज पुनः मौनावलम्बन करके इष्ट चिन्ता में निमग्न हो गये। वे किस भाव में इष्ट चिन्ता करते थे वह हम लोगों के ज्ञान के वाहिर है। तथापि उनके श्री मुख से निकले हुए श्लोकों से उसका यत्किञ्चित् आभास अनुमान करने से मिल सकता है। श्रियः पति श्री भगवान् का स्वरूप, रूप, गुण उनके सहित जीव का सम्बन्ध, उनके प्रति जीवका कर्तव्य, यह सभी विषय ही जो उनके ध्यान का विषय वस्तु था उसका आभास हम लोगों को मिला है, इस चरम समय में उनके द्वारा कीर्तित पूर्व श्लोकों से।

श्री विजयराघव जी महाराज की सन्ध्या आरती समाप्त होने के कुछ काल पश्चात योगासन से बैठे हुए श्री स्वामी जी महाराज गद्‌गद हृदय से निकले हुए मधुर कण्ठ से इन श्लोकों को स्वर लय युक्त आवृत्ति और कीर्तन करना आरम्भ किये। सारी रात्रि वे अनर्गल श्लोकों की आवृत्ति और कीर्त्तन करते रहे। रात्रि जितनी ही निस्तब्ध होने लगी, उतना ही उनका आर्द्र, आर्त्त कण्ठ मधुर से मधुरतर होने लगा, उतना ही उनका स्वर उच्च से उच्चतर होने लगा। मालूम होने लगा कि जैसे आकाश को भेद करके उनकी यह मर्म गाथावली समग्र अयोध्या धाम में व्याप्त होकर आकाश वातास पवित्रकर दिया। 'आचार्य प्रकाश' ग्रन्थ में श्री स्वामी जी महाराज का अन्त कालीन उक्त अनुष्ठनावली निम्नलिखित कई एक पंक्ति में प्रकाशित हुई है।

किवा स्तुति किवा आर्त्ति किवा से दर्शन । किवा जय किवा ध्यान किवा से स्मरण ॥
कीर्त्तन मधुर स्वरे भेदि मर्म स्थल । दिवस यामिनी किवा चले अविरल ॥
निछिया निछिया स्तुति से ये प्राणाराम । कर्णेते पशिलो यार सफल जनम ॥
स्तुति मारवा दिव्यस्वर दुकूल भासाय । चराचर से परशे पूत पुण्यमय ॥

असाध्य समय तब नियत नियमे । तिल मात्रनाहिं त्रुटि निशि जागरणे ॥
किवा ज्ञान किवा भक्ति किवा से आचार । अन्तिम कालेउ देखि सभे चमत्कार ॥
(आचार्य प्रकाश)

इसी प्रकार अविच्छिन्त्रभाव में आर्त्तियुक्त उनकी स्तुति चलने लगी। मध्य रात्रि प्रायः 11 बजे पहले की तरह उन्हें एक बार फिट (बेहोश) हुआ। कई एक मिनट के मध्य ही ज्ञान हो गया। 15 मिनट के बाद पुनः स्तुति कीर्त्तन आरम्भ हुआ। लघु शंका (पेशाब) के समय उन्हें वहन करके सदा नियत स्थान पर ले जाया जाता, जिससे उनका चिराचरित्र आचार भ्रष्ट न हो इस विषय पर हम लोग अच्छी प्रकार ध्यान रखते। श्री गुरुदेव का स्वरूप हानि कर कार्य 'असह्यापचार' नाम से अभिहित है। जिससे यह असह्यापचार न हो जाये इस विषय में हम लोग सर्वदा सावधान रहते। इस भाव से वे समस्त रात्रि जगकर स्तोत्रों के करुण कीर्त्तन द्वारा समस्त रात्रि अतिवाहित किये। वे समस्त रात्रि वे जो किन किन स्तोत्रों का कीर्त्तन किये थे उसे स्मृति पथ में रखना सम्भव नहीं। तथापि हमारी तत्कालीन डायरी जो सब स्तोत्र अथवा श्लोक लिखे हुए हैं । वही सब अवलम्बन करके नीचे यथा साध्य भाव से उक्त श्लोकों को उद्धृत किया जा रहा है।

करुणा पूर्ण हृदय! शंखचक्र गदाधर! ।
अमृतानन्द पूर्णाभ्यां, लोचनाभ्यां विलोकय ॥
अभर्यादः क्षुद्रश्चलमतिरसूया प्रसवभूः,
कृतघ्नो दुर्म्भानी स्मरपरवशः वञ्चन परः।
नृशंसः पापिष्ठः कथमहभितो दुःखजलधेः,
आपरादुत्तीर्णस्तव परिचरेयं चरणयोः ॥
ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोऽहम्,
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतम्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

हे महापुरुष! हे प्रणत पालक! तुम्हारा जो चरण कमल सदा ही ध्येय है, सदा ही समस्त विघ्नों को विनाश करने वाला है, एवं अभीष्ट देने वाला है, सम्पूर्ण तीर्थ स्वरूप है, शिव एवं ब्रह्मा के द्वारा सदा स्तुत है, दासों के आर्त्ति को विनाश करने वाला है एवं भवसागर पार होने का नौका स्वरूप है ऐसे तुम्हारे चरण कमल की मैं वन्दना करता हूँ।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज–सुरेप्सित–राज्य लक्ष्मीम्, धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
माया मृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्, वन्दे महापुरुष ते चरणार विन्दम् ॥

हे धर्मिष्ठ जिसे त्याग करना अतीव दुष्कर है, जिसको पाने के लिए देवतागण भी सदा वाञ्छा करते हैं, उस राज्यलक्ष्मी को त्याग करके तुम वन में गमन किये थे, तुम्हारा जो चरण युगलदयिता श्री सीता जीके प्रिय मायामृग के पीछे पीछे दौड़ पड़ा था, तुम्हारे उस चरणार विन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

विलास विक्रान्त परावरालयम्, नमस्यदार्त्ति–क्षपणे कृतक्षणम् ।
धनं मदीयं तव पादपङ्कजम्, कदानु साक्षात् करवाणि चक्षुषा ॥



श्री वेङ्कटेश भगवान जी

श्री रामानुज कोट, विभीषण कुण्ड

कदा पुनः शङ्ख–रथाङ्ग कल्पक– ध्वजारविन्दाङ्कुश–वज्रलाञ्छनम् ।
त्रिविक्रम्! त्वच्चरणाम्वुजद्वयम्, मदीय मूर्द्धानमलङ्करिष्यति ॥

हे शरणागत पालक! तुम्हारा त्रिभुवन–विक्रम ऊँचनीच विचार रहित सम्पूर्ण जीवों का ही आश्रय स्थल, आश्रित दुरित निवर्त्तक एवं हमारा परम भोग्य स्वरूप तुम्हारा चरण युगल अपने इस चर्मचक्षु के द्वारा कब दर्शन करूँगा? अर्थात् कृपा करके अभी दर्शन देकर हमें धन्य करो, अब विलम्बन नहीं सहन हो रहा है।

हे त्रिविक्रम! शङ्खचक्र ध्वजा पद्म एवं अङ्कुश शोभित अपना वह चरण युगल जो एक समय त्रिभुवन के मस्तक पर धारण किये थे वही चरण कमल कब हमारे मस्तक को अलङ्कृत करेगा बोलो।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायाम्,
हस्तौच कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवास जगत्प्रणामे,
दृष्टि, सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

हे जगन्निवास! हमारी वाणी जिससे सदा ही आपके गुण कीर्त्तन में, हमारा दोनों कर्ण आपकी कथा सुनने में, दोनों हाथ आपकी सेवा में हमारा मन आपके रूप और गुण अनुचिन्तन में हमारा मसतक तुम्हारे प्रणाम करने में एवं हमारा दोनों नेत्र जिससे सदा ही आपके श्री विग्रह दर्शन में सदा ही निरत रहे। हमारा मस्तक देह और समस्त इन्द्रिय जिससे सर्वदा आपकी ही सेवा में निरत रहे। ऐसी कृपा कीजिये।

शङ्ख – चक्र – गदा – पाणे! द्वारका निलयाच्युत!
इमामवस्थां सम्प्रातां, किमर्थत्वमुपेक्षसे॥

द्रौपदी अपने वस्त्र हरण के समय में श्री कृष्ण को स्मरण करके कह रही है–' हे शङ्ख चक्र गदा धारिन्! हे द्वारका वासिन! मेरे इस महाविपद् के समय में भी तुम हमारी उपेक्षा क्यों कर रहे हो? हे आश्रित रक्षक! शीघ्र आकर हमारी रक्षा करो।

यत्कीर्त्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणम्,
यद्वन्दनम् यत् श्रवणम् यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषम्,
तस्मै सुभद्र श्रवसे नमो नमः॥

जिसका कीर्त्तन, जिसका स्मरण, जिसका दर्शन, जिसका वन्दन, जिसकी कथा का श्रवण, जिसकी पूजा, लोकों का समस्त पाप शीघ्रातिशीघ्र विधौत कर देता है, एवं जो केवल सुनने से सम्पूर्ण मङ्गलको देने वाला है, उसको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभधरं वनमाला विराजितम्।
शङ्खचक्रगदाधरं देव वन्दे जगद् गुरुम्॥
श्रुतिस्मृतिर्ममैवाज्ञा, यस्तामुल्लङ्घ्यवर्त्तते।
आज्ञाच्छेदी ममद्रोही, मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

श्रुति स्मृति (पुराणादि शास्त्र) हमारी आज्ञा स्वरूप हैं। जो शास्त्रगत हमारी इस आज्ञा को उल्लङ्घन करके जीवन यापन करता है। वह हमारा भक्त होने पर भी कभी वैष्णव पदवाच्य नहीं हो सकता।

न यत्र वैकुण्ठ कथा सुधापगा, न साधवो भागवता स्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः, सुरेश लोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ।।

हे प्रभो! जिस स्थल पर वैकुण्ठ कथा रूप सुधा नदी प्रवाहित नहीं होती हो, जिस स्थल पर तुम्हारे आश्रित साधुभक्तगण निवास नहीं करते हों, जिस स्थल पर तुम्हारा यज्ञ आदि महोत्सव होते नहीं हों, वह स्थान इन्द्रादि देव लोक होने पर भी परित्याग के योग्य है।

26 अगस्त बुधवार 1931 ख्रः –

इसी भाव में समस्त रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातःकाल हो जाने पर यथा रीति उनका शौच स्नानादि तिलक पूजा प्रभृति नित्य कृत्य सम्पन्न हुआ। इसके थोड़ी देर बाद ही पुनः उन्हें फिट (वेहोशी) हुआ। अल्पक्षण के मध्य ही संज्ञा लाभ होने के पश्चात् वे योगासन से उपवेशन करके यथा पूर्व इष्ट ध्यान में निरत हो गये। आज प्रातः काल से ही फिट का आकार प्रकार अवनति की तरफ जाने लगा। फिट कुछ घन घन होने लगा। गत दिन 24 घण्टा के अन्दर उन्हें चार बार फिट हुआ था। किन्तु आज प्रातःकाल से 11 बजे के मध्य ही तीन बार फिट हो गया। उनका आहार केवल सरयू नदी का जल और श्री विजय राघव जी महाराज का श्री पादतीर्थ (चरणामृत) था। वे अत्यन्त दुर्बल हो पड़े थे। हम सभी उनके निकट ही थे। कोठरी के बाहर ही अधिकांश सेवक थे, दो एक जन मात्र कोठरी के मध्य थे।

प्रातःकाल श्री गोपालाचारी स्वामी आये, श्री स्वामी जी महाराज का दर्शन किये। तथा उपदेश देने के लिए उनके चरण में सनम्र प्रार्थना किये। और कहे कि "हम लोग आपके दास हैं आप के श्री चरण प्रान्त में उपस्थित होकर आपके श्री मुखार बिन्द से हम लोग पारमार्थिक उपदेश की भिक्षा माँग रहे हैं।" श्री गोपालाचारी जी को श्री स्वामी जी महाराज विशेष स्नेह करते थे। एवं उन्हें उत्तम अधिकारी जानकर श्री विजय राघव जी महाराज के परिचालक कमेटी का उन्हें एकजन सदस्य रूप में मनोनीत किये थे। इस अपने अन्तिम समय में वे गोपालाचारी स्वामी की प्रार्थना पूर्ण किये। वे तीन महा उपदेश दान किये (1) भगवान, भागवत एवं आचार्य इनके प्रति समान भाव से इष्ट बुद्धि करना ।

(2) श्रीरामानुज स्वामी का अन्तिम कालीन उपदेश सदा मन में स्मरण रखना ।

(3) आचार्य अभिमान ही श्रेष्ठ उत्तारक है।

श्री भाष्य द्रविणागम प्रवचनं श्रीशस्थलेष्वन्वहम्,
कैङ्कर्य्य यदुशैल नित्य वसतिः सार्थद्वयोच्चारणम् ।
यद्वा भागवताभिमान वसतिः नित्यंसताभित्यल्नम्,
शिष्यान् प्रोच्य यतीश्वरः परमगात् नित्यं पदं शाश्वतम् ।।

अर्थ :– आदर्श भागवत श्री भाष्य अनुशीलन करेंगे। अपने सिद्धान्त में यथार्थ तत्व ज्ञान के विषय में सुदृढ़ होने के लिए इसका अनुशीलन अति आवश्यक है। यह श्री भाष्य अच्छी प्रकार अधिगत करने में वेदान्त, न्याय, पूर्व मीमांसा आदिक दर्शन शास्त्र के ज्ञान का प्रयोजन है। यदि इस कारण से श्री भाष्य के अनुशीलन में असमर्थ हो तब द्रविण वेदान्त अर्थात् आड्वारों के दिव्य प्रबन्धों का अध्ययन करे। इसके द्वारा तत्व विषयक रहस्य विषयक एवं रस विषयक जानने योग्य वस्तुओं का ज्ञान होगा। यदि उसमें भी असमर्थ हो तो किसी दिव्य देश में (श्रीरङ्गम्, वेङ्कटाद्रिप्रभृति) वास करके प्रति दिन श्री भगवद् भागवत आचार्य का कैङ्कर्य करे।

यदि उसमें भी असमर्थ हो तो यदुशैल (काञ्चीपुरी) में नित्य निवास करते हुए अर्थ के सहित द्वयमन्त्र का उच्चारण करे। यदि उसमें भी असमर्थ हो तो किसी स्थान पर परम भागवत के अभिमान में वास करें। (भागवत अभिमान सेवा आदि के द्वारा इस तरह से भागवत की प्रसन्तता विधान करो कि जिससे वे तुम्हें अपना आत्मीय रूप से सदा स्मरण करें एवं सर्वदा तुम्हारे मङ्गल की कामना करें यही भागवताभिमान कहलाता है)। यह साधकों के परम मङ्गल के पक्ष में यथेष्ट है।

श्री रामानुज स्वामी जी के द्वारा शिष्यों को उपदेश देने के सदृश हम सभी के प्रति श्री स्वामी जी महाराज का यह कल्याणमय उपदेश हम लोगों के हृदय के अन्दर ही चिरकाल के लिए ग्रथित होकर रहा। पुनःअवसर समझ कर श्री गोपालाचारी स्वामी श्री स्वामी जी महाराज के निकट उनके श्री पादतीर्थ (चरणामृत) के लिए प्रार्थना किये उसको पान करने की आशा से श्री स्वामी जी महाराज पहले तो स्वीकृत नहीं हुए, पुनः पुनः प्रार्थना करने पर वे सम्मत हुए। श्री कमलनयन जी एक छोटा लोटा जल पूर्ण करके ले आये उसमें श्री स्वामी जी महाराज का दक्षिण अंगूठा डुबाकर श्री पादोदक प्रस्तुत किये। पहले श्री गोपालाचारी स्वामी वह चरणामृत पान किये, उनके बाद हम सभी एक एक करके पान करके धन्य हो गये। चुपचाप हम लोग बैठे हुए हैं, श्री गोपालाचारी स्वामी भी बैठे हैं। इसी समय श्री स्वामी जी महाराज को और फिट हुआ। उस समय मध्याह्न प्रायः 1 बजा था, इस बार का फिट पहले की अपेक्षा प्रबल था। इस बार अन्यान्य साधुओं के निर्देश से अत्यन्त भीत एवं त्रस्त होकर मैं उनकी हृदयन्त्र से परीक्षा करके देखा कि फिट के समय हृदस्पन खूब मन्थर–गति से चल रहा है, दो एक सेकेण्ड यह स्पन्दन बन्द भी था। ऐसा मन में हुआ। यह समझने में बाकी नहीं रहा कि उनकी अवस्था अत्यनैराश्य पूर्ण है।

श्री गोपालाचारी स्वामी जी से अपना अभिमत प्रकट किया। इसी कारण और वे अपने आश्रम में नहीं गये। उसी स्थान पर प्रसाद पाकर अवस्थान करने लगे। श्री स्वामी जी महराज कभी शयन करते है और कभी उपवेशन करके रहते हैं। उनकी इस असाध्य अवस्था में भी लघुशङ्का के लिए उन्हें वहन कर बाहर में निर्द्धारित स्थान पर ले जाया जाने लगा। वे इस समय वाक्य नहीं बोल रहे हैं, इष्ट देव के ध्यान में निरत हैं। मुखारविन्द पर क्लेश का कोई भी चिह्न नहीं है। ओष्ठाधर सर्वदा स्फुटित हो रहा है, मन में हुआ कि मन्त्र जप चल रहा है। श्री गोपालाचारी स्वामी 2 बजे अपने स्थान पर चले गये। यह बोल गये कि 5 बजे तक फिर आऊँगा। एवं जिस समय ही प्रयोजन हो हमें खबर देना।

समय 2।। बजे से 3 बजे के भीतर उपर्युपरि दो बार फिट हुआ। आश्रम के सभी जन शोकाकुल हैं। संवाद पाकर अयोध्या के बहुत साधु आकर उनका संवाद ले जा रहे हैं। कब क्या हो जाय! 4 बजे वे जिज्ञासा किये –"श्री विजय राघव जी महाराज के मन्दिर का दरवाजा खोलने का समय हुआ है कि नहीं।'' श्री अधिकारी जी बोले – नहीं, अभी खोला नहीं गया। इस वाक्य को सुनकर वे प्रश्न किये –'' कितना बजा है?'' अधिकारी जी बोले– इस समय 4 बजा है, श्री भगवान के उत्थापन का समय हो गया।

श्री स्वामी जी महाराज बोले– ''शीघ्र ही मन्दिर का द्वार खोला जाय। श्री विजय राघव जी महाराज का उत्थापन करो, भोग लगाओं, आरति करो, उसके बाद हमें खबर दो।''

उनका आदेश उसी समय पालन किया गया। मन्दिर के भीतर किसी का देहान्त हो जाने पर उस देह का सत्कार करके जब तक सत्कार करने वाले नहीं लौट आयें, तब तक श्री भगवान के मन्दिर का द्वार बन्द रहता

है। सत्कार करके लौट आने पर श्री मन्दिर और जग मोहन अच्छी प्रकार से धोया जाता है, इसके बाद श्री भगवान् के विग्रह का स्नान और पूजा आदि कृत्य सम्पन्न करके भोग तथा आरती की जाती है। उनके देह के त्यागानन्तर, पीछे श्री भगवान् की पूजा और भोग रागमें त्रुटि न हो जाय, इसी आशङ्का से श्री स्वामी जी महाराज पहले श्री विजय राघव जी भगवान् का उत्थापन, पूजा, भोग, आरति सम्पन्न करा लिये। यही सिद्ध महापुरुष का परम एवं चरम अनुष्ठान तथा चरम कैङ्कर्य है। श्री विजय राघव जी महाराज का आपराह्णिक आरति और भोग सम्पन्न हो गया, इस विषय को श्री स्वामी जी महाराज को विज्ञापित किया गया। मन में हुआ कि अब वे आश्वस्त हुए। जैसे वे श्री विजय राघव जी महाराज की इस सेवा के लिए ही अपेक्षा कर रहे थे। अब वे सभी को आशीर्वाद किये। बोले – ''शेष वार्ता''

'' श्री विजंय राघव जी महाराज के कैङ्कर्य में जिससे किसी प्रकार त्रुटि नहीं होने पाये।'' पुनः स्नेह गद्‌गद स्वर से बोले–

''अधिकारी गरुड़ध्वज जी इस लोक के मूर्ति नहीं है परलोक के मूर्ति है। कमलनयन जी हमारा हाथ और गोड़ है।'' उसी समय उन्हें एक तीव्र फिट हुआ। मालूम हुआ जैसे प्राणवायु निःशेष हो गया। किन्तु अल्पक्षण ही में फिर बन्द हो गया, ज्ञान लौट आया। दो चार मिनट के बाद ही वे फिर बोले– ''आदि केशव, यतीन्द्र, श्री विजयराघव जी महाराज.....'' श्री विजयराघव जी महाराज यह शब्द उनके श्री मुखार विन्द से उच्चारित होने के साथ ही साथ समस्त शरीर निथर हो गया। उनके इस दिव्य मङ्गल विग्रह का श्वास प्रशासन चिरदिन के लिए विलुप्त हो गया। उनका दिव्य मङ्गल विग्रह ढल पड़ा। श्री विजयराघव जी महाराज का भोग आरति सम्पन्न कराकर , उनके नित्य कैङ्कर्य का भार अधिकारी जी, कमलनयन जी एवं हम सबों के ऊपर अर्पण किये, तदनन्तर हम सबों को असीम शोक सागर में बहाकर वे परम पद में गमन किये।

सम्वत् 1988 (1931 खृष्टाब्द 26 अगस्त) श्रावण मास बुधवार श्रवण नक्षत्र, शुक्ल पक्ष, चतुर्दशी तिथि, अपराह्न 5 बजे वे योगासन से ही परम पद में महाप्रयाण किये। समग्र आश्रम में हाहाकार मच गया। साथ ही साथ श्री विजयराघव जी महाराज का मन्दिर द्वार बन्द हो गया। श्री गोपालाचारी स्वामी को खबर दी गई। वे उसी समय आश्रम में आ गए । इस मर्म भरे दृष्य को देखकर अश्रु वर्षण करने लगे। अधिकारी प्रमुख शोक विह्वल समस्त आश्रमवासी को शोक परित्याग करके धैर्य धारण करने के लिए सान्त्वना देने लगे। श्री स्वामी जी महाराज का देह संस्कार, उनको वैष्णवाग्नि। (ब्रह्म मेध संस्कार) जिससे सर्वाङ्ग सुन्दर भाव से सम्पन्न हो इसके लिए यत्नवान् होने को बोले। यह आचार्य का अन्तिम एवं महान कैङ्कर्य है। उत्तराधिकारी श्री रामप्रपन्नाचारी स्वामी को 'तार' वृन्दावन में दे दिया गया। भारत के सर्वत्र उनके उपयुक्त शिष्य वर्ग को भी टेलिग्राम कर दिया गया। वङ्गवासी शिष्यगण को आदि केशव जी और हम टेलिग्राम कर दिये। इस समय इस विषय में अधिकारी श्री गरुड़ध्वज जी अग्रणी हुए। श्री गोपालाचारी स्वामी के निर्देश से इस वैष्णवाग्नि के विषय में वे तत्पर हुए। साथ साथ श्री रामाचारी जी और श्री कमलनयन जी योग दिये। हम लोग भी उनकी सहायता करने लगे।

''श्री स्वामी जी के दिव्य विग्रह का ब्रह्म मेध संस्कार''

श्री गोपालाचारी जी के निर्देशानुसार श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य विग्रह को उपवेशित करा दिया गया। जिस दक्षिणी पण्डित श्री तोतादि आयङ्गार को अनुरोध करके उनकी दक्षिण यात्रा श्री स्वामी जी महाराज बन्द करा दिये थे, उन्हीं की परिचालना में श्री स्वामी जी महाराज का ब्रह्म मेध संस्कार अनुष्ठित

हुआ। षोडश कलश पूर्ण मन्त्रपूत जल से उनके दिव्य मङ्गल विग्रह का स्नान सम्पन्न कराया गया। लालाटादि द्वादश स्थानों में द्वादश तिलक लगा दिया गया।

उनके श्री विग्रह को वहन करने के लिए नया विमान बनाया गया। सोलह मूर्ति ब्राह्मण श्री वैष्णव उनको वहन करने के लिए प्रस्तुत हुए। विमान के आगे एवं पीछे वैष्णवगण आलवन्दार स्तोत्र का पाठ करना आरम्भ किये। पहले उनको श्री विजय राघव जी के मन्दिर के सन्मुख ले आया गया। मन्दिर के सभी सेवक उन्हें साष्टाङ्ग किये। विमान के ऊपर पुष्प शय्या पर दिव्य विग्रह को शयन करा दिया गया। वाहक लोग वहन करने लगे, पाठ करने वाले विमान के आगे एवं पीछे आल्वन्दार स्तोत्र का पाठ करते हुए चलने लगे। अयोध्यास्थ श्री मणिराम जी की छावनी के पास सरयू नदी के तीर विमान ले जाया गया। उस स्थल पर ब्रह्ममेध संस्कार के शास्त्र विधि के अनुसार उनके दिव्य देह का संस्कार किया गया। श्री स्वामी जी महाराज का श्री विग्रह चिरकाल के लिए जो हम लोगों के चर्म चक्षु के अन्तराल में चला गया उसे हम लोग क़िसी तरह भी विश्वास नहीं कर पा रहे थे।

''श्री कमलनयन स्वामी द्वारा मुखाग्नि संस्कार''

श्री स्वामी जी महाराज के अन्तरङ्ग सेवक श्री कमलनयन जी मुखाग्नि संस्कार किये। दाह संस्कार के पश्चात् प्रत्येक ही स्नान किये। श्री कमलनयन जी एवं वाहकगण स्नान के अन्त में नया वस्त्र एवं उत्तरीय परिधान किये। हम सभी क्रन्दन करते हुए श्री मन्दिर में लौट आये। रात्रि प्राय: 11 बज गया। हम लोगों के श्री मन्दिर में आने के पश्चात् श्री मन्दिर और विधि के अनुसार अच्छी प्रकार से विधौत किया गया। तदनन्तर श्री विजयराघव जी के मन्दिर का द्वार उद्घाटन किया गया। पूजा पाठ के बाद सान्ध्य भोग एवं सन्ध्या आरती और स्तोत्र पाठ सम्पन्न हुआ। तदनन्तर रात्रि कालीन भोग एवं शयन आरती सम्पन्न करके श्री विजयराघव जी भगवान् का शयन हुआ।

आज और मन्दिर की वह शोभा नहीं है। पूजा पाठ आरति के सौष्ठव में वह पूर्णता नहीं है। समस्त ही प्राणहीन के सदृश मालूम पड़ रहे हैं। आश्रम के सेवकगण भी प्राणहीन के तुल्य हो गये। सभी श्री स्वामी जी महाराज के शोक में विह्वल हो गये।

श्री कमलनयन जी मुखाग्नि संस्कार किये थे इसीलिए वे क्रिया (शास्त्रीय मांगलिक अनुष्ठान) के लिए बैठे। वे शास्त्र विधि के अनुसार अपनी गति विधि, भोजन शयनादि नियन्त्रित करके श्री स्वामी जी महाराज जिस कोठरी में परमपद महाप्रयाण किये हैं, उसी कोठरी में रहने लगे। दूसरे दिन से श्री स्वामी जी महाराज के शिष्यों को यह महा दु:संवाद तार के द्वारा भेजा गया। यह दु:संवाद पाकर शिष्यगण अनेक ही आकर आश्रम में उपस्थित होने लगे। वृन्दावन से श्री रामप्रपन्नाचारी स्वामी एवं श्री रामचन्द्राचारी स्वामी आये, प्रयाग से श्री रामकृष्णाचारी और काशी से श्रीरङ्गाचारी आये। विभिन्न प्रदेश से और भी बहुत साधु आये। वङ्गदेश से चालीस पचास जन वैष्णव और वैष्णवी आये, उसके साथ हमारी धर्म पत्नी भी आई। आश्रम में सबके लिए स्थान पूरा नहीं पड़ा, निकटवर्ती दो एक स्थानों में यह समस्त मूर्ति अवस्थान करने लगे। एकादश दिन से तीन दिन व्यापी श्री स्वामी जी महाराज का 'श्री वैकुण्ठोत्सव' आरम्भ हुआ।

दक्षिणी कर्मकाण्डी श्री वैष्णव की परिचालना में विशेष पूजा पाठ, विशेष क्रिया कर्म चलने लगा। इसके पहले इस वैकुण्ठोत्सव में योगदान के लिए समस्त अयोध्या के आश्रमों में निमन्त्रण भेजा गया। श्री स्वामी जी

महाराज के अभिलाषानुसार एक पाव वजन बुँदिया कर लड्डू प्रस्तुत हुआ। त्रयोदश दिवस वैकुण्ठोत्सव की समाप्ति के दिन में तदीयाराधना (भागवतों को प्रसाद भोजन) की व्यवस्था की गई। कई एकशत भागवत् आश्रम में प्रसाद पाये –पूड़ी, शाक, मालपूआ लड्डू आदि भोग लगा था। कई एक शत भागवत् अमनियाँ ले गये।

इस अमनियाँ में मूर्ति पीछे आधा सेर चावल, एक पाव दाल एक पाव आलू व तद्नुरूप धृत व तेल सैंधव लवण एवं मसाला तथा एक बड़ा लड्डू दिया गया। प्रत्येक आश्रम से एक जन प्रतिनिधि यह अमनियाँ लेने आये। श्री स्वामी जी के पूर्व निर्देशानुसार किसी आश्रम में पाँच मूर्ति किसी आश्रम में दश मूर्ति को अमनियाँ दिया गया। प्रात:काल से लेकर रात्रि तक यह तदीया राधना चलता रहा। इस उत्सव में कई एक सहस्र रूपया खर्च हुआ। श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य सेवकगण प्रसन्न चित्त से यह भार वहन किये।

श्री स्वामी जी महाराज के अन्तर्धान के पश्चात् भी श्री विजय राघव जी आश्रम का भोग राग पूजा प्रभृति कार्यक्रम ही यथा रीति चलने लगा। किन्तु वह शोभा वह मर्यादा वह महिमा वह सम्भ्रम क्षीण – प्रभ रहा।

श्री स्वामी जी महाराज के स्थल पर उनके लिखित निर्देश के अनुसार श्री रामप्रपन्नचार्य स्वामी महन्थ पद पर अभिषिक्त हुए। श्री गरुड़ध्वज जी एवं कमलनयन जी साहचर्य्य से वे आश्रम का कार्यभार चलाने लगे। नव अधिष्ठित महन्थ श्री रामप्रन्नाचारी स्वामी एकजन ज्ञानाधिक आचार्य्य थे। वे वेदान्त शास्त्र में निष्णात 'वेदान्त शास्त्री' एवं तर्क शास्त्र में व्युत्पन्न 'तर्क वाचस्पति' पण्डित थे। वे विरक्त, संसार त्यागी आकुमार ब्रह्मचारी पुरुष थे। उनके परिचालना से इस समय श्री विजय राघव जी महाराज की पूजा भोग रागादि, भागवत सेवा प्रभृति आश्रम का समस्त कार्य यथा रीति चलने लगा।

तृतीय प्रवाह

एकादशः अध्याय

।। महा प्रयाण के अनन्तर श्री स्वामी जी महाराज का गुणानुसन्धान ।।

श्री स्वामी जी महाराज के परम पद गमन करने के अनन्तर उनके शोक में आकुल होकर भारत वर्ष के विभिन्न स्थानों में विभिन्न ज्ञानी आचार्य, महात्मा, और गुणानुरक्त भक्त वृन्द अपने अपने ह्रदय के शोकोच्छासको व्यक्त करके बहुत सा श्लोक रचना करके श्री अयोध्या आश्रम में प्रेरण किये। इसके मध्य कई एक को सङ्कलन करके 'श्री बलराम गुणानुसन्धानम्' और 'श्री बलराम वैभवम्' दो प्रति क्षुद्र सङ्कलन पुस्तिका उस समय प्रकाशित कर दी गई। इन श्लोकों के लेखक वृन्द केवल अपना ही नहीं प्रत्युत श्री स्वामी जी महाराज के संस्पर्श में जो ही आये थे उन लोगों के भी मन के आकुलभाव को प्रस्फुटित कर दिये हैं।

श्री बलराम गुणानुसन्धानम्: – (1)

अहो! यति राजाधिराजाः श्री बलरामाचार्य स्वामिनः श्री वैय्या सकिरिवैकादशवर्षदेशीय एवं नितान्त शैशवसम्पन्ना वहुला भीलज्वलज्वलाक्रान्तं जगतीतलं अवलोक्य अविरल निजपरिवारमह्नाय हित्वा यावज्जीवं कन्दमूलफलक्षीराशने मति निधाय, जनकजाजानि विजयराघवपुरीमयोध्यामुपेत्य कतिचिदहानि साकेतच्छटां निरीक्ष्य त्रिविधतापघ्नं मनोहरं वदरिकाश्रमं जग्मुः। तत्रानेकानेक–महात्ममुखोच्चरित सदुपदेशपीयूषपानोल्लसितह्रदयाः योग्यतमं गुरुं लब्धुकामाः निजशोभातिशयापहसितनन्दन नन्दनन्दनमनोनन्दनं वृन्दावनं समागत्य,श्रीराधिका –जीवनपदपद्मद्वन्द्वानुस्मरण परायण, गोवर्द्धनपीठाधीश्वर, श्रीरङ्गदेशिकचरणाम्वुज चञ्चरीका अभवन्, तेभ्यश्च

लोकार्यदेशिक समस्त रहस्य सारोपनिषद् द्वैपायनीय पुराण स्मृत्यादि–शास्त्राणि अधिजगिरे। अथ तत्र चिराय अखिलब्रह्माण्डनायकं गोपिकानाथमाराध्य, श्री 1008 मद्गुरुवर्यस्य सरोरुहस्रवत्सुधाञ्च निपीय, पुनः श्री सरयूकूलाश्रित रमणीयरामनगरीमवापुः। वालादारम्य यावदायुर्भगवत्सन्निधिं त्यक्तवा लोकेषणायै क्वापि गन्तुम् नोत्सहन्ता। किंवहुना, लोक प्रतिष्ठा भीत्यात्मनोऽलौकिकीर्विभूती, सुगोप्य निभृतभूषिते सत्यपि जगति कस्तूरीमृगस्य सुरभिवत् स्वतः तद्यशांसि पप्रथिरे। पुनः दाक्षिणात्यत उत्तराधावगतैः श्रीरामानुजावताररङ्गार्यवुधवरैर्यः सम्प्रदायसिद्धान्त विस्तार विधावानुष्ठानारम्भोऽभावि तद्विशदी करणैकमनसः श्री स्वामि नित्यकोटिबलरामसूरिपादाः कलिहत जीवोद्धारायावतीर्य परमविशुद्धवैष्णव सिद्धान्त सौरमं उत्तरखण्डेषु विचकरु। अपिचआचारधर्म सिद्धान्तादिपरिभ्रष्टे वङ्गदेशे सद्धर्मप्रवर्तन विषये मतिं निधाय वहुशः वङ्गदेशवासिने भगवदभिमुखी कृत्य स्वीय दुर्लभचरणपद्मलग्नाँश्चक्रुः। पुनरपि विद्यामधिजिग मिषूनः वालान् गगनवृत्या नित्यं नितान्तं पोषितवन्त आसन्। हा! हन्त, हन्त! ते निखिलगुणालया महात्मानः श्री सम्प्रदायाचार्य्याः अश्रुधारां मुञ्चदुपदेश्य कदम्वकं हतदैवं भक्ति–ज्ञान–वैराग्य त्यागयोगवृन्दं च निराश्रयं कृत्वा आचार्यवर्य चरणाम्बुजं ध्यायन्तः–

नागाद्यङ्केन्दुशरदि श्रावणे धवले दले।
शम्भु तिथ्यां वुद्येधिष्णवे विष्णौ विष्णुपुरं ययुः।। 1।।

अहो। सन्यासीगण के राजाधिराज श्री बलरामाचार्य स्वामी व्यासपुत्र शुकदेव के सदृश न्यूनाधिक एकादश वर्ष की अवस्था में ही अर्थात् अत्यन्त लड़कपन में ही संसार की ज्वालामयी अग्नि को अनुभव करके अपने आत्मीय स्वजन को परित्याग करके गृह को त्याग दिये। समग्र जीवन कन्दमूल फल और दुग्ध सेवन से मन को स्थिर करके श्री जनकनन्दिनी के आवास स्थल श्री विजयराघव पुरी अयोध्या धाम पहुँच कर कई एक दिन उस स्थल पर तत्रस्थ साधुमण्डली के दर्शन लाभ से धन्य हो गये, एवं अयोध्या की महिमा अनुभव करके त्रितापहारी मनोहर श्री वदरिकाश्रम (बद्रीनाथ धाम) चले गये। वहाँ पर बहुत से महात्माओं के श्री मुख का सदुपदेशरूपी सुधा का पान करके प्रसन्न हृदय से योग्यतम गुरु लाभ की आशा में नन्दनन्दन के मन को लुभाने वाले श्रीवृन्दावन में आगमन किये। उस स्थल पर श्री राधिका जी वनवल्लभ के चरणयुगल को सदा अनुचिन्तन करने वाले, श्री गोवर्द्धन पीठाधीश श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के चरणकमल में समाश्रित हुए। तदनन्तर श्री लोकाचारी स्वामी प्रणीत रहस्य शास्त्र उपनिषद्, महर्षि द्वैपायनकृत पुराण एवं स्मृति आदि शास्त्रों का अध्ययन किये। इस भाव से श्री वृन्दावन में बहुत काल तक अखिल ब्रह्माण्ड नायक गोपिकानाथ की आराधना किये। एवं श्री 1008 गुरुवर श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के चरणकमल निःसृत सुधा का पान करके पुनः श्री सरयू के तीर श्री अयोध्या धाम में आगमन किये। वाल्यकाल से लेकर सारा जीवन भगवत्सन्निधि को त्यागकर संसार में अपनी ख्याति के लिए वे कहीं भी नहीं गये। अधिक क्या कहें। लोकप्रतिष्ठा के भय से भीत अपनी अलौकिक विभूति अति गुप्त भाव से छिपाकर रखे थे, तथापि कस्तूरी मृग के नाभि–सौगन्ध के सदृश उनका यश सौरभ स्वतः ही चारों तरफ बिखर कर फैल गया था। पुनः दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आये हुए श्री रामानुज स्वामी के अवतार बुधवर श्रीरङ्गाचारी स्वामी श्री सम्प्रदाय के जिन समस्त सिद्धान्तों को विस्तार करने के अभिप्राय से अनुष्ठान में व्रती हुए थे, उन सबको विस्तार करने के लिए नित्य सूरि श्री बलराम स्वामि पाद

कलिहत जीवों के उद्धार के लिए अवतीर्ण होकर परम विशुद्ध वैष्णव सिद्धान्त सौरभ उत्तर भारत में प्रवाहित किये थे। और भी फिर आचार धर्म एवं सिद्धान्तादि में श्रद्धास्खलित वङ्गदेश में सुधर्म प्रवर्त्तन के विषय में सङ्कल्प करके वहुवङ्गवासियों को भगवदभिमुख करके अपने चरणकमल में आश्रयदान किये थे। तदुपरि निर्धन विद्यार्थी के भरण पोषण की व्यवस्था अपने आश्रम में कर दिये थे। हाय! हाय!! निखिल गुणों के आकर, महात्मा, श्री सम्प्रदाय के आचार्य, अश्रुविगलित शिष्य सेवकों को, भक्त ज्ञानी वैराग्यवान् साधुगण को निराश्रय करके अपने गुरु देव के चरणकमल का ध्यान करते करते 1988 संवत्सर श्रावण मास शुक्लपक्ष चतुर्दशी तिथि बुधवार को श्री वैकुण्ठ धाम श्री विष्णुचरण में गमन किये।।1।।

(2)

नागाष्टाङ्गधरामितेति सुभगे संवत्सरे वैक्रमे,
मासे श्रावणि के निशाकर सुते भूताख्य तिथ्यां सिते ।
श्रीरङ्गार्य्यपदाब्जभृङ्गभतिमान् श्री वैष्णवेष्वग्रणीः,
स्वामी श्री बलराम देशिकवरः प्रागात् पुरं श्री पतेः।। 1।।

वस्वष्टे नन्द धरणी मित वैक्रमाब्दे,
शुक्लेदले नभसि भूत तिथौज्ञवारे
श्रीरङ्गदेशिकपदाब्ज निलीन भृङ्गो,
ध्यायन्नगाद्धरिपदं बलराम आर्य : ।। 2।।

दीप्तोऽपि शोकहुतभुक् प्रकरोतु किं माम्,
यत्सन्निधौ वहति नेत्र नदी प्रवाहः ।
रात्रिं दिवं सविरतं न विराममेति,
साकेतवासिजनताव्यथितातिशोकात् ।। 3।।

विक्रम संवत् 1988 श्रवण नक्षत्र शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि में श्री रङ्गदेशिक स्वामी के चरणकमल के भ्रमर मतिमान् श्री वैष्णवाग्रेसर आचार्यवर्य श्री बलराम स्वामी श्रियः पति धाम में गमन किये।।1।।

विक्रम वत्सर 1988 चतुर्दशी तिथि बुधवार को श्रीरङ्गदेशिक के चरणकमल में लीन भृङ्गवर बलरामाचार्य श्रीहरि के चरण का ध्यान करते करते महाप्रयाण किये।।2।।

हमारी शोकाग्नि प्रदीप्त होने पर भी यह हमें दहन नहीं कर सकेगा, क्योंकि दिवारात्रि अति आर्त्त समस्त अयोध्या वासियों के श्री नेत्र से शोकाश्रुनदी की धारा अविराम हमारे निकट से होकर प्रवाहित हो रही है।।3।।

(व्याकरणाचार्य श्रीरामदुलारे शास्त्री)

(3)

श्रीमद्बलराम देशिक चरमश्लोक:

मासे श्रावण संज्ञके बुधदिने सौभानवेवत्सरे,
नक्षत्रे श्रवणाभिधे सितचतुर्दश्यां तिथौ माकरे ।
श्रीमद्रङ्गगुरोः पदाव्जमधुपः श्रीराघवानुव्रतः,
प्रायात् श्री बलरामदेशिकवरो विष्णोः पदं शाश्वतम्।। 1।।

श्रावणाच्छ चतुर्दश्यां श्री बलराम देशिकः।
शाण्डिल्यान्वय पूर्णेन्दुः, प्रपेदे परमं पदम् ।। 2।।

यो वैराग्य गुणेन केवल महो श्री वैष्णवानां सदा,
श्लाघ्यः संस्तुत पादपद्मयुगलश्चासीत् सतांवल्लभः ।

हे कारुण्यमयार्य्य! देशिकमणेः! त्यक्त्वाऽगतीन् संश्रितान्,
यातस्त्वं परमं पदं कथमहो संसार घोरार्णवे ।। 3।।

(3)

श्रावण महीना बुधवार दिन सौभानव वत्सर श्रवण नक्षत्र शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि को गुरुवर श्री रङ्गदेशिक के चरण कमल चञ्चरीक श्री विजयराघव भगवान के ध्यान में रत गुरुवर श्री बलराम शाश्वत विष्णु पद में प्रयाण किये ।। 1 ।। श्रवण नक्षत्र चतुर्दशी तिथि में शाण्डिल्य वंश के पूर्ण चन्द्र परमपद प्रयाण किये ।।2।।

वैराग्य गुण के कारण समस्त श्रीवैष्णवगण जिनकी श्लाघा करते, जिनके चरण कमलें की स्तुति करते, जो साधुओं के प्राण प्रिय थे, वे करुणा पूर्ण आचार्यवर्य्य, अगतिक शिष्य वर्ग को घोर संसार समुद्र में त्याग कर परमद चले गये। हाय हम लोगों का कितना बड़ा दुर्भाग्य है।।3।।

(4)

श्रीमान् महागुण निधिः श्रुति सार वेत्ता,
श्री सम्प्रदाय परिवर्द्धन लव्धः देहः ।

संसेव्य वर्षशतकं भगवत्पदाव्जम्,
प्राप्तो यतिक्षितिभृतां पदपद्मद्वन्द्वम् ।। 1।।

श्रीमान् महागुण निधि श्रुति के सार को जानने वाले, श्री सम्प्रदाय की समृद्धि के लिए जो शरीर धारण किये थे, वही यतिराज, श्री भगवान् के चरण कमल की सेवा में शतवर्ष निरत रहकर धरणीधर के पाद पद्मयुगल को प्राप्त हुए अर्थात् परम पद प्रयाण किये।। 1।।

वन्दे सदा शुभगुणैर्विनयैर्ज्वलन्तम्,
लोकार्यदेशिक निगूढ़ रहस्य जालम् ।
श्रीरङ्गदेशिक – कटाक्ष विवृद्धवोधम्,
कृष्णार्य देशिकवरं भवनाश हेतुम् ।। 2।।

जो नियत शुभगुणों से युक्त एवं विनय से उज्ज्वल थे, अपने गुरुवर श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के कृपा कटाक्ष से जो श्री लोकाचारी स्वामी के निगूढ़ रहस्य शास्त्र में सम्यग् ज्ञान लाभ किये थे, भववन्धन विनाश के हेतु उस गुरुवर श्रीवलराम स्वामी की मैं वन्दना करता हूँ।। 2।।

श्री वाग्भूषण दिव्यभाव विशदीकारेण कालंक्षिपन्,
सार्थे मन्त्रद्वये निविष्ट ह्वदयः श्रीशानुवन्धप्रियः ।

श्रीरामानुज योगिपाद युगली संन्यस्त सत्तात्मकः,
जीयात् सोऽयमजस्रमर्चितपदः श्रीकृष्णज्येष्ठाभिधः।। 3।।

जो श्रीवचन भूषण नामक दिव्य ग्रन्थगत दिव्य भाव को अपने अनुष्ठान द्वारा मूर्त्तिमान् करके कालक्षेप करते, अर्थ के सहित मन्त्रानुसन्धान में सर्वदा निविष्टचित्त रहते, श्री मन्नारायण का प्रसङ्ग ही जिन्हें अति प्रिय था, योगिवर श्री रामानुज के चरणकमल में जो अपनी सत्ता को विलीन कर दिये थे, जिनका दोनों चरण भक्तों से निरन्तर पूजित होता रहता, वही श्री बलराम स्वामी हम लोगों के ह्वदय में सदा जीवित रहें। ।।3 ।।

श्रीमते बलरामाय, रमा समय वेदिने ।
श्री सम्प्रदायनाथाय, नमसां शतमस्तु मे ।। 4 ।।

श्री रमादेवी के आशय, को जो जानते थे, श्री सम्प्रदाय के नाथ श्रीमान् बलराम स्वामी को मैं शतशः प्रणाम करता हूँ ।।4।।

सिंह मासे सिते पक्षे, चतुर्दश्यां वुधे दिने ।
शुभ लग्नेऽत्यजद्योगी, बलरामाभिधो महीम् ।। 5।।

सिंह मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि में बुधवार दिन को शुमलग्न में योगिवर श्री बलराम धराधाम को परित्याग किये ।।5।।

— व्याकरणाचार्य श्रीबलरामप्रपन्नाचार्य, विभीषण कुण्ड

(5)

शब्दादि शास्त्रमधिगम्य गुरोः सकाशात्,
नीत्यादितन्त्र गुण गौरव माश्रितोऽपि ।

श्री विष्णुभक्ति निजतत्त्व रहस्य सर्वम्,
ज्ञातुं च श्रोतु मनसा वुध पाकशासनः ।। 1।।

गुरु के सन्निकट व्याकरणादिशास्त्र अध्ययन करके नीति शास्त्रादि गत गुणगणों से भूषित हो कर भी जो विष्णु भक्ति एवं आत्म स्वरूप विषय में ज्ञानलाभ के लिए विशेष शास्त्र श्रवण करने के लिए भी ज्ञान लाभ के लिए ज्ञानियों के परतन्त्र होकर उन लोगों के शासनाधीन रहते।। 1।।

श्री सम्प्रदायचण विद्वद् विष्णु सेविनम्,
दान्तं वरेण्यं बलराम महोपदेशिकम् ।
आचार्य मार्ग प्रवणं प्रथितं पृथिव्याम्,
आहूतवाँश्च मतिमत् समवैष्णवाग्रयम् ।। 2।।

श्री सम्प्रदाय के प्रख्यात विद्वद्वर, विष्णु सेवक दान्त (इन्द्रिय जित्) वरेण्य, आचार्य निष्ठ, ज्ञानवान्, प्रथित यशा, वैष्णवाग्रणी महान् आचार्य वही श्री बलराम सूरि इस धराधाम में अवतीर्ण हुए थे।।2।।

हा! हन्त, हन्त!! भवतीह जनान् विहाय,
याते गुरोश्चरण – पङ्कज – माश्रयाय ।

श्री सम्प्रदाय गततत्त्वमिदं प्रवोद्धुम्,
को वा समर्थ इति शून्यभिवावभाति ।। 3।।

हाय! हाय! हम लोगों को परित्याग करके श्री गुरु के चरण को आश्रय करने के लिए आप चले गये, अब इस समय श्री सम्प्रदाय के तत्वों का ज्ञान दान करने के लिए कौन ही समर्थ होगा। इस समय हम लोगों को सब शून्य मालूम पड़ रहा है।। 3।।

चातुर्य हि गतं गता द्विजछटा स्वाचारमार्गो गतः,
याता श्री पति पाद पद्म विषया वार्त्तामनोहारिणी ।
अस्तप्रायभिताः सुवैष्णववराः श्री भक्ति सारोगतः,
श्रीमद् श्रीबलराम देशिक गुरौर्याते पदं वैष्णवम् ।। 4 ।।

श्रीमत् श्री बलराम देशिक गुरुवर परम पद गमन किये, साथ ही साथ चतुर महापुरुष गत हुए, द्विज छटा चली गई, शिष्टाचार का मूर्त्तिमान् मार्ग चला गया, श्रीपति की पादपद्म विषयक मनोहारी कथा चली गई, श्रेष्ठ वैष्णवगण अस्त प्राय हो गये, भक्ति की साररूपी मूर्त्ति चली गई ।।4।।

निखिललोकहिताय हितं वदन्, सकल शास्त्र सुशासन तत्परः ।
परम कारुणिक विष्णुपदेरतः, द्विजवरो वलरामवुधो गतः ।। 5।।

निखिल लोक के हित करने में जो हितवादी थे, सम्पूर्ण शास्त्रों के सुरक्षण में जो तत्पर थे, जो परम कारुणिक, विष्णु पद में रत थे, वे द्विज वर बुधवर वलराम परम पद गमन किये ।।5।।

दुर्ज्ञाना बलरामदेशिकवरा दुर्भाग्य संलक्षितैः,
व्युत्पत्तेः कुलदैवतं सुविदुषां श्रद्धानुवद्धादराः ।

अन्तेवासि शिरोरुहामधुलिहो लुण्ठन्ति पद्मोपदे,
याताः श्रीपतिपादपद्म निलये नित्यानुसन्धानतः ।। 6।।

जो दुर्लभ ज्ञान में ज्ञानी, तथा ज्ञानियों के परम श्रद्धा और आदर के पात्र और परम भक्तों के शिरोमणि, एवं श्री भगवान् के पादपद्म के मधु को लुण्ठन करने वाले भ्रमर सदृश थे। देशिक श्रेष्ठ वही श्री बलराम सूरि श्रीपति के पाद पद्म में नित्य वास का अनुसन्धान करते करते प्रयाण किये ।।6।।

श्रीमद्भागवतागमासृतरसं श्रीसम्प्रदायागमम्,
येषां श्री मुखभारती सुरधुनी पूत्वा जगद्यां गता ।
अज्ञानान्धतमान् विहाय हतकान् प्राप्ताः पदं वैष्वणवम्,
विद्वच्छ्री वलराम देशिक वरान् वन्दामहे नित्यशः ।। 7।।

श्रीमद् भागवत आगम का अमृत रस एवं श्री सम्प्रदाय का आगम शास्त्र, जिसके श्री मुख भारती सुरधुनी के द्वारा पवित्र होकर संसार से सुरलोक को पहुँच गया था। अज्ञानान्ध हम लोगों को परित्याग कर जो विष्णु

पद को प्राप्त हो गये हैं। वे विद्वद्वर देशिक श्रेष्ठ श्री बलराम सूरि की मैं नित्य वन्दना करता हूँ।।7।।

विरहकातर वृन्दावनवीथि–पथिक पण्डित – श्री सीताराम शास्त्री व्याकरणाचार्य्य

(6)

सारासार विवेक चारु चरितोऽत्याश्चर्यवाग्गुम्फना,
प्रौढ़ी भावित नव्य भव्य रचना चातुर्य पारङ्गत':।
श्री रामानुज सूक्ति शीलन परः शाण्डिल्यगोत्रोद्भवः,
श्रीशं श्रीवलराम–सूरिरनिशं ध्यात्त्वाऽगमच्छाश्वतम् ।। 1।।

सार एवं असार वस्तु में जो विवेकवान् थे, इसी कारण जिनका आचरण अति उपादेय था, जिनका वाक्य विन्यास सारगर्भ था, मनोरम एवं अत्याश्चर्य जिनकी रचना नव्य भव्य एवं अति उच्च स्तर की थी, चातुर्य के जो सीमा भूमि थे तथा जो श्री रामानुज की सूक्ति के अनुशीलन में निरत रहते, शाण्डिल्य – गोत्रोद्भव वही श्री बलराम सूरि अहर्निशि श्रीपति का ध्यान करते करते शाश्वत धाम में प्रयाण किये।।1।।

श्रीरङ्गार्य्य कृपा कटाक्ष विदित–त्र्यन्त वेद्य प्रभुः,
संसाराग्नि विवृद्धितप्तजनतां सन्तोषयन् सर्वदा ।
पूर्वाचार्य्य परम्परामनुदिनं ध्यायन् सतां पोषकः,
श्री स्वामी बलराम सूरिरधुना प्रायात् पदं शाश्वतम् ।। 2 ।।

स्वाचार्य्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के कृपा कटाक्ष से वेदान्त वेद्य प्रभु को जो जान लिए थे, संसाराग्नि ज्वाला से तप्त जनगणों का ताप जो शान्त करते, अनुदिन गुरु परम्परा के चिन्ता में जो निरत रहते, साधु सन्तों के जो पोषक थे, वही श्री बलराम सूरि इस समय विष्णु पद चले गये।। 2।।

विद्वद्वृन्द समर्चितो निखिल शास्त्रालापशील,
सदावक्ता भागवतस्य रामचरित प्रेमाकुलः शान्त धीः ।
मीमांसोभय तत्त्व शिक्षण परः शान्तो दयालुः सुधीः,
हा कष्टं बलराम सूरिरधुना वैकुण्ठ लीलामगात् ।। 3।।

जो विद्वद् वृन्दों से समर्चित, निखिल शास्त्र के आलाप में निरत थे, जो सर्वदा श्रीमद्भागत एवं रामचरित्र की आलोचना में प्रेमाकुल तथा प्रशान्त चित्त थे, जो उभय मीमांसा अर्थात् कर्म मीमांसा ब्रह्म भी मीमांसा वेद के दोनों भागों के तत्त्वों की शिक्षा देने में आग्रहशील थे, शान्त, दयालु, सुधी वही श्री वलराम सूरि इस समय वैकुण्ठ लीला में प्रविष्ट हो गये। अहो! क्या कष्ट ! ।। 3।।

रहस्य सूर्ये गमितेऽस्तभावम्,
विद्यातृगत्या सुदुरत्यया च ।
शठारि ग्रन्थार्थ – विवेचनाय,
भुवस्तले हा! कतमःक्षमेत् ।। 4।।

विधाता के विधान से यह रहस्य सूर्य इस समय अस्तमित हो गया, श्री शठकोप आड्वार के परम उपादेय दिव्य प्रबन्धों की आलोचना और व्याख्या करने में अब और कौन समर्थ होगा। हाय! ।।4।।

हा कष्टं बलराम सूरिरधुना स्वाचार्य लोकं गतः,
सन्तुष्य स्ववचेभिरार्त्तजनतां शिष्यान् प्रशिष्याँस्तथा ।

कोवास्मिन् वसुदेव सूनु चरितासारानुदारान् भृशम्,
वर्षं वर्षमभक्त लोकमनिशं कुर्याच्च भक्तेर्निधिम् ।। 5।।

हाय! श्री बलराम सूरि अब अपने आचार्य के लोक में चले गये, इस समय और कौन आर्त्तजनगणको शिष्य प्रशिष्यों को अपने सारगर्भ वचनों के द्वारा परितुष्ट करेगा, कौन ही वसुदेव नन्दन कृष्णचन्द्र की चरित्र सुधा का पान करायेगा, एवं इसके द्वारा प्रतिवर्ष कौन भगवद्‌विमुख लोकगण को, भगवद् अभिमुख करके भक्ति भाव में भावित करेगा ।। 5।।

श्री सुभानौ सिंह शुक्ल – चतुर्दश्यां वुधे दिने।
शाण्डिल्यो वलरामार्यः स्वाचार्य पदमन्वगात्।।6।।

सिंहमास की शुक्ल चतुर्दशी तिथि में बुधवार को शाण्डिल्य वंशोद्भव श्री बलरामाचार्य अपने आचार्य के चरण में प्रयाण किये ।।6।।

वेदान्ततीर्थ वैः शिः विः रः वेः मूः श्री वृन्दावन वास्तव्य पण्डित श्रीधराचार्य कृतिरियं विरह प्रलापरूपा षडश्लोकी।।

(7)

वेदान्ते फणिराड् आर्ययतिराट् सांख्ये स्वयं कार्दमः,
मीमांसा मुनि जैमिनिः सुकविता प्राचेतसः पाणिनिः।

शाब्दे तर्कमतेच गौतमतनुर्व्यासः पुराणव्रजे,
लेखे शम्भुतनूजनुः सभगवान् नीतौ सुरद्विड् गुरुः ।। 1।।

वेदान्त में आप फणिपति अनन्त देव थे, आचार्यत्व में यतिराज रामानुज थे, सांख्य स्वयं कर्दमनन्दन कपिल थे, मीमांसा शास्त्र के ज्ञान में स्वयं जैमिनि मुनि थे, सुकविता में ऋषि वाल्मीकि, शब्दशास्त्र में पाणिनी, न्याय में गौतम थे, पुराण में व्यास मुनि लेखन में गणेश, नीति में असुर गुरु शुक्राचार्य थे।

वादे वादवपुः सुशिक्षण विधौ साक्षाद् वशिष्ठो मुनिः,
वैराग्ये शुकनारदादितुलितो धैर्ये महासागरः ।

किं वक्तव्यमहो गुणार्णव कृते श्रीरङ्गरङ्गार्चित,
चेता यः सततं मुरारिचरणाम्भोजे द्विरेफोऽभवत् ।। 2।।

अच्छी शिक्षा देने में आप साक्षात वशिष्ठ मुनि के सामान थे, वैरागय में शुकदेव नारदादि, धैर्य में महासागर के समान थे। एतादृश गुणों के महासागर आप श्रीरङ्गदेशिक स्वामी एवं उनके अर्चित इष्टदेव में निरत चित्त होकर मुरारि के चरण कमल में भ्रमर हो उठे थे ।। 2।।

श्रीरङ्गदेशिक गुरोः प्रवणस्य तस्य,
पादाम्बुजात युगलं श्रित इन्दुवक्त्र ।
पद्मालयाधवमनोहर भूरिलीला,
संवर्णनामृतविसर्जन दत्तचित्तः।। 3।।

श्रीरङ्गदेशिक गुरुवर के चरणकमल में आश्रित होकर आप अभिनिविष्ट चित्त से अपने चन्द्रमुख के द्वारा कमलावल्लभकी मनोहर भूरिलीला का अमृत वर्षण करने लगे ।।3।।

गीर्वाण वाणी प्रचुर प्रचारण,
श्रुतिस्मृति, प्रोतसु कर्मतत्पर,।
स्वभूपदाम्भोज निषक्त मानस –
आचार्य वर्य्यो बलराम धीरधीः ।। 4।।

हे आचार्य वर्य्य! आप धीरबुद्धि वृहस्पति सदृश श्रुति और स्मृति की वाणी को प्रचार करने में रत थे, साधु कर्म में तत्पर एवं स्वयम्भू नारायण के चरण कमल में परमासक्त थे ।।4।।

वनेजकन्दादि पयः फलाशनो, ललाम कीर्त्तिः सुतपा महामनाः ।
राकेश पुत्राहनि नाभ से सिते, महेश तिथ्यां रजनी मुखान्तिके ।।5।।

महाहिनागाङ्क शशाङ्क वत्सरे, हा! नाथ! हीनां च विहाय भक्तिकाम् ।
राजीव दृष्टङ्घ्रिसरोजसेवनम्, जवेन कर्त्तुं हरिधाम संश्रितः ।। 6।।

आप बनज कन्दमूल फल भोजी एवं दुग्ध पायी थे, मनोरम कीर्ति वाले सुतपा एवं महामना थे। हे नाथ! आप सं 1988 वि0 श्रावण मास की शुक्ला चतुर्दशी तिथि में सन्ध्या के समय अपने भक्तों को दीन करके कमलनयन भगवान की सेवा करने के लिए शीघ्र हरिधाम में आश्रय ग्रहण किये ।।5 , 6।।

गुरो! कृपालो! शुचिदीन वन्धो! रुदत्यजस्रं चरणे क्षणं नो ।
वलम्ब्य कुर्यात् स्मरणं हि याचे, रामप्रपन्न मयि शावकेऽस्मिन् ।। 7।।

हे गुरो! हे दयालो! हे शुचि दीनवन्धो! आपका शिशु यह रामप्रपन्न अश्रुधारा बहाते हुए निरन्तर रुदन कर रहा हैकृपा करके अपने चरण में हमें स्मरण कीजिये ।। 7।। – व्याकरणाचार्य्य रूपनारायण शास्त्री

(8)

दुर्वादसागर विमन्थन मन्थदण्डो, सम्प्रेक्षणादधघनाभ्र विनाशवायुः।
चूणामणिर्निजपदाश्रित वैष्णवानाम्, पादौ स्मरामि सततं बलराम सुरेः ।। 1।।

कूट तर्क के सागर को मन्थ करने वाले मन्थनदण्ड के समान्, दृष्टि मात्र से ही पाप रूपी घनमेघ को विनाश करने वाले वायुके समान, निजपदाश्रित वैष्णवों के चूणामणि स्वरूप श्री बलराम सूरि के दोनों चरण को सतत स्मरण करता हूँ ।। 1।।

श्री सम्प्रदाय सुरसाल शुको रसज्ञः, सन्देह–शङ्कुखनने हि खनित्र रूपः।
श्री विष्णु लोकपथदर्शन दीप्त भानुः, धीरः सदा विजयते बलराम सूरिः ।। 2।।

श्री सम्प्रदाय रूप सुरसाल के रस को जानने वाले शुक सदृश, सन्देह रूपी खूँटी उत्पाटन करने वाले खननकारी यन्त्र रवन्ती के तुल्य, श्री विष्णु लोक के मार्गप्रदर्शक सूर्य के तुल्य धीर श्री बलराम सूरि की सदा विजय हो ।। 3।।

शाण्डिल्य वंश वर वारिज तिग्मरश्मिः, संसार भीषण– भुजङ्गम वैनतेयः ।
श्री कृष्ण वैभव विचिन्तन मुख्यधर्मा, विज्ञः सदा विजयते बलराम– सूरिः ।। 3।।

शाण्डिल्य वंश रूप श्रेष्ठ कमल के जो उज्ज्वल सूर्य किरण सदृश, संसार रूपी भीषण भुजङ्ग के जो वैनतेय – गरुण सदृश, श्रीकृष्ण के नाना वैभव की चिन्ता ही जिनका मुख्य धर्म, ऐसे विज्ञ श्री बलराम सूरि

सर्वदा विजय को प्राप्त होवें ।। 3।।

मन्वादि शास्त्र वचनामृत वारिवाहः, पौराण कानन विशङ्कट पञ्चवक्त्रः।
त्रैविद्य मानस सरोवर राजहंसः, शुद्धः सदा विजयते बलरामसूरिः।। 4।।

मनु संहिता प्रभृति शास्त्र वचनों के जो अमृत प्रवाह स्वरूप, वेदरूपी मानस सरोवर के जो राजहंस रूप, ऐसे श्री बलराम सूरी सर्वदा विजय लाभ करें ।। 4।।

तत्त्व ज्ञान विधूत कल्मष गणो दाम्भेन्द्रिहौजाः शुचिः,
वेदान्ताब्धि विलेहमन्दर मतिः वैष्णवानां मणिः ।
पादाम्भोज सुसक्त जीव निवहा ज्ञानान्धमाच्छिन्दयन्,
अस्तः कोऽपि विभासुर्दिनगते व्यत्यस्त रामोवलः ।। 5।।

जो तत्त्व ज्ञान जनित समस्त कलुषवर्जित थे, जो इन्द्रिय जित दान्त थे, जो वेदान्त जलधि के मन्दर स्वरूप थे, एवं अपने चरण कमल में अनुरक्त भक्तों के आज्ञानान्ध को विनाश करने वाले थे, ऐसे वैष्णव मणि श्री बलराम सूरि आज चले गये ।। 5।।

अव्दे नाग धनग्रहेन्दु सुमिते सिंहं गते भास्करे,
शुक्ले श्रावण मासि शम्भु सुतिथौ सौम्येऽह्नि विष्ण्वृक्षके ।
श्री रङ्गार्यपदारविन्द युगलं ध्यायन् सतामग्रणीः,
भेजे श्री बलराम देशिकवरो विष्णोः पदं शाश्वतम् ।। 6।।

निज आचार्य श्रीरङ्गदेशिक के चरण कमल का ध्यान करते करते साधुओं के अग्रणी श्री बलरामार्य शाश्वत विष्णु धाम में गमन किये ।।6।।

नभः शुक्ले चतुर्दश्यां विष्णुभे बुधवासरे ।
युक्तः श्रीवलरामार्यो जुष्टवान् वैष्णवं पदम् ।। 7।।

नभो मास शुक्लचतुर्दशी तिथि बुधवार दिन को श्री बलराम सूरि स्वामी विष्णुपद श्री वैकुण्ठधाम में प्रविष्ट हुए।।7।।

— श्रीरामकृष्ण शास्त्री

(9)

श्रियः पतेरङ्घ्रि प्रपत्ति हेतवे,
पदाश्रितानां भवसिन्धु सेतवे ।
जितादिषड्वर्ग महानिजारये,
सुमङ्गलं श्रीवलराम सूरये ।। 1।।

जो श्रियः पति नारायण के चरण में शरणागति के हेतु थे अर्थात् अशेष कृपापूर्वक जो श्री मन्नारायण के चरण युगल में हम लोगों की शरणागति करा दिये, अपने चरणाश्रितों के निकट जो भवसिन्धु पार जाने के सेतुस्वरूप अर्थात् भवसिन्धु पार ले जाने का भार अपने ऊपर जो ले लिए हैं, काम क्रोधादि शत्रुओं को जो अवलीला क्रम से जीत लिए हैं, ऐसा श्री बलराम सूरिका सुमङ्गल हो ।।1।।

मदीय संसार समुद्रवेलयोः,
मदीय चित्तस्य सुखैक पुञ्जयोः।

नखेन्दु सङ्गेऽपि सुशोभमानयोः,

सुमङ्गलं देशिक पादपद्मयोः ।। 2।।

जो हम लोगों के संसार समुद्र की तीर भूमि स्वरूप, जो हम लोगों के चित्त के पुञ्जीभूत सुखस्वरूप, उस श्री वलरामसूरि के सुन्दर नखेन्दु शोभित चरण–कमल का सुमङ्गल हो ।। 2।।

सुब्रह्मचर्य्यव्रत पालनेन वै,

अक्षीणतां कातरता विरोधिनीम् ।

मुदादधानाय मदीय देशिक,

कटिस्थलायास्तु सदैव मङ्गलम् ।। 3।।

जो आदर्श ब्रह्मचर्य्य का व्रत पालन किये थे ऐसे हमारे श्री गुरुदेव बलराम सूरि के आनन्द दायक क्षीण कटिदेश का सर्वदा मङ्गल होवे ।। 3।।

आनन्द सन्दोह विलास सद्मने

विमुग्ध मोहानल शान्ति वर्षिणे।

क्षमा दया धैर्य विरोह भूमये,

सुमङ्गल देशिकवर्य्य वक्षसे ।। 4।।

समस्त आनन्दों की विलास भूमि, मूढ़जनों के मोहरूपी अग्नि को शान्त करने वाले, क्षमा दया एवं धैर्य गुण के समृद्धि स्थल देशिक श्रेष्ठ के वक्षः स्थल का सुमङ्गल हो ।। 4।।

श्रीवासवासस्थल वाह्यतोरण,

चलत्पताका ध्वज, दण्डयोरिव ।।

अभीतिदानाग्र करारविन्दयोः,

सुमङ्गलं देशिक–वाहुदण्डयोः।। 5।।

श्री निवास के वासस्थल का वाह्यतोरण स्वरूप, चलते हुए पता का और ध्वजा का दण्ड स्वरूप ऐसे अभयदाता अग्रहस्त युक्त देशिकवर के वाहुयुगल का सुमङ्गल हो ।। 5।।

प्राचीन दासोऽहमये प्रभोइति,

सवत्सुधाधार मुखाय मङ्गलम्।

पूतोज्ज्वल श्री तिलके च हारिणि,

सुमङ्गलं देशिक दिव्य–मूर्धनि ।। 6।।

हे प्रभो! मैं आपका प्राचीन दास हूँ – इस सुधावर्षी श्रीमुख का मङ्गल हो, मनोहर एवं उज्ज्वल श्री तथा तिलक से पवित्र दिव्य ललाट का मङ्गल हो ।। 6।।

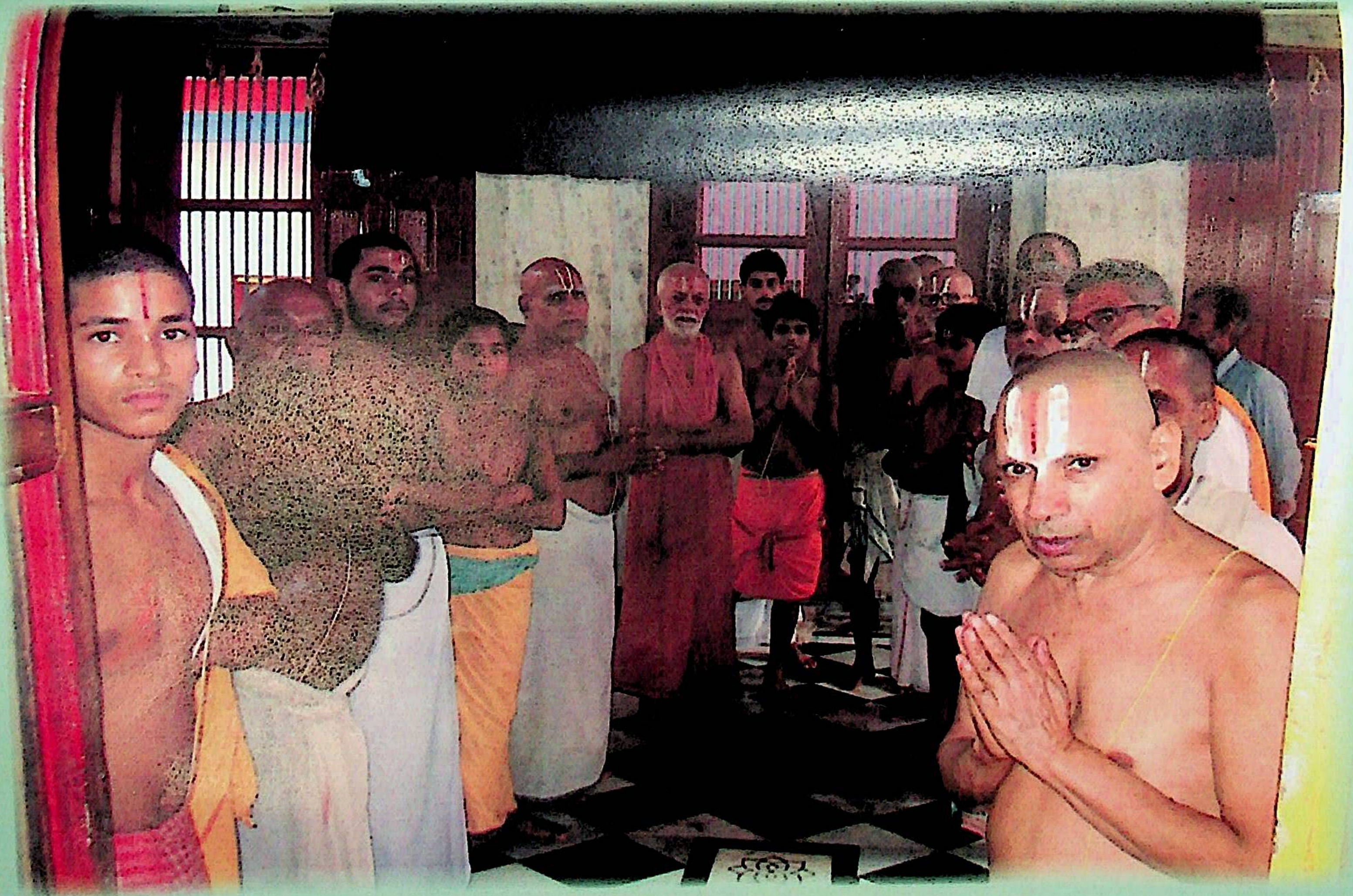
ध्यानस्य मूलाय च देशिकस्य मे,

पवित्र_मूर्त्यै परमं सुमङ्गलम्।

पूजा सुमूलाय तदीय केवल,

पदद्वयायास्तु सदैव मङ्गलम् ।। 7।।

ध्यान मूल हमारे गुरुदेव की पवित्र मूर्त्ति का परम सुमङ्गल हो, पूजा के मूल उनके चरण युगल का सर्वदा सुमङ्गल हो ।। 7।।



श्री विजय राघव भगवान के कैङ्कर्य में श्री स्वामी जी एवं आश्रम के वैष्णवजन

जपस्य मूले च तदीय नामनि,
पुनः पुनर्मङ्गल देसुमङ्गलम्।
मोक्षस्य मूलाय तदीय केवल,
शश्वत्कृपायै सततं सुमङ्गलम् ।। 8।।

पुनः पुनः मङ्गल देने वाला जप का मूल आपके नाम का सुमङ्गल हो, हम लोगों के मोक्ष का एकमात्र मूल आप की कृपा का निरन्तर मङ्गल हो ।। 8।।

ध्यान मूलं गुरोमूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
जप मूलं गुरोर्नाम, मोक्ष मूलं गुरोः कृपा ।।9।।

– वङ्गदेश पं. पराङ्कुश शास्त्री

(10)

श्री रामचन्द्राङ्घ्रि सरोज – सेविनम्,
साकेत पुर्य्यां कृतपुण्यवासम् ।
श्री रङ्गार्य पादाव्ज – संसक्त भृङ्गम्,
भजामि नित्यं श्री गुरुं प्रशान्तम् ।। 1।।

श्री रामचन्द्र के चरण कमल सेवी, श्री अयोध्या धाम में पुण्य निवासकारी, श्रीरङ्गदेशिक गुरुवर के चरण कमल में अच्छी प्रकार आसक्त भ्रमर के सदृश जो ऐसे प्रशान्त गुरुवर उस बलराम की नित्य मैं भजन करता हूँ ।।1।।

सहास्य वक्त्रं राजीवनेत्रम्,
विशाल भालं धृत विष्णुपुण्ड्रम।
आजानुवाहुं शरदिन्दु कान्तिम्,
स्मरामि नित्यम् श्री गुरुं प्रशान्तम्।।2।।

सहास्य वदन, कमलनयन, उर्ध्व पुण्ड्र तिलक सेवित प्रशस्त ललाट, आजानुलम्वित वाहु एवं शरद् – चन्द्रमा के समान निर्मल कान्ति युक्त प्रशान्त श्री गुरुदेव को मैं नित्य स्मरण करता हूँ ।।2।।

निपीत शास्त्रं विदुषां वरेण्यम्,
विज्ञान दीप्तं सुगभीर वोधम् ।
प्रेमामृतास्वाद प्रलुब्धचित्तम्,
नमामि नित्यं श्री गुरुं प्रशान्तम् ।। 3।।

सर्वशास्त्र निष्णात्, विद्वद्गणों में श्रेष्ठ, नाना ज्ञान से उज्जवल सुगभीर ज्ञान में ज्ञानी, भगवत्प्रेम के अमृतरस के आस्वादन में प्रलुब्ध चित्त एवं प्रशान्त श्रीगुरुदेव को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ।। 3 ।।

निवृत मार्गानुप्रविष्टधियम,
श्री सम्प्रदायागम तत्वनिष्ठम् ।

परम्परा लब्ध स्वाचारशीलम्,
भवाब्धि पोतं श्री गुरुदेवं नतोऽस्मि ।। 4।।

परम वैराग्यवान्, श्री सम्प्रदायगत सर्वतत्त्वनिष्ठ, श्री गुरु परम्परालब्ध अनुष्ठान में निरत, भवसागर के कर्णधार श्री गुरु के चरण में प्रणत होता हूँ ।। 4।।

रमा विलासानुभावैकनिष्ठम्,
श्री राघवेन्द्रस्य पदानुरक्तम् ।
द्वन्दै विमुक्तं जित सङ्गदोषम्,
अकिञ्चनं वन्द आनन्दकन्दम् ।। 5।।

श्री लक्ष्मी देवी के लीला विलास में अद्वितीय निष्ठावान, श्री राघवेन्द्र जी के चरण में अनुरक्त, सुख दुःखादि द्वन्द्वों से विमुक्त, संसार सक्ति रहित, अकिञ्चन आनन्द कन्द को मैं वन्दना करता हूँ ।।5।।

निर्मान मोहः सदाशुतोषः,
क्षमानिधिश्चाति सुभिष्टभावः ।
धीरः सुदान्तः करुणैक मूर्त्तिः,
जीयात् सदा श्री वलराम सूरिः ।। 6।।

मान मोह शून्य, सदा आशुतोष, क्षमानिधि, अति सुमधुर भाषी, शम दमादि गुण युक्त एवं सेवा मूर्त्ति श्री बलराम सूरि सदा जीवित रहें।। 6।।

याचे मोहा मोहलभः प्रशान्तये,
गुरोः कृपां तां सहजमहैतुकीम् ।
यया तरिष्यामि सुखं भवार्णवम्,
कृपा कटाक्षेण तथा विधीयताम् ।। 7।।

महा मोह रूप अन्धकार की निवृत्ति के लिए गुरुदेव की स्वाभाविक अहैतुकी कृपा के लिए प्रार्थना करता हूँ, जिससे यह भवसागर सुख पूर्वक उत्तीर्ण हो सकूँ – वही कृपा कटाक्ष प्रदान कीजिये ।।7।।

हयग्रीवाख्येन पदाश्रितेन,
शिष्येण रामानुजकिङ्करेण ।
पदाम्बुजं ते भवपारसाध्यम्,
कृतं सुनीचेन खलुमात्र सारम् ।। 8।।

।। इति श्री वलराममाष्टकं समाप्तम्।।

वङ्गदेश वासिना हयग्रीव रामानुज दासेन स्तोत्रमिदम्
श्री स्वामिनो जीवद्दशायां विरचितम्।।
भवत्सकाशे पठितञ्च।।

आपके चरणाश्रित शिष्य सुनीच हयग्रीव रामानुजदास संसार सागर के पारलेजाने वाली नौका स्वरूप आपके चरणकमल को ही पकड़ कर रखा हूँ ।।8।। —वङ्गदेशवासी हयग्रीवरामानुजदास

(11)

कल्याणगुणं जुष्टाय अवाल ब्रह्मचारिणे ।
नमः प्रसन्न वक्त्राय, ज्ञान विज्ञान मूर्तये ।। 1 ।।

कल्याण गुणों से शोभित, आवाल ब्रह्मचारी एवं प्रसन्न वदेन ज्ञान– विज्ञान मूर्त्ति को मैं नमस्कार करता हूँ।।1।।

इन्दीवराक्षो ललित चम्पक सुष्ठुपाणिः,
क्षमानिधिः सतत मङ्गल शासन परः ।
प्रपन्नधर्मान् परमार्त्तो प्रयाण काले,
चित्तं नो नोदतु सदा करुणैक मूर्त्तिः ।। 2।।

जिसका नयन इन्द्रीवर के समान एवं चम्पकवर्ण सुन्दर करतल है, जो क्षमागुण के निधि एवं निरन्तर मङ्गलाशासन में रत रहने वाले हैं, वही परमार्त्त करुणा मूर्त्ति प्रयाण काल में हम लोगों के चित्त को सुचालित करें।।2।।

तस्मै नमो वैष्णव कुलाधिराज,
रङ्गार्य्य पाद सुनिषेवणपूतमूर्ध्ने ।
सौशील्य वात्सल्यमयोऽपि मृदुर्दयालुः
जीयात् श्री देशिकवरः श्रीवलरामसूरिः।। 3।।

जो श्री वैष्णव कुलके अधिराज हैं, निज गुरु श्री रङ्गाचार्य के चरण सेवा एवं साष्टाङ्ग से जिसका ललाटदेश पूत पवित्र हो गया, उनको प्रणाम करता हूँ। सौशील्य – वात्सल्यमय मृदु और दयालु वही श्री बलराम सूरि चिरकाल विराज करें।।3।।

एकादशोऽसौ हिकुटुम्बभोगान,
त्यक्त्वाऽभजद् भीष्म विरागमार्गम् ।
यस्मिन्नतिष्ठन् यतिराज धर्माः,
मूर्त्ता दृढ़ा लोकविलक्षणाश्च ।। 4।।

एकादश वर्ष की अवस्था में जो स्वजन कुटुम्ब को त्यागकर भीष्म प्रदर्शित वैराग्य मार्ग ग्रहण किये थे, जिनके मध्य वाद में यतिराज श्री रामानुज प्रवर्त्तित लोक विलक्षण धर्म मूर्त्तिमान होकर दृढ़भाव से प्रतिष्ठित हुआ था। 4।।

विद्वत्सु विद्वांसमाम्नाय द्वन्द्व,
रहस्य शास्त्रेषु एकैवप्रज्ञम् ।
जगद्गुरुं तं महतो महान्तम्,
अमानिञ्चाभिभजामिनित्यम् ।। 5।।

विद्वानों के मध्य जो परम विद्वान थे, जो उभय वेदान्त और रहस्य शास्त्र में अद्वितीय प्राज्ञ अथाच अमानी थे, उसी जगद्गुरु का मैं नित्य भजन करता हूँ ।। 5।।

अगाधतोये सुवृहत्तिमिङ्गला:,
यथाचरित निभृता अलक्षिता: ।
गम्भीर स्वामि–हृदये सदैच,
भावानुभावा अभवँस्तथाहि ।। 6।।

जिस प्रकार अगाध जल में बहुत बड़े तिमिङ्गल विचरण करते हैं, उसी तरह हमारे स्वामी के गम्भीर हृदय में गम्भीर भाव एवं अनुभव सम्पूर्ण छिपा हुआ एवं अलक्षित रुप से विद्यमान रहता ।। 6।।

मुनीन्द्र योगेश्वरेप्सित सिद्धि सङ्घान्,
लोष्ठानिवास लीलया हि तृणाय मेने ।
यच्छिष्य चैल ग्रहणेन सीताधवोऽपि,
सन्निधये द्रविणत: स्वपुरी, प्रतस्थे ।। 7।।

मुनीन्द्र एवं योगेश्वर की अभिलषित समस्त सिद्धियों को जो अवलीला क्रम से धूलि के सदृश तृणवत् गणना करते। जिनके शिष्य के अञ्चल ग्रहण के द्वारा सीता पति राघवेन्द्र जी दक्षिण भारत से स्वपुरी अयोध्या धाम में आगमन किये थे।। 7।।

अन्तर्वहि: सुचिभृतां शमदमादिगुणैर्वृतानाम्,
ऐकान्तिनां गुणवतां गुरुपदे परिनिष्ठितानाम् ।
युक्तानां मनूत्तमेषु परमप्राप्य दासाभिधानाम्,
वराणां वर: स जयति देशिक यतिराजराज: ।।8।।

जिसका अन्तर और बाहर उभय परिशुद्ध था, शमदमादि गुणोपेत थे, गुरुपद में परिनिष्ठित एवं गुणवानों के परम प्राप्य थे, दास्य रस के यथा युक्त अधिकारी और उत्तम मानवों के मध्य जो श्रेष्ठ रत्न थे, ऐसे यतिराज आचार्य की जय हो ।।8।।

हा हन्त! हन्त! कुलपतेर्वयं कदा नु,
पश्याम: सुदुर्लभपदं हि पराविभूतौ ।
त्रस्ता वयन्तेऽभयपादवियोग–मूढा:
कुत्राशिषोऽप्सु प्लवंमृते भववैतरण्या: ।। 9।।

हाय! हाय! हम लोग कब ही पराविभूति में इस कुलपति के सुदुर्लभ चरण कमल का दर्शन कर सकेंगे! इस अभय चरण के वियोग में भय भीत हम लोग अभय नौका के बिना कैसे भव वैतरणी पार कर सकेंगे ।।9।।

अस्मद्विधानां उन्मार्गगानाम्,
जन्मान्तरेषुच कृतागसाँश्च ।
प्राचीन–संस्कार–भारैर्हतानाम्,
नूनं समुद्धर्त्ता कृतावतारः ।। 10।।

हम लोगों के सदृश उन्मार्गगामी जन्म जन्मान्तर के पापी एवं संस्कार के भार से जर्जरितों के उद्धार के लिए आप अवतीर्ण हुए थे ।।10।।

त्वत्सङ्गवद्भिरिहैव मोदः,
त्रिपादलभ्योऽञ्जसाहि लब्धः ।
त्वयिवियुक्त वत्! भोगजातः,
पाको यथा रामरसैर्वियुक्तः ।। 11 ।।

आपके सङ्गलाभ से धन्य साधुगण के साथ जो इस लोक में ही त्रिपाद्‌विभूति में अनायास लब्ध परम आनन्द लाभ किये थे, आपके विरह में हाय! वही आनन्द भोग लवण वियुक्त पक्व षट्‌रस भोजन के संदृश नष्ट प्राय हो गया ।। 11।।

किमुक्तेनापि वहुधा, पाहि नः सततं प्रभो!
त्वत्पादाश्रित भक्तानां, त्वद् ऋते कापि वा गति : ।। 12।

हम लोगों के सहित आपका विच्छेद होने पर भी हे प्रभो! आपको छोड़कर आपके चरणाश्रित भक्तों की अन्य क्या दूसरी गति है? ।।12।।

मङ्गलं गुरुवर्य्याय, मङ्गलं भवसेतवे ।
मङ्गलं क्षमाशरण्याय, प्रपत्ति पथ हेतवे ।।
मङ्गलं ध्यान मूलाय, मङ्गलं शुभवर्षिणे ।
शेषी शेषार्य निष्ठाय, पञ्चार्थ रसकर्षिणे।। 13।।

गुरुवर का मङ्गल हो, भवसिन्धु के सेतु का मङ्गल हो, एक मात्र शरण्य आपका मङ्गल हो, प्रपत्ति पथ के प्रदर्शक आप का मङ्गल हो, ध्यान मूल आपका मङ्गल हो, शेष शेषी स्वरूप पुरुष आपका मङ्गल हो, आचार्य निष्ठ आपका मङ्गल हो, अर्थपञ्चक रूप ज्ञान के कृषक (उत्पादक) आपका मङ्गल हो ।।13।।

– वङ्गवासी नृसिंह रामानुज दास

॥ अथ श्री बलराम वैभवम्॥

(तदीय शिष्य श्री पराङ्कुशशास्त्री विरचितम्)

शाण्डिल्यान्वय वंश–भूषण मणिं रामावतारात्मजम्,
श्री रङ्गार्य्य पदारविन्द मधुपं, मान्यं सदा साधुभिः ।
श्री वाग् भूषण दिव्यभाव विशदीकारप्रवीणं सदा,
शान्तं श्री वलराम सूरि मनघं, नित्यं भजे सादरम् ॥ 1॥

शाण्डिल्य वंश के भूषण स्वरूप जो समस्त साधुपुरुष हैं उनके मध्य जो मणिस्वरूप अर्थात् सर्वश्रेष्ठ भूषण हैं, जो रामावतार स्वामी के पुत्र हैं, रङ्गदेशिक स्वामी के चरण कमल के भ्रमरस्वरूप अर्थात् जो सत् शिष्य हैं, साधुगणों से जो सर्वदा मान्य होकर रहते हैं, ज्ञानी श्रेष्ठ श्री लोकाचार्य स्वामी प्रणीत अमूल्य ग्रन्थ 'श्री वचन भूषण' – गत सद्ज्ञान एवं सदनुष्ठानों का सम्यग् आचरण अपने आचरण के द्वारा सजीव करके प्रस्फुटित कर रखे थे, उसी महाप्रवीण जितेन्द्रिय, शुद्ध अपापविद्ध श्री बलराम स्वामी की मैं भक्तिपूर्ण हृदय से भजन करता हूँ ॥ 1॥

वाधूल–वंशकलशाम्बुधिपूर्णचन्द्रम्,
श्री श्री निवास–गुरुवर्य्य पदाब्जभृङ्गम् ।
श्री वास सूरितनयं विनयोज्ज्वलन्तम्,
श्रीरङ्गदेशिकमहं शरणं प्रपद्ये ॥ 2॥

जो वाधूल वंश रूप अमृत सागर के पूर्णचन्द्र स्वरूप हैं, जो श्री श्री निवाास नामक आचार्यवर के चरण कमल के चञ्चरीक स्वरूप हैं, जो महाज्ञानी श्रीवास स्वामी के पुत्र हैं, महापण्डित होकर भी जो सर्वदा विनयगुण से उज्ज्वल हैं, परम गुरु उस श्रीरङ्गदेशिक स्वामी की मैं शरण लेता हूँ॥ ।2॥

वङ्गीयाञ्चल चट्टलेधृतजनुः शाण्डिल्य गोत्रोद्भवः,
श्रीशानुग्रहतः पराङ्कुश वटुः शास्त्री तदीयाश्रयः ।
शाण्डिल्या न्वयवंशभूषणमणेः पादाब्ज भृङ्गःसदा,
कुर्वे श्रीबलरामवैभवमहं सद् भक्तिसन्दीपनीम् ॥ 3॥

वङ्ग देश के अन्तर्गत चट्टग्रामनगर में शाण्डिल्य गोत्रीय पराङ्कुश रामानुज दास मैं श्रियःपति की कृपा से शाण्डिल्य वंश के जो सर्वश्रेष्ठ मणिस्वरूप हैं उनका आश्रयलाभ करके धन्य हो गया हूँ। एवं उनके चरण कमल के भ्रमर रूप में सद् भक्ति सन्दीपनी उनकी महिमा का गुणगान करता हूँ॥3॥

श्री रङ्गार्य्यैर्जितमतितरामुत्तरे भारतेऽस्मिन्,
तन्वानैर्वैष्णव शुभमतं पूत वृन्दावनस्थैः ।
पीठं रूढै र्व्रज पुरि गिरौ गोवर्द्धने सन्धने,
तत्त्वं वृद्धं द्रविण वचनैः संस्कृतं नीतवद्भिः ॥4॥

समस्त उत्तर भारत के सम्पूर्ण मतवादों का परास्त करके जो शुभ श्री वैष्णव मत का विस्तार साधन किये हैं – जो वृन्दावनस्थ व्रजपुरी गिरिराज गोवर्द्धन में पीठाधीश रूप से विराज करते हुए द्राविड़ भाषा में लिखे हुए

आड्वारों के दिव्य प्रबन्धगत समस्त तत्वों को संस्कृत भाषा में अनुवाद और विश्लेषण करके समग्र उत्तर भारत का परम उपकार साधन कर गये हैं।। 4।।

येषां पादाश्रितवुधवराः तीव्र वैराग्य युक्ताः,
अन्तर्गूढानुपमकरुणाः मुग्धचित्तान् जनौघान्।
त्राणोद्युक्ता भवजलनिधेः केशवप्रेममुग्धाः,
सङ्घं पुष्टा हरिशरणगतां प्रापयन्तीह दिक्याम् ।।5।।

जिनके चरण कमल का आश्रय करके पण्डित वर्ग ज्ञान एवं तीव्र वैराग्य से भूषित होकर केशव के प्रेम में मुग्ध हो गये थे, और जीर्णोद्धार के लिए कृपापरवश होकर संसार सागर में मुग्धचित्त जनगण के परित्राण के लिए श्री हरि के चरण में शरणागति जो करा दिये थे, और इस भाव से श्री वैष्णव संघ को पुष्ट किये थे, उन्हीं आदर्श आचार्य श्री रङ्गदेशिक स्वामी के चरण में हम लोग शरण ग्रहण करते हैं।।5।।

राजेन्द्रं तत्र हंसं परमपदयुतं श्रीहयग्रीवसूरिम्,
धर्मज्ञौ विष्णुभक्तान् प्रतिदिनमनघान् सेवयातर्पयन्तौ ।
वन्देऽहं दिव्यभावौ हरिजन शरण सेव्य पादार विन्दौ,
संसाराम्भोधि–गर्भ–प्रपतित मनुजोद्धार – निर्व्याजवन्धू ।। 6।।

उनके शिष्यों के मध्य परमहंस राजेन्द्र सूरि एवं श्रीहयग्रीव सूरि जो दोनों ही विशेष धर्मज्ञ एवं दिव्य भाव युक्त थे, तथा प्रतिदिन निष्पाप भागवतों की सेवा में निरत रहते, जो श्री हरिके सेव्य चरणकमल में नियत शरणागत रहते, एवं जो संसार जलधिगत मानवों के उद्धार कल्प में परम बन्धु स्वरूप थे, उन दोनों के चरण में हम लोग प्रणत होते हैं।।6।।

सूरिं रामप्रपन्नं कमलपदकमलं सौम्यमूर्तिं प्रशान्तम्,
नौमीड्यं देशिकाग्र्यं नृपतिकुलगुरुं वर्तयन्तं फलेन ।
चातुर्यस्थैर्युक्तैः सुशुभतर गुणैर्मण्डितं यञ्चवीक्ष्य,
चक्रः श्रीरङ्गवर्य्याः कुलपतिपद्गं रङ्गदेवस्य धाम्नः ।। 7।।

जो सौम्यमूर्त्ति प्रशान्त स्तुति योग्य आचार्यवर्य्य थे, जोराजगुरु एवं फलाहारी थे, जिन्हें चातुर्य्यस्थैर्य्य प्रभुति गुण गणों से शोभित देखकर गुरुवर श्रीरंगाचार्य स्वामी वृन्दावनस्थ श्रीरङ्गनाथ मन्दिर में परिचालना का अधिकार प्रदान किये थे, उस श्री रामप्रपन्नाचार्य सूरिके चरण कमल में मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।। 7।।

तर्कादि शास्त्र निवहेऽस्ति समोन यस्य,
श्री वैष्णवीयजन – मण्डल मध्यवर्ती ।
यस्यैव शिष्य विबुधा यशसा वरिष्ठा,
आर्य्यं सुदर्शनममुं सततं नमामि ।। 8।।

समग्र श्री वैष्णव पण्डित समाज के मध्य तर्क शास्त्र प्रभृति विभिन्न शास्त्रों में जिसके तुल्य ज्ञानी दूसरा कोई नहीं था, जिसके सभी शिष्य वर्ग पण्डित प्रवर के नाम से प्रसिद्ध थे, उस आर्य सुदर्शन सूरिको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ।। 8।।

तथैव रामेश्वर वासुदेवौ,
श्रीराममिश्रः कमलाद्यनेत्रः।
एतेद्विजेन्द्राः कृतविद्यभूषाः,
नमोऽस्तुतेभ्यो भगवत्परेभ्यः ॥ 9॥

उसी प्रकार श्री रामेश्वर सूरि श्री वासुदेव सूरि, श्रीराममिश्र सूरि, एवं श्री कमलनयन सूरि थे, ये समस्त द्विजश्रेष्ठ कृत विद्य वैष्णव समाज के भूषण स्वरूप थे, ऐसे भगवत् परायण सूरिगण को मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ ॥ 9॥

येषां पुंसां विपुलविभवैर्वृन्दकारण्यमध्ये,
रम्येरम्यं परम गुरुभिर्निर्मितं रङ्गधाम ।
लक्ष्मीचन्द्रः क्षण जनन गोविन्द दासस्तथैव,
राधाकृष्णः परमसुकृतीन् प्रातरेतान् स्मराभि ॥ 10॥

परमभागवत क्षण जन्मा लक्ष्मीदास जी, राधाकृष्ण जी, गोविन्ददास जी जिनके विपुल वैभव को अङ्गीकार करने से श्री वृन्दावन धाम में परम गुरु श्रीरङ्ग देशिक स्वामी के द्वारा रमणीय रङ्गधाम (श्रीरङ्ग मन्दिर) निर्मित हुआ था, परम सुकृतिमान् उन्हीं भ्रातृत्रय को प्रातःकाल में स्मरण करता हूँ ॥ 10॥

एतत्सतीर्थ सहितं गुरुसार्वभौमं,
श्रीरङ्गदेशिकपदाम्वुज भृङ्गराजम् ।
अस्मत्सदार्यवलराम मुदार धीरम्,
ध्यायामि नौमि सततं प्रलपामिभक्त्या ॥ 11॥

उक्त समस्त गुरुभ्राताओं के सहित जो विराज करते, अपने आचार्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के चरण कमल के जो भृङ्गस्वरूप थे, सार्वभौम गुरु हम लोगों के सदाचार्य उस श्री बलराम सूरिको मैं सर्वदा भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ, ध्यान करता हूँ, एवं उनका गुणगान करता हूँ ॥ 11॥

वाल्ये चार्य्यो विषयविषतो भीतिमापद्यमानः,
त्यक्तवा गेहं जनक जननी वित्त–भरैश्च पूर्णम् ।
दिव्येतीर्थे विहरणधिया प्राप्तयेतामयोध्याम्,
यत्र श्रीमान् परमपुरुषो रामचन्द्रोऽवतीर्णः ॥ 112॥

ये आर्य वाल्यकाल में विषय रूप विषके भय से भीत होकर जनक जननी गृह परिजन वित्तादिका परिवर्जन करते हुए दिव्यतीर्थ के परिभ्रमण में वहिर्गत होकर श्रीरामचन्द्र के अवतार स्थल अयोध्या धाम में उपनीत हुए॥ 12॥

यावद् द्वादशवत्सरो गुरुवर त्यक्त्वातदान्नाशनम्,
आरम्भे फलभोजनव्रतमहोऽवाल्योचितं पात्वनम् ।
इत्थंकृच्छ्र परायणः परिचरँस्तीर्थेषुतत्त्वाशया,
पश्चाद्रङ्गगुरोः पदाब्जशरणं गत्त्वा कृतार्थोऽभवत् ॥ 13॥

ऐशं कटाक्षं पतितं च मन्ये, वाल्ये गृहे तिष्ठति देशिकेऽस्मिन् ।
जाते महामारि भये स्वपल्याम्,स्वप्नश्च दृष्टस्त्यजनाय तस्याः।। 14।।

वाल्यकाल में घर पर रहने के समय इसी गुरुदेव के ऊपर भगवत्कटाक्ष पतित हुआ, एक समय इनके ग्राम में महामारी रोग भीषण आकार धारण किया, उस समय वे गाँव को छोड़ देने का स्वप्न में आदेश पाये ।। 14।।

सङ्केतमित्यं परिचिन्त्य धातुः,
दृढं मनस्त्याग विधौ गृहस्य ।
चक्रे ममत्त्वं स्वजनस्य हित्वा,
पलायितश्चात्र भवान् जितात्मा ।। 15।।

वे भागवान् के इस सङ्केत के विषय में चिन्ता करके गृह को परित्याग कर देने का दृढ़ सङ्कल्प किये, एवं स्वजनों की ममता छिन्न करके गृह परित्याग किये ।।15।।

वृन्दारण्ये सुरपुरसमे देशिकं कल्पवृक्षम्,
श्रीरङ्गार्य्यमश्रित इह गुरुः सर्वकाम प्रसूतिम् ।
लेभे सान्द्रां ह्रदिपरमुदं तृप्त सर्वान्तरात्मा,
रत्नं लव्ध्वा सुखयति यथा दुर्गतोऽतीव दीनः ।। 16।।

सुरपुरी के तुल्य वृन्दावन में देशिक श्री रङ्गाचार्य्य के चरणाश्रित होकर, हे गुरुदेव! उस समय आप अपने ह्रदय में परमानन्द लाभ किये, एवं अति दुर्गतदीन रत्न को पा जाने पर जिस अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उसी तरह आप भी सर्वान्तःकरण में परितृप्त हुए ।। 16।।

यथैद्यमानोऽङ्कुर आर्द्रभूम्याम्,
क्रमप्रसारं लभते तथैव ।
देवस्य वैराग्ययुते च चित्ते,
समेधितुं ज्ञानमहो प्रवृत्तम् ।। 17।।

आर्द्र भूमि में बढ़ता हुआ अंकुर जिस प्रकार धीरे-धीरे प्रसार लाभ करता है, उसी प्रकार गुरुदेव के वैराग्यवान चित्त में ज्ञान की समृद्धि होने लगी ।। 7 ।।

श्री सम्प्रदायस्य रहस्य ग्रन्थान, पूर्वै प्रणीतान् गुरुभि विशिष्टान् ।
अधीत्यसूरिः विपुलात्म बोधः, एकोऽद्वितीयोऽभवदत्र विद्वान् ।। 18 ।।

विशिष्ट विशिष्ट पूर्वाचार्यो के द्वारा प्रणीत श्री सम्प्रदाय के रहस्य ग्रन्थों के अध्ययन में नियत होकर हम लोगों के सूरि आत्म-स्वरुप के ज्ञान में सम्यक् ज्ञान लाभ किये एवं एक अद्वितीय विद्वान के रूप में परिगणित होने लगे ।। 18।।

कालक्षेपं नियत पठनात् पाठनाच्चैव कर्त्तुम्,
आरेभेऽसावविरतरतिः नित्यमुत्साह युक्तः ।
इत्थं तत्त्वाम्बुधिविहरणाज्जातया पूर्ववुद्धया,
लक्ष्मीकान्तानुभव-जनित प्रीतिदास्यं जगाम ।। 19।।

उस समय से लेकर नियत अध्ययन एवं अध्यापना का कालक्षेप करना आरम्भ किये। एवं एकान्त भाव से उत्साह युक्त होकर इसी तरह तत्व के सागर में विहार करते–करते लक्ष्मीकान्त के अनुभव जनित उनकी प्रेम सेवा में नियत हो गये ।। 19।।

नानापि दिग्भ्यः श्रुत कीर्त्तिरस्य,
तत्त्वानुसन्धित्सु नृणां समूहः ।
प्रयातुमायातुमथप्रवृत्तः,
केचित्तु तेषां शरणाम् प्रजग्मुः ।। 20।। ,

अनन्तर इनकी महान् कीर्त्ति को सुनकर तत्त्व के अनुसन्धान करने की इच्छा से नरगण इनके पास यातायात करना आरम्भ कर दिये। उनमें कोई–कोई इनके पास शिष्यत्व ग्रहण किये।।20।।

ततस्तु वाल्ये वयसि स्थितो महान,
शास्त्री सुधीर्भागवतोऽतिसज्जनः ।
सौभाग्य– सञ्चारत एव सङ्गतः,
समाश्रितश्चैव गुरुं सदाश्रयम् ।। 21।।

इस समय साधु बुद्धि एक सज्जन बालक, जो आगे चलकर भागवताचारी शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध हुए थे, वे इनके सङ्गलाभ से सौभाग्यवान् होकर इस सदाश्रय गुरु के चरण में समाश्रित हुए।।21।।

वाल्ये रामप्रपन्नो गृहरति विरतस्तर्कवाचस्पतिर्मे,
आचार्यप्रयं प्रपन्नः परमगुरुपदाम्भोजभृङ्गायमानम् ।
वृन्दावरण्य प्रवासे परम सुरसिको जातवाँस्तत्प्रसादात्,
छात्रान् शिष्याँश्चकृत्वा विलसति सततंत्यक्तमानोऽपिमान्यः।। 22।।

श्री रामप्रपन्नवाल्यकाल में गृहासक्ति त्यागकर श्री वृन्दावन में आये।और हमारे परम गुरुदेव के चरणकमल के भृङ्गरूपी आचार्यवर श्री बलराम स्वामी के चरणाश्रित होकर शास्त्र के अध्ययन में सुरसिक एवं तर्क शास्त्र में 'वाचस्पति' पद भूषित हुए। वे बहुत शिष्य, छात्रों से परिवृत होकर अमानी होते हुए भी बहुमानी हो गये ।। 22।।

माहात्म्यतः श्रीबलराम सूरेः,
पदाश्रितः श्रीरघुनाथसूरिः ।
अद्वैत–भावं सुनिद्धमाद्यम्,
पीतामृतात्मेव जरांजहौच ।। 23।।

अद्वैत भाव से भावित होकर श्री रघुनाथ शास्त्री श्री बलराम सूरि के प्रभाव से प्रभावित हो गये, एवं उनका श्रीचरण आश्रय किये, तथा भक्ति सुधा को पीकर परिपुष्ट हो गये ।।23।।

वृन्दावन स्थितिजुषं गुरुसार्वभौमम्,
रामप्रपन्नवुधवर्य – कृपोपदेशात् ।
हन्ताश्रितोऽयमधमस्तु पराङ्मुखोऽहम्,
दुःस्थो यथैति निधिमात्म महार्त्तिशेषे ।। 24।।

निधि को पा जाने पर जिस तरह दुःस्थ दरिद्र व्यक्ति का दुःख दूर हो जाता है, उसी तरह यह अधम पराङ्कुश मैं उक्त बुधवर श्रीरामप्रपन्न के उपदेश और कृपा से श्री वृन्दावन में श्री गुरुदेव का चरणाश्रय करके कृत कृत्य हो गया ।। 24।।

जनार्द्दनो नाम च वङ्गदेशजः,
गुरुं समाश्रित्य गुणैर्वरोऽभवत् ।
तुष्टश्च नित्यार्चन कृत्यके गुरुः,
नियोजयामास च तं द्विजोत्तमम् ।। 25 ।।

वङ्गदेशोद्भव जनार्दन भी श्री गुरु का चरण समाश्रय करके सद्‌गुण गण से भूषित हो गये। श्री गुरुदेव इस द्विजोत्तम के ऊपर सन्तुष्ट होकर उन्हें अर्चविग्रह के नित्य अर्चक रूप में नियुक्त कर लिए।।25।।

यश्चकार वहुसंख्य वैष्णवान्,
सर्वलोक हित – तत्परानिह ।
दिव्य धाम सततं श्रितोगुरुः,
तत्पदाब्ज युगलं भजे सदा ।। 26।।

जो नित्य सूरि गुरुदेव बहुत मनीषियों को सर्वलोक हितपरायण श्री वैष्णव रूप में परिणत कर गये हैं उनके चरणयुगल की मैं सदा भजन करता हूँ ।। 26।।

श्री गोपालं श्रितजन धनं रुक्मिणी जीवितेशम्,
वृन्दारण्ये स्वचरणशुभे दाक्षिणात्य प्रदेशात् ।
आनीयास्मिन् गुरुरतिसुखं प्राज्यकैरुत्सवैश्च,
भक्तैर्भृत्यैः सहकृत मठे स्थापयामास देवम् ।। 27।।

दक्षिण भारत से आश्रितजनों के परमधन रुक्मिणी के प्राणपति श्री गोपाल जी को निज चरण रज से पूत पवित्र श्री वृन्दावन में आनयन करके हमारे गुरुदेव निज भक्त दासों के सहित अति हर्ष युक्त होकर यथा – रीति याग् यज्ञ एवं अनुष्ठान के साथ अपने मठ में स्थापना किये थे ।। 27।।

श्रीमत् कृपार्द्धिलभते च नित्यम्,
स्वामी मदीयो बलराम सूरिः,
सेवा व्यवस्थामुचितां च कृत्वा,
स्थितस्ततोऽनन्यमतिर्महात्मा ।।28।।

नित्य कृपा लाभ से धन्य होकर हमारे स्वामी महात्मा श्री बलराम सूरि इस अर्चाविग्रह की यथोचित सेवा का वन्दोवस्त करके उनके प्रति अनन्य मति होकर विराज करने लगे।। 28।।

दुर्वोधनं वचन भूषणमत्रदेवः,
सौख्यग्रहं विशदयन् मधुरैर्वचोभिः ।
वोधान्वितं प्रकुरुतेऽस्म हि शिष्यवृन्दं,
को वा भवेत् गुरु–समः प्रतिवोधयानः ।। 29।।

हम लोगों के गुरुदेव दुर्वोध्य एवं सर्वालङ्कृत 'श्रीवचनभूषण ग्रन्थ' को मधुर वचन से विशद रूप में व्याख्या करके शिष्यों के निकट सवोध्य कर दिये थे। उनके सदृश ज्ञान देने वाला गुरु और कौन हो सकता है ।। 29।।

श्री कान्त पादाब्ज–रसाप्लुतात्मा,
किमप्यभीष्टं नहि मन्यतेऽत्र ।
ज्ञात्वागतं दैहिक–वन्धु–वर्गम्,
विनेक्षणं सत्कृतवान् सुधीरः ।। 30।।

श्री कान्त के पद रस में जो सदाही आप्लत रहते, उसको छोड़ कर अन्य कोई अभीष्ट जिनका नहीं था, कोई देह सम्बन्धी के आने पर उसे दर्शन नहीं देते, किन्तु धीरभाव से उसका सत्कार करवा देते ।। 30।।

एवं विरक्तिर्वत यस्य चित्ते,
निवद्धभावा स्वजनेषु नित्यम् ।
छिन्नं ममत्त्वं भववन्धमूलम्,
जीवन्विमुक्तिं सुगुरुर्गतो मे ।। 31।।

इसी प्रकार जिनका चित्त सदा वैराग्य भाव से पूर्ण रहता था। जो इसी भाव में भवबन्धन के मूल स्वरूप आसक्ति को छिन्न कर दिये थे। हाय! वही गुरुदेव जीवन्मुक्त होकर हम लोगों को छोड़कर चले गये ।। 31।।

न्युष्यात्र सूरिः ननु दीर्घ कालम्,
साकेत पुर्य्यां सहसा जगाम ।
एकस्त्वविज्ञात – गभीर भावाः,
चमत्कृता भृत्य – गणा वभूवुः ।। 32।।

इसी भाव में दीर्घकाल तक वृन्दावन में अवस्थान किये। एक दिन गुरुवर श्री बलराम सूरि सहसा वृन्दावन परित्याग करके एकाकी श्री अयोध्याधाम चले गये। उनके गम्भीर भाव से अनभिज्ञ समस्त सेवकगण उस समय इस अभावित घटना से चमत्कृत हो गये ।। 32।।

वृन्दावनेनृपसमः परिसेवितोयो,
भृत्यैर्हि पादकमल प्रणति प्रसक्तैः ।
हन्ताद्यवै परभुवः गत एव सर्वम्,
कृत्यं स्वहस्तकमलैः कुरुतेऽतिचित्रम् ।। 33।।

चरणकमल में प्रणत एवं प्रसक्त सेवकों के द्वारा जो नृपति के तुल्य परिसेवित होते, हाय! वे आज समस्त ऐश्वर्य्य परित्याग करके समस्त कृत्य अपने हाथ से ही सम्पन्न करने लगे, उनका चरित्र कैसा विचित्र है ।। 33।।

ततस्तु साकेतपुरीस्थितं गुरुम्,
जनार्द्दनो नाम समाश्रितोत्तमः ।
समेत्य च स्वीयमुदार सत्तमम्,
संसेवितुं प्रारभतेऽस्म सर्वथा ।। 34।।

उस समय अयोध्या में विराजमान हम लोगों के गुरुदेव चरणाश्रित साधु जनार्दन उनके सहित आगमन किये हुए उदार सत्तम सर्वथा अपने प्रभु की सेवा में नियत हो गये ।। 34।।

प्रागेव रामानुजकूट संस्थितः,
गुरुस्तु भूमिं दशरूप्य वार्षिकीम् ।
राज्ञः सकाशादधिकृत्य सत्त्वरम्,
कुटीरमेकं कृतवान् मठस्थले ।। 35।।

अयोध्या गमन के अनन्तर गुरुदेव प्रथम रामानुज कोट में अवस्थान करने लगे, तदनन्तर शीघ्र ही वार्षिक दश रूपया खजाना पर राज्य सरकार कुछ जमीन की व्यवस्था करके उस जगह एक कुटीर निर्माण किये।। 35।।

तत्रैव गत्वा दिवसस्य शेषे,
दिव्यां कथां वाचयितुं प्रवृत्तः ।
नैपुण्य शक्त्या कथकस्य भावे
मुग्धोऽभवत् श्रोतृगणोञ्जसैव ।। 36।।

इस नव निर्मित कुटीर में प्रवेश करने के अनन्तर प्रतिदिन इसी स्थल पर अपराह्न वेला 3 बजे वे कालक्षेप करना आरम्भ कर दिये। उनकी निपुण व्याख्या को सुनकर श्रोता गण मुग्ध हो जाते ।। 36।।

इत्थं गुरुर्मे क्षपयन् दिनानि,
गतः प्रसिद्धिं महताञ्च मध्ये ।
वृहत् स्थलेशो भृशरक्तचित्तः,
स्वतः सहायोऽजनि देशिकस्य ।। 37।।

हमारे गुरुदेव इसी भाव से कालातिपात करने लगे । उनकी ख्याति महापुरुषों के मध्य में प्रसारित हो गई ।अयोध्या में बड़ा स्थान के महान्त जी उनके प्रति अत्यन्त आसक्त हो गए एवं स्वतः प्रवृत होकर अनेक प्रकार से उनकी सहायता करने लगे ।। 37 ।।

तत सूचानादिक पुरः सरतोहि कूपः, श्रीमण्डपादितरदूर्ध्व गृहस्य जालम् ।
जातान्य हो ! गुरुवरस्तत एव कूटात्, गोपालदेवमिह ह्रद्यतमं ररक्ष ।। 38।।

बड़ा स्थान के महन्त जी की प्रार्थना से एवं रक्षणावेक्षण में उक्त अधिकृत जमीन में एक कूप और उसके अलावा कई एक गृह निर्मित हुआ। तदनन्तर रामानुज कोट से अपने अर्चित ह्रद्य शालीग्राम शिलादि ले आकर इस घर में सुरक्षित किये ।। 38।।

योगेश्वरो योगिजनैक बंधुः, स्वाराधितो ह्रत्कमलस्य मध्ये ।
संकल्पितं भक्त जनस्य सर्वम् कटाक्षतः साधयति क्षणेन ।। 39।।

योगियों के बन्धु योगेश्वर जो ह्रदय कमल के मध्य आराधित होते रहते हैं, वे अपने कटाक्ष द्वारा भक्त जनों के समस्त संकल्प को क्षण मात्र में पूर्ण कर देते हैं ।। 39 ।।

एवं स्वभावस्तु दयामयस्य, पद्मालयाकान्त महेश्वरस्य ।
चित्रे चरित्रे मम भर्तुरेव, लक्षी कृतो हन्त सुपुण्यधाम्न:।। 40।।

सुपुण्य धाम दयामय कमलाकान्त महेश्वर का यह भक्त वाञ्छा कल्पतरु–स्वभाव हमारे स्वामी के विचित्र चरित्र में प्रस्फुटित हो गया ।। 40।।

श्रीरामपुर्य्यां विरचय्य मन्दिरम्,
सीता सहायं रघुवंश वर्द्धनम् ।
संस्थापयिष्येऽहमिदन्तु भावनम्,
गतं सुसिद्धिं बलराम सूरे: ।। 41।।

श्रीरामचन्द्र की पुरी श्री अयोध्या में श्री मन्दिर निर्माण करके उसमें सीता देवी के सहित श्री रघुनाथ जी का श्री विग्रह स्थापना करूँगा – श्री बलराम सूरि की यह भावना: सुसिद्ध हुई ।। 41।।

श्रीकान्त सङ्क्रान्त सदन्तरत्त्वात्,
भृत्यैश्च भर्त्तुर्विभवैश्च नित्यम् ।
प्रवृत्तमागन्तुमचिन्त्यरूपम्,
सहायपौष्कल्पमवाप देव: ।। 42।।

श्रिय: पति भगवान के पूजा भोगराग का विषय निरन्तर अनुचिन्तन के फल से उनके शिष्य सेवकगण एवं वित्तवान भक्तों की मध्यस्थता में नियमित भाव से अभावनीय रूप में द्रव्य आने लगा। इसके द्वारा हमारे गुरुदेव आश्रम विषयक सम्पूर्ण सहायता पाने लगे।। 42।।

श्री वैष्णवीय महतामतिह्रद्यभावम्,
सङ्गेन सम्यगनुभूय सुतृप्त चित्त: ।
श्रीमान् उपेन्द्र इह राजपुमान विशिष्ट:,
प्राप्तो ममार्य शरणं सकलेष्टदायी ।। 43।।

श्री बलराम सूरिके सङ्गलाभ से उनके मध्य आन्तरिक वैष्णवीय महा भावना सम्यग् अनुभव करके एक विशिष्ट राजपुरुष (डिप्टी मजिस्ट्रेट) श्रीमान् उपेन्द्र मोहन सेन गुप्त अतीव परितृप्त चित्त से हमारे उसी गुरुवर का सर्वाभीष्ट–प्रद शरण ग्रहण किये।। 43।।

ततोऽस्य तुष्टस्य सुधिवरस्य वै,
प्रचोदनाद्वङ्गनिवासिनो जना: ।
कृतार्थतां गन्तुमथेह सङ्घश:,
गुरा: पदाब्जं शरणं प्रपेदिरे ।। 44।।

तदनन्तर परितुष्ट इसी सुधीवर की प्ररोचना से वङ्गवासीगण सङ्घवद्ध भाव से हमारे गुरुदेव के चरण कमल में शरण ग्रहण किये ।। 44।।

गुरु प्रवाहाङ्कित ह्रदरेखा-
नुसारतो वङ्गनिवासिनोऽन्ये ।
समेत्य च स्वीयजनेन सार्द्धम्,
समाश्रिता आत्मवतां वरिष्ठम् ॥45॥

इस प्रवाहाङ्कित मनोरम रेखा का अनुसरण करके अन्यान्य वङ्गवासीगण अपने अपने स्वजनों के सहित अयोध्या में आगमन करते हुए उसी श्रेष्ठ महात्मा के चरण में समाश्रित होने लगे ॥45॥

अहोगुरोर्मेसुमहाप्रभावात्,
वङ्गभिधायां मरुकल्पभूमौ ।
जातो ह्रदो वैष्णवरूप एको,
द्रष्टुर्मनो मोदकरश्च शश्वत् ॥46॥

अहो हमारे गुरुदेव की महामहिमा के प्रभाव से इस वङ्गीय मरुकल्प भूमि में दृष्टिमनोरम एकवैष्णवह्रद निर्मित हुआ ॥ 46॥

दयालुरित्थं वलरामसूरिः,
कर्त्तुं प्रवृत्तो वहु विष्णु भक्तान् ।
वन्ध्याँश्च वृक्षान् फलपुष्पयुक्तान्,
सुमाल्यकारश्च यथा करोति ॥ 47॥

अभिज्ञ मालाकार जिस प्रकार वन्ध्या वृक्ष को परिचर्या के द्वारा फलपुष्प शोभित करते रहते हैं। उसी प्रकार हमारे गुरुदेव परमदयालु श्री बलराम सूरि भगवद्विमुख जनसमाज को भगवदभिमुख विष्णु भक्त करने के लिए प्रवृत्त हुए ॥ 47॥

एवं गुरुः सुविपुल वैभवान्वितः,
विष्णोः शुभं परपददायि मन्दिरम् ।
कृत्वेह तं स विजयराघवं प्रभुम्,
संस्थापयन्नतिमुदमाप देशिकः ॥ 48॥

इस प्रकार के सुविपुल वैभव युक्त हमारे गुरुदेव विष्णु के परमपद को देने वाले एक सुदृढ़ पुण्य मन्दिर का निर्माण करके उस मन्दिर में श्री विजयराघव जी भगवान को स्थापित करके परम सुखी हुए॥ 48॥

श्री रामानुजार्यांघ्रि सरोज पादुका,
श्री दाशरथ्यादि मुनि प्रपूजितः ।
कृताञ्जलीनां सकृदिष्टत्रसाधकः,
देवोह्ययं श्री विजयाद्यराघवः॥ 49॥

हे देव! ये श्री विजयराघव भगवान् श्री रामानुजाचार्य के चरण कमल के पादुका स्वरुप श्री दाशरथी स्वामी प्रभृति पूर्वाचार्यो द्वारा सेवित और सम्पूजित एवं प्रणत भक्तो के इष्ट को साधन करने वाले हैं॥ 49॥

श्री वैष्णव सेवित दक्षिणापथात्

धीराग्रणी भागवतस्य यत्नतः ।

गुरोर्गुणाकृष्ट इवागतः स्वयम्,

देवोह्ययं श्री विजयाद्यराघवः ।।50।।

ये विजयराघव जी भगवान् सुधी श्रेष्ठ श्री भागवताचारी के प्रयत्न से हमारे गुरुदेव के गुणों से आकृष्ट होकर श्री वैष्णव सेवित दक्षिण – भारत से स्वयं श्री अयोध्याधाम में आगमन किये हैं ।।50।।

अकिञ्चनानां वत रक्षको हिनः,

गतो गुरुर्नित्यपदं महामतिः ।

सान्द्रागसो रक्षतु मादृशोऽधुना,

देवो ह्ययं श्री विजयाद्यराघवः।। 51।।

हाय! हाय! अकिञ्चन हम लोगों की रक्षा करने वाले ये महामति गुरुदेव नित्यपद (श्री वैकुण्ठ धाम) चले गये। अब महा अपराधी हम लोगों की रक्षा ये श्री विजय राघव जी भगवान् करें यही प्रार्थना हैं।।51।।

प्रथम खण्ड समाप्त

श्रीमत्काश्यपवंश भूषण मणिं शान्तिक्षमाद्यालयम्,

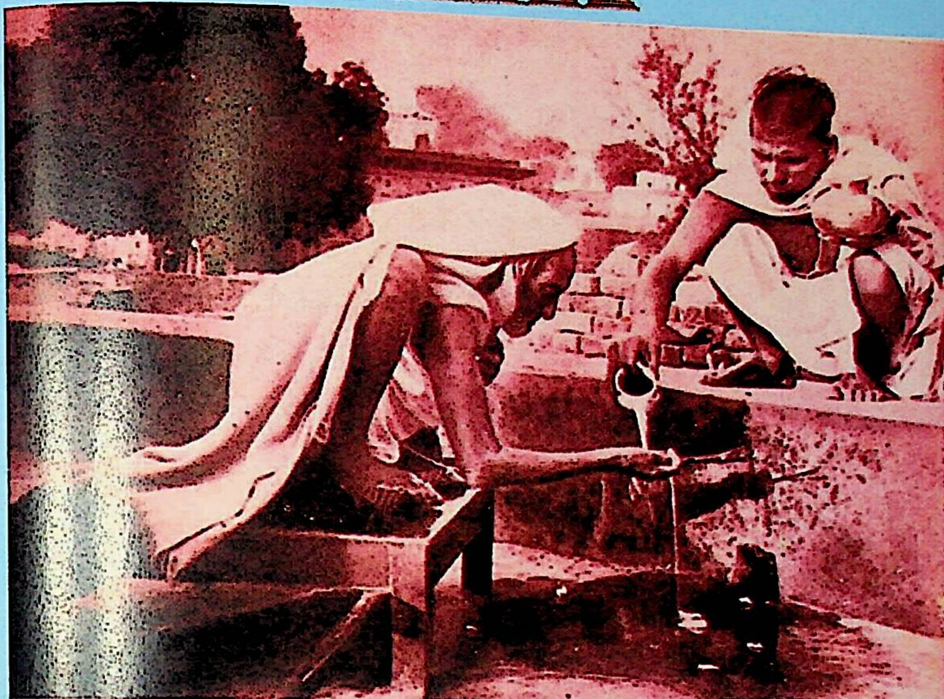
श्रीमच्छ्री भजनार्य सूनुमनघं वेदान्त तर्काम्बुधौ ।

पूर्णेन्दुं बलराममदेशिक पदाम्भोजद्विरेफं सदा,

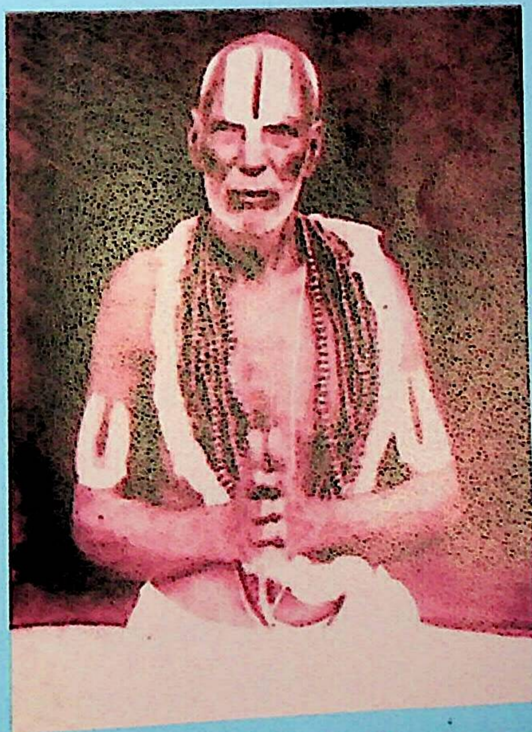
वन्दे मङ्गल धाम देशिकमहं रामप्रपन्नाह्वयम् ।।

।। इति ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्री बलराम सूरि स्वामी जी के शिष्य श्री कमलनयनाचार्य स्वामी जी हाथ मिट्टी सेवा कराते हुए



स्वामी श्री रामाचार्य जी महाराज

श्री कमलनयन सूरि स्वामी का परिचय



विधुरस निधि पृथ्वीवत्सरे वैक्रमे तु
दिनमणि मकरस्थे कृष्ण पक्षे दशम्याम्।
जगातितलगतंसंवत्सरे पिङ्गले च
कमलनयन सूरिं शक्रमे संस्मरामि।।

माघमासेऽसिते पक्षे ज्येष्टर्क्षे दशमी तिथौ।
पिङ्गलेऽब्दे समुद्भूतं कमलाक्ष गुरुं भजे।।

७ मं.
५ राहु
८ चं.
६
४
६ बु.
३
१० सू. श.
१२ शु.
२
११ केतु
१ वृ.

''वन्दे श्री कमलं परं च नयनं तं सूरिवर्य गुरुम् ।।

जिनके चरणद्वय ही मुझ अकिञ्चनदास के सर्वस्व हैं, का जन्म पद्य तथा जन्म लग्न अङ्कित है। श्री स्वामी जी की जन्मपत्री प्रायः पूर्ण रूपेण सुरक्षित मेरे पास रखी है। कहीं भी माता–पिता के नाम एवं जन्मस्थान का लेषमात्र भी संकेत नहीं है। पिता के स्थान पर आचार्य (गुरु) श्री बलराम सूरि स्वामी का नाम अङ्कित है। जो लोग अपने को श्री स्वामी जी का रिश्तेदार बताते हैं उन्हें भी इनके गांव का नाम नहीं ज्ञात है। इण्टरनेट पर इनके भतीजे ने इनके गांव का नाम डाल रखा है। सन् 1992 में

इनका भतीजा संतोष ओझा श्री स्वामी जी का पता लगाने श्री विजय राघव मन्दिर पर आया था। श्री स्वामी जी एवं संतोष ओझा के सम्वाद को नीचे दिया जा रहा है।

श्री स्वामी जी – क्या नाम है तुम्हारा ?

श्री संतोष ओझा– जिला शाहाबाद (जो कि अब आरा, भभुआ और रोहतास– 3 जिलों में बँट गया है) के ग्राम बड़का सिंघनपुरा के श्री सत्यदेव ओझा का पुत्र हूँ। मेरा नाम संतोष ओझा है।

श्री स्वामी जी – क्या करते हो संतोष ? और यहाँ कैसे आये हो ?

मेरे नाम के अतिरिक्त किसी अन्य विवरण को अनसुनी कर दिया। मैंने अपनी नौकरी एवं पढ़ाई के बारे में बताया। ''इंजीनियरिंग पढ़ा हूँ और M.B.A. किया है। कम्पनी के कार्य से फैजाबाद आया हूँ''

संतोष लिखे है कि स्वामी जी मेरी ओर देखते रहे और मैं उनकी ओर। संतोष के अनुसार श्री स्वामी जी का चेहरा और दृष्टिपात मेरे पिता जी की तरह था।

संतोष कहते हैं कि स्वामी जी ने मुझे और मेरे मित्रों को प्रसाद दिया। मैंने उनका एक फोटो खीचने की आज्ञा मांगी, तब उन्होंने पहले मना कर दिया, फिर बोले ''क्या आवश्यकता है फोटो की, तुम तो हमसे मिल ही चुके हो।'' और आग्रह पूर्वक निवेदन करके उनकी आज्ञा से कुछ चित्र लिए।

परम विरक्त गुरु के परम विरक्त शिष्य के विरक्त भाव का एक उदहारण –

श्री स्वामी जी की माता जी कहीं से अपने द्वितीय पुत्र श्री कांति ओझा का पता लगाती हुई श्री अयोध्या धाम में श्री विजयराघव मन्दिर पधारीं। श्री स्वामी जी ने मिलने से इंकार कर दिया। श्री विजय राघव मन्दिर के मैनजर वै0 वा0श्री राघवेन्द्राचार्य जी स्वामी जी के लगभग समवयस्क थे। उनके निवेदन से श्री स्वामी ने इतनी बात मानी कि मैं बैठ जाऊँ माता जी आवें और देखकर तुरंत लौट जायें। श्री माता जी ने बैठे हुए श्री स्वामी जी की परिक्रमा किया और तुरंत वापस नीचे चली गई। श्री राघवेन्द्राचार्य जी ने दो चार दिन उन्हें ठहराया और बहुमान करके विदा किया।

श्री स्वामी जी महाराज कहा करते थे कि यदि किसी को याद आ जाए कि मेरा जन्मस्थान अमुक दिशा में हुआ है तो वह विरक्त नहीं है।

उपरोक्त बातों से श्री स्वामी जी महाराज के विरक्तिकोटि का दर्शन होता है। श्री स्वामी जी महाराज का जन्म बिहार प्रांत के आरा जिले के बड़का सिंघनपुरा ग्राम में विक्रम संवत 1961 में माघ कृष्णपक्ष, ज्येष्ठा नक्षत्र, दशमी तिथि दिन सोमवार को हुआ था। अपने भाइयों में द्वितीय नम्बर पर थे। तीसरे भाई का नाम श्री रामगुलाम और चौथे भाई जो कि श्री स्वामी जी से 25 वर्ष छोटे हैं

ख्यातिलब्ध साहित्यकार एक स्नातकोत्तर महाविद्यालय के अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य डॉ0 सत्यदेव ओझा है।

श्री यादवेन्द्र प्रातप सिंह जी ने वर्ष 2015 में आचार्य अवतार स्थली दर्शन कार्यक्रम के अन्तर्गत दो पुण्य ग्रामों का दर्शन किया। श्री बलराम सूरि स्वामी जी के अवतार स्थल धमवल और सन्दर्भित स्वामी जी महाराज के अवतार स्थल बड़का सिंघनपुरा। वर्तमान सिंघनपुरा आधुनिक सुविधाओं विद्युत; सड़क इत्यादि से युक्त एक सम्पन्न ग्राम है, यहाँ की मिट्टी काली और भूमि अति उपजाऊ है। जिस मकान में श्री स्वामी जी का अवतार हुआ था, एक विशाल क्षेत्र में निर्मित पुराना मकान है। उस मकान में अब कोई नहीं रहता है, अतः झाड़ियां, गुल्म घास उगे हुए हैं। पूज्य स्वामी श्री रामप्रपन्नाचार्य के अवतार स्थल की तलाश का प्रयत्न किया गया किन्तु मिल नहीं सका।

श्री स्वामी जी ने एक बार अपने श्रीमुख से इस दास को बतलाया था कि वह जब वह कक्षा 9 में पढ़ रहे थे तब माता–पिता ने उनका विवाह तय कर दिया था तब चुपके से उन्होंने सदैव के लिए गृह त्याग दिया था।

आचार्य सेवा एवं आचार्यभिमान

श्री स्वामी जी महाराज ने तीन आचार्यो की सेवा किया। प्रारम्भ में प्रातः स्मरणीय परम विरक्त श्री बलरामसूरि स्वामी जी के श्रीचरणों में अनुरक्त, विलक्षण विद्वान श्री भागवताचार्य स्वामी जी के श्रीचरणों की। श्री भागवताचार्य जी ने इनको अपने आचार्य श्री बलरामसूरि स्वामी के श्रीचरणों में समाश्रित कराया। श्री भागवताचार्य स्वामी जी अस्थमा रोग से पीड़ित थे। श्री स्वामी जी ने इनकी सर्व विधि आदर्श सेवा इनके अन्तिम समय तक किया। थूकने के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपनी हथेली भी प्रस्तुत कर देते थे।

शरीर छोड़ने के दो दिवस पूर्व श्री भागवताचार्य स्वामी जी श्री स्वामी जी को श्री बलरामसूरि स्वामी के श्री चरणों में प्रस्तुत करते हुए कहे ''यह कमलनयन है, समर्पित सेवक है अब मेरा समय हो गया है इनको मैं आपके श्रीचरणों की शरण में सौंप रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें। श्री बलराम सूरि स्वामी जी ने कहा–''आप चिंता न करें इनका इह लोक और परलोक दोनों का भार मैं लेता हूँ।''

अब श्री स्वामी जी श्री बलरामसूरि के श्री चरणों की सेवा में इस प्रकार लीन हो गए कि शरीर छोड़ते समय इनके स्वस्फुटित उद्गार थे – ''गरुड़ध्वज इस लोक के आदमी नहीं हैं। कमलनयन हमारे हाथ–गोड़ हैं।''

यह दुर्लभ आचार्याभिमान प्रभु के अतिकृपापात्र को ही प्राप्त होते हैं। 26 अगस्त 1931 को श्री बलरामसूरि स्वामी जी ने पद्मासन में बैठे हुए ''हे भगवान विजय राघव'' कहते हुए भौतिक शरीर का त्याग कर दिया। मेरे श्री स्वामी जी ने उनके पूर्व निर्देशानुसार उनका और्ध्व दैहिक क्रिया एक

दक्षिणी विद्वान श्री तोताद्रि आयंगर के निर्देशन में सम्पन्न किया । परम विद्वान (कलकतिया स्वामी के नाम से प्रसिद्ध स्वामी रामप्रपन्नाचार्य महान्त पद पर अभिषिक्त हुए । श्री स्वामी जी महाराज बद्रीनाथ धाम में तपस्यारत परम विरक्त योगी श्री रघुनाथाचार्य की सेवा में प्रस्थान किए । श्री रघुनाथाचार्य स्वामी के परम पद के बाद श्री स्वामी जी पुनः भगवान विजयराघव की सेवा में वापस आ गए ।

श्री रघुनाथाचार्य स्वामी की विरक्ति की एक झलक

श्री स्वामी रघुनाथाचार्य अविभाजित भारत के पंजाब प्रांत के निवासी थे । एक बार इनके पुत्र श्री गोविन्द जी इनका पता लगाकर इनके पास आए । स्वामी जी ने पूछा – यहाँ क्यों आए हो ? श्री गोविन्द जी ने उत्तर दिया – आपकी सेवा करना चाहता हूँ । (गोविन्द जी का तात्पर्य अर्थ सेवा से था ।) स्वामी जी ने पूछा क्या सचमुच सेवा करोगे ? श्री गोविन्द जी ने हाँ में उत्तर दिया । श्री स्वामी जी ने कहा 'अब यहाँ कभी भी न दिखाई पड़ना । यही सेवा करो ।

शुश्रूषा बलराम सूरि पदयोः श्री रङ्ग सूक्ति प्रदा, विद्वद् भागवतार्य देशिक कृपा ज्ञान क्रिया पोषिणी । यस्य श्री रघुनाथ योगि करुणा ज्ञान क्रिया वर्द्धिनी वन्दे श्री कमलं परं च नयनं तं सूरिचर्यं गुरुम् ।।

श्री स्वामी जी महाराज परिमित फलाहारी थे । आधा सेर दूध और एक अनार (लगभग 300 ग्राम) का रस ही प्रायः इनका भोजन–प्रसाद था आधा घूट अधिक दूध को भी मना कर देते थे । 4 अगस्त 1947 को महान्त पद पर अभिषिक्त होने के बाद ठाकुर श्री विजयराघव जी महाराज की सेवा में सर्वविधि संलग्न हो गए, कभी–कभी श्री गोदारङ्गमन्नार की सेवा में (विशेष अवसरों पर सदैव) श्रीवृन्दावन धाम पधारते थे । श्रीवृन्दावन धाम में श्रीरङ्गनाथ भगवान के अतिरिक्त अन्य किसी भी संनिधि में नहीं जाते थे ।

श्रीरङ्ग मन्दिर ट्रस्ट के ट्रस्टी भी थे । ट्रस्टी के रूप में इन्होंने अपने दायित्व का निर्वाह मर्यादित ढंग से निष्ठापूर्वक, गम्भीरता के साथ किया ।

ठा० श्री विजयराघव भगवान् के भोग–राग में द्रव्य/धन की शुद्धता का विशेष ध्यान रखते थे ।

मन्त्राभ्यास् तपः परोऽवनितले पूज्योऽनवद्योध्रुवं ।
सन्तुष्टः प्रभुसेवया सहजतो नार्थायचिन्ताकुलः ।।
योगक्षेमकृते हरेरनुभवे याञ्चा न यात्रा कृता ।
कुत्रापि प्रति सन्सुतोपि विनतैर्ये नात्र वै तं भजे ।।

न तो कभी धन प्रवाह न्यून होने पर व्यथित हुए और न ही किसी से याचना किए और न ही धनागम के लिए यात्रा किए।

मन्दिर के तत्कालीन मैनेज़र श्री राघवेन्द्राचार्य (बाबू श्री रामदुलारे सिंह) के प्रति उनका गाढ़ विश्वास था। एक घटना से इस बात को स्पष्ट कर रहा हूँ। श्री विजय राघव मंदिर स्थल की भूमि का फ्रीहोल्ड होना था। सभी कागजात तैयार थे। डी0 एम0 श्री राजवीर सिंह का हस्ताक्षर होना था। इसके पूर्व श्री स्वामी जी का हस्ताक्षर होना था। इस दास ने एवं श्री शास्त्री स्वामी जी ने आपसे हस्ताक्षर हेतु निवेदन किया। समस्त प्रलेख को पढ़कर सुना दिया गया (श्री स्वामी जी को)। किन्तु श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जब बाबू साहब लखनऊ से लौट कर आ जाएगे और हस्ताक्षर करने के लिए कहेंगे तब दस्तखत कर दूँगा। (उस समय श्री राघवेन्द्राचार्य जी लखनऊ में डॉ0 मित्रा से इलाज करा रहे थे।

संत हृदय श्री स्वामी जी महाराज अति शुद्ध–सरल–निर्मल हृदय के सन्त थे। जब श्री रामजन्म भूमि उद्धार हेतु आन्दोलन चल रहा था। श्री मुलायम सिंह के मुख्य मंत्रित्व काल में कारसेवकों पर गोली चलाई गई थी, कर्फ्यू लगा हुआ था। मुझे चिन्ता हुई कि मन्दिर में मिट्टी तेल का अभाव हो गया होगा। मिट्टी तेल का प्रबन्ध मैंने कर लिया था। पहुँचाने की समस्या थी। एक सरकारी डॉक्टर से मैंने निवेदन किया उन्होंने अपने साथ मुझे लिया और हम लोग मन्दिर आ गए। फोर्स के कुछ लोग श्री स्वामी जी के निकट बैठ कर मारे गए मुसलमानों के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे। श्री स्वामी जी ने उनसे पूछा ''क्या मुसलमान सर्वेश्वर की प्रजा नहीं हैं? यह जो कुछ भी हो रहा है अच्छा नहीं हो रहा है।''

6 दिसम्बर 1992 को जब विवदित ढाँचा ढह गया। श्री स्वामी जी श्रीरामजन्मभूमि से श्री कालेराम मन्दिर एवं श्री कालेराम मन्दिर से श्रीरामजन्मभूमि का 3 चक्कर लगाया। उन्होंने मुझे बताया था कि श्री कालेराम भगवान ही श्री जन्मभूमि मन्दिर के असली श्रीविग्रह हैं।

मन्दिर में भगवान जी (अर्चाविग्रह) का अति प्रेमपूर्वक, सादर अभिवादन के साथ दर्शन करते थे। जिस प्रकार मिठाई का लालची मिष्ठान की दुकान पर मिठाई को निहारता है उसी प्रकार श्री स्वामी जी महाराज श्री भगवान जी का दर्शन करते थे। मैंने आज तक किसी को इनकी तरह ललचाई, अदब और सम्मान की दृष्टि से भगवान का दर्शन करते नहीं देखा। जब तक श्री स्वामी जी महाराज के शरीर में शक्ति थी भगवान श्री विजयराघव ठाकुर की प्रात:कालीन सेवा स्वयं करते थे। पुजारी वहीं खड़े होकर दर्शक बनकर देखते रहते थे।

कभी–कभी रसोई में घुसकर रसोई तैयार करने की सेवा में लग जाते थे। रसोईयों के द्वारा सेंकी गई पूड़ी दिखाकर कहते थे यह पूड़ी राजाधिराज को परसी जाएगी ? अपने हाथों से छोटी–छोटी पूड़ियाँ तैयार करके आदर्श प्रस्तुत करते थे। भोग लगने के बाद प्रसाद पाने वाले लोगों से पंघति के समय पूछते थे कहो बाबू कैसन स्वाद है?

शिष्य कल्याण

श्री स्वामी जी के एक शिष्य श्री रामकृष्ण जी हाथ से द्रव्य नहीं स्पर्श करते थे । जम्मू में आकाश के नीचे रहकर तपस्या करते थे । एक ठेकेदार ने श्रीरामकृष्ण जी से कहा– आप 10,000 रु. एकत्र करके हमको दीजिए, हम आपके लिए एक कोठरी बना दें । श्रीरामकृष्ण जी धन इकट्ठा करने लगे । श्री स्वामी जी महाराज श्रीवृन्दावन जाने के लिए अयोध्या रेलवे स्टेशन पर गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे । यह दास उनको ट्रेन पर बैठाने के लिए उपस्थित था । इस बीच एक महात्मा श्री स्वामी जी महाराज को साष्टांग करके कहने लगे – श्री रामकृष्ण जी अब धन एकत्र करने लगे हैं । श्री स्वामी जी ने उससे कहा रामकृष्ण से जा कर कहना कि साधु के लिए धन एकत्र करना अच्छी बात नहीं होती। अन्तिम समय में ध्यान परमात्मा के श्री चरणों की तरफ केन्द्रित नहीं होता । वह सोचता है कि यह धन किसे दें ? शिष्य कल्याण की दो और घटनाऐं उद्धृत कर रहा हूँ ।

यह दास श्री स्वामी जी के श्रीचरणों में नया–नया समाश्रित हुआ था । दास प्राय: श्री स्वामी जी के श्रीचरणों में उपस्थित होता था । एक दिन श्री स्वामी जी ने पूछा – कहीं और भी जाते हो ? दास ने उत्तर दिया – 'श्री ....' के पास कभी–कभी जाता हूँ । श्री स्वामी जी ने कहा नहीं जाना चाहिए अभी ज्ञान कच्चा है भ्रमित हो सकते हो । दास ने जाना बन्द कर दिया । दास को थोड़ा–थोड़ा उपदेश करते थे, उपदेश के समय दास की पत्नी को भी हटा देते थे, कहते थे तुम जाओ मंदिर और गौशाला का दर्शन कर आओ । कभी–कभी किसी विशेष विषय पर उपदेश करने के बाद कहते थे – ऐसे ही थोड़ा–थोड़ा करके सब आजएगा । आगे शास्त्री जी से पढ़ लो ।'

विशेष कृपा :– श्री राजेन्द्र बाबू की कन्या का विवाह कराने श्री शास्त्री जी स्वामी को आदेशित किए थे (श्री स्वामी जी महाराज) । दास श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। महाराज जी ने आदेश किया 'तुम भी शास्त्री जी के साथ जाओ और देखो कि विवाह कैसे कराया जाता है ।' मैने निवेदन किया कि मेरे एक घनिष्ठ मित्र सपरिवार फर्रुखाबाद से आए हुए हैं । हम वस्त्र और पात्र इत्यादि लेकर भी नहीं लाए है । श्री स्वामी जी ने पुजारी श्री विजयराघव मिश्र को आदेशित किया–इन्हें वस्त्र और पात्र दो ।' और इस दास को आदेशित किया कि अब जाओ । इस प्रकार आचार्यापराध से इस दास की रक्षा किया और आचार्य पारतन्त्र्य का ज्ञान कराया । जीवन में अनेकों बार श्री स्वामी जी ने इस दास को स्खलित होने से बचाया है तथा कार्यकारी ज्ञान का उपदेश किया है ।

श्री स्वामी जी के जीवन की कुछ विलक्षण घटनाएँ –

(1) घटना सन् 1991 के आसपास की है। श्री शास्त्री स्वामी जी कहीं बाहर गए थे। मन्दिर में श्री राघवेन्द्राचार्य जी थे। वे श्री स्वामी जी महाराज की नाड़ी देखकर मुझसे बोले – आप भी श्री स्वामी जी की नाडी देखें। नाड़ी बन्द थी। हम लोग घबरा गये। उस समय एक सुयोग्य वैद्य श्री पी० एन० पाण्डेय जी स्वामी जी के स्वास्थ्य की देखभाल करते रहते थे। मैं श्री पी० एन० पाण्डेय जी को लेकर श्री स्वामी जी महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ। वैद्य जी ने श्री स्वामी जी महाराज की नाड़ी का परीक्षण किया नाड़ी बन्द थी। वैद्य जी की मुद्रा गम्भीर हो गई। श्री स्वामी जी महाराज ने वैद्य जी से पूछा – "आपने हमारे शरीर में क्या देखा" वैद्य जी पहले निरुत्तर रहे। थोड़ी देर बाद बोले "महाराज जी आपका शरीर भौतिक नियमों का पालन न करे तो हम क्या कर सकते हैं ?" इसके पश्चात श्री राघवेन्द्राचार्य जी को और मुझे आंगन में ले लाकर धीरे से बोले 'सवेरे आठ बजे तक देखिए। आश्चर्य है श्री स्वामी जी इसके पश्चात् आठ वर्ष तक रहे।

(2) एक बार श्री स्वामी जी महाराज गिर पड़े और पसली की हड्डी टूट गई। बड़ा क्रेक हो गया। महाराज जी को सांस लेने में भी बहुत दिक्कत होने लगी, उछल जाते थे। जिला चिकित्सालय के वरिष्ठ हड्डी विशेषज्ञ डॉ० अरविन्द कुमार को 800 रुपये फीस पर तय करके लाए। डॉ० अरविन्द कुमार के साथ दो और डाक्टर भी आए। डॉ० ओ. डी. सिंह रेडियोलाजिस्ट एवं डॉ. एस. के. सिंह फिजियोथेरिपिस्ट। डॉ. अरविन्द कुमार सिंह ने एक प्रकार की पट्टी बाँधी और कहा बुर्जुग की हड्डी है तीन–चार माह लगेंगे जुड़ने में, क्रेक बड़ा है। बाबू साहब (श्रीराघवेन्द्राचार्य जी के बहुत आग्रह करने पर भी डॉ० अरविन्द कुमार जी ने फीस नहीं लिया। कहे इनके दर्शन से जो लाभ हो रहा है उससे मैं वंचित हो जाऊँगा। डॉ० के जाने के बाद श्री स्वामी जी ने पट्टी नोंच कर फेंक दिया और दूसरे दिन बिलकुल ठीक हो गए।

(3) मन्दिर में जलसेवा कुंए से होती है। कुल तीन कुंए हैं।

(1) श्री विजयराघव भगवान की पाकशाला में (2) गोशाला में

(3) सभी महात्माओं के लिए नीचे संत निवास में

आगन्तुक/तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए बाबू राजेन्द्रप्रताप सिंह ने समरसेबुल पम्प लगाने की योजना बनाई और कार्य प्रारम्भ करा दिया। लगभग 1 सप्ताह में 4 इंच भी खुदाई नहीं हो सकी। सभी बिट्स टूट जाते थे। तब सब लोग, शास्त्री स्वामी जी और राजेन्द्र बाबू के पिता श्री राघवेन्द्राचार्य को आगे करके श्री स्वामी जी महाराज के पास हाथ जोड़कर प्रार्थना हेतु उपस्थित हुए।

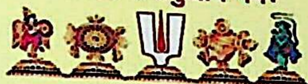
श्री स्वामी जी ने पूछा – क्या बात है? आप लोग काहे को आए हैं ?''

दबी जवान से श्री राघवेन्द्रचार्य जी ने निवेदन किया कि यात्री लोग लोटा डोरी लेकर नहीं आते हैं। उन्हें जल लेने में परेशानी होती है। राजेन्द्र बौंरिग करवा कर एक समरसेबुल पम्प लगवाना चाहते हैं, जिससे यात्रियों को सुविधा रहे। आपसे आज्ञा लेने आये हैं।'' श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया–अयोध्या में बहुत से नल लगे हैं कोई चाहे जहाँ पानी ले ले। इसमें कौन सी बात है? सब लोग अवाक रह गए। थोड़ी देर चुप्पी के बाद किसी ने कहा– स्वामी जी गौशाला के लोग कुंए से जल निकालने में आलस्य करते हैं। गाय प्यासी रह जाती हैं। स्वामी जी बोले गाय प्यासी रह जाती हैं? थोड़ी देर गम्भीर रहने के बाद श्री स्वामी जी ने आज्ञा दे दिया। कहे कि कल से काम शुरु कर दीजिए। श्री स्वामी जी ने उस भूमि को स्पर्श कर दिया जहाँ बोरिंग होनी थी। निर्वाध रूप से कार्य से कार्य सम्पन्न हो गया। इस बहाने से मन्दिर में विद्युत प्रवेश हो गया। ठाकुर विजयराघव की गायें अब विद्युत व्यवस्था का लाभ पाती हैं।

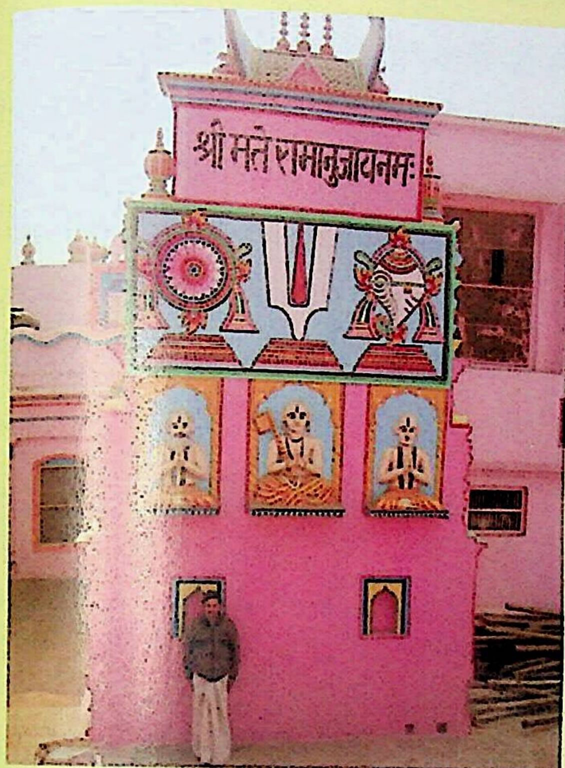
(4.) प्रकृत दास के ऊपर श्री स्वामी जी की बड़ी कृपा थी। दास की तृतीय कन्या का विवाह था। शुद्ध देशी घी मन्दिर से श्री स्वामी जी की कृपा से ले गए थे। बारात बड़ी थी। घी से सम्बन्धित समस्त कार्य मात्र एक टीन से सम्पन्न हो गया। लगभग 1.1/ 2किलो घी बच गया। दो टीन जो बन्द थे (अप्रयुक्त) थे मैंने वापस कर दिया। इस बात का उल्लेख मैंने श्री स्वामी जी महाराज से किया तब उन्होंने पूछा कि किसी से कह तो नहीं दिए ? मैंने उत्तर दिया– महाराज जी पेट में नहीं पचा बहुतों से कह दिया। श्री स्वामी जी बोले नहीं कहना चाहिए था। उसी कन्या के गौने में 2 टिन से भी अधिक घी लगा। श्री स्वामी जी महाराज की कृपादृष्टि जिन लोगों पर हो गई उनके इहलोक और परलोक दोनों सुधर गए। ऊपर कुछ घटनाओं का उल्लेख हुआ है जिनको इस दास ने स्वयं देखा है। अन्य लोगों द्वारा अनुभूत बहुत सी घटनाएं हैं जिनमें से केवल एक का उल्लेख कर रहा हूँ।

श्री पुरुषोत्तम जी नेपाल के रहने वाले हैं, श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य हैं। श्री स्वामी जी महाराज की सेवा में नियुक्त थे। एक बार धान रोपाई का समय बीतता जा रहा था। पुरुषोत्तम जी ने श्री स्वामी जी से घर जाने की आज्ञा मांगी। बोले महाराज जी मैं गृहस्थ हूँ धान की रोपाई नहीं हो पाएगी तो बच्चों को अन्न संकट झेलना पड़ेगा। श्री स्वामी जी ने जाने की आज्ञा नहीं दिया बोले भगवान श्री विजयराघव सब ठीक करेंगे, निश्चिन्त रहो। फसल कटने के समय जब पुरुषोत्तम जी घर पहुँचे तो देखकर आश्चर्य चकित रह गए कि उनकी फसल गांव में सबसे अच्छी थी। गांव वालों ने बिना कहे ही उनके खेत में रोपाई का काम कर दिया था। यह घटना इस दास ने श्री पुरुषोत्तम जी के श्रीमुख से सुना है।

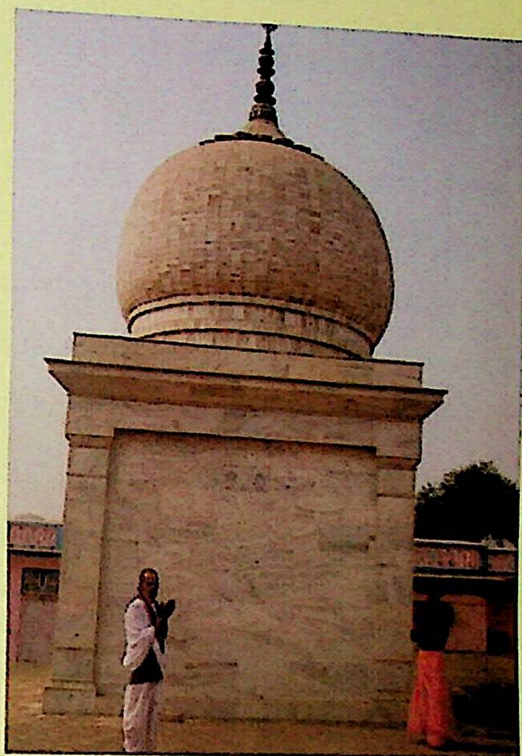
श्रीमते रामानुजाय नमः



श्री विजयराघव मन्दिर के गोपुर का दृश्य (दक्षिणी छोर)



श्री विजयराघव मन्दिर के गोपुर का दृश्य (उत्तरी छोर)



श्री विजयराघव मन्दिर का शिखर

संस्थापक स्वामी जी महाराज के शिखर का दृश्य

बिना प्रयास के जिन्न को नियन्त्रित करना –

जनपद गोण्डा निवासी श्री स्वामी जी के एक शिष्य के पुत्र पर जिन्न का आवेश आ गया। वह लड़का बहुत उद्दण्ड व शक्तिशाली जैसा व्यवहार करने लगा। मन्दिर के कुंए पर अपने पिता सहित कई लोगों को एक साथ मल्लयुद्ध करके गिरा दिया। मन्दिर के जगमोहन में उसके कल्याणार्थ पाठ चल रहा था। उसे मजबूत रस्सी से जगमोहन के बाहर, जगमोहन की खिड़की के शलाखों से बांध दिया गया था। श्री स्वामी जी महाराज उधर से जा रहे थे। वह बालक श्री स्वामी जी से गिड़गिड़ाते हुए बोला– यह लोग हमको बाँध दिये हैं हमको छुड़ा दीजिए। लोगों ने कहा रस्सी खोलने पर यह बहुत उत्पात करेगा, किन्तु उदार श्री स्वामी जी ने उसकी रस्सी खुलवा दिया और अपनी साफी (अंगोछे) से हलका सा बंधवा दिया। बालक जिन्न के आवेश से मुक्त हो गया।

श्री रामानुज स्वामी जी महाराज के मात्र दर्शन से राजा की पुत्री को ब्रह्म राक्षस छोड़कर भाग गया था। यह घटना यहाँ पर याद आ रही है। (इस घटना को प्रपन्नातृम में देखें)

श्री हरिकृष्ण तिवारी एडवोकेट पर कृपा–

श्री हरिकृष्ण तिवारी जी फैजाबाद जनपद न्यायालय में वकील हैं। इनके घर पर दुष्ट शक्तियों ने आक्रमण कर दिया। गोधूली होते ही घर की सभी स्त्रियाँ निर्वस्त्र होकर नांचने लगती थीं। घरवाले बहुत परेशान थे। जो भी उपाय किए गए निष्प्रभावी साबित हुए। किसी की सलाह पर वकील साहब श्री स्वामी जी महाराज के श्रीचरणों में प्रणाम किए। श्री स्वामी जी महाराज ने इनके दूषित खान–पान और दिनचर्या के कारण इन्हें भगा दिया। 'संत ह्रदय नवनीत समाना', निज परिताप द्रवहिं नवनीता, परहित द्रवहि सो संत पुनीता ।।

तिवारी जी दुबारा स्वामी जी महाराज के पास गए। श्री स्वामी जी महाराज ने खान–पान और दिनचर्या सही करने का उपदेश दिया और कहा नित्य दीपक जलाकर श्री विष्णुसहस्त्र नाम का पाठ सुनाओ सब ठीक हो जाएगा। संत मुख से निकली वाणी से हरिकृष्ण जी के घर का संकट कट गया। हरिकृष्ण जी ने श्री स्वामी जी के श्री चरणों की शरणागति की। अब श्री हरिकृष्ण जी के घर का खान–पान सुधर गया।

श्री स्वामी जी महाराज तपस्वी, दृढ़ता से श्री वैष्णव धर्म का आचरण करने वाले सन्त थे। जीवन भर फलाहार (प्राय: आधा सेर दूध और 250 ग्राम अनार का जूस) पर रहे। शास्त्र इनके जीवन में ढला हुआ था।

आहार की शुद्धता तथा द्रव्य की शुद्धता पर बहुत बल देते थे । 'आहार शुद्धौ, सत्वशुद्धि:, सत्वशुद्धौ ध्रुवा : स्मृति : । प्राय : कहते थे ।

एक–एक महत्वपूर्ण सारगर्भित सूत्रों/शास्त्र वाक्यों को कई दिनों तक अनुसंधान करते थे । दम्भ और आडम्बर छू तक नहीं गया था कभी –कभी गोपनीय रहस्य को भी कृपा भाव से उद्‌घाटित कर देते थे । इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख कर रहा हूँ । अति दु :खी एक सज्जन श्री स्वामी जी महाराज के सामने साष्टांग करके बैठ गए । वार्ता के दौरान श्री स्वामी जी महाराज ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति लहसुन, प्याज का त्याग कर दे, श्री विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करता रहे तथा एकादशी व्रत करता रहे तो शरणागत नहीं भी हो तो भी दो तीन जन्मों में उसका उद्धार हो जाएगा । उस समय श्री काशी वाले श्री रङ्गाचारी स्वामी जी उपस्थित थे । श्री रंगाचारी स्वामी जी श्री स्वामी जी पर नाराजगी व्यक्त करते हुए बोले 'आप इतने रहस्यमय गोपनीय उपदेशों को सबको कह देते हैं ? यदि कोई आपकी बात नहीं मानता तो आपका अपमान नहीं होता है?' श्री स्वामी जी महाराज बोले – ''जगत के ताप से तपता हुआ जीव हमारे पास आता है । हम साधु है न, रुपया–पैसा तो दे नहीं सकते, उसके ताप को कम करने के लिए दो शब्द कह देते हैं । मानेगा तो उसका कल्याण हो जाएगा, नहीं मानेगा तो न माने।'' श्री स्वामी जी महाराज दिव्य कल्याणकारी भावों की मूर्ति थे ।

श्री स्वामी जी महाराज का अन्नदान –

श्री महाराज जी स्वयं अन्न नहीं लेते थे । किन्तु मन्दिर से कोई भूखा नहीं जा सकता था । गोष्ठी, राजभोग और रात्रिकालीन भोग लगने के बाद चार पारस उनके पास जाता था । किसी भी समय कोई आगन्तुक आ जाए उसको कालानुसार प्रसाद पवाते थे । एक बार राजभोग लगने के बाद मन्दिर बन्द हो गया । 18–20 आदमी (यात्री) आ गए । वे सब भूखे थे । पुजारी विजयराघव मिश्र ने श्री स्वामी जी महाराज से निवेदन किया – स्वामी जी 18–20 यात्री दूर से आए हैं । ट्रेन में कुछ खाया नहीं है और पारस मांग रहे हैं । श्री स्वामी जी ने पूछा – कुछ है ? पुजारी जी ने उत्तर दिया भितरियां लोगों के लिए भी कुछ नही है । आपके पास सुरखित चार पारस है । श्री स्वामी जी ने कहा – तब काहे की चिंता करते हो ? और जहाँ चार पारस रखा जाता है उस कोठरी को बंद कर लिए । लगभग 20–25 मिनट बाद खोले और बोले – ले जाओ और सबको तृप्त कर दो । भितरिहों सहित सब तृप्त हो गए । आज भी श्री विजयराघव मन्दिर में 4 पारस सुरक्षित रखने की प्रथा है ।

श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य गुण अपार थे । आज भी श्री विजयराघव मन्दिर में उन्हीं का (तथा उनके आचार्य श्री बलरामसूरि का) शासन चलता है ।

श्री स्वामी जी महाराज की सहनशीलता–

श्री महाराज जी ने अपने शारीरिक कष्ट को कभी भी किसी से व्यक्त नहीं किया। शारीरिक कष्ट सभी भौतिक शरीरों में होता ही है, परन्तु जब भी कोई पूछता था स्वामी जी आपको अमुख कष्ट है ? स्वामी जी बोलते थे कौन कहता है जी ? यह किसे नहीं होता ?

एक विशेष घटना का उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ। एक बार श्री महाराज जी गिर पड़े। उनके मस्तक पर गम्भीर चोट आई। लगभग 2/1/2 इंच व्यास का गुम्बा (गुथी) निकल आया। यह दास जब मन्दिर पहुँचा तब शास्त्री स्वामी जी से नीचे ही भेंट हो गई। उनको मैंने साष्टांग प्रणाम किया तो वह बोले के आज महाराज जी को बहुत चोट लग गई है। ऊपर आकर महाराज जी को साष्टांग प्रणाम किया और उनसे पूछे – ''स्वामी जी आपको चोट लग गई ?'' श्री स्वामी जी ने कहा– ''किस बुरबक (मूर्ख) ने कह दिया जी ? मैंने बताया कि शास्त्री स्वामी जी ने बताया है। मैंने देखा कि उनके मस्तक पर बहुत बड़ा (लगभग 2–1/2'' व्यास की) सूजन आया है और दूर से ही उसमें से अग्नि (प्रदाह) निकल रहा है। तेजी से मैंने वैद्य पी.एन. पाण्डेय के पास जाकर समाचार बताया। वैद्य जी ने कहा – तुलसी उद्यान के सामने गुप्ता मेडिकल स्टोर से दशाङ्ग लेप ले लीजिए। उसे पानी अथवा तेल में फतका कर लगाइए। श्री स्वामी जी के स्वास्थ्य की प्रतिकूलता का आभास इस बात से होता था कि उन्होंने फलाहार के साथ जल का भी त्याग कर दिया है।

प्रकृत दास से श्री स्वामी जी की अन्तिम वार्ता –

अन्तिम दिनों में श्री स्वामी जी ने बात करना बन्द कर दिया था। किन्तु इस दास पर अतिकृपा किया। 27 एवं 28 अक्टूबर 1999 को यह दास श्री स्वामी जी महाराज की चरण सेवा में उपस्थित नहीं हो सका था। 29 अगस्त को एकान्त में पाकर श्री महाराज जी ने दास से पूछा कल–परसों क्यों नहीं आए थे ? मैंने उत्तर दिया– महाराज जी दास को तेज बुखार आ गया था इसलिए नहीं आ सके। स्वामी जी ने कृपा किया – ''फिर भी आप को आना चाहिए था''यह बात आज भी मुझे शालती (कष्ट देती) है कि अपने आचार्य की सेवा में मुझ से चूक हुई। ''फिर भी तुम्हें आना चाहिए था'' इसका अर्थ एवं भाव अब भी मेरे मस्तिष्क को व्यथित करता है। श्री शास्त्री स्वामी जी से मैंने इस बात का उल्लेख किया। काफी दिनों के बाद मुझे लगा कि कहीं श्री स्वामी जी का आशय निरभिमान एवं अविछिन्न सेवा–स्वरूप की ओर था ? इसकी चर्चा मैंने श्री शास्त्री स्वामी जी से किया। शरणागति गद्य के वाक्य न. 2 में एवं श्री आलवान्दार स्तोत्र (भवन्तमेवानुचर निरन्तरम्...) में भी इस बात की प्रार्थना है।

आज मैं बिलबिलाकर रोता हूँ पश्चाताप करता हूँ सर धुन–धुन कर क्रन्दन करता हूँ कि सेवामूर्ति की सेवा का अवसर पाकर भी सेवा नहीं किया (अवसर चूके मन पछितैहैं) श्री स्वामी जी महाराज स्वरूप मन वाणी से प्रतिपल दास के साथ हैं अपने को उनसे विलग नहीं अनुभव करता हूँ।

सर्वस्व लुट जाने के बाद भी अपने को उनकी कृपा से आप्लावित पाता हूँ। क्या लिखूँ लिख नहीं पाता हूँ। गहरे पाश्चाताप बिन्दुओं के बाद भी सर्वत्र उनकी कृपा, उनके उपदेशों एवं आदेशों से अपने को आच्छादित पाता हूँ।

श्री स्वामी जी महाराज से विनती करता हूँ कि अपराध करना दास का स्वभाव है और क्षमा करना श्री स्वामी जी का। इस दास के समस्त अपराधों त्रिविध अपचारों को क्षमा करते हुए इसके अन्दर इतनी शक्ति, इतनी क्षमता एवं योग्यता भर दें कि जाने अनजाने होश–बेहोश सर्वदेश सर्वकाल सर्वव्यवस्था में उनके मनोनुकूल भगवान श्री विजय राघव की आजीवन सेवा कर सकूँ।

श्री स्वामी जी महाराज की जय हो। उनकी कीर्ति पताका यावद् रविचन्द प्रकीर्णित होती रहे। मुझ जैसे नीच एवं अति अयोग्य को उन्होंने ने ठाकुर श्री विजय राघव जी महाराज के उच्च एवं सुप्रतिष्ठित परम्पराओं वाली पीठ का प्रधान सेवक/ दास बनाया कृपावर्षा की और अधूरे सेवा कार्य को सम्पन्न करने का अवसर प्रदान किया – यह भी कृपा की सीमा है। मैं समझ नहीं पाता हूँ कि मेरे किस पुण्योदय का फल श्री स्वामी जी के श्री चरणों की प्राप्ति है।

प्रकृत दास श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ / उपदेशार्थ उनके पावन श्री चरणों में प्रायः उपस्थित हुआ करता था। जब दास को फैजाबाद वापस जाने में विलम्ब होने लगता था तब श्री स्वामी जी कहते थे – अतिकाल हो रहा है अब आप को जाना चाहिए। दरवाजे से बाहर होते ही प्रायः पुनः वापस बुला लेते थे और उपदेश करते थे – ईश्वर स्मरण ही सार है, अब जाओ। कभी–कभी मङ्गलाशासन आरती प्रारम्भ होने के समय कहते थे जाओ आरती का दर्शन करके चले जाओ, अतिकाल हो रहा है। अपने अज्ञान के कारण यह दास कभी–कभी दुःखी होकर रो पड़ता था और स्वामी जी महाराज से प्रार्थना करता था। 'मेरा उद्धार कैसे होगा ? मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। श्री महाराज जी सान्त्वना देते थे, उपदेश करते थे और कहते थे कि चिन्ता मत करो, भगवान जी की कृपा से सब आ जाएगा। ध्रुव को क्या आता था ? श्री हरि सामने खड़े हैं। ध्रुव जी किंकर्त्तव्य विमूढ़ है। श्री हरि ने शंख का स्पर्श ध्रुव के गाल से कर दिया। विद्या प्रस्फुटित हो गई कितनी सुन्दर स्तुति कर डाले। चिन्ता मत करो। इसी प्रकार धीरे–धीरे सब आ जाएगा।

अन्तिम समय

श्री स्वामी जी महाराज आँखे बन्द किए ध्यान मग्न रहते थे। इन दिनों प्रायः पुष्पा (वृन्दावन), पुरुषोत्तम रामानुज दासी (श्री दामोदर स्वामी की पुत्री) एवं गोरखपुर वासी बृद्धा श्रीमती दूबे उपस्थित रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर किसी सेवक को बुला लेती थीं। पुष्पा जी ने शौच आदि के लिए महाराज जी का शरीर वहन करने के लिए फोम की गद्दी लगाकर एक पहियादार कुर्सी का निर्माण कर दिया था।

अन्तिम समय में भी श्री स्वामी जी महाराज की स्मरण शक्ति पूर्ण थी । किन्तु भगवद् चरणारविन्दों एवं भगवद् चिन्तन में ही डुबी हुई थी । विशेष शिष्यों के आने की आहट होने पर पूछते थे–को है ? परिचय बताने पर पूरे परिवार का समाचार पूछकर पुनः भगवद् चिन्तन में डूब जाते थे । आधे–पौने घण्टे बाद पुनः पूछते थे को है? और सम्पूर्ण समाचार आँखे मूदे–मूदे पूछ कर भगवद् अनुभव में निमग्न हो जाते थे । इस समय श्री स्वामी जी–जल का भी त्याग कर दिए थे । मैं पुजारी जी से गिड़गिड़ाता था । पुजारी जी एक चम्मच जल महाराज जी के मुख में डाल दीजिए किन्तु श्री स्वामी जी दृढ़ता पूर्वक मुख बन्द कर लेते थे । जब भगवान जी अथवा आचार्य का तीर्थ डाला जाता था तब मुख खोल देते थे ।

श्री स्वामी जी महाराज ने शरीर त्यागने के चार दिन पूर्व अन्तिम उपदेश मन्दिर के शिष्यों को बुलाकर कर दिया । अपनी इच्छा, चिन्ता व्यक्त करते हुए कहे – '' ठा0 श्री विजय राघव भगवान के भोग–राग एवं सेवा में कोई कमी न आने पावे ।'' 30 अक्टूबर सन् 1999 को श्री स्वामी जी महाराज ने सायं 7 बजे स्वेच्छा से श्री शास्त्री जी स्वामी के गोद में सिर रखकर अपना शरीर त्याग दिया । श्री स्वामी जी महाराज काल के शिकार नहीं हुए । जन्मपत्रिका के हिसाब से लगभग 25 वर्षो तक काल का अतिक्रमण करके अपने शिष्यों का कल्याण करते रहे ।

30–10–1999 को लगभग 6.45 सायं श्री गोवर्द्धन पीठाधीश्वर स्वामी जी ने अस्मद् स्वामी जी का समाचार तोताद्रिमठ के टेलीफोन से लिया । 7.00 बजे सायं पुनः उनका टेलीफोन आया कि श्री विजयराघव मन्दिर से किसी जिम्मेदार व्यक्ति को बुलाओ । श्री वृन्दावन स्वामी जी ने पुनः श्री स्वामी जी का समाचार पूछा । उन्हें बिना बताए ही मेरे स्वामी जी के परमपद का समाचार ज्ञात हो चुका था । श्री वृन्दावन स्वामी जी ने अनुभव किया कि श्री स्वामी जी श्री रङ्गदेशिक स्वामी जी के अपरावतार थे ।

स्थान सूना हो गया । अपनी मानसिकता और हार्दिक वेदना को शब्द देने में असमर्थ हूँ । लोग आते है चले जाते हैं कोई याद नहीं करता किन्तु श्री महाराज जी को अब भी कोई भूला नहीं है । उनकी तपस्या का तेज उनके देह त्याग के बाद भी दिखाई पड़ रहा था । उनके शव को रात्रि में छिपाने की आवश्यकता पड़ी क्योंकि वस्त्र से ढकने के बाद भी चेहरे का तेज मन्द नहीं पड़ा रहा था ।

दूसरे दिन (31–10–1999 को) अन्तिम संस्कार के समय स्नान कराते समय दास ने यह अनुभव किया के उनके प्रत्येक अंग की मुलायमियत अप्रभावित है । सभी अंगों में वहीं लोच और मुलायमियत है जो प्राण वायु के रहने पर थी ।

श्री शास्त्री स्वामी जी विह्वल होकर रो पड़ते थे ''स्वामी जी ने अपने को छिपाए रखा अपनी दिव्यता और स्वरूप का आभास भी नहीं होने दिया ।''

– श्रीधर रामानुजदास
अध्यक्ष श्री बलराम धर्मसेतु ट्रस्ट एवं सरवराहकार
मन्दिर ठा0 श्री विजयराघव जी महाराज, कनक मण्डप
उत्तर द्वार, मातगैड़, श्री विभीषण कुण्ड, श्री अयोध्याधाम पिन–224123

।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वै0 वासी श्री राघवाचार्य शास्त्री स्वामी जी का संक्षिप्त परिचय


श्री श्री 108 स्वामी राघवाचार्य जी महाराज
श्री विजय राघव मन्दिर अयोध्या

यद्यपि श्री राघवाचार्य शास्त्री स्वामी के अवतरण का वर्ष, माह एवं तिथि उनके परिवार वंश के लोगों से नहीं पता लग सका किन्तु अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों एवं कतिपय वार्ता से मुझे ज्ञात है कि इनका जन्म सन् 1923 में हुआ था। इनका जन्म ग्राम भीटानानकार तहसील डुमरियागंज तत्कालीन जनपद बस्ती (वर्तमान जनपद सिद्धार्थनगर) उत्तरप्रदेश में हुआ था। इनके पिता जी श्री सत्यदेव शुक्ल जी एक आस्तिक न्यायप्रिय सम्भ्रान्त जमींदार थे। क्षेत्र के सम्मानित व्यक्ति थे और पाण्डेय जी के नाम से विख्यात थे। श्री शास्त्री स्वामी का बचपन का नाम श्री राघव प्रसाद शुक्ल था। बचपन से ही इनका श्री हरि के प्रति सहज झुकाव था। अतः लोग इन्हें 'साधु' नाम से पुकारते थे। बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे अतः अध्यापक गण के स्नेह भाजन थे। इनकी शिक्षा कई स्थानों पर हुई। मुहल्ला घासी कटरा शहर गोरखपुर में इनका एक पारिवारिक विजय राघव मन्दिर है। इसी मन्दिर में अपने भाइयों श्री ठाकुर प्रसाद शुक्ल एवं श्री यमुना प्रसाद शुक्ल के साथ रहकर प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण किए। गोरखपुर में रहकर इन्होंने उत्तर मध्यमा तक की शिक्षा ग्रहण किया। तत्पश्चात शास्त्री की शिक्षा के लिए यह अपने काका ख्याति लब्ध व्याकराणाचार्य नैयायिक एवं वेदान्त शास्त्र के पारदर्शी विश्वस्तरीय विद्वान स्वनाम धन्य श्री रामबदन शुक्ल के साथ जनकपुर चले गए। उच्चतर शिक्षा व्याकरण आचार्य के अध्ययन हेतु बनारस में निवास किए। बनारस में पूज्यपाद स्वामी श्री नीलमेघाचार्य से वेदान्त का अध्ययन किए।

मूर्धन्य विद्वान श्री देवनायकाचारी स्वामी जी से व्याकरण का अध्ययन किए। आचार्य की शिक्षा पूर्ण होने पर अपने गांव भीटा नानकर आ गए और दो वर्षों तक घर पर ही रहे। सन् 1947 में पुनः गोरखपुर में आ गए। गीताप्रेस में काम करने के लिए श्री जयदयाल गोयनका से मिले उन्होंने हिन्दी और संस्कृत में आवेदन पत्र लिखकर देने को कहा। तुरन्त ही शास्त्री जी ने दोनों भाषाओं में आवेदन–पत्र लिखकर दे दिया। इनके आवेदन पत्र को पढ़कर गोयनका जी ने तत्काल इनको नियुक्ति पत्र दे दिया। अब शास्त्री स्वामी जी गीता प्रेस गोरखपुर में प्रूफ रीडिंग का कार्य करने लगे। गीता प्रेस में स्वामी करपात्री के लेख प्रकाशनार्थ आया करते थे। भाषा अति क्लिष्ट होने के कारण

करपात्री स्वामी के लेखों की प्रूफ रीडिंग का कार्य इन्हीं को दिया जाता था। 1947 से 1957 तक गीता प्रेस में कार्य किए तत्पश्चात गीता प्रेस की नौकरी छोड़कर श्री शास्त्री स्वामी जी ने कांगेसी नेता श्री रामबदन शुक्ल के सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय मुक्तीश्वर नाथ हांसूपुर गोरखपुर में अध्यापन कार्य करने लगे।

सन् 1945 में प्रातः स्मरणीय उभय वेदान्त एवं रहस्य शास्त्र के पारदर्शी विद्वान स्वामी श्री कमलनयनाचार्य जिनके आचरण में शास्त्र घुल गया था, स्वामी जी के श्री चरणों में समाश्रित हुए। सन् 1972 में जगत व्यापार का त्याग कर ठाकुर श्री विजयराघव मन्दिर में अन्तिम सांस तक सेवा और सेवा के बदले सेवा....... करते रहे श्री वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित ग्रन्थों के अध्ययन हेतु श्रीधाम वृन्दावन पधारे। वहाँ पर उन्होंने लगभग एक वर्ष तक महा तपस्वी विलक्षण विद्वान काशी वाले श्री रंगाचार्य स्वामी एवं तिरुनाङ्गूर अङ्गगणाचार्य स्वामी से अध्ययन किये। श्री शास्त्री स्वामी जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रखर हाजिर जवाब श्री वैष्णव महात्मा थे। उनको शास्त्रों की अनुभूति थी। बालपन से ही संगीत में विशेष रूचि थी। बिना पढ़े ही इनको संगीत का ज्ञान हो गया था। कहा करते थे – रागी, बागी, रतन पारखी, नाड़ी औ न्याव, इन पाँचों के गुरु नहीं उपजे जन्म स्वभाव।

संगीत गायन हारमोनियम, ढोलक इत्यादि के वादन की प्रवीणता बिना सीखे ही आ गई थी। गोरखपुर घासी कटरा में इनके मन्दिर आवास के सामने एक मुसलमान ICS अधिकारी का मकान था। इस अधिकारी के घर की महिलायें बालक शास्त्री स्वामी जी को घर में बुलाकर बड़े प्रेम एवं स्नेह से इनके संगीत का आनन्द लेतीं थीं। ICS अधिकारी ने बाल्यावस्था में ही शास्त्री स्वामी जी को फिल्म जगत में 1800/– प्रतिमाह (सन् 1935–36 के आसपास)का कार्य दिलाने के लिए कहा था।

गीता प्रेस में कीर्तन, भजन हुआ करता था। भजन के पश्चात बताशा–लड्डू इत्यादि प्रसाद रूप में बंटता था। श्री स्वामी जी बड़े प्रेम से नित्य कीर्तन–भजन करने जाया करते थे। श्री शास्त्री स्वामी जी ने इस दास को बताया गया था कि सन् 1935 में कलि संतारक मंत्र के प्रवर्तक श्री ए. सी. भक्ति वेदान्त स्वामी गीता प्रेस में आए थे और हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।। इस मन्त्र का संकीर्तन करते करते बेहोश होकर गिर पड़े थे।

जन्म से ही भगवान के प्रति आकर्षण था जो समय के साथ–साथ प्रगाढ़ भक्ति में परिवर्तित हो गया। श्री राघवाचार्य शास्त्री जी को शिक्षा उनके काका श्री रामबदन शुक्ल की संरक्षता में हुई। श्रीरामवदन शुक्ल एवं उनकी पत्नी श्रीमती कौशल्या देवी (जिनको श्री राघवाचार्य शास्त्री स्वामी जी माता कहते थे) को शास्त्री जी अपना सर्वस्व मानते थे। माता श्रीमती कौशल्या देवी के अन्तिम समय में श्री शास्त्री जी उनके दारागंज इलाहाबाद स्थित मकान पर उपस्थित रहे। श्री रामबदन शुक्ल उच्चतम कोटि के विद्वान तो थे ही, साथ ही साथ निरन्तर तत्व चिन्तन में निरत रहते थे। श्री

रामवदन जी की अन्तेष्टि के समय इस दास के स्वामी (श्री स्वामी कमलनयनाचार्य जी) जून महीने की भीषण तपन (रेत की तपन) के बावजूद सरयू घाट पर उपस्थित रहे। मेरे स्वामी जी ने दूसरे दिन अपने इस दास को यह रहस्यमय बात बताया के 'मैंने पण्डित जी (श्री रामबदन शुक्ल) की जीव आत्मा को जाते हुए देखा।

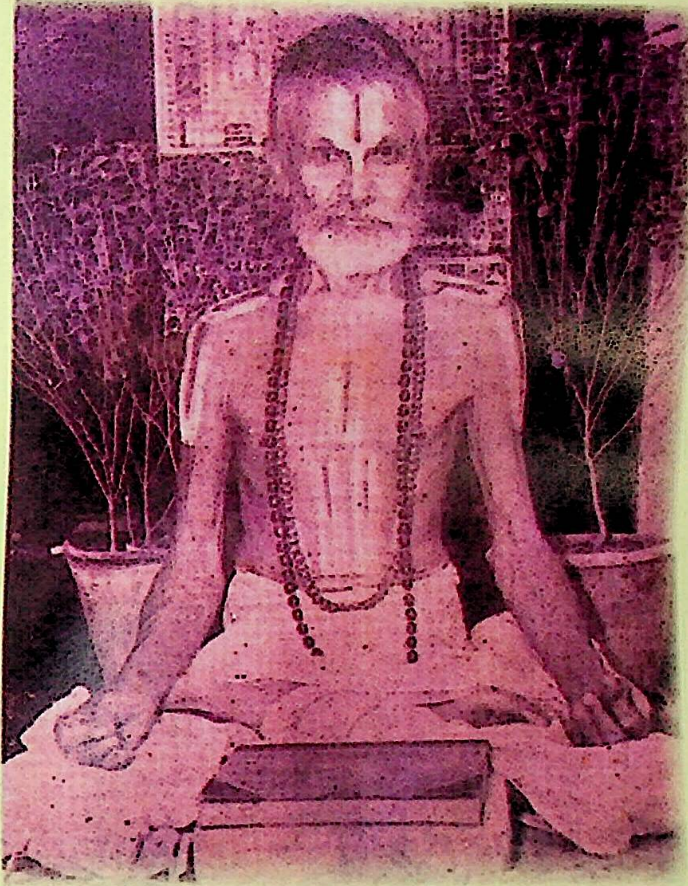
प्रकृत दास श्री कमलनयन स्वामी जी के चरणों में एकाध माह पहले समाश्रित हुआ था। एक दिन अपने स्वामी जी को सस्वर अच्युताष्टक का पाठ सुनाया। स्वामी जी बोले–"यह कौन सा स्तोत्र है? स्तोत्र पाठ करना है तो आलवन्दार स्तोत्र, स्तोत्र रत्न का पाठ किया करो। श्री महाराज जी दुकान भी बता दिये। दास ने खेमराज श्री कृष्णदास प्रेस से छपी हुई आलवन्दार स्तोत्र की पुस्तक खरीद लिया। अगली बार (next time) जब दास श्री स्वामी जी के चरणों में आया तब स्वामी जी को "नमो नमो वाङ्मनसा अति भूमये...... नमो नमो अनन्त दयैक सिन्धवे" श्लोक सुनाया। श्री महाराज जी ने अति प्रसन्न होकर इस श्लोक की व्याख्या पढ़ाया और कहा कि सम्पूर्ण आलवन्दार स्तोत्र शास्त्री जी से पढ़ लीजिए। इस प्रकार दास का श्री राघवाचार्य शास्त्री जी से प्रथम विशेष परिचय हुआ और अपने अन्तिम समय तक उन्होंने इस दास को अपने विशेष कृपा एवं आशीर्वाद से अभिषिञ्चित एवं संरक्षित किया।

श्री शास्त्री स्वामी जी महाराज के चरणों में जो कोई ज्ञानार्जन के लिए पहुँचता था उसको अपने कैङ्कर्य व्यस्तता के बावजूद बड़े स्नेह से पढ़ाते थे। कोसलेस सदन पीठ के महान्त जगद्‌गुरु स्वामी वासुदेवाचार्य विद्याभास्कर जी शास्त्री जी के योग्यतम् शिष्यों में से एक हैं। जगद्‌गुरु विद्याभास्कर जी ने शास्त्री जी के काका पूज्यपाद श्री रामबदन शुक्ल जी से भी विद्या अध्ययन किया है।

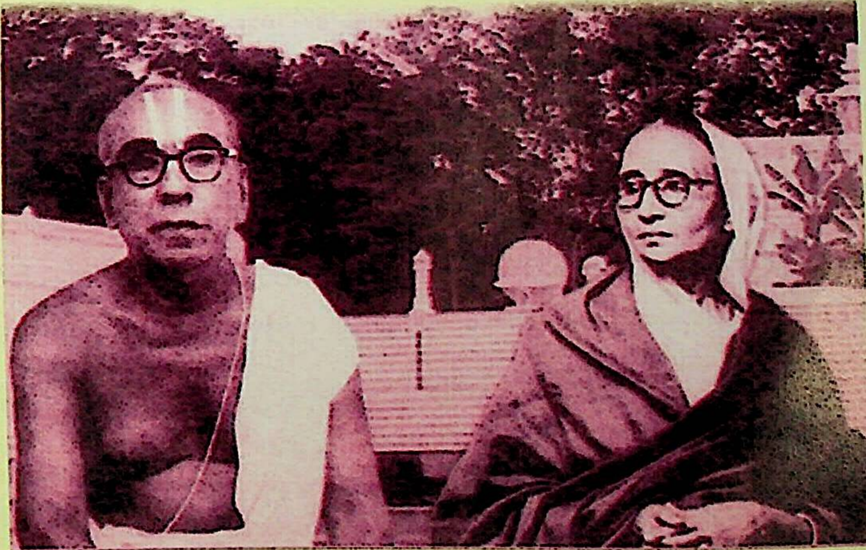
श्री शास्त्री स्वामी जी अगहन (मार्गशीर्ष) शुक्ल एकादशी के दिन (गीता जयन्ती के शुभअवसर) श्रीमद्भगवद् गीता का अखण्ड पाठ करवाते थे। श्रीवाल्मीकीय सुन्दरकाण्ड का नियमित पाछ आजीवन किए थे। कुशल कर्मकाण्डी भी थे। एक बार सन् 1958 के आस–पास नवोदित गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राक्टर (दण्ड नियन्ता) डॉ0 जी एस0 शुक्ला के यहाँ श्री शास्त्री स्वामी जी कोई पूजा करवा रहे थे। अच्छी संख्या में उत्तम विद्वान ब्राह्मणों का संगम था। डॉ0 वीरमणि उपाध्याय संस्कृत विभागाध्यक्ष एवं कला संकाय के डीन तथा कुलपति श्री वी0 एन0 झा जी भी उपस्थित थे। किसी बिन्दु पर विवाद/मतभेद उत्पन्न होने पर व्युत्पन्न बुद्धि श्री राघवाचार्य शास्त्री स्वामी जी का वक्तव्य सुनकर सभी चकित रह गये। बाद में कुलपति महोदय ने श्री शास्त्री स्वामी जी को संस्कृत विभाग में नियुक्ति देने की पेशकश की परन्तु श्री शास्त्री स्वामी जी ने मना कर दिया। यह श्री शास्त्री स्वामी जी के विद्वता स्तर, त्याग एवं विरक्तिभाव का एक नमूना है।

श्रीमते रामानुजाय नमः





श्री रंगाचार्य स्वामी जी (काशी वाले स्वामी जी) योगिराज श्री रघुनाथाचार्य स्वामी के कृपापात्र



सपत्नीक श्री यतीन्द्ररामानुज दास (डॉ० इन्दुभूषण वसु एम.डी.)

श्री शास्त्री स्वामी जी का अन्तिम समय

अक्टूबर सन् 2007 की बात है श्री शास्त्री स्वामी जी को श्वांस लेने में कठिनाई प्रतीत हुई । फैजाबाद शहर के डॉ. अरुण कुमार जायसवाल एम. डी., डी एम. (कार्डि0) के अस्पताल (हार्टकेयर सेण्टर) में इन्हें भर्ती कराया गया । संयोग से डॉ0 अरुण जायसवाल की पत्नी, ससुराल पक्ष से श्री शास्त्री स्वामी जी की शिष्य हैं । डॉ0 नित्य श्री शास्त्री स्वामी जी को साष्टांग प्रणाम निवेदन करके चिकित्सालय का कार्य प्रारम्भ करते थे । एक दिन श्री शास्त्री स्वामी जी ने जिद कर लिया कि मैं न तो दातौन करूँगा और न ही दवा खाऊँगा । मुझे मन्दिर ले चलो, अब चिकित्सालय में नहीं रहूँगा । हम लोगों ने बहुत समझाया परन्तु उन्होंने एक न सुनी । डॉ0 का समझाना भी व्यर्थ रहा । एक स्वर से स्वामी जी ने (बेड पर उकरू बैठकर) कहना शुरू किया – देखता हूँ कौन जीतता है? डॉ0 जीतता है या डॉ0 का गुरु का गुरु जीतता है........... । हम लोगों ने श्री रंगनाथ भगवान वृन्दावन के स्वामी गोवर्द्धन पीठाधीश्वर श्री बालक स्वामी जी को फोन से सूचना दिया और प्रार्थना किया । श्री बालक स्वामी जी ने फोन पर श्री शास्त्री स्वामी जी को कहा '' राघवाचारी मैं आदेश देता हूँ आप औषधि लीजिए, पूज्यपाद अम्मा जी ने भी फोन पर आदेश देते हुए समझाया । दिन में 1 बज रहा था । शास्त्री स्वामी जी ने कहा 'अब क्या करे आचार्य का आदेश हो गया, अम्मा जी का आदेश हो गया । अब तो मानना ही है ।' यह शास्त्री स्वामी जी की आचार्य निष्ठा काएक उदाहरण मात्र है।

श्री शास्त्री स्वामी जी की हालत बिगड़ने लगी । 17–10–2007 को श्री तोताद्रिमठ के स्वामी श्री कमलाकान्ताचार्य जी देखने गए । श्री यादवेन्द्र भैया भी उपस्थित थे । स्वामी जी की स्थिति बिगड़ती देखकर हम तीनों लोगों ने डॉ0 से निवेदन किया । डॉ0 दौड़ता हुआ दो मंजिल ऊपर चढ़कर बेड पर पहुँचा और आवाज देकर वार्ड ब्वाय को बुलाया। एक स्ट्रैचर को डॉ0 एक तरफ स्वयं पकड़कर स्वामी जी को बाहर किया । मुझसे डॉ0 बोले कि गाड़ी में श्री विष्णु सहस्रनाम का पाठ सुनाते हुए ले जाइए । ऑक्सीजन सिलेण्डर लगाकर गाड़ी में बिठाया गया । शाम को सूर्यास्त होने को था । मन्दिर में शास्त्री जी की सन्निधि में विभिन्न पाठ प्रारम्भ हो गए । श्री नारायण गौतम जो कि इस समय नेपाली मन्दिर सप्तसागर में रहते हैं तथा शास्त्री जी के भतीजे श्री रंगराज शुक्ल एवं कुछ अन्य लोगों ने पाठ सुनाना प्रारम्भ किया । श्री रंगराज जी ने यह जानने के लिए कि स्वामी जी होश में आँखे बन्द रखे हैं या बेहोश हैं कभी–कभी जानबूझ कर पाठ गलत कर देते थे । श्री शास्त्री स्वामी जी तुरन्त डांट देते थे और पाठ शुद्ध कर देते थे ।

चिकित्सालय में उनका मन श्री वृन्दावन के पीठाधीश्वर श्री बालक स्वामी जी के श्रीचरणों में लगा रहता था मुझसे दीवाल की ओर संकेत करते हुए कहते थे देखो वृन्दावन से श्री स्वामी जी की

चिट्ठी आई है। पढ़ो देखो क्या लिखा है। मैं दीवाल को क्या पढ़ता ? तब मुझे डांटते थे। पढ़ो क्यों नहीं पढ़ते। कभी–कभी काफी देर तक चिल्लाते रहते थे। रामानुज दरवाजा खोलो, दरवाजा खोलो नहीं तो दरवाजा तोड़ दूँगा।''

20 अक्टूबर 2007 को प्रात: जागे। रात भर पाठ सुनाया गया था। दातौन कराया गया। बोले कि भूख लगी है। दूध पिलाओ। खूब दूध पीये। यदि रोका न जाता तो अभी और पीते। प्रसन्न चित्त हो गए। वृन्दावन से श्री बालक स्वामी जी का फोन आया। श्री बालक स्वामी जी ने आदेश दिया मोबाइल राघवाचारी के कान में लगाओ। शास्त्री स्वामी जी ने आचार्य को दासत्व सहित साष्टांग निवेदन किया और 5 मिनट से भी कम में शरीर त्याग कर परम पद पधार गए। इस समय सुबह का लगभग 10 बज रहा था। आज नवमी तिथि थी। बीमार पड़ने के बाद रोज पूछा करते थे ''नौमिया कहिया होय ?''दास को पहले से ही इस (स्वार्थवश) दुखद घटना का आभास नौमी तिथि पर हो गया था।

आज ही उनकी अन्त्येष्ठि सम्पन्न हो गयी। इस दास के समेत पांच लोगों ने मुखाग्नि दी। सम्पूर्ण कर्मकाण्ड श्री शास्त्री जी के भतीजे श्री रंगराज जी ने सम्पन्न किया। फरवरी 2008 में श्री गोवर्द्धन पीठाधीश्वर श्री गोवर्द्धन रंगाचार्य स्वामी जी की अध्यक्षता में बैकुण्ठोत्सव सम्पन्न हुआ।

माननीय व्यक्तित्व का भौतिक शरीर चला जाता है किन्तु स्मृतियाँ, विभिन्न घटनाएँ मानस पटल पर सदैव अंकित रहती हैं। श्री शास्त्री स्वामी के जी कुछ संस्मरण नीचे दिये जा रहे हैं, कुछ शास्त्री स्वामी जी के मुख से सुना है और कुछ प्रकृत दास के सामने की घटनाएँ हैं।

भगवान श्री रंगनाथ का ब्रह्मोत्सव चल रहा था। रथयात्रा का दिन था। रथ घर ऊपर सीढ़ी पर शास्त्री स्वामी जी को पकड़े हुए दास खड़ा था। ठंडी हवा चल रही थी। शास्त्री स्वामी जी काँप रहे थे। श्री वृन्दावन स्वामी जी ने शास्त्री स्वामी जी को बैठ जाने के लिए कहा। जब शास्त्री स्वामी जी नहीं बैठे तो श्री बालक स्वामी जी ने कहा– राघवाचारी जी मैं आदेश देता हूँ आप बैठ जाइए। श्री शास्त्री स्वामी जी फिर भी खड़े रहे आचार्य के सामने नहीं बैठे।

एक बार फल की गोष्ठी प्रसाद के बाद श्री बालक स्वामी जी ने विनोदवश अपना उच्छिष्ठ रिक्त दोना श्री शास्त्री स्वामी जी के हाथ में रख दिया और पूछे आपको मिल गया? हाजिर जवाब श्री शास्त्री स्वामी जी ने ससम्मान तुरन्त उत्तर दिया, '' दास को सर्वस्व प्राप्त हो गया।''

एक बार बरसाने में श्री राधा जी का दर्शन करने श्री शास्त्री स्वामी जी पधारे। चढ़ाई काफी थी गर्मी (अप्रैल) का मौसम है। प्रकृत दास ने शास्त्री स्वामी जी से निवेदन किया कि कुर्सी पर बैठकर चढ़ जाइए। शास्त्री स्वामी जी ने कहा यदि राधा जी मेरे अपने पैरों से चलाएंगी तभी दर्शन करूँगा। शास्त्री स्वामी जी ने अपने पैरों से चढ़कर गए। पैर को जलन से बचाने के लिए सरकारी टाट बिछे थे। एक दुकनदार ने अपनी दुकान के सामने का टाट खींचकर अपने दुकान के सामने

डाल दिया था। शास्त्री स्वामी जी पैर की जलन से छटपटाने लगे। एक तरफ से इस दास ने और दूसरी तरफ से श्री रंग लक्ष्मी विद्यालय के लिपिक विश्वास ने शास्त्री स्वामी जी को उठा लिया और श्री राधा जी के बरामदे में पहुँचा दिया।

उपरोक्त दिवस पर ही शास्त्री स्वामी जी गिरिराज गोवर्द्धन यतिपुरा स्थित श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर पहुँचे। गर्मी और प्यास से शास्त्री स्वामी जी व्याकुल थे। पुजारी ने कहा स्वामी जी बाल्टी रस्सी से कुंए से जल निकालकर पी लीजिए। स्वामी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। शास्त्री स्वामी जी श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर का एक दरवाजा खोला और मानसी गंगा में पहुँच गए। मानसी गंगा के जल में कीड़े बजबजा रहे थे। शास्त्री स्वामी जी ने रामानुज जी को आदेश दिया अंगोछे से जल उठाओ। रामानुज जी ने जल उठाया और शास्त्री स्वामी जी ने चुल्लू से जल पिया। मुझे डर लग रहा था कि कही स्वास्थ्य खराब न हो जाए, किन्तु कोई उपद्रव नहीं खड़ा हुआ। उपरोक्त दोनों घटनाएँ शास्त्री स्वामी जी की आस्था की कोटि को दर्शाती हैं।

श्री रंगनाथ भगवान के उत्तराधिकारी स्वामी जी (श्रीयतिराज स्वामी) सेवा से त्यागपत्र देकर श्री रंगनाथ भगवान की सेवा में आ जायें इसके लिए श्री शास्त्री स्वामी जी ने ठाकुर भगवान श्री विजय राघव जी की लक्ष अर्चना प्रायः करते थे।

अपने अन्तिम दिनों में श्री शास्त्री स्वामी जी जब चिकित्सालय में थे तो प्रकृत दास से एक दिन बोले – ''मास्टर साहब आप पर मुझे बहुत अभिमान था लेकिन (मौन)..... लेकिन के बाद स्वामी जी मौन हो गए। दास अब भी स्पष्ट कारण नहीं जान सका। निश्चय ही सेवा में कोई चूक हुई होगी। दास इस बात को निम्नाङ्कित घटना से जोड़ता है किन्तु सन्तुष्ट नहीं हो पाता है। यह दास 1992 से ही मन्दिर के व्यवस्थापिका ट्रस्ट श्री बलराम धर्म सेतु ट्रस्ट का सदस्य था। एक बार दास ने ठाकुर भगवान श्री विजयराघव की सम्पत्ति का दुरुपयोग रोकने में अपने आप को अक्षम देखते हुए सदस्य पद से इस्तीफा दे दिया। श्री शास्त्री स्वामी जी ने शासन करते हुए कहा '' मैं कहता हूँ इस्तीफा वापस ले लो''किन्तु स्वरूप का सही ज्ञान न होने के कारण मैंने स्तीफा वापस नहीं लिया। ठीक–ठीक 6 माह पश्चात मैंने इस्तीफा वापस लिया। ठीक–ठीक 6 माह तक श्री शास्त्री स्वामी जी ने इस दास को अपने शरीर सेवा से अलग रखा। मुझे इस बात का सीमातीत कष्ट है कि मैं निरन्तर श्री शास्त्री स्वामी जी के अनुकूल नहीं रह सका। यदि अपने भागवत दास स्वरूप, आचार्य दास स्वरूप का ज्ञान रहा होता तो मुझसे यह अपराध नहीं हुआ होता। इस अपराध के लिए मैं अपनी गुरुपरम्परा विशेष रूप से वै. वा. श्री शास्त्री स्वामी जी से अपराध क्षमा करने की क्षमा याचना कर रहा हूँ और करता रहूँगा। अपने आचार्यो के चरण रज रूप इस दास की प्रार्थना है कि इसके अपराधों को क्षमा करते हुए अपने चञ्चरीक को श्री चरणों में स्थान प्रदान करें

– श्रीधर रामानुज दास
अध्यक्ष–श्रीबलराम धर्म सेतु ट्रस्ट
ठाकुर श्री विजयराघव मन्दिर कनक मण्डप, उत्तर द्वार
विभीषण कुण्ड, श्री अयोध्या धाम, फैजाबाद
(उ. प्र.) पिनकोड–224123

शुद्धि–पत्र (1)

पृष्ठ सं.	पंक्ति सं	अशुद्ध	शुद्ध
1.	1	लागों	लोगों
1.	6	आन्नद	आनन्द
4.	10	जाना	जानी
39	25	सव	सर्व
44	25	लालासा	लाससा
59	4	समाञ्जस्य	सामञ्जस्य
79	11	उनका	उनको
88	17	भनवा	भानवा
113	6	मे	में
115	31	शुभागमय	शुभागमन
116	12	विधमान	विद्यमान
119	7	प्रवा	प्रवाह
119	9	उके	उनके
119	14	वकल	वकील
119	18	अन्याय	अन्यान्य
119	तृतीय प्रवाह, तृतीय अध्याय का द्वितीय अनुच्छेद पुनर्वार छप गया है ।		
123	8	में	X
123	8	आया	आयी
125	7	लोगों स्थिति	लोगों की स्थिति
127	26	प्रवृत्ति	प्रवृत्त
129	10	यस्यवस्वुनः	यस्यवस्तुनः
137	31	साच्छल्य	साफल्य
140	6	अधिक	X
142	1	पूर्वांशह	पूर्वांश
142	13	को की खोल	को खोल
142	18	कितन	कितना
149	3	को सलस्था	कोसलस्था
153	22	तकफ	तरफ
156	13	विलम्बन ही	विलम्ब नहीं
160	पंक्ति नं 3 छूट गयी है (पढ़ें – श्री वैकुण्ठ उपेत्य नियतम् जड़ं तस्मिन परब्रह्मणः)		
160	नीचे से 5	आचारी के	आचार्य का
170	17	भयानुकुलेन	मयानुकुलेन
177	नीचे से 11	अन्तर	अन्दर
184	नीचे से 11	सुविधा	असुविधा
185	16	रङ्देशिक	रङ्गदेशिक

शुद्धि–पत्र (2)

पृष्ठ सं.		पंक्ति सं	अशुद्ध	शुद्ध
202		15	रङ्गचार्य	रङ्गाचार्य
224	श्लोक 23 – 1 पंक्ति		कृष्णपादापादाब्जे	श्रीकृष्णपाद पादाब्जे
224	श्लोक 24– 4 पंक्ति		पूर्ण	पूर्णं
225	श्लोक 29– 2 पंक्ति		षारयाम्यहम्	धारयोम्यहम्
225	श्लोक 30– 1 पंक्ति		रुक्य	रुक्म
226	श्लोक 36– 4 पंक्ति		श्रीमत्तदङ्घि	श्रीमत्तदङ्घ्रि
228		18	वषणववों	वैष्णवों
230		13	सर्वयोऽपि	सर्वज्ञोऽपि
235	श्लोक 07		पुरुषोत्तस्य	पुरुषोत्तमस्य
239	पंक्ति 8		दासा	दास
239	श्लोक 25 – 2 पंक्ति		द्धानं	दधानं
239	श्लोक 25 – 4 पंक्ति		याान्तं	यान्तं
240		1	परेथुः	परेद्युः
240		नीचे से 4	अराध्य	आराध्य
240		,, ,,	विद्याय	विधाय
241		8	दिनर्य्या	दिनचर्य्या
246		19	शिरोधान	तिरोधान
247		1	उदाघन	उद्घाटन
248		3	प्रत्र	पुत्र
251		6	अन्त्र	अन्न
256		नीचे से 10	निभव	विभव
265		नीचे से 2	षन्त्रणा	यन्त्रणा
268		नीचे से 7	स्वजनो सस्यात्	स्वजनोनसस्यात्
269		नीचे से 1	लौकि	लौकिक
281		नीचे से 4	रन्धान	रन्ध्रान
281		नीचे से 3	प्रविशद्	प्राविशद्
288		3	अविच्छिंन्व	अविच्छिन्न
302	श्लोक 7 – 2 पंक्ति		दृष्टङ्घि	दृष्टङ्घ्रि
302	8 श्लोक 1 पंक्ति–1		दघघनाभ्र	दघघनाभ्र
303	श्लोक – 2 पंक्ति		मतिः वैष्णवानां	मति यो वैष्णवानां
303	(9) श्लोक 1 – पंक्ति–1		पतेरङ्घि	पतेरङ्घ्रि
304	श्लोक 4 – पंक्ति 4		सुमङ्गल	सुमङ्गलं
313	श्लोक 18 – पंक्ति 1		गुरुभि	गुरुभिः
319	श्लोक 46 – पंक्ति 2		वङ्गभिधायां	वङ्गाभिधायां
319	श्लोक 49 – पंक्ति 1		रामानुजार्याङ्घि	रामानुजार्याङ्घ्रि

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

श्रीविजयराघवमङ्गलाशासनम्

दक्षिणां प्रददौ काम्यां राघवं चेदमब्रवीत् ।।

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते। वृत्रनाशे समभवत् तत्ते भवतु मङ्गलम् ।। १ ।।

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत् पुरा। अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ।। २ ।।

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत्। अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत्ते भवतु मङ्गलम् ।। ३ ।।

त्रीन् विक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः। यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ।। ४ ।।

ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते। मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु शुभमङ्गलम् ।। ५ ।।

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्ध्ये। चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ।। ६।।

वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्त्तये। पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ।। ७ ।।

विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः। भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम् ।। ८ ।।

पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया। नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ।। ९ ।।

त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटनिवासिने। सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदाराय मङ्गलम् ।। १०।।

सौमित्रिणा च जानक्या चापबाणासिधारिणे। संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ।। ११।।

दण्डकारण्यवासाय खण्डितामरशत्रवे। गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम्।। १२ ।।

सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे। सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्त्वोद्रिक्ताय मङ्गलम्।। १३ ।।

हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने। वालिप्रमथनायास्तु महावीराय मङ्गलम्।। १४ ।।

श्रीमते रघुवराय सेतूल्लङ्घितसिन्धवे। जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम्।। १५ ।।

आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया। राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम्।। १६।।

मङ्गलाशासनमपरैर्मदाचार्यपुरोगमैः । सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम्।। १७ ।।

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम् ॥ १८ ॥

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधांस्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी ॥ १९ ॥

मातर्लक्ष्मि यथैव मैथिलजनस्तेनाध्वना ते वयम् त्वद्दास्यैकरसाभिमानसुभगैर्भावैरिहामुत्र च।
जामाता दयितस्तवेति भवती सम्बन्धदृष्ट्या हरिं पश्येम प्रतियाम याम च परीचारान् प्रहृष्येम च ॥२०॥

पितेव त्वत्प्रेयान् जननि परिपूर्णागसि जने हितस्रोतोवृत्त्या भवति च कदाचित कलुषधी।
किमेतन्निर्दोषःक इह जगतीति त्वमुचितै रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः ॥ २१॥

नेतुर्नित्यसहायिनी जननि नस्त्रातुं त्वमत्रागता
लोके त्वन्महिमावबोधबधिरे प्राप्ता विमर्दं बहु।
क्लिष्टं ग्रावसु मालतीमृदुपदं विश्लिष्य वासो वने,
जातो धिक् करुणां धिगस्तु युवयोः स्वातन्त्र्यमत्यङ्कुशम् ॥ २२ ॥

अधिशयितवानब्धिं नाथो ममन्थ बबन्ध तं
हरधनुरसौ बल्लीभञ्जं च मैथिलि।
अपि दशमुखीं लूत्वा रक्षः कबन्धमनर्त्तयत्
किमिव न पतिः कर्त्ता त्वच्चाटुचुञ्चुमनोरथः ॥ २३ ॥

औदार्यकारुणिकताश्रितवत्सलत्वपूर्वेषु सर्वमतिशायितमत्र मातः।
श्रीरङ्गधाम्नि यदुतान्यदुदाहरन्ति सीतावतारमुखमेतदमुष्य योग्यम् ॥ २४ ॥

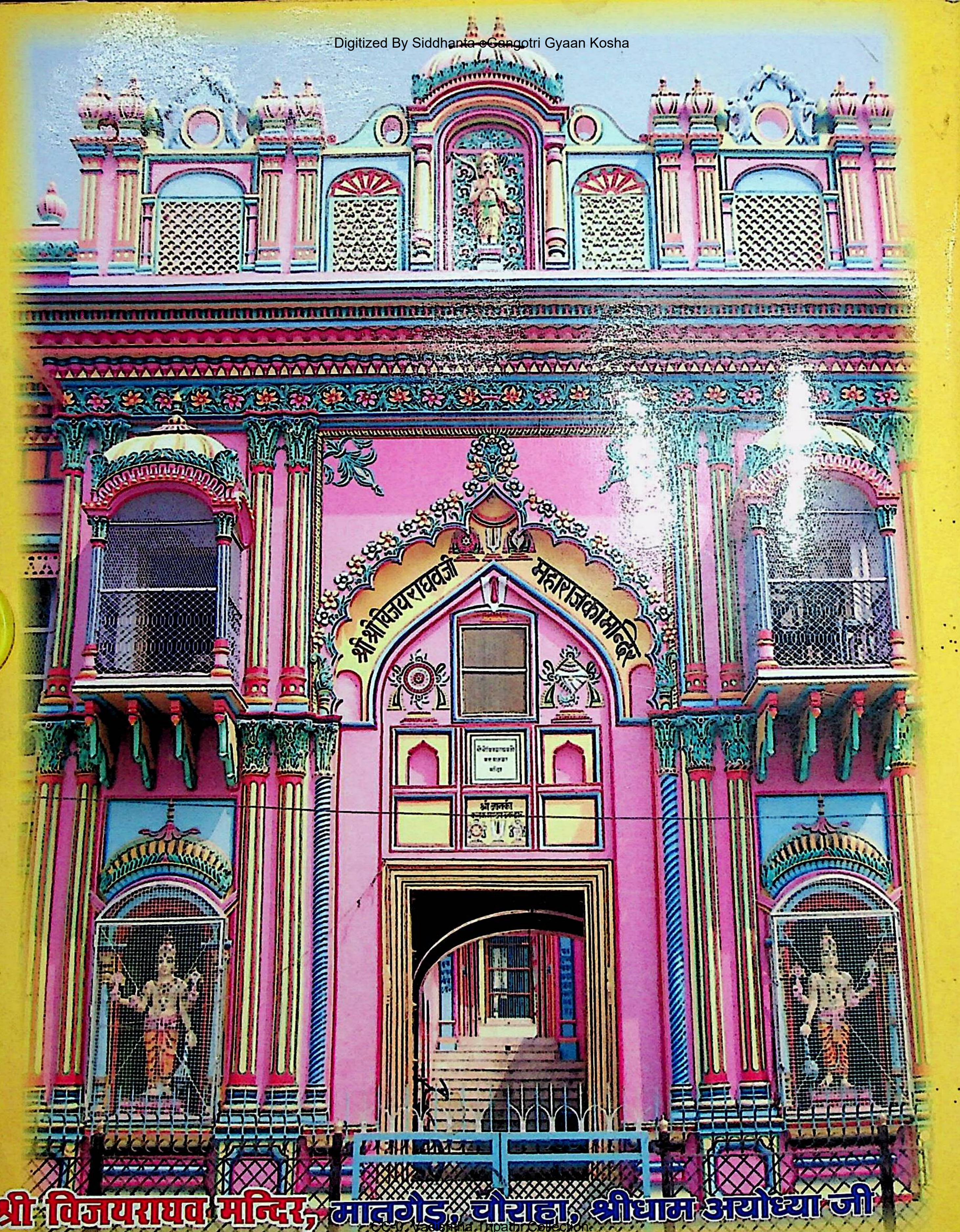
ऐश्वर्यमक्षरगतिं परमं पदं वा कस्मैचिदञ्जलिभरं वहते वितीर्य।
अस्मै न किञ्चिदुचितं कृतमित्यथाम्ब त्वं लज्जसे कथय कोऽयमुदारभावः ॥ २५ ॥

ज्ञानक्रियाभजनसम्पदकिञ्चनोऽहमिच्छाधिकारशकनानुशयानभिज्ञः ।
आगांसि देवि युवयोरपि दुःसहानि बध्नामि मूर्खचरितस्तव दुर्भरोऽस्मि ॥ २६ ॥

इत्युक्तिकैतवशतेन विडम्बयामि तानम्ब सत्यवचसः पुरुषान् पुराणान्।
यद्वा न मे भुजबलं तव पादपद्मलाभे त्वमेव शरणं विधितः कृतासि ॥ २७ ॥

त्वामामनन्ति कवयः करुणामृताब्धे ज्ञानक्रियाभजनलभ्यमलभ्यमन्यैः।
एतेषु केन वरदोत्तरकोसलस्थाः पूर्वं सदूर्वमभजन्त हि जन्तवस्त्वाम् ॥ २८ ॥

पूर्वां दिशं वज्रधरो दक्षिणां पातु ते यमः। वरुणः पश्चिमामाशां धनेशस्तूत्तरां दिशम् ।। २९
यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च। स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ।। ३०
सर्वदेशदिशाकालेष्वव्याहतपराक्रमा । रामानुजार्यदिव्याज्ञा वर्द्धतामभिवर्द्धताम् ।। ३१
रामानुजार्यदिव्याज्ञा प्रतिवासरमुज्ज्वला । दिगन्तव्यापिनी भूयात सा हि लोकहितैषिणी ।। ३२
श्रीमन् श्रीरङ्गश्रियमनुपद्रवामनुदिनं संवर्द्धय । श्रीरङ्गश्रियमनुपद्रवामनुदिनं संवर्द्धय ।। ३३
नमः श्री शैलनाथाय कुन्तीनगरजन्मने । प्रसादलब्धपरमप्राप्यकैङ्कर्यशालिने ।। ३४
श्रीशैलेशदयापात्रं धीभक्त्यादिगुणार्णवम् । यतीन्द्रप्रवणं वन्दे रम्यजातान्तरे मुनिम् ।। ३५
लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम् । अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।। ३६
यो नित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्मव्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धो रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ।। ३७ ।।
माता पिता युवतयस्तनया विभूतिः सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाभिरामं श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ।। ३८ ।।
भूतं सरश्च महदाह्वयभट्टनाथश्रीभक्तिसारकुलशेखरयोगिवाहान् ।
भक्ताङ्घ्रिरेणुपरकालयतीन्द्रमिश्रान् श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।। ३९ ।।
रघुकुलतिलक श्रीजानकीनाथभक्ततम् । कमलनयनसूरेः पादपद्माब्जभृंगम् ।
बुधवर बहुमान्ये राघवाचार्य वर्ये, विनिहितमनसं ते श्रीधर्रायम् भजामि ।। ४० ।।
श्रीमद्गर्गान्ववायेऽवतरितमनघं युग्मवेदान्तविज्ञं ज्ञानानुष्ठानसिद्धात्कमलनयनसद्देशिकाल्लब्धदीक्षम् ।
शिष्यानुज्जीवयन्तं श्रुतिनिकरगतैर्भक्तिमार्गोपदेशैः । वन्दे स्वाचार्यनिष्ठं गुरुवरमनिशं राघवाचार्यवर्यम् ।। ४१
शुश्रूषाबलरामसूरिपदयोः श्रीरङ्गसूक्तिप्रदा विद्वद्भागवतार्यदेशिककृपाज्ञानक्रियापोषिणी ।
यस्य श्रीरघुनाथयोगिकरुणाज्ञानक्रियावर्द्धिनी वन्दे श्रीकमलं परं च नयनं त सूरिचर्यं गुरुम् ।। ४२ ।
श्रीमत्काश्यपवंशभूषणमणिं शान्तिक्षमाद्यालयं । श्रीमच्छ्रीभजनार्यसूनुमनघं वेदान्ततर्काम्बुधौ ।
पूर्णेन्दु बलरामदेशिकपदाम्भोजद्विरेफं सदा वन्दे मङ्गलधामदेशिकमहं रामप्रप्न्नाह्वयम् ।। ४३ ।
श्रीमत्सदार्यबलरामगुरोः पदाब्जं सांश्रित्य लब्धनिगमान्तरहस्यसारम् ।
नारायणाश्रमनिवासरतं महान्तं श्रीमत्सदार्यरघुनाथगुरुं भजेऽहम् ।। ४४ ।।
श्रीमत्काश्यपवंशपद्मविपिने विद्योतनं भास्करं वेदान्तद्वयतर्कशास्त्रविशदीकारैकवाणीपतिम् ।
स्वामिश्रीबलरामदेशिकपदप्रेममालयं पावनं वन्दे भागवतार्यदेशिकवरं विद्यापगावारिधिम् ।। ४५
शाण्डिल्याह्वयवंशभूषणमणिं रामावतारात्मजं श्रीरङ्गार्यपदारविन्दमधुपं मान्यं सदा साधुभिः ।
श्रीवाग्भूषणदिव्यभावविशदीकारप्रवीणं सदा शान्तं श्रीबलरामसूरिमनघं नित्यं भजे सादरम् ।। ४६
वाधूलवंशकलशाम्बुधिपूर्णचन्द्रं श्री श्रीनिवासगुरुवर्यपदाब्जभृङ्गम् ।
श्रीवाससूरितनयं विनयोज्ज्वलन्तं श्रीरङ्गदेशिकमहं शरणं प्रपद्ये ।। ४७ ।।



श्री विजयराघव मन्दिर, मातगैड़, चौराहा, श्रीधाम अयोध्या जी